हिन्दी तथा बंगला नाटकों का तुलनात्मक अध्ययन

(सन् १९०१ से सन् १९५० तक)

कलकत्ता विश्वविद्यालय की डी० फिल० उपाधि के लिए स्वीकृत शोधप्रबन्ध

लेखिका
डा० रमा सेनगुप्ता
एम० ए०, डी० फिल०



प्रकाशक
कमल प्रकाशन, इन्दौर (म० प्र०)

पुस्तक प्राप्ति स्थान
मानकचन्द बुक डिपो
सती द्वार, उज्जैन
व
संजय प्रकाशन
सुलतानिया मार्ग, भोपाल

१९७१	प्रथम संस्करण
मूल्य	बीस रुपये
प्रकाशक	बंशीलाल मेड़तिया कमल प्रकाशन, इन्दौर
मुद्रक	मॉडर्न प्रिन्टरी लिमिटेड, इन्दौर

परमाराध्य पितृदेव
स्वर्गीय डा० सनत कुमार सेनगुप्ता की
पवित्र स्मृति में
सश्रद्ध समर्पित

प्राक्कथन

प्रस्तुत प्रबन्ध का विषय है—"हिन्दी तथा बंगला नाटकों का तुलनात्मक अध्ययन" (सन् १९०१ से सन् १९५० तक) । इस विषय को चुनने का मेरा प्रधान उद्देश्य है भारतीय साहित्य की विभिन्न प्रवृत्तियों में निहित अभिन्नता के अनुसन्धान द्वारा भारतीय संस्कृति की एकता की भावना को सुदृढ़ करना एवं उन्हें विश्व साहित्य के साथ प्रगति की ओर कदम बढ़ाते हुए दिखाना ।

भारतीय भाषाओं की मूलभूत एकता एवं उनके तुलनात्मक अध्ययन की आवश्यकता—हिमालय से कन्याकुमारी तक एवं आसाम से काठियावाड़ तक भारतवर्ष में अनेक भाषाएँ प्रचलित हैं जो प्रधानत: चार भाषा-गोष्ठियों में विभाजित की जाती हैं—आर्य, द्राविड़, कोल एवं तिब्बती-चीन । आर्यों के भारत में आने के पूर्व द्राविड़ सभ्यता अत्यन्त विकसित अवस्था में थी । आर्यों द्वारा पराजित होने पर अनार्यगण पूर्व एवं दक्षिण की ओर हटते गये । द्रविड़ों के भी पूर्व भारत में कोल भाषा बोलने वाली जातियां थीं जो अब भी अनेक स्थलों में हैं । धीरे-धीरे आर्य एवं अनार्य सभ्यता का मिश्रण होता गया एवं उसने हिन्दू सभ्यता को जन्म दिया जिसमें आर्य अनार्य का भेद भाव न रहा । आर्य भाषा का प्रसार होने लगा एवं जो अनार्य भाषाएँ जीवित रहीं उन पर भी आर्य भाषा का यथेष्ट प्रभाव पड़ा । जातिगत भेदभाव का उन्मूलन करते हुए जिस भारतीय संस्कृति का विकास हुआ उसकी छत्रछाया में ब्रह्मदेश तथा सिंहल द्वीप ही नहीं, जाह्वा, बाली, सुमात्रा आदि द्वीपपुंज भी आ गये । मौर्यकाल तथा गुप्तकाल में भारतीय-संहति और भी शक्तिशाली हुई । ग्रीक, शक, हूण, पठान, मुगल एवं पोर्तूगीज़, फ्रांसीसी तथा अंग्रेज आदि विदेशियों ने भारत पर आक्रमण किया, शासन किया एवं अन्त में विताड़ित भी हुए किन्तु भारतीय संस्कृति एवं भारतीय भाषाओं की मूलभूत एकता को वे नष्ट न कर सके । आज जो भारतीय भाषाएँ प्रचलित हैं उनमें आर्य भाषा गोष्ठी एवं द्राविड़ भाषा गोष्ठी प्रधान हैं । सांस्कृतिक, सामाजिक एवं राष्ट्रीय एकता की वृद्धि के लिए विभिन्न साहित्यों का तुलनात्मक अध्ययन आवश्यक है ।

तुलनात्मक अध्ययन

दो विभिन्न भाषा साहित्य के किसी भी अंग का तुलनात्मक विवेचन भी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है । इसमें भी कई पक्षों का विवेचन हो सकता है जैसे अठारहवीं शताब्दी के अंग्रेजी तथा फ्रेंच साहित्य में जर्मन साहित्यिक गेटे के विचारों का प्रकट प्रच्छन्न रूप इत्यादि । इसी तरह भारतीय नाटक साहित्य में शेक्सपियर के नाटकों अनुवाद के रूप में प्रवेश हुआ । उनकी नाट्यकला की विधि अपनाई गई एवं विभिन्न परिस्थितियों में शेक्सपियर के नाटकों ने विभिन्न रूप ग्रहण किया । इन सबका तुलनात्मक विवेचन होना आवश्यक है ।

साहित्य के तुलनात्मक विवेचन के अन्तर्गत एक का दूसरे पर क्या प्रभाव पड़ा, इसका लेखा-जोखा लगाना ही यथेष्ट नहीं होता । जब कोई अनुन्नत साहित्य किसी उन्नत साहित्य के सम्पर्क में आता है तब उन्नत साहित्य का वह अनुकरण भी करता है एवं उसे ग्रहण कर उसके तत्वों को अपने में मिला लेना भी चाहता है जैसे अंग्रेजी साहित्य के सम्पर्क में आने पर बंगला तथा हिन्दी साहित्य ने उसका अनुकरण भी किया, उसके साहित्य शास्त्रीय कई तत्वों को ग्रहण भी किया एवं अनुवाद व भाषान्तर भी किया। इसे हम हिन्दी व बंगला साहित्य पर पाश्चात्य साहित्य का प्रभाव कह सकते हैं। इसी तरह जिस समय बंगला साहित्य में बंकिमचन्द्र, शरच्चन्द्र, द्विजेन्द्रलाल, रवीन्द्रनाथ जैसी प्रतिभाओं का उदय हुआ उस समय हिन्दी साहित्य में इस कोटि की प्रतिभाओं का अभाव था एवं उन लेखकों का हिन्दी साहित्य पर यथेष्ट प्रभाव पड़ा। किंतु सुदीर्घ अर्द्ध शताब्दी अर्थात् १९०१ से सन् १९५० तक के हिन्दी एवं बंगला नाट्य-साहित्य के अध्ययन करने पर ज्ञात होगा कि उनकी प्रभाव-मूलक आलोचना ही यथेष्ट नहीं, तुलनात्मक आलोचना भी आवश्यक है। **पाश्चात्य नाट्यशास्त्र तथा नाटकों के तत्वों ने व पाश्चात्य विचारधारा ने हिन्दी तथा बंगला नाट्य-साहित्य में किस रूप में प्रवेश किया एवं हिन्दी तथा बंगला नाट्य-साहित्य तथा रंगमंचों का आपस में क्या सम्बन्ध रहा**—ये विषय तुलनात्मक विवेचन के अन्तर्गत आयेंगे। हिन्दी तथा बंगला नाट्य-साहित्य का विकास भी साथ ही साथ हुआ।

भारतीय भाषाओं में साहित्य के क्षेत्र में जो संहति व ऐक्य विराजमान है उसका उद्घाटन करना ही इस प्रबन्ध का प्रधान लक्ष्य है। संस्कृत साहित्य के विपुल ऐश्वर्य से भारतीय साहित्य पुष्ट हुआ एवं आधुनिक देश-भाषाओं के विकास के मूल में भी भारतीय संस्कृति एवं **संस्कृत साहित्य की प्रेरणा** थी। इस कारण हिन्दी, बंगला, गुजराती, मराठी, तामिल आदि साहित्य में साम्य दृष्टिगोचर होते हैं। भारतीय साहित्य का आपस में निविड़ सम्पर्क है। उनका विकास भी समानान्तर रूप से हुआ एवं उनमें आदान-प्रदान भी होता रहा। भारतीय साहित्य में सभी साहित्य का पारस्परिक संबंध होते हुए भी हिन्दी तथा बंगला साहित्य का सम्बन्ध कुछ अधिक घनिष्ठ रहा। यह सम्बन्ध अंग्रेजी शासन के आरम्भिक काल से प्रगाढ़ होने लगा जबकि पुण्य नगरी काशी एवं राजधानी कलकत्ता भगीरथी के जल-पथ द्वारा एक-सूत्र में गुंथ गये। बाद में बंगला में जो सांस्कृतिक पुनरुत्थान हुआ उससे समस्त भारत जाग्रत हो उठा किन्तु उसकी लहरों ने पड़ोसी प्रदेश बिहार, उत्तर-प्रदेश आदि को तुरन्त अपनी भाव-धाराओं में निमज्जित किया। काशी, प्रयाग तथा वृन्दावन, मथुरा जैसे तीर्थों में जाकर बंगवासियों ने भी आध्यात्मिक प्रेरणा प्राप्त की। साहित्य किसी भी जाति की भाव-धारा का दर्पण है अतः हिन्दी तथा बंगला साहित्य के सभी क्षेत्रों में भावधारा का यह पारस्परिक सम्बन्ध व्यक्त हुआ है। नाटक-साहित्य में यह सम्बन्ध अधिक सजीव एवं परिस्फुट हो उठा है क्योंकि नाटक किसी भी जाति के व्यक्तित्व की सबसे बलिष्ठ एवं दृश्य अभिव्यक्ति है तथा जन-मानस की छाप सबसे अधिक नाटक-साहित्य पर ही पड़ती है।

भारतीय-जीवन के सांस्कृतिक, राजनैतिक एवं सामाजिक ऐक्य का विवेचन मैंने प्रबन्ध के विषय-प्रवेश में किया है। इस द्वार के उद्घाटन के पश्चात् हिन्दी तथा बंगला नाट्य-साहित्य के तुलनात्मक विवेचन के सोपान हैं। यह विवेचन उन्नीसवीं सदी के मध्य-भाग से ही प्रारम्भ हुआ है किन्तु इसका प्रधान अंश है बीसवीं सदी का पूर्वार्द्ध। इस प्रबन्ध की विशेषता इसके तुलनात्मक-विवेचन में है। इसके पूर्व हिन्दी तथा बंगला साहित्य का प्रभाव-मूलक विवेचन हो चुका है। डा० ब्रह्मानन्द ने तथा श्री सुकुमार भट्टाचार्य ने पारस्परिक प्रभाव का विवेचन किया है किन्तु तुलनात्मक-विवेचन प्रभाव-मूलक विवेचन से भिन्न है। साहित्य के क्षेत्र में तुलनात्मक-विवेचन की शाखा अत्यंत आधुनिक प्रयास है एवं इसका महत्व अब इतना अधिक अनुभव हो रहा है कि तुलनात्मक-विवेचन के बाद साहित्य की अन्य आलोचनाओं का रूपरंग ही बदल जाता है। तुलनात्मक दृष्टिकोण की भित्ति सहयोग की भावना है।

तुलनात्मक विवेचन के अन्तर्गत प्रवृत्ति तथा शैली का समानान्तर विकास, उनके साम्य तथा वैषम्य के सूत्रों की भी खोज की जाती है। यह समानान्तर विकास एक दूसरे पर प्रभाव के कारण नहीं, पारस्परिक आदान-प्रदान के कारण होता है। प्रभाव में अनुकरण का अंश अधिक रहता है एवं आदान-प्रदान तथा सादृश्य में व्यक्तित्व का विकास होता है। इस तुलनात्मक विवेचन की सामग्री मूल रचना, अनुवाद, प्रभावित रचना सभी होती हैं एवं स्वीय पृष्ठभूमि पर उनकी प्रगति का मूल्यांकन होता है। इस प्रगति में साहचर्य की भावना निहित रहती है। इसके अन्तर्गत सार्वभौमत्व, सार्वजनीनता के साथ-साथ किसी भी भूखंड की संस्कृति के ऐक्य का निदर्शन प्राप्त होता है।

हिन्दी तथा बंगला नाट्य-साहित्य में यह सांस्कृतिक ऐक्य अत्यन्त उज्ज्वल हो उठा है। भारत की आध्यात्मिक साधना, राष्ट्रीयता तथा समाज-विकास नाटक साहित्य में सजीव रूप में विद्यमान हैं। नाट्य-साहित्य के इस तुलनात्मक विवेचन के दो पक्ष हैं—प्रथम, साहित्यिक दृष्टिकोण से उनका विवेचन, द्वितीय, रंगमंचीय दृष्टिकोण से उनका विवेचन। **साहित्यिक** पक्ष के अन्तर्गत इस प्रबन्ध में विभिन्न प्रवृत्ति, जीवन-दर्शन, उद्देश्य, प्रयोग व टेकनीक का विवेचन हुआ है जिसमें प्राच्य तथा पाश्चात्य नाट्य सिद्धान्त की कसौटी का प्रयोग हुआ है। **रंगमंचीय** पक्ष के अन्तर्गत हिन्दी तथा बंगला के रंगमंच का विकास एवं उनकी अभिनेयता पर विशेष रूप से प्रकाश डाला गया है। आज हिन्दी तथा बंगला नाट्य-साहित्य के लिए रंगमंच का प्रश्न अत्यन्त महत्वपूर्ण बन गया है। बंगला रंगमंच व्यावसायिक तथा अव्यावसायिक मंडलियों के द्वारा दिनों दिन उन्नति कर रहा है किन्तु हिन्दी रंगमंच के क्षेत्र में जो प्रयास हो रहे हैं वे नगण्य हैं। जबकि कलकत्ते में स्टार, मिनर्व्हा, विश्वरूपा, रंगमहल आदि प्रसिद्ध नाट्यशालाएँ तथा असंख्य छोटी-छोटी नाट्य-संस्थाएँ हैं, तब हिन्दी में कलकत्ते में केवल 'मून लाइट' ही उल्लेखनीय है। हिन्दी रंगमंच की समस्याएँ तथा बाधाएँ क्या हैं इस प्रश्न की छानबीन इस प्रबन्ध में संक्षेप में की गई है। बंगला के फिल्म-जगत एवं नाट्य-जगत में सम्बन्ध-सूत्र है किन्तु हिन्दी फिल्म-जगत की रुचि एवं साहित्यिक नाटकों की रुचि भिन्न है। इन साहित्यिक तथा रंगमंचीय पक्षों पर आलोकपात करते हुए इस प्रबन्ध में हिन्दी तथा बंगला नाटकों का सर्वांगपूर्ण तुलनात्मक-विवेचन हुआ है।

प्रस्तुत प्रबन्ध की मौलिकता—इस प्रबन्ध में एक विशाल पटभूमि पर भारतीय नाट्य-साहित्य की तुलनामूलक आलोचना हुई है। यह एक विशाल त्रिभुज के समान है जिसके तीन कोण तीन दृष्टिकोण के सदृश्य हैं—

१. मानव सभ्यता के विकास के साथ-साथ नाटक एवं रंगमंच का विकास हुआ एवं मानव सभ्यता के इतिहास में नाटक का प्रमुख स्थान है।

२. विश्व नाट्य-साहित्य में भारतीय नाट्य-साधना का अत्यन्त महत्व है। ग्रीक, चीन, जापान आदि के नाट्य-साहित्य की तुलना में संस्कृत नाट्य-साहित्य निकृष्ट नहीं है एवं भरत नाट्य-शास्त्र तो शास्त्रीय ग्रंथों में अमूल्य सम्पदा है।

३. संस्कृत नाट्य-साहित्य की परम्परा से जोड़ते हुए हिन्दी तथा बंगला नाट्य-साहित्य को प्रगतिशील रूप में अंकित किया गया है।

इस प्रबन्ध की भूमिका में प्रथम बार विशद् रूप से हिन्दी तथा बंगला साहित्य के पारस्परिक सम्पर्क की आलोचना हुई है। यह सम्पर्क आदि काल से लेकर आधुनिक काल तक बना हुआ है—

१. चर्यापद तथा व्रजबुलि जैसे प्राचीन साहित्य में हिन्दी तथा बंगला का पारस्परिक आदान-प्रदान स्पष्ट है। कबीर जैसे हिन्दी के मरमिया साधकों की वाणी एवं बाउल सम्प्रदाय के साधकों की वाणी में भी साम्य है।

२. कलकत्ता के फोर्ट विलियम कॉलेज में मिशनरियों के उद्योग से समसामयिक रूप से हिन्दी तथा बंगला गद्य का विकास हुआ।

३. बंकिमचन्द्र, शरच्चन्द्र, रवीन्द्रनाथ, विवेकानन्द तथा श्री अरविन्द की वाणी से केवल बंगाल ही नहीं, समस्त भारत प्रभावित हुआ।

४. राष्ट्रीय कांग्रेस के अधिवेशनों में अधिकांश बंगाली नेताओं ने हिन्दी भाषा को राष्ट्रीय मर्यादा देने की इच्छा व्यक्त की।

५. रंगमंच की नगरी कलकत्ते में केवल बंगला के रंगमंच ही नहीं, हिन्दी नाट्य-परिषद, मदान थियेटर, मून लाइट तथा अनामिका जैसी संस्थाओं के हिन्दी रंगमंच भी स्थापित हुए।

६. भारतीय गण नाट्य संघ का जन्म कलकत्ते में हुआ एवं इसकी शाखाएँ समस्त भारत में फैल गईं।

७. शान्तिनिकेतन के नाट्याभिनयों में बंगाली तथा अन्य भाषा-भाषी छात्रों ने भी दिलचस्पी दिखाई।

८. भ्राम्यमाण यात्रा तथा रासलीला की मंडलियों के प्रदर्शन द्वारा भी हिन्दी तथा बंगला का सम्पर्क बढ़ा।

९. आकाशवाणी केन्द्र द्वारा आयोजित नाट्य-प्रतियोगिताओं में विभिन्न भारतीय भाषाओं का नाट्य-साहित्य एक दूसरे के सम्पर्क में आया।

१०. विश्वविद्यालयों तथा कॉलेजों के छात्रों ने संस्कृत नाटक, विदेशी नाटक, आधुनिक भारतीय भाषाओं के नाटक तथा उनके अनुवादों का जो अभिनय किया उसके द्वारा भी हिन्दी तथा बंगला नाटकों का तुलनात्मक रूप स्पष्ट हुआ।

इस प्रबन्ध में पहली बार हिन्दी तथा बंगला नाट्य साहित्य को **तुलनात्मक दृष्टिकोण** से परखा गया है—

१. दोनों नाट्य साहित्य की परम्परा एक थीं किन्तु परिस्थितियाँ भिन्न-भिन्न थीं।
२. दोनों की प्रेरक तथा बाधक शक्तियाँ भिन्न-भिन्न थीं।
३. उनके उद्गम तथा समानान्तर विकास में साम्य तथा वैषम्य के अनेक कारण उपस्थित थे।
४. विभिन्न जीवन-दर्शन उद्देश्य तथा प्रवृत्तियाँ उनके मूल में थीं।
५. दोनों ने भिन्न-भिन्न टेकनीकों का प्रयोग किया।

इस प्रबन्ध के द्वितीय अध्याय में विशद रूप से संस्कृत नाटकों में निहित हिन्दू जीवन-दर्शन एवं पाश्चात्य नाटकों में निहित पाश्चात्य दार्शनिक विचार-धाराओं पर प्रकाश डाला गया है क्योंकि इन दोनों का समन्वय हिन्दी तथा बंगला नाटकों में हुआ है।

संस्कृत नाटकों के आदर्श—

१. वर्णाश्रम धर्म व्यवस्था पर आस्था।
२. जीवन का लक्ष्य अभ्युदय एवं निःश्रेयस्।
३. राजा तथा प्रजा का सम्बन्ध पिता-पुत्र जैसा।
४. पति पत्नि का सम्बन्ध धर्म पर आधारित।
५. दुःख की सुखात्मक परिणति में आस्था।

इनके सिवा हिन्दू जीवन-दर्शन में संघर्ष का भी महत्व था जैसा कि वैदिक युग के ग्रंथों एवं गीता से पता चलता है। संस्कृत नाट्यशास्त्र के दस रूपकों की रूढ़ि तथा ब्राह्मण्य आदर्शों को त्यागकर किस प्रकार हिन्दी तथा बंगला नाट्य-साहित्य आगे बढ़े यही इस प्रबन्ध का मूल तत्व है। **युग-चेतना ने हिन्दी तथा बंगला नाट्य साहित्य के नवीन रूप का निर्माण किया** एवं उनकी विभिन्न धाराएँ स्पष्ट हो उठीं—

१. भक्ति से युक्ति की ओर बढ़ते हुए पौराणिक नाटकों का उद्भव हुआ।
२. राजभक्ति के स्थान पर राष्ट्रीयता को उद्देश्य मानकर ऐतिहासिक नाटकों का जयघोष निनादित हुआ।
३. आर्थिक संकट से जूझने के लिए गण-चेतना से उद्बुद्ध सामाजिक नाटकों की सृष्टि होने लगी।
४. स्वच्छन्दतावादी नाटकों में मुक्ति की भावना प्रबल हो उठी। कहीं-कहीं प्रेम-प्रलाप तथा कल्पना विहार से पलायनवादी दृष्टिकोण भी व्यक्त हुआ।
५. पाश्चात्य नाट्य-साहित्य के संपर्क से नई-नई शैलियों का प्रयोग होने लगा।

तृतीय अध्याय से सन् १९०१ से लेकर सन् १९५० तक रचित हिन्दी तथा बंगला नाटकों का तुलनात्मक विवेचन प्रारम्भ हुआ है। इस **तुलनात्मक-विवेचन की विशिष्टताएं** निम्नलिखित हैं—

१. समन्वयात्मक दृष्टिकोण—हिन्दी तथा बंगला नाटकों के उदाहरणों द्वारा यह

प्रमाणित किया गया है कि उनमें संस्कृत तथा पाश्चात्य नाट्यशास्त्र एवं लोक नाटकों के तत्वों का समन्वय हुआ है।

२. उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध में इन नाटकों की चार धाराएँ थीं—पौराणिक, ऐतिहासिक, सामाजिक तथा रोमांटिक। बीसवीं सदी के प्रारम्भ के साथ इन धाराओं का रूप परिवर्तित तथा विकसित हुआ। इस प्रकार स्वरूप परिवर्तन के कारणों पर यथेष्ट प्रकाश डाला गया है।

३. तुलनात्मक विवेचन के लिए वर्गीकरण पौराणिक, ऐतिहासिक, सामाजिक तथा रोमांटिक परम्परा के अनुकूल किया गया है किन्तु उन पर जीवन-दर्शन, रचना उद्देश्य तथा तन्त्र सम्बन्धी विभिन्न प्रयोगों के प्रभाव का भी विश्लेषण किया गया है। इस तुलनात्मक विवेचन में ऐतिहासिक विवेचन, प्रभावात्मक विवेचन तथा मूल्यांकन का भी समावेश करते हुए इस नाट्यालोचना को सर्वांगपूर्ण बना दिया गया है।

४. साहित्यिक नाटकों के साथ लोक नाटकों की भी आलोचना द्वारा नाटक के महत्वपूर्ण पक्ष का समर्थन किया गया है। हिन्दी की रासलीला तथा रामलीला शैली एवं बंगला की यात्रा-शैली का तुलनात्मक स्वरूप प्रस्तुत किया गया है। इसके साथ ही साहित्यिक एवं लोक नाटकों के पारस्परिक आदान-प्रदान पर भी प्रकाश डाला गया है।

५. हिन्दी तथा बंगला के रंगमंच के विकास का भी तुलनात्मक विवेचन हुआ है जिसके अन्तर्गत हिन्दी मंच की असफलता के कारण, बंगला मंच की समस्याएँ, स्वाधीनता के बाद भारत सरकार द्वारा हिंदी मंच के उद्धार की चेष्टा, पाश्चात्य रंगमंचों का प्रभाव, शान्तिनिकेतन का विशिष्ट रंगमंच आदि का उल्लेख हुआ है। हिंदी तथा बंगला नाटकों की अभिनेयता का भी सूक्ष्म तुलनात्मक विवेचन हुआ है।

६. हिन्दी तथा बंगला नाट्य-साहित्य के उषाःकाल में अंग्रेजी नाट्यकार विलियम शेक्सपियर के नाटकों की सबसे अधिक धूम थी। हमारे जातीय जीवन की जड़ता रूपी चट्टानों पर इंग्लैंड के पुनरुत्थान काल के इस कवि की भाव-तरंगें आघात करने लगीं। उनके नाटकों का मूल रूप में तथा अनुवाद के रूप में अभिनय हुआ। उनकी नाट्यशैली, अलंकार गर्भित भाषा-शैली, विदूषक तथा नायक नायिका के चरित्र तथा एलिजाबेथन युग के मंच का प्रभाव हमारे नाटक तथा रंगमंच पर अत्यधिक पड़ा। इस शोध-प्रबन्ध में शेक्सपियर के प्रभाव को अधिक महत्व न देकर यह दृष्टिकोण रखा गया है कि हिन्दी तथा बंगला नाट्य-साहित्य में महाकवि शेक्सपियर का किस तरह स्वांगीकरण हुआ। हिन्दी की अपेक्षा उर्दू व बम्बइया हिन्दी में उनके स्वरूप की प्रतिष्ठा हुई, किन्तु वह रूप कुरुचिपूर्ण था। दूसरी ओर बंगला में शेक्सपियर के सुरुचिपूर्ण रूप की प्रतिष्ठा हुई यद्यपि यह रूप भी सर्वांगपूर्ण नहीं था। शेक्सपियर के नाटकों का सार्थक अनुवाद व अभिनय हिन्दी एवं बंगला नाट्य-साहित्य में क्यों नहीं हुआ इसके कारणों पर प्रकाश डाला गया है।

७. प्राच्य एवं पाश्चात्य विचार-धाराओं का विशद् रूप से विवेचन हुआ है क्योंकि हिन्दी तथा बंगला का नाट्य-साहित्य इन दो विचार-धाराओं का संगम है। उनमें वैदिक आदर्श तथा पेगान आदर्श, बुद्ध, ईसा, गांधी तथा रवीन्द्रनाथ का मानवता-बोध, भारत का समाज-केन्द्रिक आदर्श एवं पाश्चात्य का राष्ट्र-केंद्रिक आदर्श, राम तथा कृष्ण एवं विवेकानन्द, तिलक, सुभाष, जवाहर जैसे लोक-नायकों के आदर्श जार्ज बर्नार्ड शॉ के 'लाइफ फोर्स' एवं डार्विन के विकास-वाद के प्रगतिशील स्वरूप के तत्व का उद्‌घाटन तथा मार्क्स एवं लेनिन के साम्यवादी विचारों का पुट है। इन विचारों पर प्रकाश डाले बिना हिन्दी एवं बंगला नाटकों की आलोचना अधूरी रह जाती है। मनु के समाज-शास्त्र, कौटिल्य के अर्थशास्त्र के साथ ही हिटलर के "माइन कम्प्फ" एवं मार्क्स के "कैपिटल" पर प्रकाश डालने पर हिन्दी तथा बंगला के सामाजिक नाटकों का स्वरूप स्पष्ट हो सकता है। इन सब विचारों पर एक विहगम दृष्टि डालते हुए मैंने तुलनात्मक विवेचना की है। शैव-दर्शन पर आधारित भारतीय नाट्यशास्त्र, ग्रीक नाटकों की नियति, नैतिक विधान तथा महाशुद्धि (विरेचन) का सिद्धान्त, गेटे रचित 'फाउस्ट', पिकासो के चित्र, जर्मनी के बीठोफेन, मोत्सार्ट, ह्वैगनर, भेर्दी आदि के ऑपेरा, बेलजियन कवि मेतरलिंक के सांके-तिक नाटक, टी. एस. इलियट के काव्यरूपक आदि का समन्वित रूप आज का नाट्य-साहित्य हैं। इसके साथ ही प्रकृतवाद, अतियथार्थवाद, अस्तित्ववाद, अभिव्यंजनावाद, प्रभाववाद आदि से आज का नाट्य-साहित्य एवं रंगमंच अछूता नही है। हिन्दी तथा बंगला नाटकों को समझने के लिए भरत, नन्दीकेश्वर, धनंजय आदि के शास्त्रों का ज्ञान उतना ही आवश्यक है जितना कि स्तानिस्लाह्वस्की, गॉर्डन, क्रेग, राइनहार्डट् एवं मायर सोल जैसे पाश्चात्य नाट्य-प्रयोजकों को समझना आवश्यक है। जर्मनी के विख्यात नाट्यकार बेटेल्टि ब्रेख्त के 'एपिक थियेटर' एवं अभिनय सम्बन्धी 'थियोरी ऑफ एलिये-नेशन' को भी अगर उपेक्षित किया जाय तो किसी भी नाट्य-साहित्य की आलोचना पूर्ण नहीं हो सकती। इन विचारों एवं टेकनीक के अगनित तरंगों को एक शृंखलित रूप में परिचालित कर मैंने हिन्दी तथा बंगला नाट्य-साहित्य की तुलनात्मक आलोचना के क्षेत्र को सिंचित किया है। ऋग्वेद की ऋचाओं एवं संवादों से लेकर 'कैपिटल' तक एवं भरतमुनि से लेकर ब्रेख्त तक की यह विहंगम-दृष्टि भारत के पवित्र चार धामों की परिक्रमा जैसी है। यह प्रयास केवल मौलिक ही नहीं आन्तर्जातिक दृष्टि से भी अत्यन्त महत्व-पूर्ण है।

८. काव्य का नाटक में क्या क्या स्थान होना चाहिए यह एक अति पुरातन समस्या है। नर और नारी के संबंध के समान काव्य और नाटक का संबंध भी जटिल है। भारतीय साहित्य के अनुसार नाटक को दृश्यकाव्य कहा जाता है। अरस्तू ने यह स्पष्ट नहीं किया कि त्रासदी एवं कामदी गद्य में रचित हों या

पद्य में । यूरोप में मत-वैभिन्य का उदय हुआ एवं अमित्राक्षर छन्द (ब्लक व्हर्स) का प्रचलन हुआ । कालिदास एवं शेक्सपियर के नाटक काव्य-गुणना से ओत-प्रोत हैं । भारत के लोक नाटकों की विशिष्टता तो उनके छन्द एवं गीतों में है । अतः कालिदास, शेक्सपियर, रासलीला जात्रा आदि के मिश्रण से जब हिन्दी एवं बंगला नाट्य साहित्य का जन्म हुआ तब वे काव्य के प्रभाव से मुक्त नहीं रहें । मैंने इस शोध-प्रबन्ध में हिन्दी तथा बंगला नाटकों में गीति-नाट्य, गीताभिनय, काव्यनाट्य आदि की विशिष्टताओं का विवेचन किया है। धीरे-धीरे सामाजिक नाटकों की यथार्थवादी प्रवृत्ति ने काव्य के मोह को दबा दिया । यूरोप में यथार्थवाद की प्रतिक्रिया शुरू हो गई । टी. एस. इलियट का मत था कि पौराणिक, मनस्तत्व संबंधी, सांकेतिक तथा अमूर्त्त तथ्य पूर्ण नाटक पद्य में ही रचित होना चाहिए । ब्रेख्त के एपिक थियेटर में काव्य का विशेष महत्व है । हिन्दी तथा बंगला नाट्य-साहित्य काव्य तथा नाटक के सम्मिश्रण में कितने सफल हुए हैं इसका मैंने मौलिक ढंग से निरूपण किया है ।

९. प्राच्य एवं पाश्चात्य जीवन दर्शन एवं नाट्य-शैली के समन्वय का जो प्रयास हुआ है उस पर तुलनात्मक ढंग से प्रकाश डाला गया है ।

१०. प्रयोगों की दृष्टि से गीतिनाट्य, नृत्यनाट्य, ऋतुनाट्य आदि पर नवीन ढंग से प्रकाश डाला गया है ।

११. जीवनी नाटक, समस्या-मूलक नाटक तथा तत्व-रूपक जैसी नई विधाओं की विशद् रूप से आलोचना की गई है ।

१२. हिन्दी तथा बंगला रंगमंच के विकास, उनकी उन्नति के बाधक तत्व तथा नाटकों की अभिनेयता पर प्रथम बार शिल्प की दृष्टि से आलोचना की गई है ।

मेरे इस शोध-प्रबन्ध के निर्देशक, कलकत्ता विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग के अध्यक्ष श्री कल्याणमल लोढ़ा के प्रति मैं अपनी सश्रद्ध कृतज्ञता ज्ञापन करती हूं । शान्तिनिकेतन में चार वर्ष रहकर मुझे विश्वभारती के ग्रंथागार से अशेष सहायता मिली एवं गुरुदेव के नाटकों को देखने का अवसर मिला । मुझे शोध कार्य में प्रेरित करने के लिए विश्वभारती के हिन्दी विभाग के अध्यक्ष डॉ० रामसिंह तोमर की मैं हृदय से आभारी हूं ।

आशा है पाठकगण नाट्य-साहित्य के तुलनात्मक-विवेचन से लाभान्वित होंगे एवं नटराज के पादपीठ पर यह दीपक प्रज्वलित हो जीवन एवं जगत की नवीन दिशाओं को आलोकित करेगा ।

खंडवा, मध्यप्रदेश,
महाशिवरात्रि

डॉ० रमा सेनगुप्ता

विषय–सूची

अध्याय १

हिन्दी तथा बंगला नाटकों की प्रारम्भिक स्थिति की तुलनात्मक विवेचना

नाटक का साहित्य-शास्त्रीय परिचय

मानव की तीन आदिम प्रवृतियों ने नाटक को जन्म दिया—अनुकरण, आत्म-प्रकाशन तथा आत्म-विस्तार। जिस समय अपने भावों को व्यक्त करने के लिये अरण्यवासी शिकारी मानव के लिए कोई भाषा न थी, उस समय हर्ष से उछलकर तथा वेदना से म्लान-मुख होकर वह अपने भावों को व्यक्त करता था। नाटक की उत्पत्ति के सम्बन्ध में वीरपूजा, दैविक, धार्मिक तथा विकासवाद आदि अनेक मत हैं जिनमें विकासवाद ही समीचीन प्रतीत होता है। नाटक का इतिहास मानव के इतिहास की तरह अत्यन्त प्राचीन है। नाटक का आरम्भ उसी समय से हो गया जब किसी जानवर की खाल पहनकर, उसकी बोली का अनुकरण कर किसी गुफावासी असभ्य मानव ने कौतुक की सृष्टि की होगी अथवा शिकार के उपरान्त मंडलाकार समूह नृत्य करते एवं चिल्लाते होंगे। इस तरह के कलारहित नृत्यों का धीरे-धीरे कलात्मक नृत्यों के रूप में एवं नाट्य के रूप में विकास हुआ होगा। फिर भाषा के विकास के साथ-साथ गीत, संवाद आदि तत्वों का योग हुआ एवं इनका कलात्मक रूप निखरता गया। 'नट' धातु से 'नाटक' शब्द की व्युत्पत्ति इसी तथ्य को प्रमाणित करती है। 'नट्' धातु 'नृत्' का ही प्राकृत रूप है। वेबर, मंकड आदि का यही मत है कि नृत्य से नाटक की उत्पत्ति हुई है।

भरत मुनि रचित नाट्यशास्त्र के अनुसार स्वर्ग में भरत मुनि के निर्देशन में अभिनीत रूपक (डिम) "त्रिपुर दाह" देखकर शिवाजी अत्यन्त प्रसन्न हुए एवं तंडु मुनि को आदेश दिया कि वे नाटकों में नृत्य की योजना करना भरत मुनि को सिखा दें। इससे यही प्रमाणित होता है कि दृश्य काव्य व रूपक का अर्थ था—अभिनयात्मक प्रदर्शन व जिसमें नटों पर पात्रों के रूप का आरोप होता है। अभिनय द्वारा दर्शकों में रस का उद्रेक होता है एवं रस-सृष्टि ही भारतीय नाटककारों का लक्ष्य रहा है। रस की परिपुष्टि के लिये ही भारतीय नाटकों में नृत्य एवं गीत का महत्वपूर्ण स्थान है। संस्कृत नाटकों में पूर्व रंग-विधान इसका उदाहरण है।

मानव-सभ्यता के विकास के साथ-साथ प्रत्येक देश में नाटक एवं रंगमंच का विकास हुआ। प्रारम्भ से ही नाटक का जीवन से घनिष्ठ सम्पर्क रहा है। नाटक केवल व्यक्तिगत जीवन का ही नहीं, किसी भी राष्ट्र के सांस्कृतिक जीवन का एवं किसी भी समाज के लोक जीवन का वह दर्पण है। भरत मुनि ने पितामह द्वारा नाटक की उत्पत्ति का कारण बताते हुए नाट्यशास्त्र में जो लिखा है उससे जन समाज के साथ नाटक के घनिष्ठ सम्बन्ध की पुष्टि होती है—

"योऽयं स्वभावो लोकस्य सुख दुःख समन्वितः।
सोऽगाधभिनयोयेतो नाट्यमित्यमिधीयते ॥"[१]

ग्रीक का "ड्रामा" शब्द "ड्राओ" से बना है जिसका अर्थ है "मैं करता हूं।" पाश्चात्य नाट्य साहित्य में क्रिया (एक्शन) को प्रधानता दी गई है। कला के सम्बन्ध में अरस्तू का अनुकरण सिद्धान्त अत्यन्त महत्वपूर्ण है। प्लेटो ने कला को सत्य से विलग, अनुकृति की अनुकृति कहा। अरस्तू ने अनुकृति व "मिमेसिस" (इमिटेशन) की विशद् व्याख्या की। अरस्तू के अनुसार अनुकृति में सादृश्य तो रहता ही है किन्तु कलाकार वाह्य यथार्थ को इन्द्रियों द्वारा ग्रहण करके, मन द्वारा सउकी उपलब्धि करके जो सृजन करता है वह केवल भाव प्रतिकृति नहीं, कल्पना-प्रसूत प्रतिन्यास है। जो कुछ बीज रूप में वह ग्रहण करता है, उस जीवन-सत्य को विकसित रूप में वह व्यक्त करता है। "अरस्तू का काव्यशास्त्र" ग्रन्थ की भूमिका में नगेन्द्र लिखते हैं—"बुचर के अनुसार अरस्तू के 'अनुकरण' शब्द का अर्थ है 'सादृश्य विधान अथवा मूल का पुनरुत्पादन'—सांकेतिक उल्लेख नहीं।"[२] अरस्तू ने काव्य के अन्तर्गत ट्रेजेडी को श्रेष्ठ माना है। ट्रेजेडी में क्रिया की अनुकृति होती है। अतः कार्य-व्यापार के रूप में उसकी रचना होती है। अरस्तू ने ट्रेजेडी के लिये अभिनय को आवश्यक नहीं माना। उसके अनुसार किसी महान् व्यक्ति की किसी भूल के कारण देव से संघर्ष करते हुए उसके कार्य-व्यापार को ट्रेजेडी के कलात्मक रूप में देखकर व पढ़कर श्रोता के हृदय में त्रास व करुणा के संचार द्वारा विवेचन होता है। ट्रेजेडी में जीवन का भव्यतर एवं कामेडी में जीवन का हीनतर चित्रण दृश्यात्मक रूप में होता है।

संक्षेप में भारतीय एवं पाश्चात्य नाट्यशास्त्र में यही प्रधान अन्तर है कि भारतीय सिद्धान्त के अनुसार रस दृश्य-काव्य की आत्मा है एवं पाश्चात्य सिद्धान्त के अनुसार संघर्ष, गति एवं परिणति ही नाटकीय-क्रिया के अंग हैं। यह संघर्ष भौतिक, मानसिक एवं आध्यात्मिक भी हो सकता है।

हिन्दी एवं बंगला के प्रारम्भिक नाटक

हिन्दी के प्रारम्भिक नाटक रचना के प्रयास छन्दोबद्ध हैं जिन्हें कि डा० दशरथ ओझा रास शैली का प्रभाव मानते हैं एवं नाटक कहना समीचीन समझते हैं। डा.सोमनाथ गुप्त कलात्मक दृष्टि से उन छंदोबद्ध नाटकों को प्रबंध काव्य व नाटकीय-काव्य मानते हैं एवं हिन्दी में संस्कृत नाटकों के अनुवादों को ही प्रारम्भिक नाटकों की आख्या देते हैं। "दोनों अनुवाद संस्कृत के नाटकों के अनुवाद हैं जो स्वाभाविक ही है क्योंकि हिन्दी के विकास की प्रेरणा का मूल उद्गम संस्कृत और उसका स्वाभाविक परिष्कृत रूप है।"[३]

---

१. नाट्यशास्त्र भरत मुनि (चौखम्भा प्रकाशन) १.११९
२. अरस्तू का काव्यशास्त्र—भूमिका लेखक डा. नगेन्द्र पृष्ठ ६ (प्र. सं. संवत् २०१४ वि.)
३. हिन्दी नाटक साहित्य का इतिहास—डा० सोमनाथ गुप्त (चौथा सं० सन् १९५८) पृष्ठ ५

ब्रजभाषा में रचित इन प्रारम्भिक प्रयासों को हम नाटक व नाटकीय काव्य की आख्या नही दे सकते क्योंकि 'नाटकीय' कहने का तात्पर्य चरित्रों का मानसिक द्वन्द,उनका विकास, उनकी परिणति तथा उन चरित्रों के द्वारा संघर्षपूर्ण घटनाओं की दृष्टि, चरम-सीमा तथा उनका स्वाभाविक कार्य-कारण-परम्परा द्वारा नियोजित अन्त है। 'रामायण महानाटक' (सन् १६१०), हृदयराम कृत 'हनुमन्नाटक' (सन् १६३२), बनारसीदास कृत 'समयसार नाटक' (सन् १६३६) आदि में इस तरह की नाटकीयता का अभाव है। इन्हें हम नाटकीय-काव्य न कहकर संवादात्मक काव्य कह सकते हैं। यद्यपि इन ब्रजभाषा के साहित्यिक नाटकों की रचना जन-नाट्य शैली में हुई फिर भी इनकी प्रमुखता इनके काव्यत्व में है, नाटकत्व में नही। अतः ये पुष्ट नाट्य-परम्परा के प्रारम्भिक निदर्शन व प्रतिनिधि रचना नहीं। प्रयास मात्र हैं। महाराज यशवंतसिंह द्वारा 'प्रबोध-चन्द्रोदय' (सन् १६७०) का अनुवाद, राजा लक्ष्मणसिंह द्वारा 'शकुन्तला' (सन् १८६३) का अनुवाद, [illegible] के लिए उल्लेख योग्य होते हुए भी **अनुवाद** ही हैं, मौलिक कृतियां नही। इन उदाहरणों द्वारा संस्कृत के नाट्य-तत्वों के अनुकरण या स्वीकरण का प्रश्न नही उठता, इन्हें हम प्रेरक कह सकते हैं।

इनके सिवा देवमाया-प्रपंच, प्रभावती, रीवां नरेश विश्वनाथ सिंहजू रचित 'आनन्द रघुनन्दन' (सन् १७००), कृष्ण जीवन लच्छीराम कृत 'करुणाभरण' सन् (१६५७), रघुराम नागर कृत 'समासार' (सन् १७६२) तथा भारतेन्दु के पिता गोपाल-चन्द्र कृत 'नहुष' (सन् १८५७) आदि नाटक भी **ब्रजभाषा** में रचित हैं।

हिन्दी में अभिनय की प्रेरणा से लिखे गये दो नाटक उल्लेख योग्य हैं। अमानतखां रचित **'इन्दर सभा'** (सन् १८५३) का अभिनय केसर बाग, लखनऊ में हुआ जिसमें वाजिदअलीशाह स्वयं इन्द्र बने। इस नाटक की शैली जन-नाट्य-शैली है तथा यह उर्दू के प्रयोगों से परिपूर्ण है। हिन्दी के व्यक्तित्व से पूर्ण शीतलाप्रसाद त्रिपाठी रचित नाटक **'जानकी मंगल'** (सन् १८६८) का भी अभिनय बनारस थियेटर में हुआ किन्तु यह नाटक उपलब्ध ही नहीं है।

अतः यह प्रमाणित होता है कि भारतेन्दु के पूर्व का युग जो संघर्षहीन तथा अंधकाराच्छन्न था, नाटक रचना के उपयुक्त नहीं था। उस युग में जन-नाटक प्रचलित थे तथा जन-नाटकों की शैली पर कुछ ब्रजभाषा के नाटकों की रचना भी हुई किन्तु उनमें काव्यत्व के भार से नाटकत्व बोझिल था। भारतेन्दु युग के नाटक विभिन्न नाट्य-साहित्य से तत्व ग्रहण कर रहे थे, ब्रजभाषा के ये नाटक उनके बीज नहीं कहे जा सकते हैं।

बंगला नाटकों के प्रारम्भिक प्रयास संवादात्मक काव्य नहीं थे और न केवल यह कहना संगत होगा कि विलायती ढंग पर बने थियेटरों की प्रेरणा से पाश्चात्य शैली के नाटकों द्वारा बंगला नाट्य साहित्य का सूत्रपात हुआ। बंगाल की परिस्थिति भिन्न थी। एक ओर बंग के द्वार से पाश्चात्य की प्रबल शक्ति का प्रवेश हो रहा था, दूसरी ओर समुद्राभिमुख नदियों की विभक्त धाराएँ अपने तटों को नित नये रूप में मिटाती बनाती रहीं। बाढ़, दुर्भिक्ष और राजनैतिक हलचलों का विशिष्ट केन्द्र कलकत्ता रहा। अतः बंगवासी जितने भावावेग से आन्दोलित होते थे उतनी ही उनकी सामाजिक-चेतना भी

सक्रिय है। संघर्ष के बीच बंगाल में नव नव प्रतिभाओं का उन्मेष हुआ। इस स्थल पर प्रख्यात समाज सुधारक राजा राममोहन राय तथा प्रख्यात साहित्यिक बंकिमचन्द्र के नाम उल्लेखनीय हैं। नाट्य क्षेत्र में रामनारायण तर्करत्न, दीनबन्धु मित्र एवं माइकेल मधुसूदन दत्त के पूर्व रचित नाटकों पर एक विहंगम दृष्टि डालने पर यह प्रमाणित होता है कि बंगला में थियेटरों के अनुकूल रचना के पूर्व कुछ पाठ्य नाटक भी रचे गये थे — किन्तु इन्हें भी नाटक न कहकर नाटक लिखने के प्रयास ही कहेंगे, क्योंकि अधिकांश तो सामाजिक कुरीतियों पर व्यंग्य होने के कारण प्रहसन के हल्के रूप तक ही सीमित रह गये, ऐसे पाठ्य नाटकों के कुछ उदाहरण हैं—भवानीचरणकृत नवबाबू विलास एवं नवबीबी विलास, विश्वनाथ मित्र कृत कलिराजा का माहात्म्य (सन् १८५०), रामधन राय कृत कलिचरित, नारायण चट्टराज कृत कलि कुतूहल (सन् १८५३) एवं प्यारीचांद मित्र रचित आलालेर घरेर दुलाल एवं काली प्रसन्न सिंह रचित "बाबू नाटक" (सन् १८५३)।

रंगमंच के अनुकूल नाटकों का इतिहास भी बंगाल में कुछ वैशिष्ट्यपूर्ण था। विलायती थियेटरो के अतिरिक्त वहां जमीदार वर्ग भी एक आभिजात्य-मंडली थी जो प्रचुर धन व्यय करके साहित्यिक विषयों में भाग लेती थी, अपने भवनों में शौकिया नाट्यमंच बना कर नाट्यकारों को प्रोत्साहित करती थी। कलकत्ते में यूरोपीयन थियेटरों मे शेक्सपियर के नाटकों की धूम थी। इधर एक रूसी व्यक्ति **गेरासिम लेबेडेफ** ने १५ नवम्बर १७९५ में The Disguise और Love is the Best Doctor के बंगला अनुवाद का अभिनय कराया। प्रसन्नकुमार ठाकुर द्वारा नाट्यशाला उद्घाटन सन् १८३१ में हुआ। इसके सिवा भारतचन्द्र के काव्य 'विद्यासुन्दर' के नाट्यरूप का अभिनय नवीनचन्द्र वसु के गृह के मंच पर सन् १८३५ में हुआ। नन्दकुमार राय के 'अभिज्ञान शाकुन्तलम्' के अनुवाद का अभिनय आशुतोष देव के गृह में ३० जनवरी, सन् १८५७ को हुआ। मणिमोहन सरकार रचित 'महाश्वेता' का अभिनय भी आशुतोष देव के गृहमंच पर हुआ। **इन अंग्रेजी तथा संस्कृत नाटकों के अनुवादों को** भी हम बंगला के प्रारम्भिक नाटकों की आख्या नही दे सकते किन्तु इन अनुवादो को उसी शैली में रखते हुए उन्हें अभिनीत कराने का प्रयास स्तुत्य है। यह प्रयास भविष्य का पथ निर्माण कर रहा था।

हिन्दी तथा बंगला नाटकों के प्रारम्भिक युग में शेक्सपियर का प्रभाव

उन्नीसवी शताब्दी के उत्तरार्द्ध में भारतीय नाट्य जगत पर शेक्सपियर के नाटकों का सबसे अधिक प्रभाव पड़ा। शेक्सपियर के स्वच्छन्दतावाद से अनुप्राणित होकर बंगला के सुप्रसिद्ध नाटककार डी० एल० राय के नाटकों का सृजन हुआ एवं तत्पश्चात् हरिकृष्ण प्रेमी, जयशंकर प्रसाद तथा अनेकों के नाटक इस शैली में बीसवीं सदी में रचित हुए। किन्तु उसके पूर्व शेक्सपियर के नाटकों का भारतीय रंगमंच पर अभिनय ने ही जनता के भावों को आन्दोलित किया। उनके नाटकों का अभिनय अत्यन्त लोकप्रिय हुआ। मूल अंग्रेजी नाटकों का अभिनय कलकत्ते के अनेक शौकिया रंगमंचों में हुआ जिनका विस्तृत विवरण ब्रजेन्द्रनाथ बन्दोपाध्याय रचित "बंगीय नाट्य-

शालार इतिहास" नामक ग्रन्थ में बंगला रंगमंच में शेक्सपियर शीर्षक अध्याय में है। प्रसन्नकुमार ठाकुर के **हिंदू थियेटर में सन् १८३१ में जूलियस सीजर** के कुछ अंश का अभिनय हुआ। सन् १८३७ में हिन्दू कालेज के छात्रों ने पुरस्कार वितरण सभा में शेक्सपियर के नाट्यांशों का पाठ किया। सन् १८४८ में वैष्णव चरण आढ्य ने सांसूसी मंच में ओथेलो का अभिनय किया। इसके सिवा डेव्हिड हेयर अकाडेमी के छात्रों ने Merchant of Venice (१८५३) का अभिनय किया। ओरियंटल सेमिनार के छात्रों ने "ओथेलो" (सन् १८५३), "मर्चेन्टस् आफ व्हेनिस" (सन् १८५४), "हेनरी फोर्थ" (सन् १८५५) का अभिनय किया।

शेक्सपियर के नाटकों का हिन्दी तथा बंगला नाट्य साहित्य पर त्रिविध रूप में प्रभाव पड़ा—

१ उनके नाटकों का मूल तथा अनूदित रूप में अभिनय हुआ एवं 'एलिजावेथन थियेटर' की टेकनीक अपनाई गई।

२ भारतीय भाषाओं में उनके नाटकों के अनुवाद हुए एवं शेक्सपियर विभिन्न भाषाओं में विभिन्न व्यक्तित्व के साथ उदित हुए।

३ शेक्सपियर की नाट्य शैली भी अनेक लेखकों ने अपनाने की चेष्टा की यद्यपि वे उसमें पूर्ण सफल नहीं हुए।

पारसी नाटक मंडलियों के बम्बई में स्थापित थियेटरों में शेक्सपियर के ट्रेजेडी तथा कामेडी के उर्दू अनुवादों के अभिनय की धूम रही जिसका विस्तृत विवरण श्री आ० के० याज्ञिक ने अपने ग्रन्थ "दी इण्डियन थियेटर" में दिया है। **बेताब ने 'शेक्सपियर" नामक पत्रिका निकाली** जिनमें उनके अनूदित एवं मौलिक नाटक प्रकाशित हुए।

बंगला अनुवाद तथा उनका अभिनय उर्दू की अपेक्षा अधिक कलात्मक तथा सुरुचिपूर्ण हुए इसका कारण पारसी नाटक मंडलियों का व्यावसायेक दृष्टिकोण था। **हिंदी में शेक्सपीयर के नाटकों का अभिनय नहीं हुआ** क्योंकि हिन्दी भाषा जनता उर्दू (बम्बइया हिन्दी) नाटकों के प्रदर्शनों को देखकर ही तृप्त हो जाती थी तथा हिन्दी का कोई अलग स्थायी रंगमंच न था। भारतेन्दु ने "मर्चेण्ट आफ व्हेनिस" का छायानुवाद "दुर्लभ बन्धु" किया (सन् १८८०) जिसमें पात्र तथा स्थान के नामों का सुन्दर भारतीयकरण किया गया। संवाद गद्य में लिखे गये एवं केवल एक दो गीतों का प्रयोग हुआ। इस तरह के छायानुवाद बंगला में भी हुए जिनमें हरचन्द्र घोष द्वारा अनुदित "भानुमती चित्तविलास" (मर्चेन्ट आफ व्हेनिस), "चारुमुख चित्तहरा" (रोमियो जूलिएट) तथा [illegible] ठाकुर द्वारा अनुदित "जूलियस सीज़र" उल्लेख योग्य हैं।[१] शेक्सपियर के नाटकों के अनुवाद तथा अभिनय उनके प्रभाव के ज्वलन्त उदाहरण थे। इसके सिवा उनकी **नाट्य शैली का परोक्ष प्रभाव** हिन्दी तथा बंगला नाट्य क्षेत्र पर पड़ा। फलस्वरूप त्रासदियों तथा कामदियों की

---

१. बांगला साहित्येर इतिहास—प्रथम खण्ड
लेखक डा. सुकुमार सेन

रचना होने लगी किन्तु हिन्दू जीवन-दर्शन के गंभीर प्रभुत्व के कारण पाश्चात्य आदर्शों को अपनाने में कठिनाई हुई। इस विषय में विल्सन लिखते हैं—"इन ट्रुथ, दी इनडिविजुअल एण्ड सोशियल आर्गेनिजेशन आफ दी नेटिव्स आफ इण्डिया इज़ अनफेवरेबल टू दी डेवेलपमेंट अाफ टावरिंग पैशन्स।"

माइकेल मधुसूदन दत्त रचित "कृष्णकुमारी", उमेशचन्द्र मित्र रचित "विधवा विवाह", दीनबन्धु मित्र रचित "नील दर्पण" तथा भारतेन्दु हरिश्चन्द्र रचित "नील देवी" त्रासदी के उदाहरण हैं। शेक्सपियर के रोमांटिक ट्रेजेडी की शैली पर श्रीनिवासदास ने "रणधीर प्रेम मोहिनी" तथा "तप्ता संवरण" एवं उपेन्द्रनाथ दास ने "शरत-सरोजिनी" तथा "सुरेन्द्र विनोदिनी" (सन् १८७५) की रचना की,उपेन्द्रनाथ दास के इन बंगला नाटकों में देशप्रेम की उत्तेजना थी। इस कारण सन् १८७६ में "ड्रामाटिक परफामेंसेस कन्ट्रोल एक्ट" द्वारा इनका अभिनय निषिद्ध कर दिया गया। इन रचनाओं के बाद प्रेमलीला पूर्ण रोमांटिक नाटकों की एक धारा ही चल पड़ी एवं शेक्सपियर की स्वच्छन्दतावादी शैली का प्रभाव गिरीशचन्द्र घोष, डी० एल० राय, रवीन्द्रनाथ, जयशंकर प्रसाद तथा हरिकृष्ण प्रेमी आदि पर पड़ा।

प्रत्यक्ष प्रभाव

शेक्सपियरीय शैली में **पाश्चात्य नाट्यकला के जो तत्व** थे उनका प्रवेश हिन्दी तथा बंगला नाटकों में होने लगा। अन्तर्द्वन्द, प्रतिहिंसा, चरमसीमा, षड्यंत्र, हत्या, रोमांचकारी घटनाएँ, नाटकीय भाषा, परिस्थितियां तथा संलाप, पात्रों का शील वैचित्र्य तथा अमित्राक्षर छन्द (ब्लैंक व्हर्स) का प्रयोग होने लगा। माइकेल मधुसूदन ने बंगला में दीर्घ उक्तियों में मिल्टन के छन्द एवं दूत-संवादों में शेक्सपियर की पद्धति का अनुसरण किया है। रवीन्द्रनाथ ने "विसर्जन" नाटक में कभी गद्य प्रयोग एवं कभी भावावेश के स्थलों पर अमित्राक्षर छन्द का प्रयोग किया।

शेक्सपियर की नाट्य शैली के प्रत्यक्ष प्रभाव के साथ **परोक्ष प्रभाव** भी उपेक्षणीय नहीं हैं। उनका प्रभाव विभिन्न क्षेत्रों पर पड़ा—

१. ग्रीक त्रासदी की अमोघ नियति के विधान के स्थान पर **नायक** के महान् चरित्र की एक त्रुटि का चित्रण अधिक हुआ। प्रसाद के नायकों में त्रासदी के नायक के अनेक तत्व विद्यमान हैं फिर भी उनके नाटक दुखान्त न होकर सुखांत हैं।

२. **नियति का विधान**—अतिप्राकृत तत्वों का समावेश, वर्ण विद्वेष की भावना आदि द्विजेन्द्रलाल के नाटकों में अधिक है। ज्यू (Jew) शाइलाक एवं शूद्राणी मूरा की भावना में साम्य है।

३. शेक्सपियर के नाटकों के **विदूषक** बहुत गूढ़ चरित्र हैं। कामेडी में वे Clown हैं किन्तु ट्रेजेडी में वे Fool के रूप में अधिक जटिल चरित्र हैं जो अश्रु को हँसी में एवं विज्ञता को मूर्खता की ओट में छिपाये रखते हैं। हिन्दी तथा बंगला नाटकों के मुद्गल, दिन्दार आदि संस्कृत के विदूषकों से भिन्न हैं।

४. आत्मपक्ष के समर्थन तथा मनस्तात्विक उद्घाटन करने में सफल शेक्सपियर के पात्रों की स्वगतोक्तियों का भी अत्यन्त प्रभाव पड़ा।

केवल शेक्सपियर का इतना प्रभाव पड़ा कि एलिजावेथ के समय के रंगमचों को ही आदर्श समझा गया एवं उसी तंत्र के अनुसार नाटक लिखे गये। नाटकों के पात्र तक शेक्सपियर के नाटकों की उक्तियां कहने लगे जैसे दीनबन्धु रचित प्रहसन 'सधवार एकादशी' के 'यंग बेंगाल' का प्रतीकात्मक पात्र नीमचांद। शेक्सपियर के इस व्यापक प्रभाव का एक कारण यह भी हो सकता है कि संस्कृत नाटक एवं शेक्सपियरीय नाटकों में अनेक साम्य है। यथा-करुणा के स्त्रोत, भावों की उच्चता, अतिप्राकृत तत्व, प्रेम की उत्कृष्ट व्यंजना, जीवन के चिरन्तन सत्य की झांकी आदि। शेक्सपियरीय विचार तथा भाव धारा भारत के लिए नवीन नहीं थी, नाट्य शैली में कुछ अन्तर अवश्य था।

शेक्सपियर के सिवा इस युग में फ्रैन्च कामेडी लेखक मोलियर के कुछ नाटकों के भी अनुवाद हुए। फार्स, आपेरा, ब्लेस्क आदि की भी रचनाएँ हुई किन्तु शेक्सपियर का जितना प्रभाव हिन्दी तथा बंगला नाटकों पर पड़ा उतना अन्य किसी भी पाश्चात्य लेखक का नहीं। शेक्सपियर जैसे महाकवि के प्रभाव से अपने को मुक्त रखना उस युग में सम्भव नहीं था। इसके कारण थे—

१. भारत का वह पुनरुत्थान काल था।

२. बम्बई तथा कलकत्ता जैसे शहरों में निर्मित यूरोपीय थियेटरों में शेक्सपियर के नाटकों का उत्कृष्ट अभिनय हो रहा था।

३. संस्कृत के रंगमंच लुप्त हो चुके थे एवं लोक नाट्य-मंच फूहड़ तथा कुरुचि-ग्रस्त था।

हिन्दी और बंगला भाषा की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि

भारत में कितनी ही भाषाएँ क्यों न हों, कितने ही सम्प्रदाय क्यों न हों, किन्तु भारत की संस्कृति सिन्धु घाटी सभ्यता के समय से एक रही। **पुरातत्व विभाग** के नित नवीन खोज सिद्ध कर रहे हैं कि जो सभ्यता तथा संस्कृति मोहनजोदड़ो और हड़प्पा में थी, वही उज्जयिनी में भी थी, वही गंगा नदी के किनारों में सुदूर पूर्व तक थी। सभ्यता बहुमुखी होती है—राजनीति, अर्थनीति, समाजनीति, शास्त्रीय विधि निषेध, लौकिक कायदे कानून आदि। संस्कृति की दृष्टि अन्तर्मुखी होती है। यह अनुभूति एवं गहन चिन्तन द्वारा, धर्म, दर्शन, शिल्प, कला आदि द्वारा प्रकाशित होती है। श्रीसर्वपल्ली राधाकृष्णन् ने अखिल भारतीय संस्कृति समन्वय सम्मेलन के सभापति के पद से भाषण देते हुए कहा था—"भारतीय संस्कृति की पहली विशेषता यह है कि उसने बाह्य आचार अनुष्ठान को अधिक महत्व प्रदान नही किया, उससे अधिक मूल्य दिया है मनुष्य की आध्यात्मिक उन्नति को, उसके आन्तरिक सौन्दर्य को। उसकी दूसरी विशेषता है मनुष्य को सबसे बढ़कर समझना।" वैदिक काल, महाकाव्य काल, पुराण काल से लेकर जैन धर्म तक, बौद्ध धर्म के उत्थान काल तक वे आध्यात्मिकता से अनुप्राणित हुए एवं उनकी संस्कृति ने एक्य भावना को दृढ़ किया। बौद्ध सिद्ध कवियों के चर्यापद को हिन्दी एवं बंगाली समभाव से अपनी प्राचीन सम्पत्ति समझते हैं। बौद्ध धर्म के पतन

के बाद शंकराचार्य ने पुनः ब्राह्मण्यधर्म का प्रचार कर भारत के चार कोने में चार धामों की प्रतिष्ठा कर सभी भाषा भाषियों को एक कर दिया। हिन्दी एवं बंगला भाषी सबसे अधिक एक भावनात्मक डोर में बंध गये, **वैष्णव आंदोलन** के द्वारा। ब्रजभूमि के वैष्णव एवं गौड़ीय वैष्णवों में प्रभूत आदान प्रदान हुआ जिसका सुन्दर उदाहरण है बंगाल का ब्रज-ब्रुलि काव्य। जयदेव, विद्यापति, चंडीदास केवल बंगाल व मिथिला के ही नहीं समस्त उत्तर भारत के प्रिय कवि रहे। रूप गोस्वामी ब्रज में जाकर वास करने लगे। **कबीर** जैसे मरमिया साधकों और जायसी आदि सूफी साधकों की वाणी सब ओर गई। मुगल काल में नाट्यकला को छोड़ चित्रकला, संगीत तथा काव्य की उन्नति हुई। मुगल दाक्षिणत्य को जय नही कर सके किन्तु उनकी संस्कृति रावलपिण्डी, मुलतान, दिल्ली, लखनऊ से लेकर ढाका, चट्टग्राम तक फैल गई। फिर भारतीय संस्कृति पर पाश्चात्य संस्कृति ने विजय पाने की चेष्टा की किन्तु **रामकृष्ण परमहंस, विवेकानंद,** श्री **अरविंद** तथा **रवीन्द्रनाथ ठाकुर**—बंगभूमि के इन चार वाणी गुरुओं ने भारतीय मानस को व्यक्त किया। सन् १८७५ में आर्य समाज की स्थापना हुई। सन् १८७९ में प्रवर्तित **थियोसाफीकल आंदोलन** होते रहे। सांस्कृतिक क्षेत्र में भारत की विशिष्टता बनी रही—वह विशिष्टता यह है कि भारत ने राष्ट्र की अपेक्षा समाज को अधिक महत्व दिया एवं समाज की अपेक्षा मानवात्मा को।

साहित्यिक पृष्ठभूमि

अपभ्रंश काल के पश्चात् भारत की देशभाषाओं का स्वरूप विकसित होने लगा एवं प्रतिभाशाली लेखकगण लोगों की बोलचाल की भाषा में साहित्य रचना करने लगे। गुजराती, राजस्थानी, पंजाबी, मालवी, बुन्देलखडी बघेलखंडी, ब्रज, अवधी, छत्तीसगढ़ी, भोजपुरी, मगही, मैथिली आदि हिन्दी की ही विभाषाएं हैं, यद्यपि आजकल हिन्दी से केवल खड़ी बोली के साहित्य का बोध होता है। मागधी अपभ्रंश से भोज-पुरी, मगही, मैथिली एवं बंगला भाषा का जन्म हुआ। अतः व्यापक हिन्दी का जो प्रसार सौराष्ट्र से मिथिला तक है, उसके साथ बंगला भाषा का सम्बन्ध ही नहीं आदान प्रदान भी बहुत हुआ है। इसी कारण **विद्यापति** को बंगाली अपना कवि मानते हैं। **सूर, तुलसी और मीरा** के भजन बंगालियों के हृदय को भी मुग्ध करते रहे हैं एवं **कबीर** के रहस्यवाद से रवीन्द्रनाथ तक प्रभावित हुए।

खड़ी बोली गद्य का आभास यद्यपि हमें अमीर खुसरो की पहेलियों में मिलता है, फिर भी उसका विकास सन् १८५० के बाद ही होता है। **कलकत्ता के फोर्ट विलियम कालेज** के प्रोफेसर जान गिलक्राइस्ट की प्रेरणा से मुंशी सदासुखलाल, सदल मिश्र, लल्लूलाल एवं इन्शाअल्ला खां की लेखनी द्वारा हिन्दी के गद्यकाल का श्रीगणेश हुआ। हिन्दी की प्रथम पत्रिका 'उदन्त मार्तण्ड' एवं बंगला की प्रथम साप्ताहिक पत्रिका 'सोमप्रकाश' कलकत्ता से ही प्रकाशित हुई। पं. माधव शुक्ल ने कलकत्ते में 'हिन्दी नाट्य परिषद्' की स्थापना की। यद्यपि यह परिषद् स्थायी न हो सकी फिर भी बंगाल में हिन्दी नाटक अभिनय का सूत्रपात हो गया। इस तरह बंगाल का सांस्कृतिक केन्द्र कलकत्ता साहित्यिक विषयों में भी हिन्दी के साथ अच्छेद्य बन्धन में बंध गया।

ईस्ट इण्डिया कम्पनी के यूरोपीय कर्मचारियों ने भी तत्कालीन संस्कृति के क्षेत्र को प्रभावित किया। उन्होंने चन्दा एकत्रित कर थियेटर गृह का निर्माण किया जो आगे चलकर बंगला एवं हिन्दी रंगमंच के लिए आदर्श का नमूना बना। चंडी लाहिड़ी रचित "विदेशीदेर चोखे बांगला" ग्रन्थ के **कलकाताय थियेटरेर आदिपर्व** अध्याय में लिखा है—"प्रतिकूल अवस्था सत्वेओ साहेबरा १७७५ साले कलकाताय नियमित अभिनयेर जन्य थियेटर प्रतिष्ठा कोरलेन।" बंगला साहित्य की उन्नति देख भारतेन्दु के हृदय में अपनी भ षा हिन्दी की उन्नति की प्रेरणा जाग उठी। पाश्चात्य साहित्य का जो भी प्रभाव बंगला साहित्य पर पड़ा, वही प्रभाव शुरू शुरू में बंगला के द्वारा हिन्दी में प्रवेश कर गया। चित्रकला, साहित्य, संगीत आदि क्षेत्रों में हमारा ध्यान हमारी परम्परा की ओर गया। बंगाल के शिल्प गुरू **अवनीन्द्रनाथ** की चित्रकला में जापानी, ईरानी प्रभाव के साथ हिन्दी की रीतिकालीन कवियों की शब्द-चित्रिता नायिकाओं की भी अभिव्यक्ति होने लगी। उपन्यास के क्षेत्र में **बंकिमचंद्र चटर्जी** और शरच्चन्द्र चटर्जी के उपन्यासों के अनुवादों ने हर हिन्दी भाषी के हृदय में अपना स्थान बना लिया। **हेमचंद्र** ने हिन्दी प्राचीन कविताओं का अनुवाद किया और **हरिश्चंद्र** ने 'विद्यासुन्दर' का अनुवाद किया।

विभिन्न रूप में इन साहित्यिक आदान प्रदानों के कारण अगर हिन्दी का किसी भाषा से सर्वाधिक सम्बन्ध रहा तो वह बंगला भाषा से। अतः नाट्य रचना के क्षेत्र में भी जब उन्नीसवी शताब्दी के उत्तरार्द्ध में बंगला में 'जैमन कर्म तेमनीफल', 'एकेई की बले सभ्यता', 'बूड़ो शालिकेर घाड़े रों', आदि प्रहसनों की रचना होने लगी तब हिन्दी में भी 'वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति', 'अन्धेर नगरी' आदि मौलिक तथा बंगला से अनूदित प्रहसनों की बाढ़ सी आ गई।

भारत की इन राजनैतिक, सांस्कृतिक तथा साहित्यिक पृष्ठभूमि पर जब हिन्दी एवं बंगला भाषा का सौहार्द्रय पूर्ण मिलन देखते हैं तब यह निश्चित हो जाता है कि यह पारस्परिक आदान-प्रदान चलता रहेगा। हिन्दी एवं बंगला भाषा भाषियों में इस तरह का आदान-प्रदान उन्नीसवीं शताब्दी के उतरार्द्ध में भी अधिक सरल एवं सहज रूप से हुआ इसके कई कारण हैं—

१. अंग्रेजों के शासन काल में प्रारम्भ में हमारी **जातीय भावनाएं** अत्यन्त संहत हो उठी थी। हम अपने को दासत्व की श्रृंखला में बद्ध, स्वाधीनता के प्रयासी भारतवासी समझते थे, प्रादेशिकता की बू से हम दूर थे।

२. **सांस्कृतिक पुनरुत्थान** के उस स्वर्ण युग में ऐसे मनीषियों ने जन्म लिया था जिनमें संकीर्णता, अहंकार व स्वार्थ की भावना नहीं थी। उनकी रचनाएं, उनके क्रियाकलाप सार्वजनिक हुआ करते थे।

३. **अंग्रेजी भाषा** ने भारत की देशीभाषाओं के बीच सम्पर्क स्थापित किया। पाश्चात्य विद्वानों ने संस्कृत साहित्य तथा भारतीय संस्कृति सम्बन्धी विचारों को अंग्रेजी में प्रकाशित किया एवं हिन्दी, बंगला तथा अन्य भाषा-भाषी परम्परा की जिज्ञासा लिये अंग्रेजी के सन्धि स्थल पर आकर मिल गये। शेक्सपियर के नाटकों

के अनुवाद हुए । संस्कृत नाटकों का अंग्रेजी में अनुवाद हुआ । अंग्रेजी के माध्यम से विश्व का ज्ञान संग्रह बढ़ा । अंग्रेजी प्रभाव की क्रिया-प्रतिक्रिया शुरू हुई ।

४. **राजनैतिक उद्दीपन** के जाग्रत होने पर हम एक दूसरे की अच्छाइयों को ग्रहण कर अग्रसर होने की चेष्टा कर रहे थे—उस समय अनुकरण कर ग्लानि नहीं अनुभव करते थे वरन् सभी अपने अभाव की पूर्ति की चेष्टा में संलग्न थे ।

५. **सांस्कृतिक एकता** जो चिरकाल से भारत की विशिष्टता रही एवं भारतीय संस्कृति को जीवित रखा । उसकी मृत संजीवनी सुधा की पवित्र धारा पुनः भारत के कोने-कोने में प्रवाहित हुई । सभी क्षेत्रों में वह पुनरुत्थान का युग था ।

६. **वेद और पुराण** संस्कृत में होने कारण साधारण जनता का उनसे परिचय कम था । **इनके अनुवादों** के द्वारा आध्यात्मिक बोध, पौराणिक देवी-देवताओं के प्रति भक्ति की भावना, अपनी संस्कृति की गरिमा का अनुभव तथा तत्कालीन गिरे हुए समाज को उठाने की चेष्टा—यह नवचेतना सर्वभारतीय एवं सार्वजनिक हो गई । इस नवचेतना के स्फुरण एवं प्रसारण का प्रधान माध्यम साहित्य था एवं उसमें नाटक सर्वश्रेष्ठ माध्यम था क्योंकि अन्य सब कलाओं की तुलना में नाटक का महत्व इसलिए है कि वह लोक कला है ।

१९ वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में हिन्दी एवं बंगला नाटकों की मुख्य प्रवृत्तियों का विश्लेषण

हिन्दी तथा बंगला नाटकों का सूत्रपात

१७ वीं शताब्दी तक भारत की लोक-नाट्य शैलियां रुढ़ हो गई एवं जहां विकास क्रम जारी था वहां गति अत्यन्त धीमी थी । कुरुचिपूर्ण श्रृंगार हिन्दी की रास-लीलाओं में तथा बंगाल के जात्राओं में प्रवेशकर गया था । हास्य की सृष्टि भी अत्यन्त विकृष्ट होती थी । संस्कृत नाटकों की परम्परा विछिन्न हो चुकी थी । नव युग प्रारम्भ होने वाला था एवं उसके पूर्व के जीवन की अभिव्यक्ति के उपयुक्त नाट्यादर्श भारतीयों के सामने नहीं था। ऐसी परिस्थिति में पाश्चात्य की सुविकसित गतिशील नाट्य शैली से उनका साक्षात् परिचय हुआ । प्लासी के युद्ध के समय से ही (सन् १७५७) कलकत्ते में "दी ओल्ड प्ले हाउस" (सन् १७५६), दी कैलकटा और इंग्लिश थियेटर (१७७५) मिसेस ब्रिस्टोज् थियेटर आदि थियेटर गृहों का निर्माण हुआ था एवं उसमें अंग्रेजी नाटकों का अभिनय होता था। सन् १७९५ में रूसी गेरासिम लेबेडेफ ने दो अंग्रेजी नाटकों के बंगला अनुवादों का अभिनय कराया । इसके सिवा सन् १८१३ में "चौरंगी थियेटर" एवं सन् १८३९ में सांसूसी का उदय हुआ । किन्तु बंगालियों द्वारा देशी रंगालियों में अंग्रेजी नाटकों का अभिनय सन् **१८१७ में हिन्दू कालेज की** स्थापना से सूचित होता है क्योंकि इस कालेज ने अनेक मेधावी प्रतिभाशाली, पाश्चात्य साहित्य के मर्मज्ञ तरुणों का निर्माण किया, जैसे माइकेल मधुसूदन दत्त। ऐसे देशी थियेटर जो शिक्षा संस्थाओं से संश्लिष्ट थे उनके नाम हैं-हिन्दू थियेटर (सन् १८३१), डेव्हिड हेअर अकाडेमी (सन् १८५३), ओरियंटल थियेटर (१८५३) यह सन् १८५३ हिन्दी रंगमंचीय नाटकों के

इतिहास का एक स्मरणीय पृष्ठ है जबकि वाजिदअलीशाह के समय में "इन्दर सभा" का अभिनय केसर बाग, लखनऊ में हुआ। किंतु जैसाकि बंगाल के रंगालयों का अंग्रेजी नाटकों व उनके अनुवादों के अभिनय से प्रारम्भ हुआ वैसा हिन्दी का यह नाटक उर्दू का ही नाटक है हिन्दी का स्वतंत्र व्यक्तित्व इसमें परिस्फुट नहीं हो सका। कलकत्ते में कुछ अभिजात्यों के गृह के मंच पर संस्कृत नाटक व काव्य का नाट्य रूपान्तर (विद्या सुन्दर, नवीन वसु के गृह में सन् १८३५ में) तथा कुछ शौकिया नाट्य मंडलियों के नाटकाभिनय का सूत्रपात हो रहा था—इस परिस्थिति में सन् १८५७ में श्री रामनारायण तर्क रत्न रचित मौलिक नाटक **"कुलीन कुलसर्वस्व"** का अभिनय हुआ। इसे हम बंगला का प्रथम रंगमंचीय नाटक कह सकते हैं क्योंकि सन् १८५२ में रचित योगेशचन्द्र गुप्त का "कीर्तिविलास" जो कि "विजय बसन्त" नामक बंगला लोक कथा पर आधारित है तथा ताराचरण शीकदार रचित "भद्रार्ज्जुन" जो जात्रा की तरह पयार-त्रिपक्षी में केवल संवाद शैली में रचित है, नाटक की संज्ञा नहीं पा सकते, इनका अभिनय भी कभी नहीं हुआ।

बंगला एवं हिन्दी नाटकों के इतिहास के आरम्भ में यही **वैषम्य** दृष्टिगोचर होता है कि जहां कलकत्ते में यूरोपीयन, देशीय, शिक्षासंस्था, गृहमंच, शौकिया नाट्य-मंच आदि की सृष्टि होने लगी एवं थियेटरों ने नाटककारों को प्रेरणा दी उस समय **हिन्दी क्षेत्र में एक भी रंगालय नहीं था**। सन् १८६८ में बनारस थियेटर में 'जानकी मंगल' का अभिनय हुआ फिर भारतेन्दु के आविर्भाव के बाद ही इस तरह के अस्थायी नाटकों से हम अनुमान लगा सकते हैं कि तत्कालीन बंगला नाटकों की प्रवृत्ति क्या थी। श्री कालीप्रसन्न सिंह द्वारा विद्योत्साहिनी रंगमंच की स्थापना सन् १८५६ में हुई, उसमें 'सावित्री सत्यवान', 'विक्रमोर्वशी', 'मालती माधव' का अभिनय हुआ। यह स्पष्ट ही है कि संस्कृत रंगमंच की कोई धारणा न होने के कारण यूरोपीयन रंगमंचीय शिल्प के अनुकूल उन्होंने उन संस्कृत नाटकों को ढाल दिया। सन् १८५८ में बेलगछिया थियेटर में 'रत्नावली' नाटक का अभिनय भी उसी शैली तथा शिल्प के अनुकूल हुआ—तथा इस नाटक में देशीय [illegible] (Orchestra) का प्रवर्तन हुआ। इससे यह प्रमाणित होता है कि **अंग्रेजी नाटकों से व उनके अन्धानुकरण से बंगला नाटकों का उद्भव नहीं हुआ**। संस्कृत के नाटकों के अभिनय द्वारा उन्होंने उस परिवर्तनशील युग में भी अपनी परम्परा के प्रति श्रद्धा का प्रशंसनीय परिचय दिया। सन् १८७२ में साधारण रंगालय 'नेशनल थियेटर' की स्थापना हुई एवं दीनबन्धु मित्र रचित 'नीलदर्पण' के अभिनय द्वारा इसका उद्घाटन हुआ। यह नाटक दुखांत होते हुए भी घटना ऐक्य तथा चरित्र विकास की दृष्टि से पाश्चात्य ट्रेजेडी के तुल्य नही है, तथा उस युग के बंगाली जीवन की मार्मिक अभिव्यक्ति है। लेखक ने **वास्तविक दृष्टि, समाज चेतना** तथा ग्राम्य परिवेश का सुन्दर परिचय दिया है। रामनारायण तर्करत्न के 'कुलीन कुल सर्वस्व' में यद्यपि संस्कृत नाट्य शैली का बाह्य अनुकरण हुआ है फिर भी प्रहसन होने के कारण अधिक प्रभावशाली न हो सका। **'नीलदर्पण'** में हास्य रस होते हुए भी संघातों की सृष्टि कर (यद्यपि अधिकांश संघात बाह्य हैं) उसे लेखक ने गम्भीर बना दिया है। सन् १८७३ में नेशनल थियेटर बन्द हो गया एवं सन् १८७६ में (Dramatic Perfo-

rmances Control Act) निकला। फिर सन् १८८३ में गिरीशचन्द्र ने जहूरी की सहायता से '**स्टार**' की स्थापना की। इसके बाद बंगाल में अनेक साधारण रंगालयों की स्थापना हुई जिनकी परम्परा आज भी चल रही है एवं जिनके बीज रूप में १९ वी शताब्दी के शौकिया नाट्यमंच स्मरणीय हैं—मेट्रोपोलिटन थियेटर (१८५९), पाथुरियाघाटा बंगनाट्यालय (१८६४), शोभाबाजार प्राइव्हेट थियेट्रीकल सोसाइटी (१८६५), जोड़ासांको थियेटर, बहुबाजार बंग नाट्यालय (१८६८), बागबाजार एमेचर थियेटर उनके उदाहरण हैं। निर्देशक, नाट्यकार एवं अभिनेता की दृष्टि से इस युग में बंगला नाट्यक्षेत्र में यशस्वी नाटककार **गिरीशचन्द्र घोष** का ही आधिपत्य था। जिस समय बंगला नाट्य जगत की ऐसी परिस्थिति थी कि एक ओर यूरोपीयनों के अंग्रेजी नाट्याभिनय चल रहे थे, दूसरी ओर अभिजात्य तथा शिक्षित वर्गों के नाट्याभिनय के प्रयास चल रहे थे। ।जसकी परिणति साधारण रंगालय(Public Theatre) के रूप में सार्थक हुई, उस समय हिन्दी नाट्य जगत के पास केवल लोक-धर्मी नाटकों की परम्परा थी जिनका रंगमंच फूहड़ था। इस प्राचीन और नवीन के सन्धिक्षण में भारतेन्दु का उदय हुआ। पारसी थियेटरों के उर्दू नाटकों से वे अत्यन्त असन्तुष्ट थे, उन्होंने संस्कृत, अंग्रेजी और बंगला साहित्य का अध्ययन किया, साधारण ग्रामीणों की सम्पत्ति लोक नाटकों की सम्भावनाओं को समझा एवं समन्वयात्मक दृष्टिकोण लेकर साहित्य जगत में पदार्पण किया। डा. लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय लिखते हैं—"इस प्रकार भारतेन्दु हरिश्चन्द्र से पूर्व हिन्दी में नाटकों का अभाव था। उन्होंने संस्कृत साहित्य का अध्ययन किया था। साथ ही अंग्रेजी साहित्य के अध्ययन और बंग देश में नाटकों द्वारा जनता की दशा सुधारने के प्रयत्न से उन्हें प्रेरणा प्राप्त हुई।"[१] संस्कृत, अंग्रेजी और बंगला साहित्य के अध्ययन ने उन्हें प्रेरणा तो दी किंतु संस्कृत नाट्यशास्त्र को ही उन्होंने आदर्श माना क्योंकि संस्कृत के रूपकों एवं उपरूपकों को लक्ष्य बनाकर उन्होंने नाटक रचना की। अधिकांश नाटकों में नान्दी और भरत-वाक्य हैं, संस्कृत नाटकों के अनुवाद हैं, संस्कृत का कथानक है इत्यादि। **भारतेंदु पर संस्कृत का ही प्रभाव अधिक था** यह उनकी नाट्यावलियों से ही प्रमाणित हो सकता है।

विद्यासुन्दर (सन् १८६८)—यह बंगला का रूपान्तर है किन्तु संस्कृत **'चौरपंचाशिका'** के कवि वररुचि द्वारा लिखित कथानक का आधार है। इसमें वर्द्धमान की राजकन्या 'विद्या' तथा कांचीपुर के राजकुमार 'सुन्दर' की प्रेमकहानी है। अगर हम विद्या और सुन्दर का सांकेतिक अर्थ भी लगाएं तो यह 'प्रबोधचन्द्रोदय' की शैली का नाटक भी कहला सकता है। लोक नाट्य शैली का छन्द प्रयोग भी इसमें नहीं है, अधिकांश गद्य में है। **विद्या एवम् सुन्दर के संयत प्रेम की** रोचक अभिव्यक्ति से भी प्रमाणित होता है कि भारतेन्दु ने इन्दर सभा की तथा पारसी नाटक कम्पनियों की नाटक शैली को नहीं अपनाया। विद्या एवं सुन्दर को पुत्र की प्राप्ति भी संस्कृत नाट्यादर्श के अनुकूल है; तथा **'आनन्द रघुनन्दन' की संस्कृत शैली की परम्परा को उन्होंने खड़ी बोली**

१—भारतेन्दु हरिश्चन्द्र—डा. लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय (प्र. सं. साहित्य भवन लि. इलाहाबाद) पृष्ठ ४४-४५

साहित्य में नवीन रूप दिया। प्रारम्भ में भारतेन्दु के नाटक ही उल्लेख योग्य हैं। बाद में भारतेन्दु युगीन नाटककारों का आविर्भाव हुआ। पाखंड विडम्बन (सन १८७२) कृष्ण मिश्र के प्रबोधचन्द्रोदय का तृतीय अंक है। धनंजय विजय (सन् १८७३) वह व्यायोग है। इसके मूल कवि कांचन है। कपूर मंजरी (सन् १८७५) राजशेखर कृत सट्टक का अनुवाद है। मुद्राराक्षस (सन् १८७८) विशाखदत्त की कृति का **अनुवाद** है। सत्य हरिश्चन्द्र (सन् १८७५) क्षेमीश्वर कृत 'चंड कौशिक' पर आधारित है।

उनके नाटकों में "वैदिक हिंसा हिंसा न भवति" (सन् १८७३) (प्रहसन) में नान्दी तथा भरत वाक्य हैं। श्री चन्द्रावली (सन् १८७६) उपरूपक नाटिका का उदाहरण है। विषस्य विषमौषधम् (१८७६) उपरूपक नाटिका का उदाहरण है। विषस्य विषमौषधम् (१८७६) भाण है। भारत दुर्दशा (सन् १८८०) नाट्य रासक है। अंधेर नगरी (सन् १८८१) प्रहसन है। इन सब उदाहरणो की अधिकता के साथ शेक्सपियर के Merchant of Venice का अनुवाद "दुर्लभ बन्धु (सन १८८०) तथा १० अंकों में समाप्त उनका ऐतिहासिक गीति रूपक नीलदेवी (सन् १८८१) क्रमानुसार पाश्चात्य कामेडी तथा ट्रेजेडी के उदाहरण स्वरूप है। बंगला में जिस अर्थ में अंक तथा गर्भांको का प्रयोग हो रहा था। भारतेन्दु ने उसी अर्थ में **गर्भांक** का प्रयोग किया। संस्कृत नाटकों में दृश्य नही होते थे एवं "गर्भांक" से दृश्यों की योजना होने लगी। बंगला में भी संस्कृत आदर्श को ही लक्ष्य बनाकर नाट्य रचना का सूत्रपात्र हुआ यद्यपि भविष्य मे पाश्चात्य प्रभाव एवं युग प्रभाव उत्तरोत्तर दोनो साहित्य में ही बढ़ता गया। **रामनारायण तर्करत्न** संस्कृत के पंडित थे एवं बगला नाट्यकारों में प्रथम थे। उन्होंने वेणीसंहार, रत्नावली, मालती माधव का संस्कृत से अनुवाद किया। उनमें कही संस्कृत जैसी प्रकृति वर्णना है, नान्दी एवं प्रस्तावना बिल्कुल संस्कृत नाटको जैसा ही है, कही मृच्छ-कटिक का प्रभाव हास्यसृष्टि में है तथा कही-कही देशीय जात्राओं की अश्लीलता, उच्छ्-वसति संलाप आदि भी "कुलीन कुलसर्वस्व" नाटक मे है। उमेशचन्द्र मित्र रचित सामा-जिक नाटक "विधवा विवाह" (सन १८५६) रामनारायण के प्रहसन से उत्कृष्ट होते हुए भी एवं करुणा की सृष्टि करने वाले दृश्यों से पूर्ण होते हुए भी वह पाश्चात्य ट्रेजेडी के तुल्य नही है। इसी तरह माइकेल मधुसूदन दत्त का "शर्मिष्ठा" नाटक काली-दास के "अभिज्ञान शाकुन्तलम्" की याद दिलाता है। भरत मुनि नाट्य शास्त्र धनं-जय के दशरूपक व विश्वनाथ कविराज के साहित्यदर्पण की नाट्य रूढ़ियों का उन्होंने एकदम बहिष्कार किया है किन्तु इसी कारण केवल यह नहीं कहा जा सकता कि उनके नाटक पाश्चात्य के अनुकरण थे। संस्कृत नाटकों की एक प्रमुख विशेषता यह है कि उनमें घटना एवं चरित्र के द्वन्द के स्थलों का चित्रण नहीं होता है, रस ही उनकी आत्मा है। "शर्मिष्ठा" नाटक में ऐसे द्वन्द के स्थलों को स्थानच्युत किया गया है। स्वगतों का प्रयोग शेक्सपियरीय ढंग से पात्रों की आलोड़ित भावनाओं की अभि-व्यक्ति के लिये नहीं हुआ, संस्कृत नाटकों के सदृश्य दृश्य वर्णन व कवित्व प्रकाश के लिए व जो दूसरों के सुनने योग्य न हो ऐसे प्रयोजनों के लिये प्रयुक्त हुआ है। इसी तरह "पद्मावती" नाटक की कहानी भी पाश्चात्य रीति के अनुसार चरित्र के प्रकाश

स्वरूप क्रम से विकसित नहीं हो पाई है। "कृष्णकुमारी" नाटक के नायक भीमसिंह ट्रेजेडी के नायक सदृश्य नही हैं। मधुसूदन की अलंकृत, उच्छवास प्रवण भाषा भी अत्यन्त संस्कृत गर्भित है। बंगला, हिन्दी नाटकों का यह युग उत्कृष्ट सामाजिक नाटकों के अनुकूल था। जबकि जातीय जीवन में परिवर्तन का नृत्य शुरू हो गया था किन्तु इसके विपरीत मनोमोहन वसु के गीताभिनयों ने जात्रा शैली की दीर्घ विवृति एवं हिन्दी क्षेत्र में पारसी नाटक कम्पनियों ने बाजारु प्रेम को अपनाया।

हिन्दी तथा बंगला के प्रारम्भिक प्रमुख नाटककार तथा उनकी नाट्य शैलियाँ

हिन्दी के प्रमुख प्रारम्भिक नाटककार भारतेन्दु हरिश्चन्द्र (सन् १८७६-८५) ही कहे जा सकते हैं। **भारतेन्दु** ने अपने नाटकों के द्वारा विभिन्न शैलियां प्रवर्तित की एवं उनके समकालीन तथा सहयोगी लेखकों ने उन शैलियों में अनेक नाटकों की रचना कर एक परम्परा चालू कर दी। बंगला के प्रमुख प्रारम्भिक नाटककार **रामनारायण तर्क रत्न** (सन् १८२२-७६), **माइकेल मधुसूदन दत्त**(सन् १८२४-७३), **दीनबन्धु मित्र** (सन् १८३०-७४) और मनमोहन वसु थे। इनके नाटकों से ही विभिन्न शैलियों की परम्परा चल पड़ी यथा—(१) समाज संस्कार सम्बन्धी प्रहसन (२) पौराणिक नाटक (३) ऐतिहासिक नाटक (४) रोमांटिक नाटक।

उस परिस्थिति में क्रम-विवर्तमान हिन्दी नाटक साहित्य का अपने पूर्ववर्ती ब्रजभाषा के नाटक साहित्य से कम एवं अपने पड़ौसी बंगला साहित्य से अधिक सम्बन्ध रहा। रंगमंच की परिस्थिति ने दोनों नाट्य साहित्य की अवस्था में भेद कर दिया। बंगला नाट्य साहित्य रंगमंचों से प्रेरणा पाकर द्रुत गति से अग्रसर हुआ एवं हिन्दी नाट्य साहित्य पारसी कम्पनियों के कुरुचिपूर्ण प्रदर्शनों से संघर्ष करता हुआ मंथर गति से अग्रसर हुआ। इनकी गति में कुछ साम्य तथा वैषम्य है जिन पर प्रकाश डालने से इनका पारस्परिक सम्बन्ध और स्पष्ट हो उठता है।

हिन्दी एवं बंगला नाट्य साहित्य में साम्य

(१) दोनों नाट्य साहित्य की प्रारम्भिक रचनाएँ **समाज संस्कार** सम्बन्धी थी क्योंकि सामाजिक रूढ़ियों के प्रति विद्रोह कर वे अपने समाज के लिये नवीन तथा स्वच्छ वातावरण की सृष्टि करना चाहते थे। अतः इस युग में सबसे अधिक रचना प्रसहनों की हुई। जब कि पश्चिम में एकांकी कला का जन्म सन् १९०३ में हुआ, हमारे यहां पाश्चात्य शैली की एकांकी कला उसके पूर्व जन्म ग्रहण कर चुकी थी। इनके स्वरूप विश्लेषण से स्पष्ट हो जायगा कि संस्कृत के एक अंक वाले रूपक व उपरूपकों तथा संस्कृत के प्रहसनों से इनका सादृश्य कम था। इसका यही कारण है कि तीव्र गति से संघातों को लांघकर परिणति की ओर जाने वाली पाश्चात्य नाट्य शैली को वे अपनाने की चेष्टा कर रहे थे एवं नाना प्रकार के प्रयोगों द्वारा नवीन रूप का वे आविष्कार कर रहे थे।

(२) प्रारम्भिक काल में बंगला में रामनारायण तर्करत्न ने तथा हिन्दी में भारतेन्दु ने **संस्कृत नाट्य शैली** को अपनाना चाहा एवं नान्दी प्रस्तावना आदि रूढ़ियों

को स्थान दिया। 'गर्भांक' का प्रयोग बंगला में 'दृश्य' के अर्थ में हुआ एवं भारतेन्दु ने भी उसी अर्थ में ग्रहण किया, यद्यपि संस्कृत में नाटकों के अन्दर जो बीज, बिन्दूपूर्ण छोटा नाटक होता है उसे गर्भांक कहते हैं। इससे भी यह प्रमाणित होता है कि संस्कृत का आदर्श सामने रखते हुए भी वे नवीनता की उपेक्षा नहीं कर रहे थे एवं धीरे धीरे इन **रूढ़ियों का लोप** हो गया तथा नवीनता ने अपना आसन जमा लिया।

(३) इस युग में हिन्दी तथा बंगला के नाटककार पाश्चात्य शैली के **त्रासदी, कामदी, मेलोड्रामा, फार्स आदि से परिचित** हो गये एवं उस शैली के नाटकों की रचना की चेष्टा भी करने लगे। हिन्दी तथा बंगला में अनेक त्रासदियों की रचना भी हुई किन्तु वे त्रासदी न बनकर मेलोड्रामा बन गये। इसका कारण यह था कि जो गम्भीर जीवन बोध एवं जीवन-प्रत्यय ग्रीक जाति में तथा एलिजाबेथ के युग की अंग्रेजी जाति में था उसका हम में अभाव था। भारत में मानस-जागरण तो हुआ था किन्तु कर्म के क्षेत्र में हम पराधीन ही थे। यह नाटक रचना का महेन्द्र-क्षण न था।

(४) सांस्कृतिक पुनरुत्थान के कारण प्रहसनों के बाद सबसे अधिक **पौराणिक नाटकों** की रचना हुई। इस युग को डा. सुकुमार सेन ने 'बंगला साहित्य के इतिहास' में '**पौराणिक युग**' (सन् १८७३ से १९००) कहा है। श्री रामकृष्ण परमहंस की प्रेरणा से प्रतिभाशाली लेखकों का अध्यात्मबोध जाग्रत हो उठा एवं गिरीशचन्द्र जैसे नाटककार ने 'बिल्वमंगल ठाकुर' (सन् १८८८), पांडव गौरव (सन् १९००) आदि दर्जनों नाटकों की रचना की। देशभाषा में रचित कृत्तिवासी रामायण तथा काशीदास के महाभारत का ही इन पर अधिक प्रभाव पड़ा इसलिए भक्ति रस के आवेश में अध्यात्मबोध एवं आत्मबोध का संघर्ष वे न दिखा सके। हिन्दी में ऐसे अनेक प्रकाशित अप्रकाशित तथा पत्रिकाओं के गड्ढे में पड़े हुए पौराणक नाटक इस युग में रचित हुए जिनमें पं. देवकीनन्दन त्रिपाठी कृत 'सीताहरण', पं. बलदेव प्रसाद मिश्र कृत 'मीराबाई' आदि प्रसिद्ध हैं। 'बिल्व मंगल' (सन् १८६९) जैसे अज्ञात नाटक का उद्धार हुवा। ये हिन्दी के पौराणिक नाटक भी अलौकिकता के तत्व से परिपूर्ण हैं इसका कारण यही है कि इस युग में बुद्धिवाद का प्रसार यद्यपि यूरोप में हो चुका था किन्तु भारत में नहीं हुआ था। इस युग की जनता धार्मिक भावापन्न थी एवं लेखक भी जनता के भक्ति भाव पर कुठाराघात करना उचित नही समझते थे वरन् वे श्रीराम, श्रीकृष्ण जैसे अलौकिक शक्ति प्राप्त नायकों का प्रभावपूर्ण चित्रण करना चाहते थे। तुलसी के रामचरित मानस तथा सूर का प्रभाव लोक मानस पर अब भी छाया हुआ था।

(५) इस युग के अन्तिम चरणों में **इंडियन नेशनल कांग्रेस** की स्थापना के बाद भारतीयों में स्वदेश प्रेम की भावना जाग्रत होने लगी। साहित्य के अन्य अंगों पर तथा नाट्य साहित्य में देशप्रेम एवं बलिदान के भावों की प्रबलता दिखाई देने लगी जिसने बीसवीं सदी के स्वदेशी आन्दोलनों एवं राष्ट्रवादी नाटकों को जन्म दिया। इस युग में हिन्दी में भारतेन्दु कृत 'भारत दुर्दशा' (सन् १८७६) की शैली में अनेक राजनैतिक नाटक लिखे गये। ऐतिहासिक नाटक जिनमें देशप्रेम व जातिप्रेम की भावना प्रबल है उनमें प्रसिद्ध हैं—

भारतेन्दु कृत 'नीलदेवी' (सन् १८८०), राधाकृष्णदास कृत 'पमावद्‌ती' (सन् १८८२) एवं महाराणाप्रतापसिंह (सन् १८९७), राधाचरण गोस्वामी कृत 'अमरसिंह राठौर' (सन् १८९५) तथा काशीनाथ खत्री कृत दो लघु रूपक 'सिन्धु देश की राजकुमारियां' (सन् १८८४) एवं 'गुनोर की रानी' (सन् १८८४)।

बंगला में दीनबन्धु रचित 'नीलदर्पण' के अभिनय द्वारा **सन् १८७२ में नेशनल थियेटर का उद्‌घाटन हुआ।** इसमें अंग्रेजों के अत्याचार के चित्र थे। उपेन्द्रनाथ दास रचित 'शरत्-सरोजिनी' एवं 'सुरेन्द्र-विनोदिनी' में **देश प्रेम की व्यंजना** थी जिसके कारण सन् १८७६ में 'ड्रामाटिक परफार्मेन्सेस कण्ट्रोल एक्ट' निकला। **ऐतिहासिक नाटकों** में स्वदेशी भावों की उत्तेजना बंगला में पहले पहल ज्योतिरिन्द्रनाथ ठाकुर रचित 'पुरु-विक्रम" 'सरोजिनी' एवं 'अश्रुमती' में दिखाई देती है। इस तरह राजनैतिक परिस्थिति की एकता ने भी हिन्दी तथा बंगला नाटकों की भावधारा को एकसूत्र में पिरो दिया। युग-चेतना का प्रभाव दोनो नाट्य साहित्य पर पड़ा एवं उसका परिणाम भी दोनो नाट्य-साहित्य मे एक ही था।

(६) इस युग में हिन्दी तथा बंगला नाटकों पर सबसे अधिक पाश्चात्य प्रभाव **शेक्सपियर** के नाटकों द्वारा पड़ा। बंगला नाटकों में यह प्रभाव प्रत्यक्ष रूप से अनुवादों तथा अभिनय द्वारा पड़ा एवं परोक्ष रूप से नाटककारो पर पड़ा। उनकी स्वच्छन्दतावादी शैली का भी प्रभाव पड़ा। हिन्दी में शेक्सपियर का प्रभाव उर्दू तथा बंगला के अनुवादों तथा अभिनय द्वारा परोक्ष रूप से पड़ा। बंगला साहित्य की रोमांटिक प्रवृत्ति जो बंकिम के उपन्यासों में व्यक्त हुई थी, नाटकों में भी व्यक्त हुई। हिन्दी नाट्य क्षेत्र में भी **रोमांटिक ट्रेजेडी** एवं **कामेडियों** की रचना हुई जिनमें श्रीनिवासदास रचित "रणधीर प्रेम मोहिनी" (सन् १८७७) नामक ट्रेजेडी एवं भारतेन्दु रचित "विद्या-सुन्दर" (सन् १८६७) तथा राजा जंगबहादुर मल्ल रचित 'रति-कुसुमायुध" नामक कामेडी अधिक प्रसिद्ध हुए। इसका प्रभाव पौराणिक, ऐतिहासिक, सामाजिक सभी नाटकों पर पड़ा।

हिन्दी एवं बंगला नाट्य-साहित्य में वैषम्य

(१) **बंगला नाट्य-साहित्य पाश्चात्य ढंग पर विकसित रंगमंचों** का सहारा पाकर अग्रसर हो रहा था एवं हिन्दी नाट्य-साहित्य निजी रंगमंचों के अभाव में पारसी रंगमंचों के उर्दू के व्यक्तित्व पूर्ण नाटकों में उलझा हुआ था। यद्यपि भारतेन्दु मंडली ने हिन्दी रंगमंच को स्थायी रूप देना चाहा किंतु वे असफल रहे। इसका कारण था कि जन-जागरण की पहली लहरें बंगाल में उठी। वहां के साधारण रंगालयों में साहित्यिक नाटकों का प्रदर्शन होता था, जो जनता को तृप्त करने में समर्थ थे किन्तु हिन्दी क्षेत्र की जनता पारसी थियेटरों के समस्त प्रदर्शनों से तृप्त हो जाती थी। भारतेन्दु के प्रयास से जो नाटक प्रदर्शित होते थे उनमें इने-गिने साहित्य प्रेमियों का ही आगमन होता था। इससे स्पष्ट है कि नाटक की सफलता एवं उसका विकास अधिकांशतः दर्शकों पर निर्भर करता है। निर्देशक तो नाटककार एवं दर्शकों के बीच की कड़ी होते हैं। जन-साधारण की मांग के अनुसार वे निर्माण करते हैं।

(२) बंगला नाट्य-साहित्य के आदियुग में (सन् १८५२ से सन् १८७२) अनेक अनुवाद हुए किन्तु आगे चलकर अनुवादों की संख्या अत्यन्त कम हो गई, केवल ज्योतिरिन्द्रनाथ ठाकुर ही इस क्षेत्र में सक्रिय रहे। बंगला में संस्कृत के नाटकों का ही अधिक अनुवाद हुआ। शेक्सपियर के अनेक नाटकों का भी अधिक अनुवाद हुआ तथा मोलियर के कुछ नाटकों का अनुवाद हुआ व इसके विपरीत **हिन्दी नाट्य-क्षेत्र में अनुवादों की संख्या बढ़ती गई**। संस्कृत, अंग्रेजी, बंगला, मराठी आदि नाटकों का अनुवाद होने लगा। सबसे अधिक हिन्दी में अनुवाद बंगला साहित्य का हुआ जिनमें नाटकों का अंश भी कम नहीं है। लाला सीताराम, तोताराम, उदितनारायणलाल, रामकृष्ण वर्मा, पं. केशवराम भट्ट आदि अनेक लेखकों ने अनुवाद किये। इसका यह कारण था कि बंगला नाट्य-साहित्य सन् १८७२ के बाद अपना प्रयोग-काल समाप्त कर चुका था एवं उसकी शैली में यथेष्ट प्रौढ़ता आ गई थी। किन्तु हिन्दी नाट्य-साहित्य का यह युग (सन् १८५० से सन् १९००) प्रयोग काल था। दूसरे साहित्यों के अनुवादों द्वारा वह अपना समन्वयात्मक पथ बनाने में व्यस्त था। इसका यह अर्थ नही है कि हिन्दी में इस युग में कोई उल्लेखनीय नाटक रचना नहीं होती थी अतः उसने अनुवादों द्वारा अपना भंडा भरा।

(३) बंगला नाट्य-साहित्य में **जात्रा** के संगीत तत्व के मिश्रण से थियेटर का जो नया रूप बना वह **गीताभिनय** के नाम से अत्यन्त जन-प्रिय हुआ। यह अंग्रेजी शैली के 'आपेरा' से भिन्न था। हिन्दी क्षेत्र में **पारसी रंगमंच ने इस संगीत तत्व को विकृत रूप में प्रदर्शित किया** एवं सीता, शकुन्तला जैसी नायिकाओं को प्रेम व्यक्त करते हुए बाजारू-नर्तकियों जैसी नाचती हुई दिखाया। बंगला में जात्रा पद्धति पर निर्मित मनोमोहन वसु के गीताभिनय अत्यन्त सफल हुए। कलात्मक दृष्टि से इस पद्धति का उत्कृष्ट एवं नवीन प्रयोग **रवीन्द्रनाथ रचित 'वाल्मीकि प्रतिभा'** (सन् १८८१) में हुआ जिसमें यूरोपीय संगीत का भी मिश्रण हुआ एवं सम्पूर्ण संवाद गीतात्मक रखे गये। यह बंगला का एक सफल गीति-नाट्य है। नाटकों में संगीत के प्रयोग के सम्बन्ध में बंगला रंगमंचों की सफलता का यह कारण है कि चैतन्य-युग से ही बंगाल की जनता अत्यन्त भावुक एवं गीत-प्रेमी हो उठी थी। पदावली कीर्तन, बाउल गान तथा अन्य प्रकार के लोक-संगीतों का उनमें यथेष्ट प्रचार था। **गीति-प्रवणता** उनकी चारित्रिक विशेषता है। रवीन्द्रनाथ ने शास्त्रीय तथा लोक संगीत का बहुत सुन्दर समन्वय किया। हिन्दी में लोक-संगीत नहीं थे यह बात नहीं है। लावनी, कजरी आदि लोक गीत बहुत ही मधुर हैं। किन्तु पारसी रंगमंचों ने जिन गीतों को प्रस्तुत किया वे उर्दू के शेर तथा गजलों के ढंग पर थे। हमारी संस्कृति उन गीतों में व्यक्त नही हो पाई एवं हिन्दी का अलग रंगमंच न होने के कारण सगीत संबंधी प्रयोग नहीं हो पाये।

इन सूक्ष्म विवेचनाओं से स्पष्ट है कि हिन्दी तथा बंगला नाट्य-साहित्य का गहरा सम्पर्क रहा। इस युग में **अध्यात्मबोध**, **देशप्रेम**, **समाज-तंत्र** तथा **प्रेम** संबंधी रचनाएँ हो रही थीं। इन्हें हम स्थूल रूप से **पौराणिक**, **ऐतिहासिक**, **सामाजिक** तथा **रोमांटिक** नाटकों की श्रेणी में विभाजित कर सकते हैं। बीसवीं **शताब्दी में इन्हीं प्रवृत्तियों का नवीन युग के संस्पर्श से नाना रूपों में विकास हुआ।** पाश्चात्य के नाट्य तत्वों से वे अछूते नहीं रहे किन्तु उनसे उन्होंने अपने बाहरी कलेवर को सजाया, पर उनका

अध्याय २

हिन्दी तथा बंगला नाटकों की विकसित प्रवृत्तियों का विश्लेषण

बीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में भारत की परिस्थिति

प्रत्येक युग अपने अतीत की नींव पर खड़ा होता है एवं भविष्य को बल प्रदान करता है। अतीत, वर्तमान एवं भविष्य एक अविच्छिन्न योग-सूत्र में आबद्ध रहते हैं। इसी तरह बीसवीं शताब्दी का भारत जिसका अभ्युदय स्वदेशी आन्दोलन के भेरी-नाद के साथ हुआ, उन्नीसवीं शताब्दी का ही वह क्रम-विवर्तमान प्रचंड दीप्त रूप था। वह काल समस्त विश्व के लिये नवीन युग का सन्देश वाहक था।

भारत की राजनैतिक परिस्थिति

यों तो सन् १८८५ में ही इण्डियन नेशनल कांग्रेस की स्थापना हो चुकी थी एवं वह प्रतिवर्ष अधिवेशनों द्वारा जनता में स्वतंत्रता प्राप्त करने की एवं आत्मविकास की प्रेरणा जाग्रत करती थी, फिर भी लार्ड कर्जन की दमन नीति ने भारतियों की विद्रोहात्मक भावना को और भी उत्तेजित किया। **सन् १९०५ से बंग भंग आन्दोलन शुरू** हो गया एवं उसके फलस्वरूप सन् १९११ में बंग भंग रद्द कर दिया गया। भारतियों को अपनी शक्ति का बोध हुआ एवं स्वदेशी आन्दोलन की यह चिंनगारी बंगाल से महाराष्ट्र तक फैल गई। लोकमान्य तिलक का स्वराज्य आन्दोलन तथा सन् १९१९ में होमरूल लीग की स्थापना ने इस भावना को बल प्रदान किया। सन् १९२१ से मोहनदास करमचन्द गांधी द्वारा प्रवर्तित असहयोग आन्दोलन शुरू हो गया। राष्ट्रवाद की जो लहर फ्रांस की क्रान्ति के समय से यूरोप में उमड़ी थी, अब वह भारत के रग-रग में भिद गई। ऋषि बंकिम के उपन्यास में 'आनन्दमठ' की सन्तानों के गीत 'वन्देमातरम्' की गूँज ने समस्त भारत के नभोमंडल को मन्द्रित किया। राष्ट्रप्रेम ही सबसे बड़ा धर्म माना जाने लगा, किन्तु यह स्वदेश प्रेम भावनात्मक अधिक था, जिसका प्रभाव साहित्य पर पड़ा। राष्ट्र को ही आदर्श मानकर जनता ने कारागार को तीर्थ बनाया एवं फांसी को मोक्ष।

भारत की सांस्कृतिक परिस्थिति

स्वामी विवेकानन्द ने अद्वैत वेदान्त के प्रचार के द्वारा भारतवासियों को उद्‌बुद्ध किया। उन्होंने भी आत्मोन्नति के लिये राष्ट्रोन्नति को आवश्यक माना एवं हरेक

भारतीय के हृदय में भारतीयता के लिये प्रेम जाग्रत करने की चेष्टा की। बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में हिन्दू जातीयवाद को बंकिमचन्द्र, विवेकानन्द, **श्री अरविन्द तथा दयानन्द सरस्वती** की वाणी द्वारा प्रोत्साहन मिला। किन्तु आगे चलकर भारतीय समझ गये कि अंग्रेज हिन्दू-मुसलमानों के बीच फूट फैलाकर लाभ उठाना चाहते हैं—इस भेद नीति को समझते ही हिन्दू-मुस्लिम ऐक्य की भावना का प्रचार होने लगा। **रवीन्द्रनाथ** के रहस्यवादी गीतों के संग्रह "गीतांजली" में मानवात्मा की आकुल पुकार है। "नैवेद्य" की कविताओं में भारतीयता के प्रति गर्व है, दीन-दलितों के प्रति संवेदना के अश्रु हैं एवं भारत की प्राचीन संस्कृति के प्रति श्रद्धा है। कला के क्षेत्र में भी भारतीय कला की साधना शुरू हो गई। भातखंडे ने संगीत साधना शुरू की एवं श्री अवनीन्द्रनाथ ठाकुर ने शिल्प साधना। वेद, उपनिष्द, पुराणों का प्रचार शुरू हो गया। गीता की नवीन व्याख्याएँ निकली। हमारा आर्यत्व भास्वर हो उठा।

भारत की सामाजिक तथा आर्थिक परिस्थिति

हर एक समाज में, हरेक युग में समाज नीति एवं अर्थनीति का गहरा सम्बन्ध रहा है। आर्थिक परवशता ने स्त्रियों को पुरुषों की दासी बना रखा था। बीसवीं शताब्दी में **स्त्री शिक्षा** फैलने लगी, आर्थिक संकटों ने उन्हें नौकरी करने के लिये गृह प्राचिरों से बाहर लाकर खड़ा किया। स्त्री स्वाधीनता इस युग की सबसे बड़ी देन है। इसके कारण कहीं-कही समस्याओं की सृष्टि हुई किन्तु हर क्षेत्र में पुरुष ने उसके काम में हाथ बंटाने वाली सहचरी को पाया। इस नारी जागरण तथा यौन समस्या दोनों का प्रतिफलन हमारे साहित्य में हुआ। हमारा ग्राम्य समाज गृहउद्योगों के नष्ट हो जाने के कारण तितर-बितर हो गया। वे नगर में आकर नौकरी की तलाश करने लगे। ग्राम्य लक्ष्मी की श्री नष्ट हो गई। उनके सहज सरल जीवन में विषाक्त नागरिक सभ्यता की हवा आने लगी। हमारे समाज की पुरानी रूढ़ियां बाल विवाह, बहु विवाह, विधवा विवाह, निषेध तथा पश्चिम के अन्धानुकरण की रीतियां शिथिल पड़ गईं। अब समाज-संस्कार की परिस्थिति न रही, नवीन वैज्ञानिक सभ्यता के संस्पर्श से तरह-तरह की समस्याओं का उद्भव होने लगा।

नूतन चेतना से भारत का सम्पर्क

१९ वी शताब्दी के उत्तरार्द्ध में यूरोप में नये-नये वैज्ञानिक आविष्कार होते रहे जिनका प्रभाव हम पर बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में पड़ने लगा। इनमें सर्वप्रसिद्ध है **डार्विन** का विकासवाद (सन् १८७८) इस विकासवाद पर प्रथम प्रकाश ग्रीक दार्शनिक एमपेदोक्लज् ने डाला था। प्रकृति के विकासवाद के अनुसार जीव के आकारों का रूपान्तर हो रहा है और उस पर वंशानुगत परम्परा का प्रभाव अत्यन्त अल्प है। **The survival of the fittest** (योग्यतम का बचाव), **Sexual selection** (प्राकृति निर्वाचन) और **Variation** (भिन्नता) ये तीन प्रकृति की प्रक्रियाएँ हैं। बर्नार्ड शा ने Creative Evolution Theory का प्रतिपादन किया एवं 'लाइफ फोर्स' को महत्वपूर्ण माना। कार्ल मार्क्स ने द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद का 'कैपिटल'

नामक ग्रंथ में प्रतिपादन किया। विश्व के अर्थ नैतिक जगत में मार्क्स का, राजनैतिक जगत में लेनिन का, साहित्यिक जगत में गोर्की का एवं मनोवैज्ञानिक क्षेत्र में फ्रायड का बहुत प्रभाव पड़ा। इसके अतिरिक्त विश्व महायुद्ध, अन्तरिक्ष विजय तथा दुनिया की बढ़ती हुई आबादी ने जन-जीवन में आमूल परिवर्तन ला दिया।

मूलभाव की दृष्टि अथवा विषय-वस्तु के अनुसार वर्गीकरण

हिन्दी तथा बंगला में सबसे अधिक नाटकों की रचना विषय वस्तु की दृष्टि से हुई है।

(१) पौराणिक नाटक

१९ वीं सदी के उत्तरार्द्ध में पौराणिक नाटक सबसे अधिक रचित हुए एवं २० वीं सदी में यद्यपि उनकी भाव-धारा में अनेक परिवर्तन हुए, किन्तु उनका विकास अवरुद्ध न हो सका। क्योंकि भारतीय जीवन की भित्ति ही धर्म तथा अध्यात्म है। इस प्रवृत्ति पर युग का प्रभाव पड़ा, भक्ति की विह्वलता तथा आस्था बौद्धिकता तथा युक्ति में बदल गई फिर रामायण तथा महाभारत से कथा चयन कर नाटक-रचना की प्रवृत्ति अबाध रही। किसी ने कहा है—"जो महाभारत में नहीं है वह भारत में नहीं है।" जो संघर्ष एवं जीवन सत्य हमारे प्राचीन साहित्य में है उसकी नित नवीन व्याख्या में यथेष्ट नाटकीयता रहती है एवं साथ ही 'क्लासिकल रस' की अवतारणा भी होती है। गिरीशचन्द्र घोष के पौराणिक-नाटक इस दृष्टि से अत्यन्त प्रौढ़ थे। नवीन युग में लेखकों ने कहीं से किसी पौराणिक कथा को चुन लिया एवं उस कथा को अविकृत रखकर व कुछ परिवर्तन करके नाटकों की रचना की। युग चेतना से प्रबुद्ध दो पौराणिक नाटक अत्यन्त प्रसिद्ध हुए जैसे मन्मथराय रचित 'कारा-गार' एवं उदयशंकर भट्ट रचित 'विद्रोहिनी अम्बा'। बंगला नाटकों में क्षीरोदप्रसाद रचित 'नर-नारायण' पौराणिक नाटक इस युग की श्रेष्ठ रचनाओं में गिना जाता है। मन्मथराय रचित 'देवासुर' नामक पंचाकी नाटक में जातीयता की भावना एवं त्याग के दृष्टान्त का चमत्कार प्रतिफलन हुआ है। लक्ष्मीनारायण मिश्र ने 'नारद की वीणा', 'दशाश्वमेघ' आदि नाटकों में भारतीय संस्कृति के चित्र खींचने का प्रयास किया है।

कई पौरागिक चरत्रि ऐसे हैं जो युगों से हमारे हृदय पर आसन जमाये हुए हैं। ऐसे चरित्र हैं श्रीराम, श्रीकृष्ण, अर्जुन, कर्ण, भीष्म पितामह आदि। ऐसे चरित्रों को लक्ष्य बनाकर भी अनेक नाटकों की रचना हुई। श्रीराम तथा श्रीकृष्ण तो विष्णु के अवतार समझे जाते हैं जिनकी असंख्य लीलाएँ ही नाट्य कोष को जीवित रखने के लिए पर्याप्त हैं। कर्ण ऐसा पात्र है जिसमें ट्रेजेडी के नायक का हरएक गुण तथा दोष विद्यमान है। हमारा पौराणिक साहित्य चरित्रों की विविधता से परिपूर्ण है जिनमें सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक तथ्यों का भी अभाव नहीं है। लेखकों की सूक्ष्म दृष्टि इन्हें अपनी लेखनी में सजीव बना देती है।

अध्यात्म की प्रेरणा से लिखे गये कुछ नाटक ऐसे हैं जिसकी वस्तु रहस्यात्मक है तथा सांकेतिकता से पूर्ण है। इस कोटि में रवीन्द्रनाथ रचित 'राजा', 'डाकघर' आदि **तत्व-नाटक** रखे जा सकते हैं जिनमें भक्ति की अपेक्षा उपनिषदिक ज्ञान का प्रभाव अधिक है। हिन्दी में इस कोटि के एक भी नाटक नहीं है।

हमारी धार्मिक भावनाओं के साथ संलग्न कुछ चरित्र ऐसे भी हैं जो पौराणिक तो नहीं हैं, किन्तु जिनके जीवन के साथ अलौकिकता का मिश्रण हो गया है। रामानुजाचार्य, चैतन्य महाप्रभु, शंकराचार्य, रामकृष्ण परमहंस, महात्मा ईसा आदि ऐसे अलौकिक पात्र हैं जो देवताओं की कोटि में नहीं आते, इतिहास के वे महापुरुष हैं तथा लोक-भावनाओं के **युगावतार-पुरुष** हैं। इनसे सम्बन्धित नाटकों में अध्यात्म-तत्व तथा अलौकिकता का समावेश होना स्वाभाविक हैं। प्राचीन तथा नवीन के संगम पर स्थित ये पौराणिक नाटक हमारी संस्कृति के प्रति प्रेम के परिचायक हैं एवं यह सोचना असंगत है कि पौराणिक नाटकों का युग समाप्त हो चुका है।

(२) ऐतिहासिक नाटक

जो घटनाएँ अतीत के गर्भ में विलीन हो चुकी हैं किन्तु अनुसन्धान के द्वारा सत्य प्रमाणित हो रही हैं उन घटनाओं पर आश्रित नाटकों की रचना में सत्य तथा कल्पना के मिश्रण द्वारा 'ऐतिहासिक रस' की अवतारणा होती है। इसके साथ ही सामयिक समस्याओं के समाधान के लिए भी हमारी एक प्रवृत्ति यह भी है कि इतिहास में हम उनके उदाहरण खोजना चाहते हैं। सामयिक उत्तेजना से प्रभावित होकर बीसवीं सदी के प्रारम्भ में स्वदेशी आन्दोलन की सृष्टि करने के लिए साहित्यिकों की दृष्टि भारत के गौरवमय इतिहास की ओर गई। केवल अतीत के खंडहरों में रमण करना इनका उद्देश्य नहीं था, वे अतीत के अलोक-स्तम्भों की खोज में थे। ऐतिहासिक तथ्यों के साथ उन्होंने रोमांस का यथेष्ट मिश्रण किया किन्तु साहित्यकार होने के नाते उनका सत्य, भाव-सत्य था। इतिहास प्रमाणित कोरा सत्य नहीं। राष्ट्रवादी भावनाओं से प्रेरित होकर इस युग के प्रारम्भ में हिन्दी तथा बंगला में ऐतिहासिक नाटकों की सबसे अधिक रचना हुई। इस क्षेत्र में बंगला नाटककार द्विजेन्द्रलाल राय ही अग्रदूत माने जा सकते हैं जिनके नाटकों का सबसे अधिक प्रभाव लोक-मानस पर पड़ा। हिन्दी में जयशंकर प्रसाद, हरिकृष्ण प्रेमी तथा सेठ गोविन्ददास के ऐतिहासिक नाटक भी विशिष्टतापूर्ण हैं। केवल इतिहास को ही लक्ष्य बनाकर, ऐतिहासिक तथ्यों की रक्षा करते हुए जो नाटक लिखे गये वे **शुद्ध ऐतिहासिक** नाटक कहला सकते हैं। ऐसे नाटकों की रचना कम ही हुई, क्योंकि युग के प्रभाव से अपने को मुक्त रखना न तो सम्भव है और न समीचीन है। जब कि भारत पराधीन था, राष्ट्रीय भावनाओं से उदीप्त होकर **राष्ट्रवादी ऐतिहासिक** नाटकों की ही अधिक रचना हुई। जब इस उत्तेजना का ज्वार ढलने लगा तब ऐतिहासिक नाटकों की संख्या कम हो गई एवं कुछ ऐसे ऐतिहासिक नाटकों की सृष्टि होने लगी जिनमें **सांस्कृतिक** चित्रण ही प्रधान हुआ। ऐसे नाटकों में अध्ययन तथा कल्पना के आधार पर प्राचीन भारत की मनोरम संस्कृति का अंकन हुआ

है। लक्ष्मीनारायण मिश्र के नाटक 'वत्सराज','वितस्ता की लहरें' इसी कोटि के हैं। सन् १९४२ में हरिश्चन्द्र सेठ रचित 'पुरु और अलेक्जेण्डर' इस तरह का एक सफल नाटक है।

कुछ ऐसे प्रतिभाशाली व्यक्ति हैं जिन्होंने हमारे समाज-गठन में यथेष्ट पथ-निर्देश किया अतः हमारी पूज्य भावनाओं के वे स्मरणीय-पात्र बने। वे भी अतीत के पृष्ठों में समा गये किन्तु इतिहास में उनका उल्लेख नहीं रहता क्योंकि साम्राज्य के उत्थान-पतन से उनका अधिक सम्बन्ध नहीं रहता। ऐसे महामानव हैं—राजा राम-मोहन राय, विद्यासागर, माइकेल मधुसूदन दत्त, विवेकानन्द, दयानन्द सरस्वती, भारतेन्दु हरिश्चन्द्र आदि। इनके जीवन पर आधारित जो नाटक लिखे जाते हैं वे **जीवनी-नाटक** कहलाते हैं। इनमें किसी व्यक्ति के जीवन से मृत्यु तक की घटनाओं का उल्लेख रहता है।

(३) सामाजिक नाटक

साहित्य समाज का चित्र होता है एवं जब किसी सामाजिक प्रसंग को लेकर नाटक की रचना होती है तो वह हमारे जीवन का जीता जागता रूप बन जाता है। हिन्दी तथा बंगला नाटकों के प्रारम्भिक काल में तथा स्वदेशी आन्दोलन के ढलने के उपरान्त नाटककारों का सबसे अधिक झुकाव सामाजिक नाटक लिखने के प्रति रहा। यद्यपि जितना स्वरूप-परिवर्तन इन नाटकों का हुआ है उतना पौराणिक व ऐतिहासिक नाटकों का नहीं। इन नाटकों पर सामाजिक उथल-पुथल का प्रभाव पड़ा, इन नाटकों पर पाश्चात्य विचारधारा तथा शैली का प्रभाव पड़ा, साथ ही इन नाटकों पर एक नवीन समाज-गठन का उत्तरदायित्व था। प्रारम्भिक काल का दृष्टिकोण सुधारवादी था अतः रामनारायण तर्करत्न, दीनबन्धु मित्र, भारतेन्दु हरिश्चन्द्र आदि ने **प्रहसनों** की रचना की। बीसवीं सदी में भी प्रहसन लिखे गये किन्तु अधिक सफल नहीं हुए। व्यक्ति तथा परिवार ये समाज के ही अंग हैं। कुछ नाटक ऐसे हैं जिनमें व्यक्ति, परिवार तथा सामाजिक परिवेश का अनुकूल चित्रण हुआ है एवं जीवन के हर्षोत्फुल्ल पक्ष का उद्घाटन कर कामदी व **सुखान्त** नाटकों की रचना हुई। इस कोटि के नाटक का एक सुन्दर उदाहरण है रवीन्द्रनाथ रचित 'चिरकुमार सभा'। कुछ नाटक ऐसे हैं जिनमें व्यक्ति, परिवार तथा सामाजिक परिवेश का प्रतिकूल चित्रण हुआ है एवं जीवन के करुण पक्ष का उद्घाटन कर त्रासदी व **दुखान्त** नाटकों की रचना हुई है। इस कोटि के नाटक हैं गिरीशचन्द्र घोष रचित 'प्रफुल्ल' एवं विधायक भट्टाचार्य रचित 'माटीर घर', ये पारिवारिक ट्रेजेडी ही हैं एव इनमें ग्रीक व शेक्सपियर के ट्रेजेडियों के लक्षण ढूंढना व्यर्थ है। इस कोटि के मार्मिक, हृदय विदारक, शोकाकुल घटनाओं से पूर्ण नाटकों का हिन्दी में अभाव है क्योंकि हिन्दी लेखकों पर संस्कृत के सुखान्त नाटकों के आदर्श का प्रभाव अधिक था।

सामाजिक कथावस्तु जिस नवीन रूप में इस युग आई वे **समस्या-मूलक** नाटक कहलाये। इन नाटकों पर इब्सन, गॉल्सवर्दी, शा के विचार एवं यथार्थवादी शैली का बहुत जबरदस्त प्रभाव पड़ा। फिर भी हिन्दी तथा बंगला लेखकों ने सामाजिक परिवेश

को भारतीय रूप देने की चेष्टा की। तीन अंकों के इन नाटकों में कहीं स्वच्छन्दतावादी शैली व कहीं तार्किक शैली का ग्रहण भी हुआ है। हिन्दी में लक्ष्मीनारायण मिश्र, उपेन्द्रनाथ अश्क, सेठ गोविन्ददास आदि तथा बंगला में शचीन सेनगुप्त, जलधर चट्टोपाध्याय, मन्मथ राय आदि इस कोटि के लेखक हैं। इस नाटकों में यौन-समस्या एवं आर्थिक-समस्या ही प्रमुख हैं।

(४) रोमांटिक नाटक

जो नाटक जीवन के वास्तविक तथा गंभीर पक्ष से उदासीन होकर जीवन के रंगीन, कल्पना प्रधान, मधुर पक्ष का चित्रण करते हैं वे रोमांटिक नाटक कहलाते हैं। जीवन के कटु अनुभव, दारिद्रय, अन्याय आदि ठोस सत्यों से विमुख होकर लेखक प्रेमलीलाओं का अत्यन्त भाव-प्रवण चित्रण करता है। यद्यपि जीवन के प्रति इस दृष्टिकोण को पलायनवादी कहा जाता है, फिर भी इनमें भावों की सूक्ष्म व्यंजना द्वारा मानव हृदय की आदिम-प्रवृत्ति वासना का जो मधुर चित्र खींचा जाता है, वह दर्शकों के मन को कुछ क्षण के लिये अलौकिक भावलोक में ले जाकर तृप्त तथा आल्हादित करता है। यूरोप में इस स्वच्छन्दतावादी धारा का चरमोत्कर्ष शेक्सपियर के नाटकों में दिखाई देता है एवं हिन्दी तथा बंगला नाटकों की प्रवृत्ति भी इस ओर झुकी रही। हिन्दी काव्य-साहित्य में छायावाद के अन्तर्गत इस प्रवृत्ति को अत्यन्त प्रोत्साहन मिला। ऐतिहासिक कथावस्तु के शौर्य, युद्ध तथा प्रेम के प्रसंगों में इस उच्छ्वसित प्रवृत्ति के अत्यधिक प्रभाव के कारण उनका महत्व ऐतिहासिकता की दृष्टि से बहुत हल्का हो गया। अन्य विषय वस्तुओं पर भी इस भावप्रवणता का प्रभाव पड़ा, किन्तु रोमांटिक जीवन दृष्टि, रोमांटिक शैली एवं रोमांटिक कथावस्तु का एकीकरण **प्रेमलीला पूर्ण नाटकों** में हुआ। बंगला नाट्य साहित्य में ऐसे नाटककारों में क्षीरोदप्रसाद सबसे अधिक सफल हुए। उनके नाटक 'आलीबाबा', 'किन्नरी', 'वरुण', आदि नृत्य-गीत पूर्ण शृंगार रस प्रधान हैं। हिन्दी नाट्य साहित्य में कुछ साहित्यिक नाटकों के अतिरिक्त **पारसी नाटक कम्पनियों** के रंगमंचीय नाटक ही अधिक प्रसिद्ध हैं, जिनमें शृंगार रस का स्वरूप कुछ विकृत तथा अश्लील हो गया। फिर भी नृत्य, गीत, पद्यात्मक प्रयोग पूर्ण, ये नाटक अनेक काल तक जनता का मनोरंजन करते रहे।

स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्ति हमेशा सुदूर के प्रति उन्मुख रहती है। अतः इसके अन्तर्गत रहस्यात्मक भाव का भी उदय होता है। रवीन्द्रनाथ तथा प्रसाद जैसे प्रतिभाशाली रहस्यवादी कवियों ने कुछ नाटकों की रचना की, जिनमें रहस्यात्मकता अनायास ही आ गई। कुछ विशेष नाटकों में **प्रतीकों की योजना** द्वारा कुछ गूढ़ रहस्य व्यक्त करने की चेष्टा की गई है। प्रसाद रचित 'एक घूँट' तथा रवीन्द्रनाथ रचित 'ताशेर देश' जैसी नाटिकाओं में पूर्ण प्रतीक-योजना द्वारा स्वच्छन्द प्रेम, आनन्द, सौन्दर्य आदि का कल्पनात्मक तथा मधुर चित्रण हुआ है।

कुछ लोक नाटक भी इस शृंगारी प्रवृत्ति को लेकर सृजित हुए जिसकी परम्परा युगों से लोक मानस को तृप्ति प्रदान करती आ रही है। राधा-कृष्ण

जैसे धार्मिक युगल प्रेमियों के सिवा लोक-कथाओं के कई युगल-प्रेमी हैं, जिन्होंने प्रेम के लिए आत्माहुति दे डाली। ऐसे नाटकों में हीर-रांझा, सोहनी-महीवाल, ढोला-मारू आदि प्रसद्धि हैं। बंगला के देशज-पुराण मंगल काव्य के बेहुला-लखिन्दर की कथा भी उत्कृष्ट प्रेम भावना से परिपूर्ण है।

यद्यपि नाटक साहित्य की सबसे अधिक निर्वैयक्तिक-रचना (आव्जेक्टिव्ह) है, फिर भी विभिन्न विषय वस्तुओं पर लेखक के जीवन-दर्शन का कुछ न कुछ प्रभाव अवश्य पड़ता है।

जीवन-दर्शन के अनुसार वर्गीकरण

(१) अध्यात्मवादी नाटक

सभ्यता के आदि-युग में मानव ने प्रकृति की पूजा की, ताकि प्रकृति उनके प्रति अनुकूल होवे। पौराणिक-युग में प्रकृति को नाना देवी-देवताओं के रूप में अधिष्ठिति किया गया। जैसे सूर्य ही विष्णु कहलाये तथा अग्नि रूद्र कहलाये। हम देखते हैं कि भारतीय नाट्य-साहित्य पर वैष्णव धर्म का अत्यन्त प्रभाव पड़ा। क्योंकि जीवन धर्म पर आधारित होता है एवं नाटक जीवन का दर्पण है। भक्ति युग में अद्वैतवाद, विशिष्टाद्वैतवाद तथा शुद्धाद्वैतवाद की व्यापक चर्चा हुई एवं उस युग का साहित्य ही भक्ति-साहित्य कहलाया। हिन्दी तथा बंगला नाटकों के प्रारम्भिक काल में भक्ति की ही प्रबलता थी, जिनमें नाना दार्शनिक वादों का प्रभाव था। नये युग के आगमन के साथ भक्ति का स्थान सन्देह, तर्क तथा बुद्धि ने ले लिया एवं ईश्वरवाद (थियोलाजी) के स्थान पर दर्शन (फिलोसाफी) की प्रतिष्ठा हुई। जीवन, सृष्टि-तत्व, आत्मा, परमात्मा आदि के सम्बन्ध में मानव का जो दृष्टिकोण है, वह दर्शन कहलाता है। उदाहरणार्थ क्षीरोद प्रसाद के नाटक 'नर-नारायण' में भक्ति और संदेश का द्वन्द्व होता है एवं भक्ति विजयनी होती है। उदयशंकर भट्ट के नाटक 'राधा' में दिव्य-प्रेम तत्व पर प्रकाश डाला गया है। रवीन्द्रनाथ के नाटक 'राजा' में अदृश्य प्रियतम को अनुभूति चक्षु द्वारा देखने की चेष्टा की गई है। **इसी तरह ग्रीक त्रासदियों की 'नेमेसिस' न्याय की देवी हैं** तथा **प्रसाद के नाटकों की 'नियति' शैव-दर्शन की नियामिका-शक्ति (रेस्ट्रिक्टिव फोर्स) है।** कुछ नाटकों में इस अध्यात्मवादी दृष्टिकोण को अधिक प्रमुखता मिली है। जैसे प्रसाद के अधिकांश नाटक बौद्ध-दार्शनिकता से ओत-प्रोत हैं, साथ ही शैव-दर्शन के वे अनुयायी हैं। कुछ नाटकों में इस दृष्टिकोण का परोक्ष-प्रभाव है एवं नाटकों में वस्तुतथ्यता को अधिक प्रधानता मिली है। प्रतीक शैली के नाटक कभी-कभी इसी दार्शनिकता के कारण इतने दुर्बोध प्रतीत होते हैं कि उनका नाटकत्व मलिन हो जाता है। जीवन-दर्शन का प्रभाव वहीं तक उचित है जहां तक वह कला का सहगामी तथा उत्कर्ष-कामी हो। हिन्दी तथा बंगला में प्रसाद एवं रवीन्द्रनाथ के नाटक दार्शनिकता से बोझिल हो उठे हैं। अतः उनका जन-आवेदन (मास अपील) अत्यन्त कम है।

(२) राष्ट्रवादी नाटक

वैदिक सभ्यता के युग से भारत राष्ट्र की अपेक्षा समाज को ऊंचा समझता रहा एवं उसका आदर्श रहा **'वसुधैव कुटुम्बकम्'** । संस्कृत नाटकों में देश-प्रेम की अपेक्षा मानव जीवन के चिरंजन स्वरूप पर प्रकाश अधिक डाला गया है। इसी कारण 'अभिज्ञान शकुन्तलम्' जैसे नाटकों का प्रभाव सार्वजनिक, सर्वदेशीय तथा सर्वकालीन है। **यूरोप में राष्ट्रवाद** का अत्यन्त प्रचार हुआ एवं इटली, फ्रांस तथा जर्मनी ने इसे चरमोत्कर्ष प्रदान किया । हेगेल के दर्शन से पुष्ट इस राष्ट्रवाद की लहरें विश्वव्यापिनी हो उद्वेलित हो उठीं । भारत पराधीन था अतः वह प्राण के सम्पूर्ण आवेग के साथ राष्ट्रवादी हो उठा । स्वाधीनता-संग्राम के इतिहास में 'वन्देमारतम्' की ध्वनि पर मर मिटने वालों की संख्या अल्प नहीं है । साहित्य के सभी अंगों पर बीसवीं सदी के आरम्भ से राष्ट्रीय भावनाओं का चन्दन-लेपन शुरू हो गया । प्रारम्भ में यह भावना हिन्दू जातीयता पर आश्रित थी । द्विजेन्द्रलाल राय ने 'मेवाड़ पतन' में राष्ट्रीय भावों को विश्व प्रेम तक उठा दिया एवं हरिकृष्ण प्रेमी ने नाटकों द्वारा हिन्दू-मुस्लिम ऐक्य का व्रत ग्रहण किया । स्वदेशी आन्दोलन के युग में अधिकांश नाटकों में राष्ट्रीय भावनाओं का ही प्राबल्य रहा ।

(३) मानवतावादी नाटक

मानव-दर्शन के अनुसार समाज, राज्य, विश्व आदि का केन्द्र मानव ही है। मानवतावादियों ने मानव की महानता की घोषणा की । **व्यक्तिवाद का उत्कर्ष हुआ ।** आत्मबोध एवं समाजबोध में संघर्ष शुरू हुआ । साम्राज्यवादियों तथा **सामन्तशाही का पतन हुआ ।** पूँजीपतियों के धर्म और ईश्वर के जाल को छिन्न-भिन्न करते हुए रूस में पूँजीवादी शोषण समाप्त कर दिया गया । मानव सभ्यता के एक छोर पर मानव एवं दूसरे छोर पर समाज खड़ा है । **मानव के लिए समाज बना है, समाज के लिए मानव नहीं ।** समाज विकास के साथ साथ मानव हृदय के दुःख, दर्द, आकांक्षा, क्षुधा आदि को समझने की चेष्टा की जा रही है एवं आज के साहित्यिकों ने राजा, महाराजाओं को नहीं, दीन, दरिद्र, मानसिक पीड़ा से क्षुब्ध, कातर मानव को अपना पात्र चुन लिया है। नाटक में बाह्य द्वन्द्व की अपेक्षा मानसिक द्वन्द्व को प्रमुखता मिलती जा रही है। रवीन्द्रनाथ ने 'विसर्जन' में धार्मिक रूढ़ी के विरुद्ध मानव का द्वन्द्व दिखाया, उग्र ने 'महात्मा ईसा' में हिंसा के विरुद्ध मानव प्रेम का द्वन्द्व दिखाया, क्षीरोदप्रसाद ने 'आलमगीर' में औरंगजेब को एक प्रतापी शासक के रूप में नहीं मानसिक द्वन्द्वों से पीड़ित स्वप्न में प्रलाप बकते हुए एक पीड़ित, असहाय के रूप में चित्रित किया, लक्ष्मीनारायण मिश्र ने 'राक्षस का मन्दिर' में मानव के अन्तर्गत देव एवं दानव के द्वन्द्व को रूपायित किया । डी. एल. राय के 'नूरजहां', 'शाहजहां' आदि में भी मनोवैज्ञानिक चित्रण हुआ है किन्तु यह प्रवृत्ति उत्तरोत्तर अत्यंत सूक्ष्म **मनोविश्लेषणात्मक** होती चली जा रही है ।

कई नाटकों में हम देखते हैं कि विषय-वस्तु, जीवन-दर्शन आदि को दबाकर लेखक का रचना उद्देश्य प्रबल हो उठा है। वह या तो रस को लक्ष्य बनाता है, नहीं तो किसी प्राचीन कथा को नवीन रूप देना चाहता है अथवा किसी विशिष्ट पक्ष का चित्रण करना उसका ध्येय होता है। ऐसी परिस्थिति में प्रमुखता रस, कथा व चित्रण की रहती है।

रचना उद्देश्य के अनुसार वर्गीकरण

(१) रस-प्रधान नाटक

जीवन-उदधि में तंरगित असंख्य भाव-लहरियों में से किसी भाव को चुनकर नाटककार उसका चित्रण इस भांति करता है कि निपुण वस्तु-विन्यास तथा मार्मिक चरित्र-सृष्टि द्वारा रस का पारिपाक होता है। भारतीय साहित्य-शास्त्र के अनुसार रस को ही काव्य की आत्मा माना गया है। नाटक में कवि, पात्र तथा दर्शकों के हृदय का साधारणीकरण होता है। विभिन्न आचार्यों ने विभिन्न रूप से रस की प्रक्रिया समझने की चेष्टा की जिसमें **भट्ट लोल्लट का उत्पत्तिवाद, श्री शंकु का अनुमितिवाद, भट्ट नायक का मुक्तिवाद तथा अभिनव गुप्त का अभिव्यक्तिवाद ध्वनिवाद'** प्रसिद्ध हैं। सर्व प्रथम भरतमुनि ने इसे सिद्धांत के रूप में स्वीकार किया एवं अभिनव गुप्ताचार्य, धनंजय, धनिक आदि ने यह मत व्यक्त किया कि **रस की स्थिति प्रेक्षक में है।**[१] यद्यपि पाश्चात्य नाट्यशास्त्र में रस सिद्धांत का कोई उल्लेख नहीं है, फिर भी अरस्तू का विवेचन-सिद्धांत अन्त तक आनद को स्वीकार करता है, अन्यथा दर्शक दुःख अनुभव करने के लिये त्रासदी नहीं देखते। पाश्चात्य नाटकों के त्रासदी में शोक एवं कामदी मं हर्ष का भाव समाया रहता है एवं ये ही भाव परिपुष्ट तथा सघन होकर आनंद प्रदान करते हैं। हमारे साहित्य में नौ रस माने गये हैं—शृंगार, वीर, हास्य, अद्भुत, भयानक, वीभत्स, करुणा, रौद्र तथा शांत। इनमें प्रथम चार रस न सुखात्मक हैं न दुःखात्मक - वे प्रसादात्मक हैं। इस तरह हम देखते हैं कि रसों का तात्विक विवेचन त्रासदी तथा कामदी की अपेक्षा सूक्ष्म है। यूरोप में त्रासदी तथा कामदी के सिवा मेलोड्रामा, फार्स, ट्रेजी-कामेडी आदि का भी विकास हुआ है। हिन्दी तथा बंगला नाटककारों ने यद्यपि रस-सिद्धांत को नहीं भुलाया है, फिर भी त्रासदी, कामदी आदि लिखने की ओर भी उनकी प्रवृत्ति अग्रसर हुई है। इस तरह कई नाटककारों ने प्राच्य तथा पाश्चात्य नाट्य-सिद्धांतों के समन्वय का भी प्रयास किया है। हिन्दी तथा बंगला में विशुद्ध त्रासदी व कामदी के उदाहरण

---

१. रूपक रहस्य—डा. श्यामसुन्दरदास
(इण्डियन प्रेस लि. प्रयाग)
तृतीय संस्करण, पृष्ठ १९८

अत्यन्त अल्प हैं। त्रासदी में दुःख बोध (Suffering), संघर्ष (Conflict) और कार्य-कारणत्व (Causality) ये तीन उपादान रहते हैं एवं इसका मूल भाव करुण तथा निराशाव्यंजक होता है। इसके कार्य-कारणत्व को रूप देने के लिये जिस कुशलता की आवश्यकता होती है एवं **जो निपुणता ग्रीक तथा शेक्सपियर के त्रासदियों में है, उनका हिन्दी तथा बंगला नाट्य-साहित्य में अभाव है**। वे अभी तक उस उत्कर्ष की सीमा तक नही पहुंच पाये हैं। अतः त्रासदी रचना की चेष्टा में कहीं-कहीं मेलोड्रामा की सृष्टि हो गई है। ग्रीक में 'मेलो' का अर्थ 'गीत' है। जिन नाटकों में गीत की अधिकता हो जाती है, वे त्रासदी के गाम्भीर्य से स्खलित होकर मेलोड्रामा बन जाते हैं। जब त्रासदी के संगठन में कुछ शिथिलता आ जाती है, भावातिशयता, आकस्मिकता, चमत्कार, वैचित्र्य तथा अस्वाभाविक घटना विन्यास के लक्षण दृष्टिगोचर होते हैं, तव वह त्रासदी न कहलाकर मेलोड्रामा ही कहलाता है। **अंग्रेजी नाटकों का आदर्श ट्रेजी-कामेडी था।** वे विषाद तथा गाम्भीर्य के साथ हास्य की धारा भी मिला देना अधिक पसन्द करते थे। संस्कृत नाटकों में भी गम्भीर परिस्थिति में विदूषक प्रवेश करके दुःखात्मक वातावरण को हल्का कर देता है। किन्तु ग्रीक नाटकों का आदर्श प्रभाव-ऐक्य था। अतः उन्होंने दुःखात्मक एवं सुखात्मक नाटकों को अलग ही रखा। भावानुभूति को ही लक्ष्य बनाते हुए हिन्दी तथा बंगला में कई नाटकों की रचना हुई जिनमें इन सबका समन्वित प्रभाव दृष्टिगोचर होता है।

कामदी में स्मरणीय चरित्र-सृष्टि, कौतुहलपूर्ण घटना, व्यंग्य-विनोदपूर्ण संलाप आदि के द्वारा जीवन के सहज, सरल तथा हर्ष-मुखर पक्ष का चित्रण होता है। इसमें असंगति द्वारा जीवन के लघु पक्ष का चित्रण होता है। व्यंग्य (Satire), विनोद (Humour) वाग्विदग्धता (Wit) के प्रयोग द्वारा उच्च कोटि के कामदियों की रचना भी हुई है, उदाहृणार्थ मोलियर, शेक्सपियर तथा बर्नार्ड शा के नाटक। इनके नाटकों से भी प्रभावित होकर हिन्दी तथा बंगला में कामदी रचना की प्रवृत्ति दिखाई देती है। संस्कृत नाट्य-शास्त्र में हास्य रस प्रधान रूपकों को प्रहसन कहा जाता है। प्रहसन पाश्चात्य के फार्स (Farce) से अधिक साम्य रखते हैं। **कामदी के हर्ष के स्थान पर फार्स में हास्य की चटुलता आ जाती है।** फलतः इसे हम कामदी का हल्का रूप कह सकते हैं। हिन्दी में बद्रीनाथ भट्ट, जे० पी० श्रीवास्तव आदि के प्रहसन तथा बंगला में अमृतलाल वसु के प्रहसन इसी कोटि के हैं। रवीन्द्रनाथ के व्यंग्य-कौतुक तथा हास्य-कौतुक से पाश्चात्य के शेरेड (Charade) की तुलना की जा सकती है।

विभिन्न प्रवृत्ति, विषय वस्तु, जीवन दर्शन, रचना उद्देश्य तथा कलात्मक प्रयोगों के स्वरूप को मिलाकर मूल-भाव को प्रधानता देते हुए वर्गीकर निम्नलिखित रूप में विवेच्य होगा—

(१) **पौराणिक नाटक**—कथा प्रधान, चरित्र प्रधान, महात्माओं के जीवन से सम्बन्धित तथा तत्व-रूपक।

(२) **ऐतिहासिक नाटक**—शुद्ध ऐतिहासिक, ऐतिहासिक-राष्ट्रवादी, सांस्कृतिक तथा जीवनी-नाटक।

(३) **सामाजिक नाटक**—समस्या-मूलक यथार्थवादी नाटक, समस्या-मूलक स्वच्छन्दतावादी नाटक, सुखांत तथा दुःखांत साधारण सामाजिक नाटक, प्रहसन ।

(४) **रोमांटिक नाटक**—प्रेमलीलापूर्ण रोमांचकारी नाटक, प्रतीक शैली के नाटक, गीतिनाट्य, नृत्यनाट्य, ऋतुनाट्य, भावनाट्य तथा काव्य रूपक ।

(५) **रंगमंचीय दृष्टिकोण**—शिल्प की दृष्टि से विभिन्न प्रयोग ।

ज्यों-ज्यों भारत के साथ पाश्चात्य देशों का सम्पर्क बढ़ता गया, त्यों-त्यों हिन्दी तथा बंगला साहित्य की विचार-धारा एवं शैली पर पाश्चात्य प्रभाव अधिकाधिक पड़ने लगा । किन्तु काव्य की आत्मा तो रस है । अतः हिन्दी तथा बंगला के आधुनिक नाटकों का तुलनात्मक विवेचन उनके रागात्मक संचय को प्रधानतः लक्ष्य बनाकर, मूल भाव की दृष्टि से करना समीचीन होगा । इन्हीं मूल भावों पर भारतीय संस्कृति तथा सभ्यता की अमीट छाप है । अतीत, वर्तमान तथा भविष्य एक परम्परा में श्रृंखलित हैं ।

हिन्दी तथा बंगला नाटकों की तुलनात्मक आलोचना के आधारभूत तत्व निम्नलिखित होंगे—

(१) **भारतीय रस-सिद्धान्त** की दृष्टि से नाटकों के रागात्मक तत्वों का विवेचन होगा । मूल भाव व रागात्मक-प्रेरक शक्तियों का विवेचन भी इसी के अन्तर्गत होगा । **युग चेतना**, विषय वस्तु, जीवन दर्शन तथा उद्देश्य नाटक की प्रधान प्रेरक शक्तियों के अन्तर्गत हैं । इनके सिवा **भारतीय संस्कृति** तथा **पाश्चात्य विचार धारा** का समन्वय आधुनिक नाटकों के महत्व का कारण है । अतः इस विषय पर भी विशेष रूप से प्रकाश डाला जायगा ।

(२) **कलात्मक विशेषताओं** के कारण ही आधुनिक नाटक जात्रा नाटक, ब्रजभाष के नाटक तथा संस्कृत नाटकों से भिन्न हैं । अतः यह बतलाना आवश्यक होगा कि इन नाटकों में शेक्सपियर की रोमांटिक शैली, इब्सन की यथार्थवादी शैली, नृत्य गीतात्मक रास व जात्रा शैली आदि का किस तरह प्रयोग हुआ है एवं नवीन टेकनिकों का किस तरह उद्भव हुआ है ।

(३) **संस्कृत तथा पाश्चात्य नाट्य-सिद्धान्तों** का प्रयोग किस रूप में हुआ है एवं उनके समन्वय का प्रयास किस तरह किया गया है । ये भी विवेचनीय विषय हैं । संस्कृत के नान्दी, प्रस्तावना, भरत वाक्य, स्वगत कथन आदि का किस तरह धीरे-धीरे प्रयोग लुप्त हो गया एवं पाश्चात्य ढंग के नाटकीय द्वन्द्व, नाटकीय वक्रता, जिज्ञासा, कार्य-कारण, परम्परा के रूप में परिणति, मनोविश्लेषण, गीत तथा स्वगत कथनों का बहिष्कार आदि को प्राधान्य दिया जाने लगा, इस पर प्रकाश डाला जायगा ।

(४) **पाश्चात्य ढंग के थियेटरों** ने अंग्रेजों के शासन काल में भारतीय नाट्य साहित्य को प्रेरणा दी । यह प्रेरणा बंगला नाट्य साहित्य को अधिक प्राप्त हुई एवं

हिन्दी नाट्य साहित्य को कम प्राप्त हुई, इसका भी विवेचन प्रसंगानुकूल होगा। थियेटरों पर हमारे देश के लोक नाटकों के कुछ तत्वों का भी प्रभाव पड़ा एवं लोक नाटकों ने थियेटर से कई तत्व ग्रहण कर अपने को नवीन रूप में संवार लिया, इस पर भी प्रकाश डाला जायगा।

(५) **भविष्य के नाटक तथा रंगमंचों** का स्वरूप इन सभी तत्वों पर आधारित है। भविष्य के नाटक तथा रंगमंच का भी आभास मिल सके, इस कारण **सन् १९५० के बाद से सन् १९६७** तक हिन्दी तथा बंगला के नाटक एवं रंगमंच के विकास पर भी संक्षिप्त प्रकाश डाला गया है। स्वाधीनता प्राप्ति के उपरांत इन बीस वर्षों में हमारा गण-चैतन्य अत्यन्त प्रबल हो उठा है एवं इस काल में सामाजिक समस्या-मूलक नाटक विशेष उल्लेख योग्य हैं। पाश्चात्य साहित्य तथा थियेटर से हम अधिकाधिक परिचित हुए। गोर्की, चेखव तथा ब्रेख्ट के नाटक एवं यथार्थवादी तथा अतियथार्थवादी मंच शिल्प हमारे नाट्य साहित्य में प्रभाव विस्तार करने लगे। इसके साथ ही हमारी परम्परा को पुनरुंजीवित करने के प्रयास गीतिनाट्य, नृत्य नाट्य, संगीत रूपक, लोक नाट्य आदि में परिस्फुट हो उठे।

अध्याय ३

पौराणिक नाटक

पौराणिक नाटकों के स्वरूप की व्याख्या

पौराणिक साहित्य व 'क्लासिक लिटरेचर' का अर्थ है प्राचीन साहित्य। इस प्राचीन साहित्य में जीवन का सार्वजनीन एवं चिरन्तन सत्य समाया रहता है। मानव सभ्यता के आदिकाल में सृष्टि के रहस्यों के सम्बन्ध में, जीवन के उदात्त भावों के संबंध में, समाज के उत्थान-पतन के संबंध में जो भी आख्यान रचे गये उनके अनुशीलन से ज्ञात होता है कि मानव समाज के तत्कालीन पूर्व पुरुष यद्यपि विज्ञान से अनभिज्ञ थे किन्तु सृष्टि, समाज तथा साहित्य संबंधी उनकी दृष्टि हमसे गहनतर थी। प्राचीन साहित्य में जीवन का आदर्श है, स्वच्छन्दता का वातावरण भी है तथा मनस्तत्व का सूक्ष्म विश्लेषण भी है। रामायण में परिवार, समाज, राज्य, आश्रम आदि के आदर्शों के चित्र असंख्य हैं। महाभारत की प्रेम-कथाओं में नर-नारी के प्रेम का जो विविध रूप में चित्रण हुआ है वह मधुर ही नहीं, महत्वपूर्ण भी है। 'ओदेशी' में ट्राय से ग्रीस की ओर प्रत्यावर्तन के समय युलिसिस की साहसपूर्ण यात्राओं का वर्णन रोमांस से परिपूर्ग है। इस कारण **'भारत प्रेम कथा' में श्री सुबोध घोष** लिखते हैं— "शत शत व्यक्ति और व्यक्तित्व की जो कहानियां महाभारत में विवृत हैं उनमें इस बीसवीं सदी का कोई भी मनुष्य अपने जीवन की समस्या व आग्रह का रूप देख सकता है। इस कारण शत शत युगों के कवियों ने महाभारत से उनकी रचनाओं की आख्यान वस्तु आहरण की है।"

पौराणिक साहित्य के अन्तर्गत इतिहास के अर्थ का भी बोध हो जाता है। 'इतिहास' शब्द का व्युत्पत्यार्थ है—इति-ह-आसः याने इस तरह से था। अतः हम देखते हैं भूतकाल का पुराना आख्यान इतिहास है। किन्तु इस इतिहास में जब कल्पना, धार्मिक उपदेश तथा अलौकिकता आदि तत्व भी समा जाते हैं तब वह 'पुराण' कहलाता है। छान्दोग्य उपनिषद में नारद ने इतिहास को 'पंचम वेद' कहा इस तथ्य का उल्लेख 'आर्य संस्कृति का मूलाधार' नामक ग्रंथ में श्री बलदेव उपाध्याय ने किया है।

अंग्रेजी का 'माइथोलाजी' शब्द जो पुराण का ही पर्यायवाची है ग्रीक 'Muthos' से बना है, जिसका अर्थ है आख्यान। ग्रीस के प्रसिद्ध नाटककार सोफोक्लस ने 'किंग इदिपुस' नाटक की रचना थेबेस के (Legend) के आधार पर की है। किसी ऐतिहासिक, विख्यात नायक के जीवन संबंधी घटनाओं में किंवदन्तियों के समावेश हो जाने से वह 'लीजेंड' बन जाता है।

उन प्राचीन कथानकों की नीव पर जब कोई नवीन कथावस्तु अपनी नवीन व्याख्या सहित निर्मित होती है तब 'क्लासिकल रस' की अवतारणा होती है। इसमें केवल इतिहास के तथ्यों से ही सामग्री नहीं ली जाती, उन समस्त रचनाओं से उपकरण ग्रहण होता है जो युगों से लोक मानस की आख्या एवं श्रद्धा की वस्तु रही है। ऐतिहासिक रस की अपेक्षा वह सघन होता है क्योंकि हमारी संस्कृति के ये पवित्रतम निदर्शन हैं। भरत मुनि ने नाट्यशास्त्र में प्रख्यात कथावस्तु के विषय में जो 'इतिहास' शब्द प्रयुक्त किया है उसमें पुराण-धर्मी तथा शुद्ध -इतिहास दोनों का मेल है। नाट्य शास्त्र में लिखा है—

"वेदविद्येतिहासानामाख्यानंपरिकल्पनम् ।
विनोदकरणं [illegible] ।।
श्रु[illegible] ।
विनोदजननं लोके नाट्यमेतद्भविष्यति ।।"

हिन्दी तथा बंगला साहित्य के पौराणिक नाटकों के कथानक वेद, पुराण, रामायण, महाभारत तथा देशजपुराण (जिनमें व्रत-कथाएं भी सम्मिलित हैं) से लिये गये हैं। ये कथाएं हमारी धर्म-भावना तथा आध्यात्मिकता से ओत-प्रोत हैं। अतः दर्शकों के हृदय में रसोद्रेक करने की इनमें अपूर्व क्षमता है। पौराणिक नाटक ही एकमात्र भारतीय आत्मा के उज्जवल तथा सजीव प्रतीक हैं। भारतीय जीवन की भित्ति ही अध्यात्म है। इस प्रसंग में **गिरीशचन्द्र घोष** की उक्ति उल्लेखनीय है—

"जातीय वृत्ति परिचालना के सिवाय कविता व नाटक जाति के लिए हितकर नहीं होते। भारतवर्ष का जातोय मर्म धर्म है। देश-हितैषिता प्रभृति जितने प्रकार की कथाएँ हैं, उनमें कोई भी भारत के मर्म को स्पर्श नहीं कर सकेंगी। **भारत धार्मिक है।** जो चैत्र मास की धूप में हल-संचालन कर रहे हैं, वे भी कृष्ण नाम जानते हैं, उनका भी मन कृष्ण नाम के प्रति आकृष्ट है। यदि नाटक को सार्वजनिक बनाना प्रयोजनीय है, तो कृष्ण नाम से ही होगा।"

अतः पौराणिक नाटकों का चिरकालीन प्रधान उद्देश्य रहा भक्ति का प्रतिपादन। ज्ञान बिरले ही लोगों को प्राप्य है किन्तु मंच पर भगवान के रूपों को पात्रों में आरोपित देख लाखों हृदय आज भी मुग्ध हो उठते हैं।

हिन्दी तथा बंगला नाटकों की पौराणिक पृष्ठभूमि

हिन्दी तथा बंगला नाटककारों का ध्यान पौराणिक कथावस्तु के प्रति ही सबसे अधिक आकर्षित हुआ था क्योंकि उन्नीसवीं सदी का उत्तरार्द्ध सांस्कृतिक पुनरुत्थान का युग था। श्री चैतन्य तथा श्री वल्लभाचार्य द्वारा अनुप्राणित वैष्णव आन्दोलन के बाद हिन्दी तथा बंगला भाषी क्षेत्र में भक्ति का फिर ज्वार आया जिसकी अमिट छाप नाट्य-साहित्य पर पड़ी। हिन्दी की अपेक्षा बंगला के क्षेत्र में भक्ति की प्रबलता इस युग में अधिक रही, जिसका प्रधान कारण था श्री रामकृष्ण परमहंस का आविर्भाव।

यद्यपि बंगला में माइकेल मधुसूदन दत्त ने **'शर्मिष्ठा'**, **'पद्मावती'** आदि की रचना की एवं 'अभिज्ञान शाकुन्तलम्' का उन पर प्रभाव पड़ा, फिर भी ये नाटक प्राच्य और पाश्चात्य नाट्यशैली के समन्वय की दृष्टि से रचित हुए एवं पौराणिक नाटकों का आध्यात्मिक तत्व इनमें नहीं है। पौराणिक नाटकों का चरम विकास गिरीशचन्द्र घोष रचित **'जना'**, 'पांडव गौरव', 'पांडवेर अज्ञातवास' आदि नाटकों में प्राप्त होता है। जात्रा शैली की भावुकता, दार्शनिकता के साथ शेक्सपियर की नाट्य-शैली के मिलन कराने का उन्होंने स्तुत्य प्रयास किया। गिरीशचन्द्र की शैली का ही प्रभाव द्विजेन्द्रलाल रचित **'सीता'**,**'भीष्म'**, **'पाषाणी'** आदि पर, क्षीरोदप्रसाद रचित **'नर-नारायण'**, **'भीष्म'** **'उलूपी'** आदि पर तथा अपरेशचन्द्र मुखोपाध्याय रचित **'कर्णार्जुन'** पर पड़ा किन्तु बीसवीं सदी में रचित इन नाटकों में भक्ति-भावना का वैसा द्वन्द्वहीन चित्रण नहीं हुआ जैसा पूर्व के नाटकों में हुआ है। हिन्दी के प्रारम्भिक पौराणिक नाटक **'प्रहलाद चरितामृत'**, **'प्रयाग रामागमन'**, **'प्रभास मिलन'** आदि का नाट्य-साहित्य की धारा में ऐसा कोई विशिष्ट प्रभाव नहीं पड़ा जिससे प्रभावित होकर बीसवी सदी के पौराणिक नाटकों की रचना हुई हो। इसका कारण यह है कि हिन्दी पौराणिक नाटकों का उदय ब्रजभाषा के 'हनुमन्नाटक', 'आनन्द-रघुनन्दन' की परम्परा के अनुकूल हुआ एवं ऐसे किसी अवतार पुरुष का आविर्भाव वहां इस युग में नहीं हुआ जिनके प्रभाव से भक्ति का तूफान उद्वेलित हो उठे। हिन्दी पौराणिक नाटकों की पृष्ठभूमि की यही विशेषता रही कि उनमें **रामभक्ति धारा** एवं **कृष्णभक्ति धारा** के अनेक नाटक लिखे गये जिस परम्परा में सेठ गोविन्ददास के 'कर्त्तव्य' नाटक की रचना हुई। बंगला नाटकों की प्रवृत्ति भक्ति के उच्छ्वसित-चित्रण के प्रति अधिक उन्मुख थी। द्विजेन्द्रलाल ने 'सीता' तथा 'पाषाणी' में नारी का मनोविश्लेषण किया तथा धीरे धीरे पौराणिक नाटकों में नवीन चिन्तन का प्रभाव पड़ने लगा।

नूतन चेतना का प्रसार

बीसवीं सदी में पौराणिक नाटकों की मांग कुछ कम हो चली क्योंकि ईश्वरत्व का स्थान इस युग में मानत्व ने ले लिया एवं धर्म का स्थान देश-प्रेम ने ग्रहण किया। भारतीय-भावना के अनुकूल भारतमाता ही देवी दुर्गा स्वरूपिणी बनीं। विश्व-भावना का वातावरण भी यथेष्ट परिवर्तित हुआ। नवयुग का सूत्रपात हुआ। बुद्धिवादी आलोक की किरणों ने दिगन्त के कोहरे को छिन्नभिन्न कर दिया। नित्य नवीन वैज्ञानिक आविष्कार तथा दार्शनिक सिद्धान्त की प्रतिष्ठा से यूरोप का वातावरण उद्भाषित हो उठा एवं उसका प्रभाव पूर्व के पिछड़े हुए देशों पर पड़ा। प्रथम तथा द्वितीय विश्व महायुद्ध के भीषण परिणामों ने भी हमारी धार्मिक भावनाओं पर यथेष्ट आघात किया। अत्याचार,संकट तथा संघर्ष ने बीसवी सदी के मानव हृदय को निष्पेषित किया एवं विद्रोही मानवात्मा जाग उठी। साहित्य में इस भाव-विप्लव के चिन्ह अंकित हैं। व्यक्ति स्वातंत्र्य, नारी स्वातंत्र्य, मानव की महानता तथा बुद्धि की विजय इस युग-पथ के मील के पत्थर सदृश्य हैं। हरएक कदम के साथ हमारी दुनिया बदलती गई।

ऐसी परिस्थिति में हमारे पौराणिक नाटकों की भाव-धारा वैसी ही बनी रहती यह सम्भव न था। अतः श्रीराम तथा श्रीकृष्ण जैसे अवतारों का अब मानव सुलभ चित्रण होने लगा। अलौकिक तत्वों के बहिष्कार के साथ उनके नायकत्व के गुणों की युक्तिसंगत खोज होने लगी। वेद, पुराण आदि की कथाओं का भी नवीन दृष्टि से मूल्यांकन होने लगा। बंगला में मन्मथ राय ने एक वैदिक कथावस्तु को जातीयता की भावना का रूप दिया— जैसे **'देवासुर'** नाटक में दधीचि मुनि का त्याग। हिन्दी में माखनलाल चतुर्वेदी रचित **'कृष्णार्जुन युद्ध'** में कृष्णभक्ति प्रतिपाद्य नहीं है, उसमें शरणागत की रक्षा का प्रश्न है। यह भी नवीन दृष्टिकोण का प्रभाव है। आगे चलकर सांस्कृतिक चित्रण भी लेखकों का लक्ष्य हो गया।

बीसवी सदी के पूर्वार्द्ध में रचित पौराणिक नाटकों को हम निम्नलिखित रूप में विभाजित कर सकते हैं:—

(१) पौराणिक कथा-प्रधान नाटक।
(२) पौराणिक चरित्र-प्रधान नाटक।
(३) धर्माचार्यों तथा महात्माओं के जीवन से संबंधित नाटक।
(४) अन्तरंग रीति के आध्यात्मिक तत्व रूपक।

पौराणिक कथा-प्रधान नाटक

बीसवीं सदी में जिन पौराणिक कथाओं का प्रयोग हुआ उनके अध्ययन से ज्ञात होगा कि उनकी भावना, कल्पना तथा विचार-धारा में आमूल परिवर्तन हो गया। प्रागैतिहासिक काल से संबंधित हिन्दी एवं बंगला साहित्य के दो नाटक दो प्रसिद्ध नाटककारों द्वारा लिखे गये, श्री जयशंकर प्रसाद रचित **'जनमेजय का नागयज्ञ'** एवं श्री मन्मथ राय रचित **'देवासुर'** इसी कोटि के नाटक हैं जिनमें आधुनिक विचार धारा, प्राचीन धारणाओं की विज्ञान सम्मत व्याख्या, मानव एव मानव समाज का विकास आदि आर्य एवं अनार्यों के संघर्ष की पृष्ठभूमिका पर अंकित किये गये हैं। कुरुक्षेत्र की युद्धभूमि में अपना विश्वरूप दर्शन कराने वाले श्रीकृष्ण अवतार पुरुष हैं। नाटककार यदि चाहते तो उनकी अलौकिकता का नाट्य रूप दिखाकर भक्ति से पुलकित हो उठते, किन्तु 'जनमेजय का नागयज्ञ' नाटक की भूमिका में प्रसाद लिखते हैं—"श्रीकृष्ण द्वारा सम्पादित नवीन महाभारत साम्राज्य की पुनर्योजना जनमेजय के प्रचंड विक्रम और दृढ़ शासन से हुई थी। सदैव से लड़ने वालीं इन दो जातियों में मेल-मिलाप हुआ, जिससे हजारों वर्षों तक आर्य साम्राज्य में भारतीय प्रजा फूलती फलती रही। बस इन्हीं घटनाओं के आधार पर इस नाटक की रचना हुई।'[१] अतः स्पष्ट है कि पौराणिक नाटकों के आदर्श, अलौकिकता, भक्ति रस की प्रधानता आदि से अछूता रखकर

---

१. जनमेजय का नागयज्ञ—लेखक जयशंकर प्रसाद (षष्ठ संस्करण, वि. स. २००९)
—प्राक्कथन, पृष्ठ—५

लेखक मानव, मानव समाज एवं मानव संस्कृति का युक्ति संगत चित्र खींचना चाहते हैं। 'देवासुर' नाटक की भूमिका में मन्मथ राय लिखते हैं—"नाटकखानि के वैदिक नाटक बलिले विशेष भूल करा हइबे कि ना जानि ना, किन्तु पौराणिक नाटक बलिले जे विशेष भूल करा हइबे ताहाते सन्देहमात्र नाइ। अनेकस्थले आभार परिकल्पना पुराणेर विरोधीओ बटे।"[१] मन्मथ राय की इस युक्ति से भी स्पष्ट है कि पौराणिक सत्पात्रों के प्रति हमारी जो श्रद्धा की भावना है एवं असत् पात्रों के प्रति जो अश्रद्धा की भावना है उन्हें तोड़ फोड़ कर लेखक ऐसे जगत की झांकी हमारे सम्मुख रखना चाहते हैं जिसमें आर्य व देव वर्ग कलुष हीन एवं अनार्य व असुर वर्ग समस्त कलुष से पूर्ण न हो; प्रत्येक पात्र मानव सुलभ सबलताओं एवं दुर्बलताओं से भूषित हो ताकि वह दर्शकों की समवेदना को आकर्षित कर सके, उसकी कुतूहल की वृत्ति को जागृत रख सके; आदर्श पात्रों के विजयी होते हुए भी पतित पात्रों की पराजय प्रारम्भ से ही सुनिश्चित न हो। भक्ति एवं विश्वास के स्थान पर युक्ति एवं प्रत्येक मानव के प्रति सहानुभूति इन नाटकों में व्यक्त होने लगी। इन दोनों नाटकों के कथानक पौराणिक होते हुए भी, नायक धीरोदात्त होते हुए भी एवं वीर रस का समन्वित प्रभाव सफल होते हुए भी इनमें आद्यंत ऐसी प्राणधारा का संचार हुआ है कि मूलभूत चेतना की दृष्टि से निःसंदेह कहा जा सकता है कि ये दोनों नाटक नवीन युग के नवीन विचारों के पोषक हैं। मानव अधिकारों की रक्षा, स्वाधीनता की उत्कृष्ट आकांक्षा, धर्म की नींव, सत्य के प्रति प्रबल आग्रह से इनका निर्माण हुआ है। इनमें भारतीय नाट्य शैली से तत्व ग्रहण किये गये हैं अथवा पाश्चात्य नाट्य शैली से यह महत्वपूर्ण अधिक नहीं है जितनी कि महत्वपूर्ण है **उनके युगव्यापी प्रगतिशील तत्वों की प्रेरणा।** 'जनमेजय का नागयज्ञ' नाटक में तीन अंक हैं उसके पहले अंक के पहले दृश्य में ही यादवी सरमा और नागमाता मनसा के वार्तालाप से आर्य जाति द्वारा नाग जाति पर किये गये अत्याचारों की तीव्र आलोचना होती है। मनसा अपने मन्त्रवल द्वारा सरमा को श्रीकृष्ण की प्रेरणा से अर्जुन द्वारा खांडववन दाह का भीषण दृश्य दिखाती है। यह दृश्य टेकनिक की दृष्टि से तो प्रभावशाली है ही, साथ ही कुरुक्षेत्र की सुन्दर भूमि से विताड़ित नागों की तीव्र अन्तर्ज्वाला का यह उद्गम है। नाग जाति को असभ्य कहने वाली आर्य जाति के भीषण अत्याचार को देख हृदय क्षुब्ध हो उठता है, किन्तु श्रीकृष्ण की गम्भीर वाणी देव माहात्म्य का नहीं, मानवता की स्थापना करती है— "अखिल विश्व एक सम्पूर्ण सत्य है। असत्य का भ्रम दूर करना होगा, मानवता की घोषणा करनी होगी, सबको अपनी समता में ले जाना होगा।"[२] गान्धार देश में आकर आश्रय लेने वाली नाग जाति और सरस्वती तट की ज्ञान-गरिमा से पुष्ट समृद्धिशाली विजयी आर्य जाति का संघर्ष अनेक काल तक चलता रहा। दोनों जातियों का मेल दिखाना ही लेखक का

---

१. देवासुर (पंचांक वैदिक नाटक)—लेखक मन्मथ राय (तृतीय संस्करण) —लेखकेर कथा, प्रथम पृष्ठ

२. जनमेजय का नागयज्ञ—१।१

लक्ष्य है। स्थल स्थल पर वह यह बताना चाहते हैं कि मानव समाज के एक अंश को वन्य बर्बर कह कर हम उपेक्षा करते हैं किंतु उनके हृदय के संवेदात्मक अंश से हम परिचित नहीं हो पाते। वह उतना हीन नहीं जितना कि पुराण व महाभारत में चित्रित किया गया है। संघर्ष एवं घात-प्रतिघात का चित्रण ही नाटककार का लक्ष्य रहता है, वह पक्षपात नहीं कर सकता। जितना ही वह नायक के विपक्षी को शक्तिशाली सिद्ध कर सकेगा, उतना ही वह सफल होगा। अतः इस नाटक में भी हम देखते हैं कि किस प्रकार संघर्ष प्रबल होता गया।

प्रथम अंक में ही बताया जाता है किस प्रकार यादवी सरमा की न्याय-भिक्षा की अवहेलना आर्य नृपति जनमेजय द्वारा की जाती है, क्यों सरमा ने नागकुल के वासुकि को पतित्व रूप में वरण किया है। पौरवों के पुरोहित काश्यप की कुटिलता, नागवधू होती हुई भी मणि कुँडल ले जाते हुए स्नातक उतंक की सरमा द्वारा रक्षा तथा कानन में भ्रमवश जनमेजय द्वारा ब्रह्म-हत्या आदि ने आर्यों के प्रति हमारी अन्ध श्रद्धा को उतना ऊंचा नहीं उठाया, जितना कि पौराणिक नाटकों में होना चाहिए। आहत ऋषि जनमेजय की भर्त्सना करते हुए कहते हैं—'तुम लोग कोमल मृगों पर इतने तीखे बाण चलाते हो। ....स्मरण रखना, मनुष्य प्रवृत्ति का अनुचर और नियति का दास है।'[1]

'देवासुर' नाटक में पांच अंक हैं। प्रथम अंक का क्रिया स्थल देवजयी असुर-सम्राट वृत्रासुर का पाषाण दुर्ग है। देवकन्या सूर्या बन्दिनी है। उसका अन्तःकरण असुरों के प्रति घृणा से परिपूर्ण है। इसी घृणा से उपेक्षित एवं जर्जरित वृत्रासुर अपने अनुज, सूर्या के प्रेमी बलासुर से कहते हैं....'ओरा आमादेर घृणा करे। —ओदेर चामड़ा देख-छिसने दूधेर मतो सादा। ओरा आमादेर घृणा करे। ओरा बले ओरा सभ्य, आमरा असभ्य। ओरा आर्य, आमरा अनार्य। ओरा देवता, आमरा दस्यु। ओरा मिशबे ना, ओरा आमादेर सगे मिशबे ना। ओरा बले आमरा सृष्टिर अभिशाप। आमरा आमादेर एइ कालो चेहाराय एइ सुन्दर पृथिवी के असुन्दर करेछि। ताइ ओरा आमादेर ध्वंस करते चाय, बाड़ी घर पूड़िये देय, शिशुके हत्या करे, एइ ओदेर युद्ध, एइ युद्धेर भय देखिये शेषे ओरा आमादेर बले, यदि बांचते चाओ, आमादेर क्रीतदास हओ, आमादेर सेवा करो,–जा बर्बर, कर ओदेर सेवा–दासत्व कर—प्रेम कर—जा"[2] मानव का मानव के प्रति घृणा के दुस्सह दुःख भार से पीड़ित यह असुर सम्राट इस प्रथम झांकी में हमारी समस्त समवेदनाओं का अधिकारी बन जाता है। यद्यपि तत्कालीन भारत की परिस्थिति की अपेक्षा यह चमड़े के गोरे-काले वर्ण का पार्थक्य लेखक के रचना काल के गौरे ब्रिटिश एवं पराधीन काले भारतवासियों की ओर स्पष्ट इंगित करता है, जिसके कारण कुछ काल तक सरकार ने इसका अभिनय निषिद्ध कर दिया था। फिर भी यह मानवता की करुण कहानी है, मानव सभ्यता के विकास का इतिहास है। किस तरह सुसंस्कृत अनार्यों को बर्बर कह कर, उन्हें जंगलों की ओर विताड़ित

---

१. जनमेजय का नागयज्ञ—१।७

२. देवासुर—प्रथम अंक—पृष्ठ—१३३-१३४

करके आर्यों की जय-ध्वजा उत्तोलित की गई एवं अनार्यों को असभ्य बना दिया गया, यह उसी पक्ष की ओर इंगित करता है। मानवता को उसकी ग्लानि से मुक्त कराने का प्रयास है।

'जनमेजय का नागयज्ञ' के दूसरे अंक में तक्षक कन्या मणिमाला कितनी मधुर, नम्र तथा कोमल रूप में चित्रित को गई, मनसा पुत्र आस्तीक का व्यवहार भी शिष्ट, संयत तथा तेजपूर्ण है। च्यवन के आश्रम में ऋषि से मिलने के लिये आये हुए जनमेजय नागकन्या को देखकर मुग्ध हो उसे देवबाला समझते हैं, किन्तु उसका यथार्थ परिचय तथा उसके सरल व्यवहार को देखकर विस्मित हो जाते हैं। राजधानी में लौटकर जनमेजय ब्रह्म हत्या के प्रायश्चित स्वरूप अश्वमेघ-यज्ञ करना चाहते हैं तथा नाग दमन में भी प्रवृत्त होते हैं। तक्षशिला की एक घाटी में चंड भार्गव से एक बन्दी नाग कहता है—'आर्य सेनापति ! दस्यु कौन है, हम या तुम ? जो शान्तिप्रिय जनता पर अपना विक्रम दिखाने का अभिमान करता है, जो स्वाहा के मन्त्र पढ़कर गांव के गांव जला देना अपना धर्म समझता है, जो एक की प्रतिहिंसा का प्रतिशोध अनेक से लेना चाहता है, वह दुरात्मा है या हम ?'[1] इस नाटक का लक्ष्य राजनैतिक नहीं है। महाभारत के पश्चात् के इतिहास की पृष्ठभूमि पर भारतीय अध्यात्मबोध की गम्भीर गूंज है। तृतीय अंक के प्रारम्भ में वेदव्यास जनमेजय को सृष्टि का रहस्य समझाते हैं—'परमात्मशक्ति सदा उत्थान का पतन और पतन का उत्थान किया करती है। इसी का नाम है दम्भ का दमन।'[2] साम्राज्ञी वपुष्टमा कहती हैं– 'एक व्यक्ति की हत्या, जो केवल अनजान में हो गई है, विधि-विहित असंख्य हत्याओं से छुड़ाई जायगी। अखंडनीय कर्म लिपि। तेरा क्या उद्देश्य है, कुछ समझ में नही आता।'[3] महाप्रतापशाली होते हुए भी जनमेजय नियति का दास है। दैव उसके प्रतिकूल है। काश्यप से यज्ञ की पुरोहिती छीनकर शौनक को जनमेजय ने आचार्य बनाया। काश्यप की प्रतिहिंसा की ज्वाला धधक उठती है और वह वपुष्टमा का नाग द्वारा हरण कराने के लिये षड़यंत्र करता है। यह तत्कालीन ब्राह्मण वर्ग का एक व्यंग्यपूर्ण चित्र है। वपुष्टमा का हरण होता है एवं सरमा उसके सतीत्व की रक्षा करती है। जनमेजय द्वारा अपमानित होने पर भी नागवधू सरमा अपना कर्तव्य निभाती है। हृदय की उदारता की दृष्टि में आर्य वधू वपुष्टमा को नागवधू सरमा पराजित करती है।

'देवासुर' के द्वितीय अंक में दधीचि ऋषि के तपोवन में नव विवाहित अश्विनीकुमार द्वय एवं सूर्या को आर्शीवाद करने सूर्य, इन्द्र, वरुण, वायु आदि देवगण एवं उषा सहित देवी गण आते हैं। दधीचि उपदेश देते है। इसी समय देवदूती आकर खबर देती है कि दस्युगण सहित बलासुर अश्वी देवों का गोधन हरण कर रहा है। असुरों का

---

१. जनमेजय का नाग यज्ञ—२/७
२. जनमेजय का नागयज्ञ—३/१
३. वही —३/२

अत्याचार बढ़ता जाता है । इसी कारण वृत्रासुर द्वारा निहत असुर-सम्राट पुलोमन की कन्या पोलमी दधीचि के तपोवन में आश्रिता है । दधीचि ने देवकन्या के योग्य शिक्षा उसे दी है । वह यज्ञ के लिये लकड़ी संग्रह करती है । इस कारण उसका नवीन नाम है, शची । रूप, गुण समन्विता शची देवराज इन्द्र की पत्नी बनने योग्य है । तृष्णातुर वृत्रासुर शची का प्रेमी है । उसके जातीय प्रेम को जागृत कर वे उसे असुर साम्राज्ञी बनाना चाहते हैं । किन्तु दधीचि शची से कहते हैं—'तुमि असुर नन्दिनीं, किंतु जखन आमि तोमाय पालन करेछि,—तुमि देवतारओ देवी । तोमाय जे शिक्षा दियेछि, —स्वयं सरस्वती ता हिंसा करेन । —तोमार योग्य वर एकमात्र देवराज । आज आमि तारइ हाते तोमाय समर्पण कोरे निश्चित हवो ।'[1] दधीचि ऋषि उसी समय शची का हस्त इन्द्र के हस्त युक्त करते हैं । वैदिक काल की यह घटना प्रमाणित करती है, वेद की शिक्षा प्राप्त, यज्ञ में विश्वासी, सत्यगामी के प्रति आर्यों की घृणा नही थी, वे दूसरी जातियों को भी अपने में मिला लेते थे । केवल वे दुर्घर्ष असुर जिन्होंने आर्य संस्कृति की अवहेलना करके उसे मिटाना चाहा वे ही घृणित आर्यशत्रु थे ।

जिस तरह जनमेजय और मणिमाला का विवाह आर्य तथा नाग जाति को मिलन सूत्र में बांधता है, उसी तरह असुर सम्राट पुलोमन की भी इच्छा थी कि इन्द्र और पोलमी का विवाह देव तथा असुरों को मिलन सूत्र में बांध दे । दोनों जातियों का मिलन सम्भव था, किन्तु द्वेष तथा प्रतिहिंसा की भावना वृत्रासुर में अत्याधिक थी । वृत्रासुर देवभूमि में असुरों का देवों के समान अधिकार मानते हैं एवं उस अधिकार को न पाकर हिंसा का पथ ग्रहण करते हैं । दधीचि कहते हैं—'नाओ कि प्रतिशोध नेबे आमार ओपोर नाओ—जे शास्ति तोमार अभिप्रेत—आघात—हत्या जा तोमार अभिलाष—दाओ, अमाय दाओ—पुँजीकृत होक तोमार अन्याय, अत्याचार अनियम । क्षेपे उठूक देवता मंडल । जे देवता एखोनो घूमिये आछे, जेगे उठबे से ।'[2] इन नाटकों में आर्य एवं अनार्य, देव एवं असुर सभी मानव हैं, केवल एक जाति सत् का पक्ष ग्रहण करती है, दूसरी असत् का । इसीलिए आधुनिक से आधुनिक नाटककार को भी अधिकार नहीं है कि वह पक्षपात करे । कार्य ही कारण बनकर परिणति की ओर ले जा रहे हैं । दधीचि जल में डूबकर आत्म विसर्जन करते हैं । किन्तु उसी के कारण वृत्रासुर शर्त के अनुसार समस्त देव मुक्ति पा जाते हैं । तृतीय अंक के अनुसार असुरों का अत्याचार और बढ़ जाता है । उषा देवताओं को जागृत करना चाहती है । वृत्रासुर के मांगने पर भी शची दधीचि का मृत देह नहीं देती । इन्द्र आदि देवगण काराजीवन वरण कर लेते हैं, किन्तु दधीचि की अस्थि में अमोघ शक्ति है । इसका उन्हें विश्वास हो जाता है । इन्द्रदेव कहते हैं—

'त्यागीश्रेष्ठेर ओइ अस्थिइ वृत्रासुरेर मृत्युबाण ।...त्यागीर सेइ त्याग अस्त्रे आभार कारागारचूर्ण हवे, कारावन्धन छिन्न हवे, आमार स्वर्ग

१. 'देवासुर'—द्वितीय अंक—पृष्ठ १५४
२. 'देवासुर'—द्वितीय अंक—पृष्ठ१५६

आमारइ हबे ।'[१] जिस ऋषि ने जाति की रक्षा के लिये सहर्ष मृत्यु वरण कर लिया। उसकी प्रेरणा से जो शक्ति जागृत होगी वह अवश्य ही वज्र जैसी प्रचंड होगी। जिस तरह जनमेजय का नागयज्ञ में अन्त में अन्तिम बाधा स्वरूप वपुष्टमा का हरण होता है। उसी तरह देवासुर में असुरों की शक्ति के ह्रास का अन्तिम निदर्शन है, इन्द्राणी का हरण। अत्याचारी का काल निकट ही समझना चाहिए, जब नारी का अपमान होता है। सीता-हरण एवं द्रोपदी-चीर हरण इसके ज्वलन्त उदाहरण है। इन नाटकों की ये दो नायिकाएँ वपुष्टमा एवं शची है, लक्ष्मी स्वरूपा जानकी नहीं व कृष्ण सखी पांचाली नहीं। फिर भी इन दोनों नारियों का हरण ही इन नाटकों की कथावस्तु की चरम सीमा है। जहां विपक्षी अपनी समस्त शक्ति द्वारा सत्य का अवरोध करता है। देवासुर के चतुर्थ अंक में देवशिल्पी त्वष्टा अपनी शिल्पशाला में दधीचि के वाम बाहु की अस्थि द्वारा वज्र नामक अस्त्र प्रस्तुत कर रहे हैं अर्थात् असुरों के ध्वंस का आयोजन चल रहा है। वृत्रासुर इन्द्र के प्राण की रक्षा का प्रलोभन दिखाकर शची को अपने भवन में ले जाता है। जय एवं पराजय दोनों की सम्भावना बनी रहती हैं। जिस तरह सरमा द्वारा वपुष्टमा की रक्षा नायक जनमेजय की विजय निश्चित कर देती है, उसी तरह देवासुर के चतुर्थ अंक के अन्त में इन्द्र का श्रृंखल मोचन एवं वलासुर द्वारा प्राणों की बाजी लगाकर अपहृता सूर्या की रक्षा नायक इन्द्र की विजय निश्चित कर देती है, किन्तु इसी स्थल पर मरणोन्मुख बलासुर के प्रति सूर्या की उक्ति देवताओं की जय-घोषणा नहीं, मानवता की जय घोषणा करती है—'तोमाय घृणा ? तुमि आमार पितार मतो रक्षा केरेछो—भाईयेर मतो स्नेह कोरेछो—असहाया नारी के देवतार मतो रक्षा कोरते प्राण दियेछो। असुर नओ—तुमि असुर नओ—तुमि देवता—देवताओ देवता।'[२]

जनमेजय का नागयज्ञ के तीसरे अंक में तक्षक और मणिमाला बन्दी होते है। नायक की विजय व फल प्राप्ति निकट ही है। फिर भी दोनों जातियों के संघर्ष के बीच महर्षि वेदव्यास की कल्याणमयी वाणी गूँज उठती है—'वत्स, सत्य महान धर्म हैं। इतर धर्म क्षुद्र है, औ उसी के हैं।'[३] देवासुर में दधीचि के त्याग से देव शक्तिशाली बन जाते हैं और इस नाटक में वेदव्यास की उदार भावना दोनों जातियों के विरोध को मिटाना चाहती है। जनमेजय पिता परीक्षित की मृत्यु का बदला लेने नागयज्ञ कर रहे हैं। चारों ओर क्रन्दन और हाहाकार मच जाता है। अनुचर तक्षक और वासुकि को जलाना चाहते हैं। इतने ही में वेद व्यास के साथ सरमा, मनसा, माणवक एवं आस्तीक प्रवेश करते हैं। पितृ हत्या की क्षतिपूर्ति स्वरूप आस्तीक जनमेजय से कहते हैं—

---

१. देवासुर—तृतीय अंक—पृष्ठ १७०

२. देवासुर—चतुर्थ अंक—पृष्ठ १८६

३. जनमेजय का नागयज्ञ—३/६

'नहीं मुझे दो जातियों में शांति चाहिये। सम्राट, शांति की घोषणा करके बंदी नागराज को छोड़ दीजिए।'[1] व्यास के कहने पर जनमेजय पवित्र वपुष्टमा को पुन: ग्रहण करते हैं एवं मणिमाला के साथ जनमेजय का पाणि ग्रहण दोनों जातियों में मैत्री स्थापित कर देता है। जनमेजय नाग जाति को पराक्रम तथा मैत्री द्वारा जीत लेते हैं। अन्त में भारत की वहीं अध्यात्म-सिंचित-वाणी सुनाई देती है। व्यास कहते है—'देखा नियति का चक्र। यह ब्रह्मचक्र आप ही अपना कार्य करता रहता है।'[2] यथार्थ में प्रेम की विजय होती है, मानवता गर्व से मस्तक उठाती है।

देवासुर के पंचम अंक में बन्दिनी शची सहित वृत्रासुर विलास भवन में प्रवेश करते है। आकाश मेघ समाच्छन्न है। वृत्रासुर विजय-स्वप्न से विभोर हो महुआ पान किये जा रहा है। असुर-सम्राट की आंखें तन्द्राच्छन्न है। बीच-बीच में वह चौंक उठता हैं। जागृत होकर इन्द्राणी को सोमरस पान कराता है। वृत्रासुर के अन्दर, बाहर प्रबल आंधी चलती है। देवताओं के विरुद्ध उसका हृदय हुंकार उठता है—'इन्द्र—हां सेई इन्द्र—जिनि कृष्णासुर के वध कोरे, जाते तार आर पुत्र ना हय, एइ जन्य तार गर्भवती भार्यादिगकेओ हत्या कोरेछिलेन।'[3] देवताओं के वीरत्व का यह कलंक है। वृत्रासुर मरण के अति निकट है एवं उसके हृदय की कोमल-करुण झांकी दर्शकों के हृदय को अभिभूत कर देती है। । ⋯'एतोदिन के तोमाय रक्षा कोरेछे? के तोमार स्वामी के रक्षा कोरेछे? (गलार स्वर कांपिते लागिलो) से आमार—से आमार प्रेम —तोमार प्रति आमार अक्षय अनन्त प्रेम।'[4] शची के अनुरोध करने पर भी वृत्रासुर देवभूमि लौटाने के लिए तैयार नहीं है। दुबरि नियति हंसती है। वृत्रासुर देखता है कि दधीचि के कंकाल के वाम हस्त की अस्थि नहीं है। इन्द्रदेव प्रवेश करते हुए कहते हैं—'ना बोलले शोने ना—एर नाम वज्र। अत्याचारी 'ना' बोलले 'वज्र' शोने ना—त्यागी-श्रेष्ठेर त्याग साधनाय लब्ध एइ अस्त्र तोमार वक्ष विदीर्ण कोरे जगते मेघ-गर्जने घोषणा कोरुक अत्याचारी। सावधान।'[5] नूतन चेतना से स्पन्दित यह वाणी न्याय एवं सत्य की विजय-घोषणा करती है। यहां दृष्टि भंगीमा बदलती हुई दिखाई दे रही है। किंतु इनमें भी भारतीय परम्परा का ही आदर्श झांक रहा है, जिसके अनुसार अधर्म का नाश एवं धर्म की विजय होती है। यद्यपि संघर्ष एवं घातप्रतिघातों का नाटकीय चित्रण हुआ है एवं धर्म की सुनिश्चित विजय नहीं, युक्ति संगत विजय का चित्र खींचा गया है। अन्त में इन्द्र वज्र निक्षेप करके वृत्रासुर का वध करते हैं। बिजली चमक उठती है। आकाश मेघमुक्त होता है। 'जनमेजय का नागयज्ञ' नाटक में

---

१. जनमेजय का नागयज्ञ—३/८
२. वही —३/८
३. देवासुर—पंचम अंक—पृष्ठ १९६
४. देवासुर — पंचम अंक — पृष्ठ १९६
५. वही — पंचम अंक — पृष्ठ १९६

आर्य तथा नाग जाति में मैत्री स्थापित हो जाती है । किंतु 'देवासुर' में देवद्रोही प्रति-नायक वृत्रासुर का वध करना आवश्यक हो उठता है । धर्म की ही विजय होती है । सब देवगण मुक्त होते हैं । सृष्टि प्रफुल्लित होती है । फिर भी अन्त में यही अनुभव होता है कि जिस जाति प्रेम ने दधीचि को त्याग के लिये प्रेरित किया, जिस नारी के प्रति प्रेम ने देवराज को वज्र प्रयोग के लिये प्रेरित किया, उसी जाति-प्रेम तथा प्रणय ने असुर सम्राट को अत्याचार करने के लिए बाध्य किया । किन्तु भारतीय आदर्श के अनुसार विजय सत्य की ही होती है ।

दोनों नाटकों की कथावस्तु प्रख्यात है, साथ ही दोनों में नाटककारों ने चिरंतन मानवता का सन्देश भर दिया है। इसमें भक्ति का आवेश नहीं, अत्याचार को कुचल देने की तीव्र आकांक्षा है, घृणा को प्रेम से वश करने की चेष्टा है । दोनों नाटकों में आधिकारिक कथावस्तु को अग्रसर करने में प्रासंगिक कथावस्तु साथ देती है । जनमेजय, वपुष्टमा तथा मणिमाला की आधिकारिक वस्तु से सरमा तथा वासुकि की प्रासंगिक कथा अभिन्न भाव से संयुक्त है । उसी तरह इन्द्र, वृत्रासुर तथा शची की आधिकारिक कथावस्तु से सूर्या तथा वलासुर की प्रासंगिक कथा की धारा मिल गई है । यहां संस्कृत नाट्य शैली का ही अनुसरण किया गया है ।

जनमेजय एवं इन्द्र धीरोदात्त नायक हैं । वे उच्च कुल के हैं एवं प्रतापी होने के साथ ही साथ धर्म के पक्ष में हैं । किन्तु किसी दैवी शक्ति के बल से उन्हें फल की प्राप्ति नहीं होती । कठिन संघर्ष के बाद ही असत् पर सत् की विजय होती है । नागराज तक्षक एवं असुर राज वृत्रासुर भी प्रतापी हैं, स्वजाति प्रेम की महान् भावना से अनु-प्राणित हैं परन्तु उन्होंने अन्याय का पक्ष ग्रहण किया । हीन षड़यंत्र, परस्त्री हरण तथा निरपराधों पर अत्याचार करके कभी कोई व्यक्ति सफल नहीं हो सकता । अन्याय, व्यभि-चार तथा अत्याचार के द्वारा मानव की शक्ति का ह्रास होने लगता है, उच्छृंखलता के द्वारा मानव तथा मानव-समाज का संतुलित संबंध क्षीण होने लगता है एवं सत् की अवहेलना करने से देव-शत्रु बनना पड़ता है । इन नाटकों में पौराणिक धारणाओं की पुनरावृत्ति नहीं हुई है वरन् नवीन दृष्टिकोण से प्राचीन कथाओं पर आलोकपात किया गया है । **मणिमाला** तथा **शची** अपनी प्रेममयी प्रवृत्ति के द्वारा दो महान् संस्कृतियों के मिलन के लिए आकुल हैं । ये दो कुसुम-कोमल चरित्र भी किसी दैवी शक्ति से पराभूत नहीं, किन्तु महान् नारियां हैं जो विश्व में मानवता की जयध्वजा लहराती हुई देखना चाहती हैं ।

उन्नीसवीं सदी के पौराणिक नाटकों में भक्तिरस का ही प्राबल्य होता था । किन्तु बीसवीं सदी के पौराणिक कथा प्रधान नाटकों में द्वन्द्व, सन्देह, संघर्ष आदि तीव्र रूप में दिखाई देने लगे । इन दोनों नाटकों में भी पाश्चात्य नाटक शैली के घात-प्रतिघात पूर्ण चित्रण के साथ रस का पूर्ण परिपाक सम्भव हुआ है । परन्तु भक्ति रस के स्थान पर वीर रस है । वीर रस के साथ श्रृंगार रस का अभूतपूर्व सम्मिलन हुआ है । जनमेजय का नागदमन, अश्वमेध यज्ञ के लिए अश्व प्रेरित करना, नाग यज्ञ इत्यादि तथा देवासुर में दधीचि मुनि की जल समाधि, इन्द्र का वज्र-निक्षेप इत्यादि घटनाओं के द्वारा वीर

रस का पूर्ण परिपाक हुआ है। जनमेजय का नागयज्ञ में जो अन्तिम गीत है—"जय हो उसकी, जिसने अपना विश्व रूप विस्तार किया" यह वातावरण शान्त रस से परिव्याप्त कर देता है, फिर भी **वीरता, मानव का जय गान, आर्य संस्कृति की अपराजेयता** ही इसके मूल स्वर हैं। इस नाटक के गीत भी ओजपूर्ण हैं—

"यह अरुण पताका नभ तक है फहराती।
जो विजय गीत मिल मलय पवन से गाती।।"[1]

लक्ष्मीनारायण मिश्र रचित "नारद की वीणा" (सन् १९४६) नाटक में आश्रमों में पली अनार्य संस्कृति का चित्रण हुआ है। ब्रह्मज्ञानी, संयमी तथा कलाओं में पारदर्शी होते हुए भी प्रहलाद की अनार्य जाति पराजित होती है एवं शान्त तथा स्वस्थ्य मन लेकर युद्ध करने वाली महर्षि नर की आर्य जाति विजयी होती है। किन्तु **अन्त में विजयी आर्य जाति पराजित अनार्यों की संस्कृति के अनेक महत्वपूर्ण तत्वों को सहर्ष अपना लेती है तथा आर्य और अनार्य संस्कृति के मिलन से फिर नवीन भारतीय संस्कृति विकसित होती है।** इस नाटक में प्रहलाद, हिरण्यकशिपु, नर-नारायण आदि के सम्बन्ध में हमारी जो पौराणिक धारणा है, उसका दिग्दर्शन नवीन आलोक में कराया गया है। मन्मथ राय के 'देवासुर' नाटक में भी इन्द्र, वृत्रासुर, सूर्या, शची, दधीचि आदि नवीन आलोक में नवीन रूप ग्रहण करते हैं तथा वृत्र के संहार की बौद्धिक युक्ति हमें प्रभावित करती है।

अत: पौराणिक कथाओं का प्रयोग बीसवीं सदी के प्रारम्भ में भक्ति के प्रतिपादन के लिए हुआ किन्तु बीसवीं सदी के पूर्वार्द्ध के अन्तिम चरण में इनका प्रयोग भारतीय संस्कृति पर प्रकाश डालने के लिए हुआ। **एक ओर अध्यात्म, तप और त्याग** तथा **दूसरी ओर संघर्ष और मिलन**, ये ही भारतीय संस्कृति के आभ्यन्तरीन तथा बाह्य तत्व हैं।

प्रत्येक पौराणिक कथा इन तत्वों की रसमयी व्याख्या है। हिन्दी तथा बंगला नाट्य-साहित्य ने इन कथाओं का समुचित प्रयोग किया है।

पौराणिक चरित्र-प्रधान नाटक

श्रीराम और **श्रीकृष्ण** को पुराण काल से हिन्दू जनता ईश्वर का अवतार समझती आई है। आधुनिक वैज्ञानिक युग में उनके चरित्र पर नये दृष्टिकोणों से प्रकाश डाला जा रहा है। 'कर्त्तव्य' नाटक में गोविन्ददासजी ने पात्रों का जैसा चित्रण किया है उसके सम्बन्ध में उन्होंने लिखा है—"इतने पर भी मैंने यह नाटक भगवान् रामचन्द्र और भगवान कृष्णचन्द्र को मनुष्य मानकर ही लिखा है। यदि इन दोनों को मनुष्य मानकर भी कुछ लिखा जावे तो भी मैं कह सकता हूं कि पूर्व अथवा पश्चिम, किसी भी दिशा के, किसी भी देश में, किसी भी साहित्यकार को ऐसे नायक नहीं मिले हैं,

---

१. जनमेजय का नागयज्ञ—३।३

जैसे भारत के साहित्यकारों को राम और कृष्ण के रूप में मिले हैं।'[१] भारतीय नाट्य-साहित्य पर वैष्णव धर्म का अत्यन्त प्रभाव पड़ा।

योगेशचन्द्र चौधरी रचित **'सीता'** में कथा श्रीराम के सिंहासनारूढ़ होने के बाद से आरम्भ होती है। एक ओर दुर्मुख वार्ता लाया है। दर्शक जानते हैं कि यह जानकी के अपवाद से सम्बन्धित वार्ता है किन्तु श्रीराम नहीं जानते। **चमत्कारपूर्ण नाटकीय-विडंबना** से नाटक का प्रारम्भ होता है। दूसरी ओर अष्टावक्र मुनि प्रवेश करते हैं एवं दुर्मुख की वार्ता सुने बिना ही श्रीराम प्रतिज्ञा करते हैं कि प्रजानुरंजन के लिए वे सर्व काम्य, सर्व स्वर्ग यहां तक कि सहस्त्र जीवनाधिक जानकी को भी त्याग सकते हैं।[२] इसके बाद ही महान् कर्त्तव्य को निभाने के लिए अन्तर्द्वन्द्व शुरू हो जाता है। **'कर्त्तव्य'** नाटक में लेखक श्रीराम की सम्पूर्ण जीवन कथा को एक सूत्र में गूथना चाहता है। अतएव इसमें कथा श्रीराम के अभिषेक के पूर्व से प्रारम्भ होती है। सूर्योदय होते ही श्रीराम जानकी से कहते हैं—"देखना है, प्रिये, इस भारी उत्तरदायित्व को संभालने और अपने अपने कर्त्तव्य को पूर्ण करने में मैं कहां तक कृतकृत्य होता हूं। दायित्व ग्रहण करने के लिए एक पहर ही तो शेष है, मैथिली।" इस पर सीताजी कहती हैं—"हां, नाथ, केवल एक पहर। सफलता के सम्बन्ध में प्रश्न ही निरर्थक है, आर्य-पुत्र। यदि संसार में आपको ही अपने कर्त्तव्य में सफलता न मिली तो अन्य को मिलना तो असम्भव है।"[३] स्पष्ट है कि दोनों ही लेखक एक ऐसे नर का चरित्र आंकने बैठे हैं जिसके महान् त्याग ने उसे ईश्वरत्व से भूषित कर दिया। **ईश्वरत्व मानवत्व की कसौटी पर परखा गया है।**

यद्यपि **भवभूति के उत्तररामचरित की सीता** के चरित्र का प्रभाव द्विजेन्द्रलाल की सीता एवं योगेशचन्द्र चौधरी की सीता के चरित्र पर पड़ा किन्तु श्रीराम के चरित्र का नवीन, मानवीय ढंग से चित्रण हुआ है। **योगेशचन्द्र के 'सीता' एवं गोविन्ददास के 'कर्त्तव्य' में श्रीराम ईश्वरीय शक्ति सम्पन्न विराट पुरुष नहीं हैं।** उनकी उच्चता, कठोरता एवं कोमलता सभी मानव-सुलभ है। सीता में **राम का अन्तर्द्वन्द्व** हमें अभिभूत कर देता है। राम निश्चय कर लेते हैं कि सीता को निर्वासित करना ही उचित है किन्तु दैव का यह विधान केवल सीता के जीवन में ही नहीं राम के जीवन में भी वज्राघात के समान है। श्रीराम कहते हैं—

---

१. कर्त्तव्य—लें. सेठ गोविन्ददास—प्रथम संस्करण—वि. सं. १९९२ — निवेदन पृष्ठ (ख)

२. सीता—लेखक योगेशचन्द्र चौधरी—प्रथम अंक—पृष्ठ—४ (एकादश संस्करण, १९५९)

३. कर्त्तव्य (पूर्वार्द्ध)—प्रथअ अंक—पृष्ठ—४

"हृत्‌पिंड छेदन करिते हबे,—
जानकीरे दिते हबे बने विसर्जन ।
सांग होये गेछे मोर जीवनेर पूजा—
देवीर प्रतिमा एबे बने दिबो डालि ।"[1]

यहां द्वन्द्व की अपेक्षा वेदना का चरमोत्कर्ष है। 'कर्त्तव्य' द्वितीय अंक में पंचवटी में सीता हरण के उपरान्त सूनी कुटिया देख राम का विलाप भी उन्हें प्रेममय पति के रूप को दर्शित करता है—"सूर्योदय होते ही पद्म का दुःख दूर हो जायगा, क्योंकि उसे रवि की किरण मिल जायगी, कोक का क्लेश चला जायगा, क्योंकि उसे कोकी मिल जायगी। देखना है, मेरे कष्ट का क्या होता है।"[2] योगेशचंद्र चौधरी रचित 'सीता' नाटक में वाल्मीकि राम सीता के प्रेम को बहुत उच्च धरातल पर उठा देते हैं—

वाल्मीकिर रामसीता चिर-अविच्छेद,
अन्तरे अन्तरे चिरन्तन
मिलनेर प्रवाह वहिछे ।[3]

मानवीय प्रेम ही स्वर्गीय होकर अमर बन जाता है । प्रेम के इस **दिव्य** स्वरूप की झांकी अन्य किसी साहित्य में नहीं है ।

'कर्त्तव्य' नाटक के पांचवे अंक के दूसरे दृश्य में वाल्मीकि आश्रम में हम सीताजी को देख पाते हैं। सीता बारह वर्ष पूर्व की घटना एवं राम के प्रेम की याद वाल्मीकि की पालिता कन्या वासन्ती को कह सुनाती हैं। इतने ही में कुश लव को साथ लेकर अयोध्या से वाल्मीकि लौट आते हैं एवं यह सुखमयी वार्ता देते हैं कि अश्वमेघ यज्ञ में अयोध्या की प्रजा राजा राम के साथ सीता को भी देखना चाहती है। राम के अश्वमेघ यज्ञ के पूर्व जो अश्व छोड़ा गया उसे आश्रम पर लव ने रोका। अयोध्या सैनिकों से उसकी लड़ाई हुई। उस वीर बालक की झांकी 'कर्त्तव्य' में नही है, उत्तर रामचरित में है। 'सीता' के तृतीय अंक में बालक लव रणजयी होता है एवं अयोध्या जाने के लिए प्रस्तुत होता है। वाल्मीकि रचित रामायण पढ़ने के बाद जो प्रश्न बारम्बार उसके मन में आता है, वही प्रश्न वह अयोध्या जाकर राम से पूछना चाहता है—

"नरपति। नारी निर्यातिन करि
वीर बोली दाओ परिचय ?"[४]

---

१. सीता—प्रथम अंक—पृष्ठ—१५
२. कर्त्तव्य—द्वितीय अंक—पृष्ठ ३०-३१.
३. सीता—तृतीय अंक—पृष्ठ -६७

इसके बाद अयोध्या के राजप्रासाद में क्षुब्धचित्त जिस राम की झांकी हम पाते हैं वह विरही मानव है, ईश्वर राम नहीं—

"गुरुदेव ! बोलिते की चाओ,
राजा होये मानवत्व एकेवारे
दिछि बिसर्जन ? —सिंहासने वसि
उत्पाटन करियाछि मानव हृदय ?"

यज्ञ करने के लिए सहधर्मिनी सीता की आवश्यकता है। श्रीराम सीता की स्वर्णमूर्ति निर्माण करने के लिए ध्यानयोग में बैठे हैं। उनकी दशा एक विक्षिप्त विरही जैसी हो गई है। माता कौशल्या को देख वे कहते हैं—

'जननी !
देवीरे पेयेछि आज हृदय माझारे—
कृपा कोरि दियेछेन देखा।"[१]

उस कक्ष में अचानक लव प्रवेश करते हैं एवं राम को ललकारते हैं। पिता पुत्र के संवाद पाषाण को भी द्रवीभूत कर देता है।

लव कहते हैं—

"आमि लव शत्रु हे राघव,—
आसि नाई शुनिबारे प्रिय सम्भाषण।
रण-रण मोरे देहो रघुपति।"

इस पर राम कहते हैं—

"शत्रु नहो तुमि—
श्यामकांति वनान्तेर नवीन
वसन्तशोभा, चिर अभ्यागत तुमि,
शुष्क आर्त्त ए हृदय-द्वारे।"[२]

मंदिर-द्वार खोलकर स्वर्ण-सीता देख लव 'जननी' कह कर चीख उठते हैं एव समझ जाते हैं कि रामायण की सीता ही उनकी जननी है। लव दूत प्रस्थान करते हैं एवं राम मूर्छित हो जाते हैं। चैतन्य लौटने पर श्रीराम विलाप करते हैं—

"हे ईश्वर,—
अन्तर्यामी देवता विश्वेर,
यथार्थ सत्येर पथ
दाओ देखाइया मोरे।—

१. सीता—तृतीय अंक—पृष्ठ–९१
२. सीता—तृतीय अंक—पृष्ठ–९८

सत्यइ सत्येर कंकाल आमि
करितेछि पूजा—
कोथा सत्य, कौन कल्पलोके ?"[१]

यह प्रसंग करुण भी है तथा मानवीय। बाहर से अविचल पाषाण प्रतीत होने वाले राम के हृदय में अशांत सागर का कल्लोल छिपा हुआ है। उनकी हृदय-नौका सत्य-तट को ढूंढ़ रही है। श्रीराम का पतित्व एवं पितृत्व उन्मथित हो उठा है।

'कर्त्तव्य' के पांचवें अंक में यज्ञ के अवसर पर वाल्मीके, कुश-लव सहित सीता आती हैं। रामचन्द्र प्रजा के सम्मुख अपनी शुद्धता का और एक बार प्रमाण देने के लिए सीता से अनुरोध करते हैं। पुनः इस प्रस्ताव को सुन सीता अत्यंत मर्माहत होती हैं और कहती हैं—"यदि मैंने जीवन में कभी भी मनसा, वाचा और कर्मणा किसी पर-पुरुष का चिन्तन तक न किया हो तो तू फट जा, मां, और अब तो मुझे अपनी गोद में ही स्थान दे दे।"[२] इसके बाद **भूकम्प** होता है और सीता के सम्मुख पृथ्वी फटती है और सीता उसमें समा जाती हैं। यहां नारी की तेजस्विनी, स्वाभिमानी झांकी दिखाने के अतिरिक्त **सीता के पाताल प्रवेश का लेखक वैज्ञानिक व्याख्या करते हैं।"** 'सीता' नाटक के चतुर्थ अंक में तमसा तीर से ही सीता को सुनाई देता है मानों धरणी उन्हें अपनी गोद में बुला रही है। वे अयोध्या आती हैं। सभासदों के सम्मुख राम नीरव ही रहते हैं। यद्यपि हृदय अत्यंत चंचल हो उठता है। गुरु वशिष्ठ सीता को अपनी पवित्रता के प्रमाण हेतु पुनः शपथ करने को कहते हैं। क्षुब्ध सीता सबको साक्षी करती हुई कहती हैं—

"सबार सम्मुखे आमि सत्य कहितेंछि,
स्वामी ध्यान, स्वामी-ज्ञान मम,
स्वामी छाड़ा अन्य कथा
भाविनी जीवने।"[३]

इसके बाद अन्तरिक्ष से आह्वान-संगीत सुनाई देता है, सहसा प्रलय बादल छा जाते हैं, भूमि विदीर्ण होती है और सीता रहस्य लोक में चली जाती हैं। कर्तव्य में राम केवल 'वैदेही, वैदेही' कहते रह जाते हैं। सीता में राम नियति से युद्ध करने मानवीय पराक्रम से उदीप्त हो उठते हैं—

'रे लक्ष्मण,
आन, आन मोर शर-शरासन,
सप्र सिंधु मथित कोरिया

---

१. सीता—तृतीय अंक—पृष्ठ–१०२
२. कर्त्तव्य—पांचवा अंक—पृष्ठ–८५

इसके बाद अयोध्या के राजप्रासाद में क्षुब्धचित्त जिस राम की झांकी हम पाते हैं वह विरही मानव है, ईश्वर राम नहीं—

"गुरुदेव ! बोलिते की चाओ,
राजा होये मानवत्व एकेवारे
दिछि बिसर्जन ?—सिंहासने वसि
उत्पाटन करियाछि मानव हृदय ?"

यज्ञ करने के लिए सहधर्मिनी सीता की आवश्यकता है। श्रीराम सीता की स्वर्णमूर्ति निर्माण करने के लिए ध्यानयोग में बैठे हैं। उनकी दशा एक विक्षिप्त विरही जैसी हो गई है। माता कौशल्या को देख वे कहते हैं—

'जननी !
देवीरे पेयेछि आज हृदय माझारे—
कृपा कोरि दियेछेन देखा।"[१]

उस कक्ष में अचानक लव प्रवेश करते हैं एवं राम को ललकारते हैं। पिता पुत्र के संवाद पाषाण को भी द्रवीभूत कर देता है।

लव कहते हैं—

"आमि लव शत्रु हे राघव,—
आसि नाई शुनिबारे प्रिय सम्भाषण।
रण-रण मोरे देहो रघुपति।"

इस पर राम कहते हैं—

"शत्रु नहो तुमि—
श्यामकांति वनान्तेर नवीन
वसन्तशोभा, चिर अभ्यागत तुमि,
शुष्क आर्त्त ए हृदय-द्वारे।"[२]

मंदिर-द्वार खोलकर स्वर्ण-सीता देख लव 'जननी' कह कर चीख उठते हैं एव समझ जाते हैं कि रामायण की सीता ही उनकी जननी है। लव दूत प्रस्थान करते हैं एवं राम मूर्छित हो जाते हैं। चैतन्य लौटने पर श्रीराम विलाप करते हैं—

"हे ईश्वर,—
अन्तर्यामी देवता विश्वेर,
यथार्थ सत्येर पथ
दाओ देखाइया मोरे।—

---

१. सीता—तृतीय अंक—पृष्ठ–९१
२. सीता—तृतीय अंक—पृष्ठ–९८

सत्यइ सत्येर कंकाल आमि
करितेछि पूजा—
कोथा सत्य, कौन कल्पलोके ?"[1]

यह प्रसंग करुण भी है तथा मानवीय। बाहर से अविचल पाषाण प्रतीत होने वाले राम के हृदय में अशांत सागर का कल्लोल छिपा हुआ है। उनकी हृदय-नौका सत्य-तट को ढूंढ़ रही है। श्रीराम का पतित्व एवं पितृत्व उन्मथित हो उठा है।

'कर्त्तव्य' के पांचवें अंक में यज्ञ के अवसर पर वाल्मीकि, कुश-लव सहित सीता आती हैं। रामचन्द्र प्रजा के सम्मुख अपनी शुद्धता का और एक बार प्रमाण देने के लिए सीता से अनुरोध करते हैं। पुनः इस प्रस्ताव को सुन सीता अत्यंत मर्माहत होती हैं और कहती हैं—"यदि मैंने जीवन में कभी भी मनसा, वाचा और कर्मणा किसी पर-पुरुष का चिन्तन तक न किया हो तो तू फट जा, मां, और अब तो मुझे अपनी गोद में ही स्थान दे दे।"[2] इसके बाद **भूकम्प** होता है और सीता के सम्मुख पृथ्वी फटती है और सीता उसमें समा जाती हैं। यहां नारी की तेजस्विनी, स्वाभिमानी झांकी दिखाने के अतिरिक्त **सीता के पाताल प्रवेश का लेखक वैज्ञानिक व्याख्या करते हैं।"** 'सीता' नाटक के चतुर्थ अंक में तमसा तीर से ही सीता को सुनाई देता है मानों धरणी उन्हें अपनी गोद में बुला रही है। वे अयोध्या आती हैं। सभासदों के सम्मुख राम नीरव ही रहते हैं। यद्यपि हृदय अत्यंत चंचल हो उठता है। गुरु वशिष्ठ सीता को अपनी पवित्रता के प्रमाण हेतु पुनः शपथ करने को कहते हैं। क्षुब्ध सीता सबको साक्षी करती हुई कहती हैं—

"सबार सम्मुखे आमि सत्य कहितेछि,
स्वामी ध्यान, स्वामी-ज्ञान मम,
स्वामी छाड़ा अन्य कथा
भाविनी जीवने।"[3]

इसके बाद अन्तरिक्ष से आह्वान-संगीत सुनाई देता है, सहसा प्रलय बादल छा जाते हैं, भूमि विदीर्ण होती है और सीता रहस्य लोक में चली जाती हैं। कर्तव्य में राम केवल 'वैदेही, वैदेही' कहते रह जाते हैं। सीता में राम नियति से युद्ध करने मानवीय पराक्रम से उदीप्त हो उठते हैं—

'रे लक्ष्मण,
आन, आन मोर शर-शरासन,
सप्र सिंधु मथित कोरिया

---

१. सीता—तृतीय अंक—पृष्ठ-१०२
२. कर्त्तव्य—पांचवा अंक—पृष्ठ—८५
३. सीता—चतुर्थ अंक—पृष्ठ-१२७

जानकीरे फिराये आनिबो !
सीता, सीता, सीता, सीता,—'[१]

अधीर, उन्मत राम के हृदय को महर्षि वाल्मीकि सान्त्वना देते हैं—

'आपन हृदय माझे
जानकीरे करो अन्वेषण ।
वाल्मीकिर रामसीता
चिर आविच्छेद !'[२]

यह दृश्य अत्यन्त करुण है, किन्तु **यहां ट्रेजेडी के सदृश्य नायक का पतन नहीं, उत्कर्ष ही साबित हुआ है ।** 'सीता' में यह करुण गाथा यहीं समाप्त हो जाती है । 'कर्तव्य' में आगे के दृश्यों में लक्ष्मण का त्याग, लक्ष्मण का सरयू में आत्म विसर्जन, लक्ष्मण का अग्निसंस्कार करने के पूर्व राम का देह त्याग, भूकम्प का होना और पृथ्वी की दरारों में सबका समा जाना राम की कर्तव्य निष्ठ मूर्ति को और भी उज्जवल कर देते हैं ।

मन्मथ राय रचित बंगला नाटक '**कारागार**' एव उदयशंकर भट्ट रचित हिन्दी नाटक '**सगर विजय**' की कथावस्तु पुराणों से ली गई है एवं दोनों नाटकों की मूल भावना है, अत्याचारी के शासन से मुक्त होने का प्रयास । 'कारागार' में भोजवंशजात मथुराधिपति उग्रसेन के पुत्र कंस के अत्याचार से जब मेदिनी पीड़ित हो उठी, तब कारागार में नारायण ने अवतार ग्रहण कया, उसी तरह 'सागर विजय' में हैहयवंशी राजा दुर्दम के अत्याचारी शासन का अन्त करने अयोध्या के राजा बाहु के पुत्र सगर ने जन्म ग्रहण किया । तत्कालीन राजनैतिक परिस्थिति की छाया तथा लेखक का रचना उद्देश्य इन नाटकों में स्पष्ट है, इसी कारण 'कारागार' नाटक का अभिनय ब्रिटिश सरकार द्वारा निषिद्ध कर दिया गया था । किन्तु **राजनैतिक उद्देश्य** की अपेक्षा **इनमें निपीड़ित मानव के उद्धार की भावना भी स्पष्टतर है ।** कथानक पुराणों से यही दिखाने के लिये लिया गया कि किस तरह चरम अत्याचार मानव की रक्षा के लिए महाशक्तिशाली पुरुष के जन्म का कारण बन जाता है । मानव की विजय एवं दानव की पराजय निश्चित है । यह कोई आश्चर्यजनक **देवी घटना नहीं है, किंतु अधर्म के प्रसार का अवश्यम्भावी परिणाम** है । धर्म कुछ क्षणों के लिये अत्याचार, आर्त्तवाद और पाशविकता में छिप जाता है, किन्तु पीड़न की वे सघन रेखाएँ मानव की विजय को उज्जवल बना देती हैं । कारागार' में वसुदेव, देवकी, विदूरथ, अंजना, कंका, कंकन रंजन, चंदना आदि के अत्याचार से पीड़ित जीवन की घटनाएँ श्रीकृष्ण के आविर्भाव के लिए पथ प्रशस्त करती हैं । 'सगर विजय' में बाहु, विशालाक्षी के जीवन की दुर्दशाग्रस्त घटनाएँ सगर के जन्म ग्रहण करने से दूसरा मोड़ ग्रहण करती हैं । धर्म के संस्थापन के लिये श्रीकृष्ण ने जन्म ग्रहण किया एवं इस नवीन युग के लेखक ने अत्या-

---

१. सीता — चतुर्थ अंक—पृष्ठ १२९
२. सीता — चतुर्थ अंक—पृष्ठ १३०

चार के करुण दृश्य चित्रित कर मानव की आर्त्तपुकार को तीव्र स्वर प्रदान किया। 'सगर विजय' में प्रस्तावना का अंश नहीं है। किन्तु कारागार में 'यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत' के बाद प्रस्तावना में जो लिखा है—

'जागो जागो शंखचक्र गदापद्म धारी।
कांदे धरित्री निपीड़िता, कांदे भयार्त नरनारी॥'[1]

यह काव्यांश स्पष्ट सूचित करता है कि असहाय मानवों की पुकार सदा त्राण कर्ता का आह्वान करती है। कर्म के प्रति आस्था का समयोपयोगी चित्रण हुआ है।

बंगाल में क्रांति ने अत्यंत प्रचंड रूप धारण किया। जिस समय **बंगाल में क्रांतिकारी आंदोलन के कारण कारागार तीर्थ बंद रहे थे।** उस समय 'कारागार' नाटक की रचना हुई जिसमें पौराणिक कथा का उल्लेख है कि कंस के कारागार में भगवान ने जन्म लिया। 'कारागार' नाटक के प्रथम अंक का प्रथम दृश्य है, मथुरा-नगरी का नारायण मन्दिर। यादवों से कंस के अत्याचार की वार्ता सुनकर वसुदेव नारायण से प्रार्थना करते हैं—'भगवान! नारायण! एक टिबार चोख मेलो—चेये देखो ए जगत होते वेद अन्तर्हित, दर्शन अदृश्य, उपनिषद लुप्त। संसारे आज आचार नाई, आछे शुधू अत्याचार, प्रीति नाई, आछे शुधू द्वेष, प्रेम नाई, आछे शुधू हिसा। धरती रक्ताक्त। धर्म लुप्त। --भगवान। नारायण। एखोनो की तुमि घुमियेइ सेइवे? एखोनो की तुमि जागबे ना? जागबे ना?'[2] कंस सेनापति यादव विदुरथ आकर राजा की आज्ञा सुनाते हैं—'आज होते ए मन्दिरे नारायण पूजा निषेध।[3] इस अनुचित आदेश को मानने के लिये नागरिक तैयार नहीं होते एवं सम्मिलित कंठ ध्वनि वातावरण मुखरित करती है—

'भगवन् जागृहि।'[4]

'सगर विजय' नाटक के प्रथम अंक के प्रथम दृश्य में गांधी जी के **अहिंसात्मक पथ** की ओर संकेत है। दुर्दम के अन्याय आक्रमण से विताड़ित अयोध्या के नृपति बाहु एवं महारानी विशालाक्षी वन प्रदेश में भटक रहे हैं। उन्हें खोजने दुर्दम के सेनानायक त्रिपुर और सैनिक कुन्त आते हैं। वे राजा बाहु को पहचान नहीं पाते, किंतु उसकी आहत अवस्था देखकर सहायता एवं सेवा करते हैं। उनकी सेवा से मुग्ध हो बाहु कहते हैं—'यह भी मनुष्य की प्रकृति है, जो दूसरे के दुःख को देखकर वह द्रवित हो उठता है। इसीलिये मनुष्य निर्लेप है। शत्रुता मित्रता आपेक्षिक गुण है। मनुष्य, तू महान् है।[5]

---

१. मन्मथ रायेर नाटक कारागार, मुक्तिर डाक, महुआ (संस्करण आश्विन, १३६०)—पृष्ठ ७
२. कारागार—लेखक मन्मथ राय—१।१, पृष्ठ ६
३. कारागार—१।१, पृष्ठ ११
४. कारागार—१।१, पृष्ठ १२
५. सगर विजय—लेखक उदशंकर भट्ट, १।१, पृष्ठ १३

इस तरह इन दोनों पौराणिक कथावस्तुओं से निर्मित नाटक मानव की जय गाथाएँ हैं। वेदना सहन करते करते फिर आशा की किरणें दिखाई देती हैं। इन नाटकों में भी पौराणिक नाटक सदृश्य आवेग एवं भक्ति रस की बहुलता नहीं है, अत्याचार के विरुद्ध संग्राम से जटिल घटनाओं के घात-प्रतिघात का मार्मिक चित्रण है। 'सगर विजय' शीर्षक के नीचे लिखा **'वियोगान्त नाटक' स्पष्ट सूचित करता है कि पौराणिक कथा का उल्लेख मात्र लेखक का अभीष्ट नहीं है।** 'कारागार' में भी कृष्ण के आविर्भाव की अपेक्षा उस आविर्भाव के पूर्व की करुण घटनाओं का दिग्दर्शन ही लेखक का अभीष्ट है।

ट्रेजेडी में देव से युद्ध करते हुए नायक का पतन व मृत्यु देख हम उसकी महिमा पर मुग्ध भी होते हैं तथा त्रास और करुणा का संचार भी होता है। **किन्तु भारतीय दर्शन के अनुसार चरम दुःख के पश्चात् प्रभात का उदय होता है, अधर्म के पैशाचिक नर्तन के पश्चात् धर्म की स्थापना** होती है। 'कारागार' के द्वितीय अंक में कंस के अत्याचार एवं विलास का चित्रण हुआ है। पाशविक शक्ति से बलिष्ठ होकर वह अपने को देवता से कम नहीं समझता, किन्तु वह मानव की कोटि से भी पतित हो चुका है। अपने यौवन की प्यास मिटाने यादवी चन्दना का हरण करवाता है किन्तु जब चन्दना उसे ठुकरा देती है तब उसे मुक्त कर देता है। चन्दना को यादवगण धर्षिता कहकर समाज से उसका बहिष्कार करना चाहते हैं। पौराणिक कथावस्तु से संबंधित नाटक में समाज द्वारा ठुकराई गई नारी का मार्मिक चित्रण भी सामाजिक उद्देश्य तथा नवीन दृष्टिकोण का परिचायक है। चन्दना कहती है—"राक्षसेर ग्रास होते मुक्त हबार जन्य नारी आत्महत्या करे बिना, पुरुष ताइ दांड़िये देखबे। नाहोले है दंडायमान पुरुष, दंड दाओ त्रिभुवन-वंदिता सीता देवीके, कैनो तिनि रावण कवलिता होये आत्महत्या करेन नि, केनो तिनि एइ आशा—एइ प्रार्थना निये स्वर्णलंकाय बेंचेई छिलेन, जे, एक दिन ना एक दिन सहायहीन सम्पदहीन श्रीरामचन्द्रर दुर्वृत्तेर वक्षोरक्त पान कोरे अत्याचारी के संबंशे निधन कोरे तार नारी मर्यादा सुप्रतिष्ठित कोरबेन![1] नारायण मदिर में शरण लेने चन्दना दौड़ आती है एवं यादवगण वहां भी उसका पीछा करते हैं। नारायण मंदिर में कंस भी आते हैं एवं उनसे भयभीत होकर यादवगण चन्दना से क्षमा मांगते हैं। यह देख वासुदेव कहते हैं– "(यादवगणेर प्रति) ओरे भीरू–ओरे कापुरुष ओरे लुप्त–मनुष्यत्वेर पिशाचप्रेत, जननीर नारीधर्म विनिमयेओ रक्षा कोरबी ओई क्षुद्र–अति क्षुद्र प्राण? ओरे तोरा मर–तोरा मर"—[2] इस भर्त्सना में **पतित मानव को प्रायश्चित करने के लिए ललकारा गया है।** अपनी हीनता भी अपने विनाश का कारण बनती है। ऐसी हीनता का दिग्दर्शन 'सगर विजय' में विशालाक्षी के प्रति उसकी सपत्नि बर्हि की ईर्ष्या द्वारा चित्रित किया गया है। प्रतिहिंसा लेने के लिए बर्हि दुर्दम की सहायता करना चाहती है। एक शिशु को उसकी मां की गोद से छीनकर उसे

१. कारागार—२।२ पृष्ठ–२२
२. कारागार—२।३, पृष्ठ–३५

नष्ट कर डालने की चेष्टा विमाता वहिं करती है किन्तु देव जिसका सहाय है उसका बाल भी बांका कोई नहीं कर सकता। इस नाटक में यही दिखाया गया है कि यद्यपि कोई दिव्य पुरुष गगन से उतरकर सगर की रक्षा नहीं करते किन्तु अत्याचार को भस्म करने वाला वह अग्निखंड अपने **पुरुषार्थ के बल पर** एवं संयोग की सहायता से विजयी होता है। और्व ऋषि के आश्रम से वहिं नवजात शिशु को चुराकर ले जाती है। वहि उसे नदी में बहा देना चाहती है इतने ही में राजा वाहु के शुभाकांक्षी दुर्दम के सेनानायक त्रिपुर उस शिशु को छीनकर भाग जाते हैं। वहि विक्षिप्त सी उसका पीछा करती है। इस अमानवीय प्रकृति की नारी को देख कुन्त कहता है—"गई स्पर्द्धा, प्रतिहिंसा का इतना उग्र रूप कभी न देखा था। गई, सांपिनी-सी फुफकारती, चोट खाई सिंहनी-सी। ओह—पल की देर से क्या हो जाता। न्याय अत्याचार के नीचे पिस जाता, विवेक पागल हो जाता, चलूँ। अच्छा ही हुआ—चलूँ।"[1] कारागार के तृतीय अंक में यह दिखाया गया है कि **स्वप्नदृष्ट नारायण-मूर्ति कंस की पुष्पवाटिका के पाषाण-गृह में बन्दी हैं** एवं अपनी शक्ति को सर्वोपरि समझने वाला **कंस** वंदना से कहता है—"जखन सेइ स्वप्नदृष्ट मंदिर-देवता आज आमार एइ पाषाण-घरे चिरतरे बन्दी—एवं—देवकी वसुदेव तादेर अनुचरगण सह सतरक्षी परिवेष्ठित लौह-कारागारे निक्षिप्त–सुधू एइ जन्ये जे—**आमि अति मानव अथवा दानव।** जे दुःस्वप्न मानुष के विध्वस्त करे, आमि सेइ दुःख स्वप्न के व्यर्थ कोरि—ओइ खानेइ आमार आनन्द एवं ओइखानेइ आमार उल्लास।"[2] **'कारागार' के गीतों के रचयिता काजी नजरूल इस्लाम** एवं **हेमेन्द्रकुमार राय हैं।** अत्याचार से पीड़ित धरित्री भगवान का आह्वान करती हैं—

> 'मन्दिरे मन्दिरे जागो देवता।
> आनो अभयंकर शुभ वारता,
> जागो देवता—जागो देवता॥[3]

मानव की विजय एवं दानव की पराजय के विषय में अगाध विश्वास रखते हुए वसुदेव कहते हैं—'अत्याचारीर अत्याचार यदि सत्य हय, अत्याचारितेर दीर्घश्वासओ तेमनि सत्य।'[4]

क्रूर दानवों के हृदय में सुप्त मानव की करुण झांकी भी दोनों नाटककारों ने स्वप्न के आभास के रूप में दिखाई है। इस नाटकीय संकेत के द्वारा लेखक मन की गहन भावनाओं एवं अंतर्द्वन्दों को चित्रित करने की चेष्टा करते हैं। **'सगर विजय के**

---

१. सगर विजय—२।५, पृष्ठ ५१
२. कारागार—३।१, पृष्ठ ४२
३. कारागार—३।२, पृष्ठ ४६
४. कारागार—३।३, पृष्ठ ४८

द्वितीय अंक के दूसरे दृश्य में भी स्वप्न का संकेत विद्यमान है। मानव ने अपने मानवत्व को दबाना चाहा एव दानवत्व को अति-मानवता समझ प्रोत्साहित किया। किन्तु स्वप्न में दबी हुई मानवता झांक उठी। **दुर्दम** ने ईर्ष्याग्नि में जलते हुए अंगार खंड की भांति वर्हि को देखा। वह स्वप्न नहीं था पर उसे स्वप्न सा ही प्रतीत हुआ। नारी इतनी निर्मम एवं नीच हो सकती है, वह विश्वास न कर सका। क्योंकि थोड़ी बहुत मानव सुलभ कोमलता उसमें भी शेष थी। इसी तरह 'कारागार' के तृतीय अंक के सातवें दृश्य में एक स्वप्न दृश्य रखा गया है। कंस पाषाणगृह में बंदी विदूरथ के परिवार की मृत्यु यंत्रणा स्वप्न में देखता है। उसके हृदय में सुप्त मानव जाग्रत हो उठता है। वह उस दीर्घ श्वास और हाहाकार से विक्षुब्ध हो उठता है और फिर उसे याद आती है कि पीड़क वह स्वयं है। पुनः वह स्वप्न देखता है कि नारायण मूर्ति एक कृष्ण प्रस्तर खंड में रूपान्तरित हो गई एवं उसमें अग्नि लिपि फूट उठी—

'यदा यदाहि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत'

यह लेखक की नवीन कल्पना है, अवतारवाद की नवीन व्याख्या है। स्वप्न यहीं समाप्त होता है। चन्दना उसे जगाती हुई कहती है कि यादव-पल्ली में आग लगी है। कंस अग्नि दृश्य नेत्रों से पान कर उल्लसित हो उठता है। पाषाण-गृह का द्वार उसकी इंगित से खुलता है एवं इस दारुण अत्याचार में भी जीवित कंकन एक हाथ में नारायण-मूर्ति और दूसरे हाथ में रंजन का कंकाल लिये बाहर आकर घोषित करता है—'भगवान जागे—भगवान जागे—अत्याचारेर आगुन जखन जले ओठे, तखन मृत-मानव जागे, निद्रित भगवान जागे।'[1] मानव की जागृति पर यह दृढ़ आस्था नवयुग की चेतना सूचित करती है। कारागार के चतुर्थ अंक में कंका पर अत्याचार होता है, वसुदेव देवकी की शेष सन्तान की हत्या होती है और प्रान्तर में धरित्री मृत्युंजय की प्रतीक्षा करती हुई गाती है। 'सगर विजय' के चतुर्थ अंक में दिखाया गया है कि बालक सगर वशिष्ठ के आश्रम में पल रहा है। वर्हि आकर वहां से भी उसे चुरा ले जाती है एवं उसे मार डालना चाहती है। इतने ही में दुर्दम आकर सगर को छीनकर ले जाता है। विशालाक्षी का कुछ पता नहीं है। वर्हि अनुताप की ज्वाला में दग्ध हो पागल हो गई है। मानवता को ध्वंस करने वाली इस अत्याचार की अग्नि को बुझाने के लिये ऋषि वशिष्ठ भी तत्पर हो उठते हैं। शोषण के प्रति विद्रोह के भाव ही इन नाटकों के मूल-भाव हैं। **भारत की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि सदा यही सिखाती है कि व्यक्ति से समाज बड़ा है, देश से विश्व का स्थान ऊंचा है, स्वार्थ सिद्धि से त्याग और सेवा महान है।** प्रत्येक भारतीय में यह संस्कार है। ऋषि वशिष्ठ पहले देश के लिये आत्म त्याग करने का आह्वान करते हैं—'ठीक है त्रिपुर, देश की अवस्था ने हम तपस्वियों के हृदय में उथल-पुथल मचा दी है। ऐसे कठिन समय में तप करना पाप है। इसे तो एक प्रकार का विलास ही कहना चाहिये। अच्छा ऐसा ही होगा।

तुम सब अयोध्या के सैनिक और प्रजाजन एकत्र होकर विद्रोह करो, शत्रुओं को मारो। मैं तुम्हारी सहायता करूँगा।'[1] इन दोनों नाटकों में कई स्थलों पर देश पर किये गये अत्याचार के द्वारा **ब्रिटिश शासित तत्कालीन भारत की परिस्थिति पर प्रकाश डाला गया है।** किन्तु लक्ष्य केवल राजनैतिक मुक्ति नहीं, सब तरह की पाशविकता से मुक्ति है। जर्जरित मानव अपने समाज बन्धन, वासना, संकुचित भावना सभी से मुक्ति चाहता है और उसकी यह पुकार मानव के रूप में ही अवतीर्ण मानवेन्द्र सुनता है।

'कारागार' के पंचम अंक में सूचित किया गया है कि प्रबल झंझा और वृष्टि के बीच कृष्ण का जन्म होता है। वसुदेव उन्हें छिपाकर गोकुल ले जाते हैं। कंस का अनुचर नरक समस्त नवजात पुत्र सन्तानों का वध करता है एवं खबर देता है कि देवकी ने कन्या प्रसव किया है। कंस उस कन्या का भी वध करने उसे भूतल पर निक्षेप करते हैं, किन्तु नियति के इंगित के समान, अष्टभुजा महामाया की मूर्ति आविर्भूत होकर कहती हैं—

'तोमारे बधिवे जे—गोकुले बाड़िछे से।'[2]

अन्त में वसुदेव कंस से कहते हैं—'देखवे तिनि शुधू आमादेर मुक्तिर अन्य आसेननि। हे दुर्वृत्त—हे नारकी, तिनि एसेछेन—आमादेर मुक्त कोरते, सेइ संगे तोमाके।'[3] पीड़क एवं पीड़ित समस्त मानव की मुक्ति का यह सन्देश है। 'सगर विजय' के पंचम अंक में बंदी सगर कारागार तोड़ कर निकलता है। विमाता वहिं उसकी सहायता के लिये आ जाती है। दुर्दम बंदी होता है एवं सगर विजयी होता है। त्रिपुंड्क दुर्दम की पराजय का कारण कहता है—'इसलिये कि तुम अत्याचारी थे। मनुष्य, तुमने गर्व और शक्ति के शिखर पर खड़े होकर मनुष्यता को ललकारा, —अस्तित्वहीन कर देने के लिये पर्याप्त है।'[4] सगर जननी विशालाक्षी की मृत्यु होती है एवं दिग्विजयी सगर अंत में कहते हैं—

'यह सम्पूर्ण वसुमती, जिसने मेरा लालन किया, माता विशालाक्षी की प्रतिभा बनकर मेरी ओर देख रही है।—मेरा रोम रोम उसकी सेवा के लिये होगा।'[5] —दोनों नाटकों में मानव कल्याण को देश कल्याण के आसन के भी ऊपर अधिष्ठित किया गया है एवं साधना द्वारा ही मानव उसे लब्ध करता है। 'कारागार' तथा 'सगर विजय' जैसे नाटकों में नायक की अपेक्षा प्रतिपक्षी अत्याचारी का चरित्र चित्रण अधिक नूतन और मनोवैज्ञानिक हुआ है। इसका प्रधान कारण है, तत्कालीन भारत पर अंग्रेजों के अत्याचार के दृश्यों को प्रतिबिम्बित करने का उद्देश्य।

---

१. सगर विजय—४।५, पृष्ठ ८३
२. कारागार—५।२, पृष्ठ ९१
३. कारागार—५।२, पृष्ठ ९२
४. सगर विजय—५।५, पृष्ठ ९७
५. सगर विजय—५।८, पृष्ठ ११०-१११



भीष्म का चरित्र महाभारत के पात्रों में अन्यतम है। किन्तु इच्छामृत्यु का वरदान प्राप्त होने के कारण उनका जीवन इतनी दीर्घ अवधि घेरे रहता है कि किसी भी एक नाटक में उनका सम्पूर्ण जीवन दिखाते हुए काल-निर्वाह करना नाटककार के लिये कठिन हो जाता है। बंगला के दो प्रसिद्ध नाटककारों ने इस महान चरित्र को चित्रित करने का प्रयास किया है। क्षीरोदप्रसाद, विद्याविनोद एवं द्विजेन्द्रलाल राय लिखित 'भीष्म' नाटक में जिस तेजस्विनी नारी का नाम जड़ित है वह है, काशीराज-कन्या अम्बा। हिन्दी के प्रसिद्ध नाटककार उदयशंकर भट्ट ने भीष्म को केन्द्र न बना अम्बा के चरित्र को अधिक प्रधानता दी। उसके जीवन के माध्यम से दोनों पक्षों द्वारा उपेक्षिता नारी की सामाजिक तथा मानसिक स्थिति कैसी हो जाती है। इस विषय पर प्रकाश डालने का प्रयत्न किया है। बंगला के नाटककारों ने देवव्रत भीष्म के प्रतिज्ञा-पालन की अविचलता एवं अम्बा की उपेक्षा दिखाकर भीष्म की महानता को सिद्ध करने की चेष्टा की है। किन्तु उदयशंकर भट्ट ने पुरुष के अहंकारद्वारा ठुकराई हुई नारी की ज्वाला को सुलगाकर उसका विनाशकारी नर्तन दिखा अधिक मानवीयता का परिचय दिया है। अम्बा नाटक के अन्तिम दृश्य में व्यास कहते हैं—'**एक स्त्री के अनादर का फल यह महाभारत हुआ और दूसरी स्त्री के अनादर का फल है भीष्म की मृत्यु।**'[1] यहां **नारीत्व के व्यक्तित्व** का प्रश्न है। अपने व्यक्तित्व के अभिमान में पुरुष जब नारी के जीवन को ठोकर पहुंचाता है। तब उसका विनाश भी अवश्यम्भावी है। यह सामाजिक समस्या ही नही शाश्वत सत्य है। आत्मबोध और सामाजिक पीड़न का चित्र अम्बा का चरित्र है।

बंगला नाटकों में भक्ति एवं भावावेश का स्वर अधिक परिस्फुट है एवं **हिन्दी में अम्बा के जीवन के द्वंद्व** की वास्तविकता पर अधिक प्रकाश डला गया है। दोनों भाषाओं के नाटकों में यह दिखाने का प्रयास किया गया है कि **ब्रह्मचर्य का दम्भ** भी किस तरह जटिलता की सृष्टि करता है। मानव का एकमात्र सहारा ईश्वर ही है तथा नारी का अपमान समाज के ध्वंस का कारण है। द्वापर एवं कलियुग के संधिक्षण में होने वाले महाभारत के युद्ध को गीता के अध्यात्मदर्शन द्वारा चिरस्मरणीय बना देने वाले **लोक-नायक पार्थसारथी श्रीकृष्ण** का चरित्र अत्यन्त गूढ़ है। जिस तरह श्रीराम ने अयोध्या से लंका तक की राजनीति को परिचालित किया उसी तरह श्रीकृष्ण ने मगध से द्वारका तक की राजनीति को परिचालित किया। वृष्णिकुल शिरोमणि श्रीकृष्ण अपने महान् कर्मो के कारण क्षिति भार हरण करने वाले विष्णु के अवतार माने जाने लगे एवं असंख्य साहित्यिकों को कृष्ण-चरित्र ने प्रेरणा दी। कृष्ण चरित्र को ही केन्द्रित कर पश्चिम भारत के रास एवं लीला नाटक हुए एवं बंगाल में जात्रा का विकास हुआ। इनमें अधिकतर कृष्ण के मधुर पक्ष को ही स्थान मिला है। हिन्दी साहित्य में भारतेन्दु के समय श्रीकृष्ण के चरित्र को लेकर अनेक रंगमंचीय नाटकों का

---

१. अम्बा—लेखक उदयशकर भट्ट—३।७, पृष्ठ १०१

आविर्भाव हुआ । प्रभास मिलन भी कई नाटकों का मिश्रण बना । भक्ति का चरमोत्कर्ष गिरीशचन्द्र घोष रचित 'जना' में दिखाई देता है ।

श्रीकृष्ण चरित्र की गहनता को रूप देने के लिए जो नाटक बीसवीं सदी के प्रारम्भ में लिखे गये उनमें क्षीरोदप्रसाद रचित 'नर-नारायण', माखनलाल चतुर्वेदी रचित 'कृष्णार्जुन युद्ध' एवं सेठ गोविन्ददास रचित 'कर्त्तव्य' (उत्तरार्द्ध) उल्लेखनीय हैं। कृष्ण के साथ कृष्णसखा अर्जुन एवं अर्जुन के प्रतिद्वन्दी आदित्य-नन्दन कर्ण के नाम भी चिरस्मरणीय हैं। ये तीनों चरित्र भिन्न भिन्न दृष्टिकोण से चित्रित किये गये हैं। **'नर-नारायण' में भक्ति रस का प्रबल वेग है जिसे हम गिरीश प्रवर्तित भक्तिरसात्मकता का अवशेष कह सकते हैं।** कर्ण की पत्नी पद्मावती श्रीकृष्ण एवं अर्जुन को नर-नारायण का अवतार मानती हैं किन्तु कर्ण अन्त तक विश्वास एवं सन्देह के द्वन्द्व से ग्रस्त रहते हैं। सूत-पुत्र के परिचय से अपमानित कर्ण अर्जुन को अपना चिरशत्रु समझते हैं। 'कृष्णार्जुन युद्ध' में कृष्ण एवं अर्जुन प्रतिद्वन्दी के रूप में दिखाये गये हैं। इस नाटक में श्रीकृष्ण के अवतार के संबंध में कुछ नहीं है वरन् एक आश्रित की रक्षा के लिए अर्जुन उन्हें युद्ध में आह्वान करते हैं। 'कर्त्तव्य' (पूर्वार्द्ध) में श्रीकृष्ण को एक सफल लोकनायक के रूप में चित्रित किया गया है एवं अलौकिक घटनाओं का वर्णन किया गया है। इन तीनों नाटकों में मानव मन के अन्तर्द्वन्दों का सुन्दर चित्रण हुआ है।

बंगला नाटकों में भक्ति का जो निरूपण हुआ है, विश्वास एवं युक्ति, तर्क व सन्देह का जो द्वन्द्व चित्रित हुआ है, हिन्दी में उसका अभाव है। क्योंकि हिन्दी नाटकों की प्रवृत्ति वास्तव चित्रण एवं तथ्य निरूपण की ओर अधिक झुकी जब कि बंगला नाटकों की प्रवृत्ति भावोन्मेष तथा काव्योत्कर्ष के प्रति आग्रहशील थी। 'नर-नारायण' नाटक की प्रस्तावना में लिखा है—

"देव किम्वा पुरुषकार—
विश्वराज्य कोन राजार ?"[1]

प्रस्तावना से स्पष्ट है कि लेखक ने श्रीकृष्ण के ब्रह्मत्व को स्वीकार किया है। महाभारत के कृष्ण चरित्र पर बाद में देवत्व का आरोप हुआ। डा. शशि अग्रवाल के अनुसार ईसा के चार सौ वर्ष पूर्व ही यह धारणा सुदृढ़ हो चुकी थी। **'कृष्णार्जुन युद्ध' की प्रस्तावना में भी विष्णु का अवतार होना स्वीकार किया गया है।**
नाटक के सब पात्र स्तुति करते हैं—

---

१. नर-नारायण—लेखक क्षीरोदप्रसाद विद्याविनोद—द्वादश मुद्रण पोष, १३६८, प्रस्तावना।

"जय जय जय अखिलेश ।
भूलो न रमेश, जन्म कर्म की भूमि तुम्हारी भारत देश"[१]

इस नाटक के प्रथम अंक के तृतीय दृश्य में नारद मुनि स्वगत कहते हैं—"तुम्हारी गति कौन जानता है—तुम्हारी शक्ति कौन पहचानता है, भगवन् ।"[२] **'कर्त्तव्य'** नाटक में कोई प्रस्तावना नहीं है । इसके पहले अंक के पहले दृश्य में कृष्ण राधा के सम्मुख एक नवीन पथ प्रसारित करते हैं । वे माया के अधीश्वर नहीं, कर्मयोगी मानव हैं । आसन्न विरह से उत्कंठित राधिका को वे सान्त्वना देते हुए कहते हैं—"तुम अपने को ही कृष्ण क्यों नहीं मान लेतीं ? पहले अपने को ही कृष्ण मानने का प्रयत्न करो, फिर अपने समान ही सारे विश्व को मानने लगो तथा भेद-भाव से रहित हो उसी की सेवा में दत्तचित्त हो जाओ ।"[३] **नर-नारायण नाटक में प्रस्तावना के बाद सूचना** है । शब्दभेदीबाण द्वारा गौवध के अपराध में तापस कर्ण को अभिशाप देते हैं । नियति की क्रूर क्रीड़ा के लक्ष्य महारथी कर्ण के अस्त्र की शिक्षा की समाप्ति के बाद की जीवन-यात्रा का सूत्रपात होता है । किन्तु तापस के कथन पर उन्हें विश्वास नहीं होता । वे कहते हैं—

"बले किना—नारायण नरदेह—धारी !
देहरक्षी गांडीवीर ।"[४]

यहां से कर्ण के हृदय का रोमंथन प्रारम्भ होता है ।

'कर्त्तव्य' (उत्तरार्द्ध) के द्वितीय अंक में दिखाया गया है कि शूरसेन प्रदेश पर जरासंध के अट्ठारहवीं बार आक्रमण होने पर, कृष्ण रणभूमि से पलायन कर द्वारिका में अपनी राजधानी स्थापित करना उचित समझते हैं । वे कहते हैं—"शूरसेन देश की रक्षा का, इस रक्तपात और मारकाट के निवारण का, अपार जन और धन के बचाने का और कोई उपाय नहीं है ।" गिरि गोवर्द्धन को उंगली पर उठाकर इन्द्र की शत्रुता का जवाब देने वाले कृष्ण इसमें एक कुशल राजनीतिज्ञ के नाते साम, दाम, दंड, भेद छल, बल, कौशल द्वारा भारत में धर्म राज्य के स्थापक बन जाते हैं । 'कर्त्तव्य' के तृतीय अंक में रुक्मिणी की इच्छा के विरुद्ध उनके विवाह की तैयारियों के अवसर पर रूक्मिणी की इच्छानुसार उसका हरण करना कृष्ण उचित समझते हैं । सुभद्रा हरण होने पर उन्हें क्रोध नहीं होता । इस नाटक के चतुर्थ अंक में जहां कुरुक्षेत्र के युद्ध का दृश्य है वहां अर्जुन के नेत्रों के सम्मुख कृष्ण के विश्वरूप का उल्लेख नहीं है । कृष्ण

---

१. कृष्णार्जुन युद्ध नाटक—लेखक पं. माखनलाल चतुर्वेदी—प्रस्तावना पृष्ठ—२
२. कृष्णार्जुन युद्ध—१।३ पृष्ठ–१६
३. कर्त्तव्य—लेखक सेठ गोविन्ददास—प्रथम संस्करण संवत् १९९२, १।१ पृष्ठ–१०३
४. नर-नारायण—सूचना–पृष्ठ–५
५. कर्त्तव्य (उत्तरार्द्ध)—२।५, पृष्ठ–१३१

केवल बौद्धिक युक्तियों द्वारा अर्जुन को समझाते हैं। किन्तु इसके विपरीत 'नर-नारायण' के तृतीय अक में द्रौपदी यह सोचकर विस्मित होती है कि जब कौरवों ने सभा में इस रूप में आये हुए कृष्ण को बांधना चाहा तब उन्होने किस प्रकार विराट रूप धारण किया—

"अपूर्व पुरुष एक,—कि विराट्—
स्वदेशे समस्त विश्व आक्रमण कोरि
दांड़ाइलो-ऊध्वे—ऊध्वे-उठे गेलो शिर,
आरओ ऊध्वे, विश्वेर बाहिरे दशांगुलि।"[1]

इसी अंक में आगे पद्मावती विश्वास करती है कि जिस समय अर्जुन ने संध्या के पूर्व जरासंध को वध करने की प्रतिज्ञा की उस समय संध्या होने के कुछ पूर्व ही श्रीकृष्ण ने सुदर्शन द्वारा सूर्य को ढंक लिया ताकि कौरवों को संध्या हो जाने का भ्रम हो। किन्तु कर्ण कहते हैं—

"ढाकूक, तथापि
नर तोमार केशव ! सत्य जतदिन,
निजे नाहि उपलब्धि करि, ततदिन,
विधाताओ दिले साक्षीं मानव बलिबो
वासुदेवे। मानव, मानव—तबे रानी,
मुक्तकंठे बलि आमि—अपूर्व मानव !
धरणीते विधातार सर्वश्रेष्ठ दान।
सृष्टि होते आजिओ पर्यन्त एमनटि
आसे नाई आर—एइ पूर्ण मानवता।"[2]

कर्त्तव्य नाटक के पंचम अंक में कुरुक्षेत्र में गंगातट पर राधा कृष्ण का मिलन होता है। **राधा का मृत शरीर कृष्ण के चरणों में** गिर पड़ता है। यह **आध्यात्मिक प्रेम की पराकाष्ठा है।** कृष्ण अपनी नि:स्वार्थ कृतियों के कारण भगवान माने जाने लगे हैं। उद्धव कहते हैं—"और भगवान् कैसे होते है, नाथ ? मैं ही क्या, सारा संसार आपको परब्रह्म परमात्मा का पूर्णावतार मानता है।"[3] कर्त्तव्य समाप्त होने पर एक वन मार्ग में जानबूझकर व्याध के बाण से आहत होकर वे महाकाल की गोद में शरण लेते हैं। 'कृष्णार्जुन युद्ध' नाटक में श्रीकृष्ण से लोहा लेने के लिए अर्जुन उत्साहित हो उठते हैं। अर्जुन कहते हैं—"कृष्ण सर्वश्रेष्ठ हैं, उनकी पूजा करता हूं, कृष्ण मेरे मित्र हैं, मैं उन पर प्रीति रखता हूं, कृष्ण मेरे आश्रित के शत्रु हैं इसलिए मैं उनसे लड़ता

---

१. नर-नारायण—३।१, पृष्ठ–१००

२. नर-नारायण—३।२, पृष्ठ–११८

३. कर्त्तव्य (उत्तरार्द्ध)—५।४ पृष्ठ–१७२

हूं। ऐ हृदय, तू इतना महान् हो कि ये विरोधी भाव भी तुझमें एक साथ समान स्थान पावें।"[1] मानव-धर्म की रक्षा के लिए अर्जुन श्रीकृष्ण से युद्ध करना भी अपना गर्व समझते हैं। जब युद्धभूमि में अर्जुन आहत होते हैं तब श्रीकृष्ण को जो पाश्चाताप होता है। वह मानव सुलभ है—'उफ़![2] मेरे इन दुष्ट हाथों ने क्या किया। मैंने स्वयं अपना ही हृदय घायल किया। 'नर-नारायण में कर्ण की पराजय में सबसे अधिक दुःखी होते हैं, जनार्दन कृष्ण। कर्ण सोचते हैं कि उनके पतन पर कपट अश्रु बहाने कृष्ण आगे हैं किन्तु कृष्ण कहते हैं —

'वीरत्वेर, अभिमानी कणेर मरण,
देखिते, फेलिते चक्षुजल, आसि नाई
भ्रातः! पृथिवीर देन्य देखे झरितेछे
आंखि। आजि दाताकर्ण चले जाय निःस्व
कोरे तारे।'[3]

कर्ण का चरित्र ट्रेजेडी के नायक के उपयुक्त है। उदार, वीर कर्ण में एक दोष था। वे अपने वीरत्व के अभिमान में अर्जुन को पराजित करने की महत्वाकांक्षा का पोषण आजीवन करते रहे। किन्तु उनके जन्म वृतांत के छिद्र से नियति का प्रवेश होता है, कृष्ण कर्ण को चाहते हुए भी कर्ण का निधन चाहते हैं एवं अर्जुन से कर्ण के युद्ध होने के पूर्व ही उसे यह सूचित कर ममता द्वारा दुर्बल कर जाते हैं कि कर्ण राधेय नहीं कौन्तेय हैं। कर्ण का चरित्र चित्रण बहुत ही मार्मिक हुआ है।

अपरेशचन्द्र मुखोपाध्याय रचित बंगला नाटक '**कर्णार्जुन**' का अभिनय अत्यन्त जनप्रिय हुआ। आज भी इस तरह के भक्तिरसात्मक पौराणिक नाटकों का जन-आवेदन कम नहीं है। **हिन्दी में कर्ण चरित्र पर लिखा गया कोई उल्लेखनीय नाटक नहीं है।** सेठ गोविन्ददास ने सन् १९६४ में 'कर्ण' नाटक लिखा। शायद हिन्दी का मानसजगत उसके जन्म वृतांत तथा धर्मद्रोही दुर्योधन का पक्ष लेने के कारण उसके चरित्र से असन्तुष्ट था। किन्तु **नियति से आजीवन युद्ध** करता हुआ, समाज की उपेक्षाओं से क्षुब्ध, वीर तथा दाता कर्ण के चरित्र में नाटकीयता के जो बीज हैं, वे अन्यत्र दुर्लभ हैं। 'नर-नारायण' नाटक में यद्यपि मरणासन्न कर्ण कृष्ण को आत्म-निवेदन करते हैं। किन्तु उनकी उदात्तता का चरमोत्कर्ष इन शब्दों में व्यक्त हुआ है—

'किन्तु भाई, अमरत्वे कोरिया आश्रय
जतबार तुलिते गेछे से मृत्युशर,
ओमनि ताहारे दिते बाधा—ओइ ओइ—

---

१. कृष्णार्जुन युद्ध—४।६ पृष्ठ—९६
२. कृष्णार्जुन युद्ध—४।६, पृष्ठ ९६
३. नर-नारायण—४।३, पृष्ठ १७५

आबार आकाशे प्रियतम — ओइ सेइ
दर — विगलित आंखि, म्लानता — रूपिणी,
भिक्षार अंजलि धरा, जेनो कतो चौर्य—
अपराध कृपा आमार कौमार्यमयी **माता**।'[1]

यह नवीन भावना, यह मातृ पूजा की भावना शक्ति के पुजारी बंग-देश की है। मातृत्व की इस करुण मूर्ति में देश-माता के रूप का संकेत है। साथ ही प्रतिहिंसा की भावना एवं ममत्व की भावना का यह द्वन्द्व-चित्र नाट्य-साहित्य में अतुलनीय है।

'कृष्णार्जुन युद्ध' नाटक के अन्तिम दृश्य में शंकर श्रीकृष्ण से कहते हैं—'तुमने एक निरपराधी को मारने का प्रण करके अत्याचार किया है। अत्याचारी कायर हुआ करता है, इसलिये मैंने कहा था, अपने प्राण बचाओ।'[2] **इसमें सत्ता के दुरुपयोग के कारण स्वयं श्रीकृष्ण भी अनुतप्त होते हैं। गालव मुनि गन्धर्व चित्रसेन को क्षमा करते हैं तथा कृष्ण और अर्जुन का मिलन होता है।** इस भक्त और भगवान के मिलन में अलौकिक तथ्य बिल्कुल नहीं है। मानव वृत्तियों का परिचय अधिक मिलता है। साथ ही अत्याचारी अगर कृष्ण भी हैं, तो उन्हें भी पश्चाताप करते हुए दिखाया गया है। **न्याय तथा धर्म की कसौटी पर इसमें कृष्ण के चरित्र की परख हुई है** एवं मानव की जयगाथा की अमर निशानी उड़ती हुई चित्रित हुई है। यह पौराणिक चित्र भी साहित्य में अतुलनीय है।

नारी चरित्रों पर प्रकाश डालने वाले पौराणिक नाटकों में उदयशंकर भट्ट रचित **'विद्रोहिनी अम्बा'** के सिवा द्विजेन्द्रलाल रचित **'पाषाणी'** एवं सुदर्शन रचित 'अंजना' उल्लेखनीय है। साधारणतः पौराणिक नारी चरित्रों में सतीत्व के गुण का ही आरोप किया जाता है क्योंकि वे देवियां हैं। द्विजेन्द्रलाल राय ने 'पाषाणी' में जिस **अहल्या** का चित्रण किया वह रक्त-मांस से निर्मित नारी है। ब्रह्मज्ञानी ऋषि गौतम की पत्नी अहल्या की भोग वासना पति की शुष्क ज्ञान-साधना के कारण अतृप्त रह जाती है। इन्द्र को देखकर वह कामातुर हो उठती है। वाल्मीकि रामायण के अनुसार अहल्या इन्द्र को पहचानकर भी उसे प्रेमी रूप में स्वीकार करती है। इस प्रसंग में नाटककार ने उसके नारीत्व को ही प्रधान रूप दिया है, जो अत्यन्त मर्मस्पर्शी है। बाद के प्रसंगों में पौराणिक कथा में अनेक परिवर्तन उन्होंने किये हैं। **इस नारी चरित्र की विशेषता यह है कि संस्कार जनित व आदर्श के कारण पतिव्रत और प्रेम का द्वन्द्व उसमें नहीं है, वह अपनी कामना, वासनाओं को तृप्त करना चाहती है,**

---

१. नर-नारायण — लेखक श्री क्षीरोदप्रसाद, ४।३, पृष्ठ १८२
१. कृष्णार्जुन युद्ध — लेखक श्री माखनलाल चतुर्वेदी, ४।६, पृष्ठ ९७

जो एक सहज, स्वाभाविक प्रवृत्ति है। यह सामाजिक आदर्शों के प्रति स्पष्ट विद्रोह है, जिनका आभास 'पाषाणी' नाटक में व्यक्त हुआ।

नारीत्व की अवमानना के प्रति क्षोभ सुदर्शन रचित **'अंजना'** में भी व्यक्त हुआ है। अंजना की माता रानी हृदयसुन्दरी कहती है—'परमात्मा! तूने नारियां क्यों उत्पन्न कीं? मर्दों के हाथ की पुतलियां बनने के लिये, उनके कथन पर अन्धों के समान चलने के लिए, उनकी आज्ञा मानने के अन्याय को सहन करने के लिए?'[१] किन्तु विद्रोह के इस स्वर में पहले पहल उतनी तीव्रता नहीं थी, जितनी आगे चलकर 'विद्रोहिनी अम्बा' में व्यक्त हुई है। 'अंजना' के चरित्र के पतिव्रत को ही चित्रित करना लेखक का उद्देश्य है। वे प्रस्तावना में लिखते हैं—'इस पतित अवस्था में आज भी भूमंडल की किसी भी खंड की स्त्रियां **पतिव्रत्य**, आत्म-त्याग और धर्म-परायणता आदि दिव्य गुणों में आर्य ललनाओं का सामना नहीं कर सकतीं। इसका कारण वह अदृश्य परन्तु प्रबल प्रभाव है, जो माता सीता, सती सावित्री और देवी अंजना के पावन आदर्श भारतीय स्त्रियों पर डाल रहे हैं। लेखक ने यह कथा जैन ग्रंथों से ली। समाज के द्वारा कुलटा की आख्या पाकर विताड़ित होती हुई भी अंजना अपने पति पवन की मन ही मन पूजा करती है एवं अन्त में उसका कलंक धुल जाता है। यह नाटक पौराणिक-आदर्श एवं नवीन-विचारों की समन्वित सृष्टि है।

धर्माचार्यों तथा महात्माओं के जीवन से संबंधित पौराणिक नाटक

बीसवीं सदी के प्रारम्भ में भारतीय मनीषा नवीन चेतना से यथेष्ट उद्‌बुद्ध हो चुकी थी। अतः हिन्दी तथा बंगला में धर्माचार्यों के जीवन से सम्बन्धित जिन नाटकों की रचना हुई उनमें **अलौकिक तत्वों का निराकरण** ही उचित था। इस दृष्टिकोण से हिन्दी नाटक अधिक वस्तु तथ्यवादी सिद्ध हुए। गिरीशचन्द्र रचित **'शंकराचार्य'** में शंकर के चरित्र में **बुद्धितत्व है किन्तु हृदय वृत्ति के द्वन्द्वों का अभाव है।** प्रारम्भ से ही उनकी उक्तियां उनका दृढ़ आत्म-विश्वास और ब्रह्मज्ञान के परिचायक हैं। साधारण मानव और **महामानव के नीतिबोध** में यथेष्ट अन्तर होता है एवं विरोध की भी सृष्टि होती है। अतः अलौकिकता एवं लौकिकता का संघर्ष तथा कार्य-कारण परम्परा के चित्रण के द्वारा इस कोटि के नाटक सफल बनाये जा सकते हैं। बंगला साहित्य में इस कोटि के नाटक का श्रेष्ठ उदाहरण है क्षीरोदप्रसाद रचित **'रामानुज'** नाटक। इसकी तुलना श्री वियोगी हरि रचित हिन्दी नाटक **'प्रबुद्ध यामुन'** से करने पर दोनों नाट्य साहित्य की प्रवृत्ति पर प्रकाश पड़ेगा। दोनों नाटकों के प्रारंभ में प्रस्तावना है, जो परम्परा-पालन का उदाहरण है। 'रामानुज' प्रारम्भ से ही घट-

१. अंजना—लेखक सुदर्शन। दूसरा अंक, पांचवा दृश्य।

नाओं का बहिर्द्वन्द एवं अन्तर्द्वन्द है। रामानुज ब्रह्म के **अद्वैततत्व के सम्बन्ध में चिंता** कर रहे हैं एवं हृदय अत्यन्त आन्दोलित हो उठता है—

'पूर्ण ओइ, पूर्ण एइ—
पूर्ण होते पूर्णेर उदय !
तथापि — तथापि पूर्ण !
महापूर्ण पूर्णेर बाहिरे !
ए अनन्त विश्व तार
अनन्त व्याकुल दृष्टि लये
चेये आछे तार मुखपाने
अनादि अनन्त काल होते
सेइ ब्रह्म — नित्य दीप्त बन्हिशिखा
जीव नित्य स्फुलिंग ताहार ।'[1]

इस स्थल पर रामानुज समाहितचित हैं, उनके सतीर्थ के पुकारने पर भी उन्हें सुनाई नहीं देता। रामानुज वेदान्त-अध्यापक यादवाचार्य की वेदान्त व्याख्या से संतुष्ट नही हैं किंतु उनकी माता कान्तिमती आदेश देती हैं कि वे यादवाचार्य का विरोध न करें। रामानुज के वहिर्जीवन में उनके सतीर्थों की ईर्ष्या तथा अन्तरंग जीवन में आत्म-बोध तथा माता की आज्ञा का द्वन्द्व प्रारम्भ होता है ।

'प्रबुद्ध यामुन' नाटक में आलवन्दार यामुनाचार्य भी प्रारम्भिक दृश्य में अशान्त प्रतीत होते हैं। हृदय सागर में तूफान का आभास है—यामुन (मृग शावक को पुचकार कर)—"वत्स, जा—लौट जा। मेरे पीछे पीछे कहां तक जायगा ? अरे हमारे यहां वन का सा मन माना सुख कहां मिलेगा ? (मन में) हम विदेय वज्र-हृदय मनुष्यों के सम्पर्क में भला, इस भोली-भाली आंखों वाले पशुओं को सहज सुख कहां ?"[2] **दोनों नाटकों में धर्मशास्त्र संबंधी जो वाद-विवाद हैं** उनमें भी यथेष्ट नाटकीयता तथा बौद्धिकता का समावेश हुआ है, जैसे 'रामानुज' नाटक में । यादवाचार्य—"हूं ! ता होले" 'सर्वम् खलु इदम् ब्रह्म' एर अर्थ ब्रह्मेर स्वरूप, बोलते चाओ ना ?"

रामानुज—"स्वरूप बोलले ताके छोटो करा इय, ए समस्त तार गुण, तिनि नन। ...जेमन देह आमार—आमि देह नइ।"[3]

जैसे 'प्रबुद्ध यामुन' नाटक में—

कोलाहल—माधुर्य का क्या लक्षण है ?

यामुन—जिसमें प्रवेश करते ही अन्तःकरण द्रवीभूत हो जाय, उस आनन्द-विशेष को माधुर्य कहते हैं।

---

१. रामानुज—लेखक क्षीरोदप्रसाद विद्याविनोद
(क्षीरोद ग्रंथावली, प्रथम अंक, प्रथम दृश्य — ४
प्रकाशक वसुमती साहित्य मन्दिर, कलकत्ता) ।

२. प्रबुद्ध यामुन—लेखक श्री वियोगी हरि
प्रथम अंक, प्रथम दृश्य—पृष्ठ—१ (प्रथमावृत्ति सं. १९८६)

३. रामानुज—लेखक श्रीक्षीरोदप्रसाद विद्याविनोद....प्रथम अंक, द्वितीय दृश्य ।

कोलाहल—क्या माधुर्य द्रवीभाव का कारण नहीं है ?

यामुन—कदापि नहीं।

कोलाहल—क्यों ?

यामुन—आस्वाद रूप आनन्द से अभिन्न है।

कोलाहल—विस्तार से कहो।

यामुन—द्रवीभाव एक प्रकार से रस ही है। जैसे रस कार्य नहीं है, उसी प्रकार द्रवीभाव भी कार्य नहीं हो सकता।"[1]

इन दोनों नाटकों में छोटे छोटे तथा नाटकीय संलाप यह प्रमाणित करते हैं कि पौराणिक नाटकों की शैली अपने पुरातन रूप को त्यागकर नवीन बन चली थी किन्तु कला की दृष्टि से इस कोटि के नाटकों की कसौटी यह है कि उनमें **नाटकीय घटनाओं के घात-प्रतिघात में चरित्र का विकास हो चला है अथवा अलौकिक घटनाओं के समावेश** द्वारा वास्तविकता तथा नाटकीयता को क्षति पहुंचाई गई है। थोड़ी बहुत अलौकिकता के प्रभाव से ऐसे नाटकों की रक्षा करना अत्यन्त कठिन है क्योंकि लेखक स्वयं संस्कारों से आक्रान्त रहता है। **'रामानुज' नाटक में गोंडारण्य** रामानुज के पूर्व जन्म की स्मृति जाग उठती है, यह अतिलौकिक है किन्तु इसे हम असम्भव व अलौकिक तत्व नहीं कह सकते। प्रथम अंक, तृतीय दृश्य में **गोपालवेशी कृष्ण** प्रवेश करते हैं जिसमें यह दिखाया गया है कि वरदराज कांचीपूर्ण के साथ नित्य लीला में रत हैं—यह अलौकिक तत्व है। उसी तरह 'प्रबुद्ध यामुन' नाटक में पांचवा अंक चौथा दृश्य—श्री रंगजी का मंदिर—भगवान् की स्तुति। नेपथ्य में—"यामुन। प्रबुद्ध यामुन। तुम्हारे समस्त संकल्प सफल होंगे। शेषावतार रामानुज स्वामी तुम्हारे संकल्पों को पूरा करेंगे। तुम्हारे सम्प्रदाय पर सदा विष्णुप्रिया लक्ष्मी की कृपा रहेगी। वैष्णव धर्म की विजय-वैजंती अनन्त कालपर्यन्त पृथ्वी पर फहरायगी।"

(आकाश से पुष्प वर्षा होती है)

यहां आकाशवाणी द्वारा भक्ति का प्रतिपादन ही नहीं, वैष्णव धर्म की प्रचारात्मक वाणी सुनाई देती है। ब्रज एवं गौड़ में जो वैष्णव भक्ति की धारा बही थी हिन्दी तथा बंगला के पौराणिक नाटककार उसी पवित्र भूमि में अपनी रचना कर रहे थे एवं जिस तरह अपने को युग-प्रभाव से अछूता नहीं रखा जा सकता है उसी प्रकार युग-संचित भाव-धाराओं से भी मुक्त नहीं रखा जा सकता है।

धर्माचार्य तथा महात्मा ऐतिहासिक पात्र ही होते हैं किन्तु धार्मिक भावनाओं का उनके जीवन से अभिन्न संपर्क हो जाने के कारण तथा उनके चमत्कारों (Miracles) के सम्बन्ध में अनेक किंवदन्तियां फैल जाती हैं। ऐसे महात्माओं के सम्बन्ध में

---

१. प्रबुद्ध यामुन—लेखक श्री वियोगी हरि—दूसरा अंक, चौथा दृश्य।

हिन्दी तथा बंगला में रचित दो अत्यंत प्रसिद्ध नाटकों की तुलना से कुछ तथ्यों पर प्रकाश पड़ेगा। **'बिल्वमंगल ठाकुर'** गिरीशचन्द्र की श्रेष्ठ रचना है एवं महात्मा **'ईसा'** उग्र की एक ऐसी रचना है जिसकी प्रशंसा में प्रेमचन्द ने लिखा है—"महात्मा 'ईसा' महाशय 'राय' के किसी नाटक से भी टक्कर ले सकता है।"[1] **'बिल्वमंगल ठाकुर' पार्थिव प्रेम से दिव्य प्रेम की ओर** अभिसार की मार्मिक कथा है किन्तु **'महात्मा ईसा' में धर्म तत्व के साथ राजनैतिक** तत्व ठूँस कर उसे शुद्ध ऐतिहासिक बनाने का प्रयास किया गया है। एक ओर 'महात्मा ईसा' विचारों की गहनता तथा घटनाओं की वास्त-विकता की दृष्टि से हिन्दी नाटक की परिपक्व शैली का उत्कृष्ट उदाहरण है, दूसरी ओर दिव्य प्रेम का मतवालापन एवं भाव-तन्मयता का इसमें अभाव है।

'बिल्वमंगल ठाकुर' का आरम्भ ही **प्रेम के अन्तर्द्वन्द्व** से होता है। प्रणयिनी चिन्तामणी द्वारा उपेक्षित बिल्वमंगल नाना भावों से घिरकर पथ से जा रहा है। इस समय एक भिक्षुक प्रेम की तूफानी प्रवृत्ति पर एक गान छेड़ता है और अशान्त प्रेमी का हृदय उन गीत-तंरगों पर लहराता है। **किन्तु 'महात्मा ईसा' नाटक के मंगलाचरण का राष्ट्रीय-गान लेखक के युग-चेतना के प्रभाव को व्यक्त करता है।** इसके प्रथम दृश्य में **पुण्यपुरी काशी** की एक सड़क पर ईसा चल रहे हैं। ईसा भारत की सभ्यता का मुग्ध होकर अवलोकन कर रहे हैं। ईसा के **गुरू विवेकाचार्य** हेरोद के अत्याचारों के बारे में बातें सुनकर कहते हैं—"स्वदेश का उद्धार करने के लिए तुम्हें कर्मयोग का अभ्यास करना पड़ेगा—कर्मयोगी बनना पड़ेगा।"[2] विवेकाचार्य की पालिता कन्या **शान्ति** ईसा से प्रेम करती है। इस प्रेम में द्वन्द्व नहीं है, पूर्ण निष्ठा तथा पवित्रता है। लेखक ने **हेरोद के अत्याचारों** का ही मार्मिक वर्णन किया है जो हमें कंस के अत्याचारों की याद दिलाता है। किन्तु 'बिल्वमंगल ठाकुर' में काम की लहरों में उठता गिरता हुआ किस तरह हृदय प्रेम साधना के तीर पर पहुंच जाता है इसका सजीव, मर्मस्पर्शी संघर्ष-चित्र है। जब बिल्वमंगल का अन्तर्द्वन्द्व चरम हो उठता है उस समय नदी तीर पर **श्मशान में राधा भाव की मूर्त्त प्रतीक पागलिनी से उसकी भेंट** होती है। यह चरित्र अत्यन्त गूढ़ तथा **दार्शनिकता** से परिपूर्ण है। बिल्वमंगल चिन्तामणि से मिलने के लिए नदी में कूद पड़ते हैं। बिल्वमंगल चिन्तामणि के **प्रेम की यह तन्मयता,** बाह्य ज्ञान विलोपी अन्तर्दशा ही प्रेमी को भगवत् प्राप्ति के पथ में दुर्निवार आकर्षण द्वारा खीच ले जाती है, बिल्वमंगल का मोह भंग हो जाता है, काम दिव्य प्रेम में परिणत होता है एवं इसकी चरम परिणति है **दिव्योन्माद**। बिल्वमंगल का अन्धा हो जाना। इस नाटक में न केवल जात्रा-शैली तथा शेक्सपियर की शैली का समन्वय हुआ है, न केवल बगाल के भावुक हृदय तथा भक्ति-साधना की झांकी है, वरन् अन्त में निहित अन्ध भक्त के हृदय की शान्ति में भारतीय दर्शन मूर्त हो उठा है।

---

१. महात्मा ईसा—लेखक उग्र—पृष्ठ–७
(प्रकाशक—भारती भंडार, लीडर प्रेस, इलाहाबाद। चतुर्थ सस्करण)
२. महात्मा ईसा—लेखक उग्र—प्रथम अंक, द्वितीय दृश्य।

वाह्य-घटनाओं की प्रचुरता इस नाटक में नहीं है। किन्तु वारवनिताओं के प्रेम का विश्लेषण, धाकमणि और साधक प्रसंग, पागलिनी, भिक्षुक एवं कृष्ण प्रेम विभोर बिल्वमंगल के भावचित्र इस नाटक की पौराणिकता के उस लक्षण की पूर्ति करते हैं, जिसमें दिव्योन्माद का सजीव चित्रण हो। 'महात्मा ईसा' नाटक में **ईसा को भी पागल कहा गया है।** किन्तु जो चित्र खींचे गये हैं **उनमें भावुकता तथा दार्शनिकता नहीं, अत्याचार और बलिदान** की वस्तुतथ्यता है। ईसा की मृत्यु के बाद का दृश्य—'हेरोद—चुप रह। उस नीच का नाम न ले। वह तो पागल था—मूर्ख था।

एलाज़र—वह पागल था ? तब—तब बुद्धिमान आप लोग होंगे ?

परन्तु सम्राट ! यह कैसी बात है कि उस पागल की आप बुद्धिमानों से, उस निर्बल की आप प्रबलों से, उस निर्धन की आप धनिकों से आज अधिक प्रतिष्ठा है।'[1]

लेखक ने राष्ट्रीय उद्देश्य को इसमें रूप देना चाहा, किन्तु धर्मप्राण ईसा से सम्बन्धित नाटक पौराणिक वातावरण से अपने को मुक्त नहीं रख सकता। अतः ईसा के सम्बन्ध में जो विश्वास ईसाइयों में है कि क्रास में लटकाए जाने के बाद वे दफनाये गये। उसके चार दिन बाद अनेकों ने उनकी छायामूर्ति देखी (Crucifixion and Ressurrection)। इस अलौकिक घटना पर प्रकाश डालना आवश्यक हो जाता है। इस नाटक के तृतीय अंक के दशम दृश्य में शावेल को **ईसा की तेजोमयी मूर्ति** दोनों हाथ सामने की ओर उठाये दिखायी पड़ती है। शावेल मूर्छित होकर गिर पड़ता है। यह दृश्य इस नाटक की वस्तुतथ्यता पर एक प्रश्न चिन्ह है एवं नाटक की पौराणिकता की मांग है।

अतः हिन्दी तथा बंगला नाटकों की भाव-गहनता की मात्रा में पार्थक्य होते हुए भी वे यह प्रमाणित करते हैं कि **ईश्वरीय प्रेरणा से आविर्भूत होने वाले महात्माओं के जीवन से सम्बन्धित नाटकों में अलौकिक तत्वों का भले ही मिश्रण हो जाये। किंतु ऐसे नाटकों का युग समाप्त नहीं हुआ। नित नवीन दार्शनिक दृष्टिकोणों से उन पुरातन कथा-वस्तुओं पर प्रकाश डालना आवश्यक है।** इस कोटि के नाटक बहुत ही कम हैं। किन्तु जो है वे नाटकों की प्रवृत्ति पर यथेष्ट प्रकाश डालते हैं।

आध्यात्मिक तत्व रूपक

जिस तरह पौराणिक कथाओं के आधार पर वस्तुनिष्ठ नाटकों की रचना हुई है। उसी तरह **अंतर्जगत की जो अव्यक्त कथा है, उसे सांकेतिक रूप देकर आध्यात्मिक तत्व रूपकों की रचना हो सकती है।** संस्कृत में रूपक शैली के नाटक का उदाहरण 'प्रबोध चन्द्रोदय' है। जिसमें महामोह, विवेक, वैराग्य आदि का मानवीयकरण हुआ है। **रूपक नाटकों में किसी भाव व नीतिकथा को रूपक-चरित्रों द्वारा**

---

१. महात्मा ईसा—लेखक उग्र—तृतीय अंक, एकादश दृश्य।

व्यक्त किया जाता है तथा इसमें प्रत्यक्ष एवं प्रच्छन्न आख्यान दोनों ही समान रूप में मर्मस्पर्शी होते हैं। इन नाटकों में लेखक किसी तथ्य का रूपक द्वारा ज्ञान कराना चाहते हैं। किन्तु जब तत्वों का इस रूप में समावेश होता है कि **नाटक गम्भीर, रहस्यपूर्ण एवं भावलोक की वस्तु बन जाता है,** तब वह **सांकेतिक नाटक** कहलाता है। जब रूपक शैली तथा सांकेतिकता दोनों का मिश्रण कर नाटक को किसी भावादर्श व तत्व का वाहक बनाया जाता है, तब वह **तत्व रूपक** कहलाता है।

यह रीति अतीन्द्रिय, आध्यात्मिक जगत व स्वप्नलोक के वातावरण से आच्छन्न होने के कारण साधारण जनता को अधिक आकृष्ट नहीं कर पाती। इस कारण इस कोटि के नाटकों की रचना हिन्दी तथा बंगला में नहीं हुई। भारतेन्दु रचित 'भारत दुर्दशा' प्रतीक शैली के नाटक हैं। उनमें कोई सांकेतिकता नहीं है। इस प्रसंग में केवल रवीन्द्रनाथ ठाकुर रचित कुछ नाटक उल्लेख्य योग्य हैं। यूरोपीय साहित्य में वास्तव शैली एवं सांकेतिक शैली का मिश्रण हुआ। जर्मन नाट्यकार हाउप्टमैन, रूसी नाट्यकार आन्द्रेव्ह तथा चेखाव के नाटक अत्यन्त लोकप्रिय हुए। अमेरिका के अति आधुनिक नाट्यकार यूगेन ओ नील ने **'दी हेयरी एप'** में भी संकेतों का प्रयोग किया है। इब्सन के नाटक 'ए डाल्स हाउस' में नोरा का टारेंटेला घूर्णि-नृत्य उसके अनिश्चित भविष्य के पथ की आंधी में अग्रसर होने का संकेत है। यह तो केवल मात्र सूक्ष्म भावों की आभिव्यक्ति हुई। किन्तु जब यह भावलोक अतींन्द्रिय तथा आध्यात्मिक लोक में पर्यवसित होता है एवं नाटककार हृदय की रहस्यमय अनुभूतियों को किसी संकेत के सहारे स्पष्ट करने की चेष्टा करता है, तब वह नाटक अन्तर्जगत का नाटक बन जाता है। **मेटरलिंक तथा इयेट्स के नाटकों में ऐसे अज्ञेय जगत की झांकी मिलती है। रवीन्द्रनाथ** के आध्यात्मिक नाटकों को पाश्चात्य का प्रभाव हम नहीं कह सकते। क्योंकि वे उपनिषदिक ज्ञान गरिमा से भूषित थे एवं भारतीय धर्म साधना जिसमें मूर्तियों तथा प्रतीकों का विशिष्ट स्थान है, उससे वे भलीभांति परिचित थे। **भक्ति तथा ज्ञान का उनमें अपूर्व मिश्रण** हुआ है। इसके उदाहरण हैं—भानुसिंह की पदावली, गीतांजलि, नटराज, ऋतुरंगशाला आदि।

जीवन के गूढ़ सत्य का प्रकाश तथा **असीम का सीमा में विकास** ये दो सांकेतिकता के लक्षण हैं, जो उसे रूपक से भिन्न करती है। कार्लाइल का कहना है—'इन दी सीम्बाल प्रापर, व्हाट वी काल ए सीम्बाल देयर इज एव्हर, मोर आर लेस, डिस्टिंकटली एण्ड डिरेक्टली, सम एम्बाडीमेंट एण्ड **रेवेलेशन आफ दी इनफिनिट।** दी इनफिनिट इज़ मेड टू ब्लेंड इटसेल्फ विथ दी फायनाइट टू स्टेंड व्हिज़िबल एण्ड इज इट वेयर, एटेनेबल देयर।'

यही सीमा तथा असीम का मिलन जो रवीन्द्रनाथ का जीवन-दर्शन है उन्हें तत्व रूपकों की रचना में प्रवृत्त करता है। उनके तत्व-प्रधान नाटक हैं—प्रकृतिर प्रतिशोध, शारदोत्सव, राजा, **अचलायतन,** डाकघर, **फाल्गुनी, मुक्तधारा, रक्तकरवी,** कालेर जात्रा, तथा ताशेर देश। इन सभी नाटकों में सांकेतिकता है तथा किसी न

किसी भावलोक का उद्घाटन हुआ है। किन्तु अध्यात्मिक तत्व रूपक की दृष्टि से **'राजा'** एवं **'डाकघर'** ही इस कोटि के नाटकों में परिगणित हो सकते हैं। अन्य नाटकों में प्रकृति-दर्शन, यान्त्रिक सभ्यता के प्रति तथा पूंजीवाद के प्रति विक्षोभ, जड़ नियमों के प्रति व्यंग्य बाण निक्षेप आदि हैं किन्तु आत्मा की आकुलता, आकांक्षा तथा रहस्य-मय प्रेम की व्यंजना केवल शुद्ध रूप में राजा तथा डाकघर में ही है। इस कोटि के नाटकों की रचना 'गीतांजलि' के कवि के लिए ही सम्भव था वरना हिन्दी तथा बंगला नाट्यकला उस प्रौढ़ता की सीमा तक नहीं पहुंची है जहां पहुंच कर इस अतीन्द्रिय जगत के नाटक की रचना सहज-साध्य हो सकती है। उपेन्द्रनाथ भट्टाचार्य ने रवीन्द्र-नाथ के इन नाटकों को **रूपक-सांकेतिक** नाटक कहा है। वे लिखते हैं—

"अवश्य रवीन्द्रनाथ के इस श्रेणी के नाटकों को साधारणतः सांकेतिक नाम दिया जा सकता है, कारण जो तत्व व भाव सत्य जगदातीत है, जो असीम है, अनन्त है, **अनिर्वचनीय** है जिसे बुद्धि के उज्जवल आलोक में पकड़ा नहीं जा सकता, केवल **दिव्यानुभूति** के गोधूलि आलोक में छाया-रेखा में उपलब्ध किया जा सकता है, वही इन नाटकों में **नाना आभास, इंगित एवं व्यंजनाओं के द्वारा व्यक्त** हुआ है। नाट्यकार का **मूल उद्देश्य ही एक अपार्थिव, अदृश्य, अज्ञेय जगत** और **उसकी विचित्र अनुभूतियों व अभिज्ञताओं को रूपदान की चेष्टा है।** मूलतः यही **सांकेतिक शिल्प** का कार्य है। किन्तु स्थान स्थान पर इन तत्वों व भावों को निर्दिष्ट, **स्थिर रूप में आबद्ध करने की बुद्धि-प्रणोदित, सज्ञान प्रचेष्टा लक्ष्य होती है।** यह **रूपक** की सीमारेखा है। इस द्वैतरूप का मिलनांकित रूप ही रवीन्द्रनाथ की इस श्रेणी के नाटकों का रूप है। इन्हें रूपक-सांकेतिक नाटक कहने से इनके स्वरूप को प्रकाशित किया जा सकता है।"

शैली की अपेक्षा इन नाटकों की विशेषता इसमें है कि अन्तरंग जगत में उद्वे-लित परमात्मा की ओर उन्मुख भाव धाराओं का इनमें रहस्यपूर्ण ढंग से चित्रण हुआ है। **यह धर्म विषयक अंतरंग, अत्यन्त सूक्ष्म** अभिव्यक्ति है जिनमें बुद्धि की अपेक्षा भावों की प्रधानता है। रवीन्द्रनाथ के 'राजा' नाटक के विश्लेषण से यह विशेषता स्पष्ट हो जायगी। भारत की विशेषता उसके दर्शन में है जो अध्यात्म-प्रधान है। उसकी आध्यामिकता के मूल-मंत्र हैं **त्याग एवं तपस्या**। महाकवि कालिदास ने 'अभिज्ञान शाकुन्तलम् में महाभारत तथा पद्म-पुराण के एक आख्यान को लेकर उसमें निजी जीवन-दर्शन तथा कलात्मकता का मिश्रण करके उक्त नाटक के नायक नायिकाओं को जो रूप दिया वह त्याग एवं तपस्या द्वारा ही भास्वर हुआ है। हिन्दी तथा बंगला पौराणिक नाटकों में जिन आख्यानों एवं चरित्रों का प्रयोग हुआ है उनमें भी प्रधान पात्रों के त्याग की महिमा का वर्णन अथवा भक्ति का उद्गार अधिक है। **'राजा' नाटक के मूल भाव में वैष्णव प्रेम के साथ औपनिषदिक ज्ञान का मणि-कांचन योग हुआ है,** साथ ही निष्काम कर्म का भी सन्देश है। यही रवीन्द्रनाथ का जीवन-दर्शन है।

उन्होंने किसी विशिष्ट सम्प्रदाय की धर्म-भावना तथा रूढ़ियों से अपने को आबद्ध नहीं किया।

'राजा' नाटक का आख्यान बौद्ध जातक के **कुश जातक** से लिया गया है। मल्लराज की प्रधाना महिषी को इन्द्र के वरदान से दो पुत्र हुए। ज्येष्ठ पुत्र **कुश** अत्यंत गुणवान तथा वीर थे, किन्तु कुरूप थे एवं कनिष्ठ **जयस्पति** अत्यंत रूपवान थे किन्तु गुणी व बुद्धिमान न थे। कुश अपनी कुरूपता के कारण विवाह के लिए अनिच्छुक थे। अतः उन्होंने यह बहाना किया कि स्वर्ण प्रतिमा जैसी सुन्दरी से वे विवाह कर सकते हैं अन्यथा नहीं।

मुद्रराजकन्या प्रभावती अत्यंत रूपवती थी एवं कुश की माता ने कुश का विवाह **प्रभावती** के साथ कराया एवं यह कहा कि कुलप्रथा के अनुसार वधु पुत्र प्रसव करने के बाद पति का मुख आलोक में देख सकती है, उसके पूर्व अन्धकार गृह में ही उनका मिलन होगा। प्रभावती पति को दिवालोक में देखने के लिये अत्यन्त आकुल हुई किन्तु उन्हें जयस्पति को गज पर आरूढ़ कराके दूर से दिखाया गया और कहा गया कि वे ही उसके पति हैं।

एक दिन उद्यान में कुश के साथ प्रभावती का साक्षात्कार हुआ। कुश के कुरूप मुख को देखकर प्रभावती आतंकित हुई एवं क्रुद्ध होकर पति को त्याग पितृगृह चली गई।

कुश अत्यंत विरह कातर हुए। वे छद्मवेश बनाकर मद्रराज्य में गये एवं कुम्भकार, मालाकार तथा पाचक बनकर वहां रहने लगे। प्रभावती कुश के वीणा-वादन से जान गई कि छद्मवेशी पुरुष कुश है किन्तु वे अपने अहंकार पर अटल रही। प्रभावती के पाणिग्रहण के लिए इच्छुक सात राजाओं ने मद्रराज्य पर आक्रमण किया एवं क्रुद्ध होकर मद्रराज ने निश्चय किया कि प्रभावती के सात टुकड़े उन सात राजाओं को दिये जायेंगे। प्रभावती की माता ने इस संकट काल में कुश की वीरता की याद की एवं प्रभावती ने यह भेद बता दिया कि छद्मवेशी पाचक ही कुश हैं। कुश ने इन सात राजाओं को युद्ध में पराजित किया तथा मद्रराज की अन्य सात कन्याओं के साथ उन पराजित राजाओं का विवाह हुआ। अन्त में प्रभावती ने प्रीत होकर कुश का अभिनन्दन किया।

इस आख्यान में रवीन्द्रनाथ ने थोड़ासा परिवर्तन किया है। नाटक की साधारण कथा तथा सांकेतिक अभिप्राय दोनों ही आकर्षणीय हैं। उनकी मुग्धकारिणी प्रतिभा ने नाटक के नायक राजा को जिस रूप में चित्रित किया है वह हिन्दी तथा बंगला नाट्य साहित्य में एक अद्भुत सृष्टि है। **राजा अन्धकार गृह से रानी सुदर्शना से वार्तालाप करते हैं। सुदर्शना उनकी बाल्य-विवाहिता पत्नि है। यह आत्मा और परमात्मा के जन्म-जन्मान्तर का अविच्छेद बन्धन है।** अंधकार गृह की सांकेतिकता यह है कि आत्मा अन्तर के उस गोपन-गुहा में ही चेतन्य-स्वरूप को अनुभव कर पाती है। सुदर्शना ने बसंत उत्सव में रूपवान सुवर्ण को ही राजा समझा एवं उससे मिलन के लिये आकुल हो उठी। यह सौन्दर्यलिप्सा तथा भोगाकांक्षा ही पाप है जो प्रभु से मिलने के लिये बाधा-स्वरूप

है। दासी सुरंगमा का अनुभव अधिक गम्भीर है। इस नाटक में **भगवन्प्राप्ति के लिये दास्य, सख्य, वात्सल्य, शान्त तथा माधुर्य भावों को चरित्रों के संकेत द्वारा हृदयंगम कराने की** चेष्टा की गई है। **ठाकुरदा** की भक्ति सख्य कोटि की है, वे मुक्त आत्मा के प्रतीक हैं किन्तु उनकी मुक्ति प्रेम में है, वैराग्य में नही। कांचीराज की धारणा है कि राजा का अस्तित्व ही नहीं है, सब झूठ है एवं वे कूट कौशल द्वारा सुदर्शना को प्राप्त करना चाहते हैं। **कांचीराज** नास्तिकता के प्रतीक हैं। इस नाटक के मूलभाव का प्रतीक है **वसन्त**। वह बाहर से अत्यन्त ऐश्वर्यशाली है। राजोपम है, किन्तु अन्तर उसका वैरागी है। पतझड़ और बहार, त्याग और भोग के संधिस्थल पर वह विराजमान है।

बसन्तोत्सव के समय कांचीराज महल में आग लगा देते हैं एवं सुदर्शना भीत होकर सुवर्ण के पास जाकर रक्षा की भीख मांगती है। सुवर्ण अपना मिथ्या-आवरण उन्मोचन कर बता देता है कि वह जाल है। अग्नि के प्रलय-नृत्य के बीच सुदर्शना राजा के भयानक रूप को देख घृणा से मुंह फेर लेती है एवं पितृगृह चली जाती है। साथ में उसकी दासी सुरंगमा भी आती है। रानी की आंखों में रूप का नशा चढ़ा हुआ है किन्तु दासी जानती है कि बाह्य-सौन्दर्य तो मरीचिका है।

पितृगृह में सुदर्शना का अब कोई सम्मान नहीं रहा। वह उपेक्षित ही रही। सुदर्शना को प्राप्त करने के लिए सात राजाओं ने आक्रमण किया एवं कान्यकुब्जराज बंदी हुए। ऐसी परिस्थिति में स्वयंवर सभा का आयोजन किया गया। उस सभा में सुवर्ण को कांचीराज ने अपना छत्रधारी बनाया। ग्लानि से सुदर्शना का अंतःकरण भर गया। दुःख की अग्नि में कवि ने धीरे-धीरे उसके पाप को भस्म किया। योद्धा रूप में राजा के सेनापति बनकर ठाकुरदा आते हैं एवं राजा के आगमन की सूचना देते हैं। राजा युद्ध में सभी को पराजित कर लौट जाते हैं। यह **जड़वाद पर अध्यात्मवाद की विजय है**। अब **रानी का अहंकार चूर्ण** होता है। वह राजा को पाने के लिये अत्यंत दीन वेश में पथ में निकल पड़ती है। यह **विश्वानुभूति का पथ** है जिसे अपनी अश्रु धारा से सिंचित करती हुई वह अपने भू प्रभू से मिलने के लिए जाती है। राजा रानी के मिलन में नाटक का अन्त है जो परमानंद के साथ आत्मा के योग का संकेत है। यही भारतीय साधना की दृष्टि से मुक्ति है। नाटक में राजा अन्त में भी अंधकार गृह से, अदृश्य रहकर ही बातें करते हैं—

अन्धकार घर

"सुदर्शना—प्रभु, जे—आदर केड़े नियेछो से—आदर आर फिरिये दियो ना,
आमि तोमार चरणेर दासी, आमाके सेवार अधिकार दाओ।
राजा—आभाके सइते पारबे ?
सुदर्शना—पारबो राजा पारबो। आमार प्रमोदबने आमार घरे तौमाके देखते चेयेछिलूम बलेइ तोमाके एमन विरूप देखेछिलूम-सेखाने तोमार दासेर अधम दासकेओ तोमार जेये चोखे सुन्दर ठेके। तोमाके तेमन कौरे देख-

बार तृष्णा आमार एकेबारे घुचे गेछे—तुमि सुन्दर नओ, प्रभु सुंदर नओ, तुमि अनुपम।"[1]

इस भारतीय अध्यात्मा साधना के पथ से भारतीय मनस्सुपरिचित है किंतु उसे नाटकीय रूप देकर, नाटक की वस्तु-निष्ठा एवं भाव-सत्य दोनों को कायम रखते हुए उसके द्वारा रस-सृष्टि का सफल प्रयास रवीन्द्रनाथ के सिवा अन्य किसी नाटककार ने नहीं किया, क्योंकि उन्हें इस नाट्य-प्रणाली की सफलता पर संदेह था।

बीसवीं सदी के पूर्वार्द्ध में रचित पौराणिक नाटकों के विभिन्न पक्षों पर प्रकाश डालने से ज्ञात होता है कि उनमें **भक्ति, कर्म एवं ज्ञान का समन्वय हुआ** है। भारतीय संस्कृति अत्यन्त पुरातन तथा उसका स्वरूप अत्यन्त वैचित्र्यपूर्ण है। उसमें **अनार्य, आर्य, शैव, वैष्णव, बौद्ध, शाक्त, सूफी** आदि के दार्शनिक विचारों का मिश्रण हुआ है। फिर भी इन सभी विभिन्नताओं में पाया जाने वाला, समस्त मानवता को एक सूत्र में आबद्ध करने वाला अध्यात्म-तत्व भी भारत का ही है। इसी कारण हिन्दी तथा बंगला के पौराणिक नाटकों में जो अनुभूति, कल्पना तथा चिन्तन का प्रवाह है उसका स्वरूप एक है। **विश्व मानवता के उपयुक्त धार्मिक आदर्श-भारतीय धर्म-चिन्तन की देन है।** इस विषय में रवीन्द्रनाथ लिखते हैं—

"हैज इण्डिया, इन हर रिलिजियस आइडीयल्स, नो सच स्पेश फार दी कामन लाइट आफ डे एंड ओपेन एयर फार आल ह्यूमैनिटी ? दी व्हिगर विथ विच दी सेक्टेरियन थैनाटिक विल शेक हिज हेड, मेक्स वन डाउट इट; दी ब्लडशेढ विच सो फ्रीक्वेन्टली आक्टर्स फार सच ट्रिवियल काजेस, मेक्स वन डाउन इट; दी क्रुयेल एण्ड इन्सल्टिंग डिस्टिंकशन्स बिटवीन मैन एण्ड मैन विच आर कैप्ट एलाईव अन्डर दी सैंवशन आफ रिलिजियन, मेक वन डाउट इट। स्टिल, इन स्पाइट आफ दीज, व्हेन आइ टर्न टू लुक बैक टू इण्यिांज ओन प्यूओर कल्चर—इन दोज एजेस व्हेन इट फूलरिश्ड इन इट्स ट्रूथ—आइ एम एम्बोल्डेन्ड टू एसर्ट दैट—इट इज देयर।"

भारत के दो पौराणिक लोक नायक जिनके चरित्र का प्रभात भारतीय नाट्य-साहित्य पर सर्वाधिक पड़ा उन पर सेठ गोविन्ददास ने "कर्त्तव्य" नाटक की रचना करते हुए प्रारम्भ में लिखा—

"राम देवता बनाना चाहते थे और कृष्ण पूर्ण मानव, उन्होंने खूब माखन, दूध, दही चुराया, सहस्त्र गोपियों से प्रेम किया, पांडवों के मित्र बने, कृष्णा जैसी तेजस्विनी नारी के सखा बने, गीता युद्ध-भूमि में सुनाया। राम ने भारत के उत्तर और दक्षिण में मिलन-स्थापित की, कृष्ण ने पूर्व और पश्चिम में। अवध से लंका और मगध से द्वारिका तक राजनीति का संचालन इन दो महापुरुषों ने किया।"

---

[1]—राजा—लेखक रवीन्द्रनाथ ठाकुर—२०वां दृश्य—अन्धकार घर (विश्वभारती, १९६१)

इस कथन से स्पष्ट है कि इस युग के नाटककारों ने पौराणिक चरित्रों के **लौकिकपक्ष को अधिक महत्व दिया तथा अलौकिक पक्ष को कम।** हिन्दी के पौराणिक नाटकों में अलौकिकता तथा आध्यात्मिकता के स्थान पर लौकिकता तथा मानवता के प्रति जो आग्रह "कर्त्तव्य" आदि नाटकों में दिखाई देने लगा उसका कारण बंगाल की भाव-धारा का प्रवाह है। डा० देवर्षि सनाढ्य लिखते हैं—"बंगाल ने हमें पाश्चात्य नाटक शैली का परिचय दिया और विचारों में क्रान्तिकारी परिवर्तन किया। **पौराणिक पात्रों में मानवतावादी दृष्टिकोण बहुत कुछ बंगला नाट्य-पद्धति की देन** है, हिन्दी के कुछ नाटकों में बंगला के भावुक संगीत की मीठी लय भी प्राप्त हुई है।"

यह प्रवाह जो बंगभूमि में स्त्रोतस्विनी के रूप में बहता हुआ दिखाई देता है, भारत के अन्य प्रदेशों में अन्तःसलिला बनकर रहता है एवं उपयुक्त अवसर प्राप्त करने पर अपने को व्यक्त करता है। भारतीय मनस् की एकता में कहीं भी व्यवधान नहीं है, विशेषकर पौराणिक नाटकों के क्षेत्र में उसकी धर्म-भावना भक्ति, आध्यात्मिकता तथा मानव प्रेम एक-रूप होकर व्यक्त हुआ है। यह एक-रूपता प्राचीन काल से चली आ रहीं है। भारत की आध्यात्मिकता के विषय में श्री हीरेन्द्रनाथ मुखोपाध्याय लिखते हैं— **आध्यात्मिकता भारतवर्ष की विशिष्टता है,—**। इतिहास की उपेक्षा कर एडविन आर्नल्ड के समान भारतानुरागी ने प्राचीन भारत पर ग्रीक-आक्रमण के संबंध में लिखा है—

"दी ईस्ट बोओड लो बिफोर दी ब्लास्ट,
इन पेशेन्ट, डीप डिसडेन,
शी लेट दी लीजन्स थंडर पास,
एण्ड प्लंज्ड इन थाट अगेन।"[१२]

इसी विचार-मग्न, भाव-गम्भीर भित्ति पर भारत के अस्तित्व का गौरव-पूर्ण सृजन हुआ है। हिन्दी तथा बंगला के पौराणिक नाटक भारत के दार्शनिक गंभीर चिन्तन तथा भगवद्भक्ति के श्रेष्ठ निदर्शन हैं।

निष्कर्ष:—

हिन्दी तथा बंगला में रचित पौराणिक नाटकों की सूची देखने से ज्ञात होता है कि बीसवीं सदी के प्रारम्भ से ही उनकी संख्या कम हो चली थी क्योंकि राष्ट्रवाद के प्रचार के कारण ऐतिहासिक नाटकों के प्रति साहित्यिकों का ध्यान आकृष्ट हुआ। यद्यपि पौराणिक नाटकों की संख्या का ह्रास हुआ तथा कुछ काल के लिए स्वदेशी आन्दोलन ने हमारी धर्म-भावना को पृष्ठ-भूमि में ही रखा, फिर भी इस युग में ही कई ऐसे पौराणिक नाटकों की रचना हुई जो हिन्दी तथा बंगला नाट्य-साहित्य के इतिहास में अमर रहेंगे। **उनमें पौराणिक भक्तिवाद भी है, सामयिक राष्ट्रवाद भी है तथा नवीन चेतना का प्रभाव भी है।** "सीता," "विल्वमंगल," "नर-नारायण," "कर्त्तव्य," "अंजना, **"नारद की वीणा" तथा "राजा" नाटक पौराणिक नाटकों के उत्कर्ष के उज्वल**

प्रतीक हैं । 'देवासुर,' "जनमेजय का नागयज्ञ,' "कारागार" तथा "कृष्णार्जुन-युद्ध" नाटक यह प्रमाणित करते हैं कि **पौराणिक कथाएं नवीनतम विचारों के भी माध्यम बन सकते हैं ।** कुछ पौराणिक नाटक साधारण कोटि के हैं जिनमें प्राचीन कथा का ही नाटकीय रूप प्रस्तुत करना लेखकों का उद्देश्य रहा। बद्रीनाथ भट्ट जिन्होंने हिन्दी नाट्य-साहित्य में भारतेन्दु तथा प्रसाद काल के बीच में नाट्य-प्रवाह को शुष्क होने से बचाया उनके पौराणिक नाटक 'बेनचरित' 'कुरुवन दहन' तथा राधेश्याम कथावाचक रचित, श्रीकृष्ण-अवतार, 'वीर अभिमन्यु' आदि इस कोटि के हैं । **बंगला नाट्य-साहित्य में पौराणिक नाटकों की धारा पर जात्रा की संगीत शैली का तथा गिरीशचन्द्र के भक्तिवाद का प्रभाव क्षीरोदप्रसाद के काल तक चलता रहा ।** कल्पना द्वारा अनेक घटनाओं की सृष्टि करके तथा **पौराणिक नायक नायिकाओं के जीवन में रोमांटिक भाव तत्वों की सृष्टि** करके भी अनेक नाटक लिखे गये जिनमें क्षीरोदप्रसाद द्वारा अर्जुन परिणीता नागकन्या उलूपी के चरित्र पर लिखा गया नाटक **'उलूपी,'** रवीन्द्रनाथ द्वारा अर्जुन परिणीता मणिपुर राजकन्या **चित्रांगदा** के चरित्र पर लिखा गया नृत्य-नाट्य 'चित्रांगदा' तथा उदयशंकर भट्ट रचित भावनाट्य '**मत्स्यगन्धा**'' '**राधा**' तथा **विश्वामित्र** उल्लेखयोग्य हैं । 'मत्स्यगन्धा' में चिर-यौवना, गर्विता नारी का मनोविश्लेषण, 'राधा' में नारी का आत्म-विलोपी प्रेम-दर्शन तथा 'विश्वामित्र' में तप एवं अहंकार का भावमय-चित्रण हुआ है । इन पौराणिक नाटकों की प्रवृतियों के विश्लेषण एवं विशेषताओं पर आलोक-पात के द्वारा हिन्दी तथा बंगला पौराणिक नाटकों के साम्य और वैषम्य सम्बन्धी निष्कर्ष स्थापित किये जा सकते हैं—

हिन्दी तथा बंगला पौराणिक नाटकों में साम्य

१. दोनों नाट्य साहित्य में **पौराणिक कथाओं में परिवर्तन लाने की अधिक चेष्टा नहीं की गई** क्योंकि अगर नवीन विचार हमारी पौराणिक भावनाओं को ठेस पहुंचाते हैं तथा कल्पना का प्राचुर्य प्राचीन कथाओं की महत्ता को लाघव कर देते हैं तो वे नाटकों के पौराणिक तथ्य को उत्कर्ष प्रदान नहीं कर सकते ।

२. दोनों नाट्य-साहित्य में **पौराणिक चरित्रों के प्रति श्रद्धा** तथा आस्था की भावना की रक्षा की गई है क्योंकि राम, कृष्ण, भीष्म, अर्जुन, यज्ञसेनी, सीता, राधा आदि केवल पौराणिक चरित्र ही नहीं भारतीय जीवन के आदर्श हैं । बंगला में माइकेल मधुसूदन दत्त ने 'मेघनाद वध' काव्य में अधर्म के पक्ष के रावण तथा मेघनाद के चरित्र को उज्वल रूप में अंकित किया तथा इसी काव्य पर आधारित चतुरसेन शास्त्री ने हिन्दी में **'मेघनाद'** नाटक की रचना की किन्तु ये अपवाद हैं जो जनता के मर्म को न छु सके । **अहल्या चरित्र भी** अपवाद है । द्विजेन्द्रलाल ने **'पाषाणी' नाटक में अहल्या के पद-स्खलन का भी** अत्यन्त सहानुभूति पूर्ण चित्रण किया है ।

३. जिस देश की भूमि अष्टछाप के कवियों की वाणी तथा गौड़ीय वैष्णव कवियों की वाणी से सिंचित हुई थी वह भक्ति की निर्मल धारा प्रवाहित करने के लिए उपयुक्त थी। अतः नवीन युग में भी **भक्ति की धारा लुप्त न हो सकी**। पौराणिक नाटक भक्ति की अभिव्यक्ति के श्रेष्ठ माध्यम हैं। सांस्कृतिक पुनरुत्थान के वे चरम निदर्शन हैं।

४. लोक मानस में धर्माचार्यों के प्रति भी जो अगाध श्रद्धा की भावना थी वह **लौकिक तथा अलौकिक प्रसंगों** से संश्लिष्ट होकर नाटकों में व्यक्त हुई। सन्देह, तर्क तथा बुद्धि जनता की श्रद्धा को न मिटा सकी।

५. **राष्ट्रीयता की भावना के विकास के साथ-साथ जो संस्कृति-प्रेम** पनप रहा था उसकी अभिव्यक्ति भी पौराणिक नाटकों में हुई क्योंकि यद्यपि भारत के तपोवन, उसकी त्याग तथा तपस्या, उसका वैभव न रहा किन्तु उसकी स्मृति, संस्कार तथा श्रद्धा अब भी हमारे हृदय में है। नाटककारों ने कल्पना द्वारा, नवीन उद्भावनाओं के द्वारा भारतीय संस्कृति को सजीव करने की चेष्टा की है। यह चेष्टा बंगला नाटक 'नर-नारायण' के महाभारत युग के चित्र में भी है तथा हिन्दी नाटक, 'नारद की वीणा' के वैदिक युग के चित्र में भी है।

हिन्दी तथा बंगला पौराणिक नाटकों में वैषम्य

१. **बंगला नाटकों में भक्ति एवं सन्देह के द्वंद्व का जो चित्र खींचा** गया है, मनोविश्लेषण हुआ है तथा युक्ति के द्वारा भक्ति की प्रतिष्ठा की गई है उस प्रवृत्ति का हिंदी में अभाव है। 'नर-नारायण' नाटक में कर्ण की पत्नि पद्मावती के हृदय में कृष्ण के प्रति सहज भक्ति है किन्तु कर्ण यह स्वीकार नहीं करना चाहते हैं कि पार्थसारथी ही नारायण के अवतार हैं। स्वप्न में यह दमित विश्वास जाग उठता है और कृष्ण की मनोहर छवि उन्हें मुग्ध करती है। अन्त में जीवन बलिदान देकर वे कृष्ण को आत्मसमर्पण करते हैं। केवल मात्र वैष्णवों की सहज भक्ति नहीं इसमें **शक्ति की साधना** भी सन्निहित है इसका यही कारण है कि बंगाल वैष्णव तथा शाक्त-साधना का प्रमुख क्षेत्र रहा।

२. बंगला नाटककार गिरीशचंद्र, क्षीरोदप्रसाद सैन आदि ने अपने पौराणिक नाटकों में **शेक्सपियर की शैली** का अनुसरण किया, चरित्रों में **त्रासद चरित्रों के लक्षण** हैं किन्तु **प्राधान्य भारतीय आदर्शवाद** को ही मिला है। योगेश चौधरी के **'सीता'** नाटक के अन्त में सीता के अन्तर्धान होने पर वाल्मीकि श्रीराम से कहते हैं कि सीता राम का बंधन अविच्छेद है। भीष्म की इच्छा-मृत्यु भी शोकावह नहीं, उसमें कृष्ण-भक्ति की अपार शांति है। कर्ण में त्रासदी के नायक के सबसे अधिक लक्षण होते हुए भी हम देखते हैं कि उनकी पराजय का कारण

नियति नहीं, ममता है, अर्जुन के प्रति ममत्व-बोध तथा कृष्ण के प्रति भक्ति के संचार के साथ उनका जीवन-दीप निर्वाचित होता है ।

३. **हिन्दी की राम-भक्ति-धारा** तथा **कृष्ण-भक्ति धारा के** नाटकों में या तो भक्ति का स्वर है, नहीं तो युक्ति का । राम, भीष्म, कर्ण जैसे पात्रों के हृदय में भावना की आंधी, संस्कार रूप में पराजय के बीज, उनकी महानता तथा दैव की निष्ठुरता आदि के चित्र हिन्दी के पौराणिक नाटकों में नहीं हैं। नाटकों का मूल तत्व है संघर्ष, चाहे वह बाह्य हो या आभ्यन्तरीन । हिन्दी नाटककारों के हृदय से रामअविचल भक्ति को बौद्धिक व मनोवैज्ञानिक तथ्य दूर न कर सकी । श्रीराम मर्यादा पुरुषोत्तम हैं, प्रजा के लिए, महत् आदर्शों के लिये वे [illegible] सीता का भी त्याग कर सकते हैं—नाटक के प्रारंभ से ही उनके चरित्र का यह रूप स्थिर हो गया है । किन्तु नाटक की सार्थकता के लिये पारिपार्श्विक प्रभाव तथा घात-प्रतिघात से चरित्र का विकास दिखाना आवश्यक है । **बंगला नाटककारों ने चरित्र-विकास दिखाने का प्रयास किया है ।** लव को देखकर श्रीराम के हृदय में पितृत्व के भाव जाग उठे हैं, सीता को वे ग्रहण करना चाहते हैं किन्तु पुनः वही संस्कार कहता है कि प्रजा के सम्मुख सीता अग्निपरीक्षा दें—प्रवृति एवं संस्कार के द्वन्द्व का यह तूफानी-दृश्य अनुपम है ।

४. **उच्च कोटि के कवित्व का जो विकास बंगला के पौराणिक नाटकों में है हिन्दी में उसका अभाव है ।** नाटकों में संगीत की परम्परा बंगला नाटककारों को जात्रा से मिली तथा कवित्व की परम्परा **अमित्राक्षर ' गेरिश छन्द"** से मिली । द्विजेन्द्रलाल की "सीता" क्षीरोदप्रसाद के "भीष्म", "नर-नारायण", योगेश-चौधरी की "सीता" आदि रचनाएं कवित्वश्री से मंडित हैं जो घटनाओं के अभाव की पूर्ति करती हैं । कवित्व की दृष्टि से हिन्दी में **उदयशंकर भट्ट** के पौराणिक नाटक—**"मत्स्यगंधा", "राधा"** तथा **"विश्वामित्र"** उत्कृष्ट हैं किंतु वे केवल मात्र भाव-नाट्य हैं । घटनाओं एवं भाव-चित्रों के सम्मिलित रूप को मधुर अमित्राक्षर छंदों में बंगला नाटककारों ने व्यक्त किया, कारण माइकेल मधुसूदन यद्यपि अमित्राक्षर छन्द नाटक में अपना न सके किंतु जो प्रयोग उन्होंने प्रारम्भ किया वह बीसवीं सदी के प्रारम्भ तक नाटकों में प्रतिष्ठित हो गया ।

हिन्दी के पौराणिक नाटकों में वस्तु-तथ्यता अधिक है एवं **बंगला के पौराणिक नाटकों में रोमांटिक उच्छ्वास अधिक ।** सेठ गोविन्ददास के 'कर्त्तव्य' में माखन लाल चतुर्वेदी के 'कृष्णार्जुन युद्ध' में, लक्ष्मीनारायण मिश्र के 'नारद की वीणा' में वस्तु-तथ्यता शृंखलित नाटकीय रूप में व्यक्त हुई है । 'महात्मा ईसा' नाटक में यह गुण सर्वाधिक है किन्तु बंगला नाटक 'पांडव गौरव', 'शंकराचार्य, 'रामानुज', 'सीता' आदि में भावोच्छ्वास अत्यधिक है—यह बंगला नाटकों की

विशेष प्रवृत्ति है। **मन्मथ राय के नाटक 'देवासुर' तथा 'कारागार' में यद्यपि नवीन विचारों की स्थापना हुई है,** फिर भी 'देवासुर' में वृत्रासुर का शची के प्रति प्रेम, बलासुर का सूर्या के प्रति प्रेम तथा 'कारागार' में चन्दना तथा कंका पर अत्याचार, वेदना की आकुल पुकार आदि दृश्य भाव के उच्छल **आवेग से परिपूर्ण** हैं, कहीं-कहीं ये नाटकीय—प्रवाह में वेग की सृष्टि करते हैं, कहीं-कहीं भवर की सृष्टि। रवीन्द्रनाथ ने **'राजा' नाटक में राजा को नेपथ्य में** रखकर जिस रहस्यपूर्ण वातावरण की एवं आध्यात्मिक प्रेम की सृष्टि की है वह रोमांटिक प्रवृत्ति का एक उज्वल दृष्टांत है। **अत्यधिक रोमांटिक प्रवृत्ति नाटकीय—रसास्वादन में बाधक भी बन जाती है—बंगला नाटक इस 'अति' से आक्रांत हैं।**

हिन्दी तथा बंगला पौराणिक नाटक बीसवीं सदी में संख्या की दृष्टि से नहीं, गुण की दृष्टि से अधिक समृद्ध हुए। शेक्सपियर की शैली का अनुसरण एक गौण बात है। इन नाटकों की प्रधानता इसमें है कि **युग के अनुकूल विचारों का संयोजन** करते हुए भी **भारतीय-आदर्शवाद** अपने आसन पर अधिष्ठित रहा। कथाविन्यास तथा चरित्र-चित्रण के साथ इन नाटकों में भारतीय हृदय की आध्यात्मिक—प्यास बुझाई गई। **रस की दृष्टि से ये नाटक श्रेष्ठ हैं।**

अध्याय ४

ऐतिहासिक नाटक

ऐतिहासिक नाटकों के स्वरूप की व्याख्या

"इतिहास" शब्द का अर्थ

अतीत की कथाएँ ही इतिहास हैं चाहे उनके प्रत्यक्ष प्रमाण मौजूद हों चाहे परोक्ष प्रमाण। निरुक्त के अनुसार 'इति-ह-आस' का अर्थ है 'ऐसा था' इसके अनुसार पुरावृत, प्राचीन आख्यान आदि जिनकी सत्यता पर हमें विश्वास है, इतिहास के अन्तर्गत आते हैं। इस दृष्टि से सृष्टि की सभी वस्तुओं का इतिहास है क्योंकि वे परिवर्तनशील हैं, चाहे वे जड़ हों या चेतन वे स्थिर नही हैं, गत्यात्मक हैं। भारत के मनीषीगण अति प्राचीन काल से इतिहास तथा पुराण का उल्लेख करते रहे हैं एवं **शतपथ ब्राह्मण** के एक श्लोक से प्रमाणित होता है कि भारत में इतिहास तथा पुराण नाम के स्वतंत्र ग्रंथ प्राचीन काल से ही थे एवं अष्टादश शास्त्र के अन्तर्गत माने जाते थे।

ऋग्वेदो यजुर्वेदः साम-वेदोऽथर्वागिरस
इतिहासः पुराणं विद्या उपनिषदः श्लोकाः सूत्राण्यनुव्यार व्यानानि।"
—यजुर्वेदीय शतपथ ब्राह्मण १४।५।४।१०।

इतिहास की परिभाषा देते हुए महाभारतकार **कृष्ण द्वैपायन** कहते हैं:—

"धर्मार्थकामं मौक्षानामुपदेशसमन्वितम्।
पूर्ववृत्तकथायुक्त मितिहासं प्रचक्षते॥"

—अर्थात् धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष, उपदेश, पूर्ववृत कथा आदि से जो समन्वित हो वह इतिहास कहाता है।

विष्णुपुराण की टीका में (३।४।१०) **श्रीधर स्वामी** का कहना है—

"आर्यादि बहुल्याख्यानं देवर्षि चरिताश्रयम्।
इतिहासमिति प्रोक्तं भविष्याद्भुतधर्म युक्॥"

—अर्थात् ऋषि प्रोक्त व्याख्यान, देवर्षि, अद्भुत धर्मकथादि जिसमें हों वही इतिहास है।

चाणक्य का कहना है—"पुराणमितिवृत्तमाख्यायिकोदाहरणंत्त
धर्मशास्त्रं अर्थशास्त्र चेतिहासः।"—
(कौटिल्य अर्थशास्त्र)

शंकराचार्य के अनुसार इतिहास हमारे पक्ष में अप्रत्यक्ष रहते हुए भी प्राचीनों के लिए प्रत्यक्ष हुआ—

"इतिहास पुराणमपि व्याख्यातेन मार्गेन सम्भवन् मन्त्रार्थवादमूलत्वात्
प्रभवति देवताविग्रहादि प्रपंचयितुम् । प्रत्यक्षमूलमपि सम्भवति ।
भवति हि अस्माकमप्रत्यक्षमपि चिरन्तनानां प्रत्यक्षम् । तथा च
व्यासादयो देवलाभिः प्रत्यक्षं व्यवहरन्तीति स्मर्यते ।"
(शारीरक भाष्य १।३।३८)

यह संक्षेप में इतिहास-पुराण के बारे में भारतीय-मनीषियों के मत हैं जिसके अनुसार धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष के सम्बन्ध में जो भी पुरावृत तथा आख्यान हैं वे इतिहास तथा पुराण कहलाते हैं। इस दृष्टि से इतिहास मानव को पुरुषार्थ के फलों की प्राप्ति कराने वाला एक महत्वपूर्ण साधन है। यह इतिहास सम्बन्धी व्यापक दृष्टिकोण है एवं पाश्चात्य मनीषियों की यह धारणा भ्रान्त है कि ग्रीक वीर अलेक्झेन्डर के भारत-आक्रमण के बाद से भारतीय इतिहास की रचना वैज्ञानिक प्रणाली में प्रारम्भ होती है। हिरोदोतस, आरियन आदि इतिहासकार ग्रीस में प्रसिद्ध थे। ग्रीक भाषा के अनुसार **'हिस्ट्री'** शब्द का अर्थ है, **'अनुसंधान'** जो कि भारतीय मतानुसार इतिहास-पुराण के व्यापक अर्थ से सादृश्य रखता है। जर्मन भाषा में इतिहास के लिए **'गेशिख्टे'** शब्द (Geschichte) प्रयुक्त होता है जिसका अर्थ है **'घटित होना'** जो कि इतिहास का निरुक्त के अनुसार जो 'इति–ह–आस' का अर्थ है उससे सादृश्य रखता है। फ्यूरर **हिटलर** ने "माइन कम्प्फ" ग्रंथ में इतिहास के अध्ययन का यही उद्देश्य लिखा है कि हम ऐतिहासिक घटनाओं के साथ यह अनुसंधान करें कि किन तथ्यों ने उन घटनाओं को जन्म दिया। **श्री जवाहरलाल नेहरू** ने "विश्व इतिहास" में विश्व की सभी प्रधान जातियों के इतिहास को अपने आदर्श की तुला पर तौला है। जर्मनी के प्रसिद्ध दार्शनिक **हेगेल ने** 'स्टेट' को 'डिवाइन आइडिया' कहा है एवं उनकी दृष्टि में इतिहास "मार्च आफ दी एबसोल्यूट" है। "भारतेर मुक्ति संग्राम" नामक ऐतिहासिक ग्रंथ में **नेताजी सुभाषचन्द्र** की ऐतिहासिक धारणा इसी राष्ट्रबोध से उद्दीप्त है।

मानव-सम्यता के आरम्भ के पूर्व नक्षत्र-लोक एवं जन्तु-जगत के प्रति भी अनुसन्धान की प्रवृत्ति को प्रेरित करता है एवं प्रत्यक्ष तथा परोक्ष प्रमाणों के आधार पर प्रकृति तथा प्राणी समाज के बीच एकता की स्थापना करता है। **एनसाइक्लोपीडिया ब्रिटानिका** के अनुसार "हिस्ट्री इन दी वाइडर सेन्स इज आल दैट हैज हैपेन्ड, नाट नियरली आल दी फेनोमेना आफ ह्यूमन लाइफ बट दोज आफ दी नेचरल वर्ल्ड एज वेल। इट इन्वलूड्स एवहरीथिंग दैट अंडर-गोज चेंज, एण्ड एज माडर्न साइन्स हैज शोन दैट देयर इज नथिंग एबसोल्यूटली स्टैटिक, देयरफोर दी होल युनिवर्स एण्ड एव्हरी पार्ट आफ इट, हैज इट्स हिस्ट्री।"

इतिहास और पुराण में अन्तर

व्यापक अर्थ में पुराण इतिहास के अन्तर्गत ही आता है। 'पुराण' शब्द का अर्थ पुरातन है एवं पुरातन आख्यायिकाओं का संग्रह-ग्रंथ पुराण समझा जाता था। उन आख्यायिकाओं में ऐतिहासिक तथ्य कुछ न कुछ अवश्य रहता था किन्तु काल के अधिक व्यवधान के कारण तथा अनेक राष्ट्र-विप्लवों द्वारा ध्वस्त होने के कारण राजाओं के नाम, कुछ मुख्य घटनाओं तथा काल के उल्लेख के सिवा उनमें कल्पना तथा अलौकिक तत्वों का भी समावेश हो जाता था। अतः पुराण में विशुद्ध ऐतिहासिक तथ्य के सिवा अन्य तत्वों का भी समावेश होता रहा है। पुराण इतिहास ही है किन्तु इतिहास पुराण नहीं है क्योंकि संकुचित अर्थ में वह किसी मानव-सम्प्रदाय के उत्थान—पतन का प्रत्यक्ष प्रमाणों के आधार पर लेखा-जोखा प्रस्तुत करता है किन्तु पुराण मानव-सम्प्रदाय के सिवा सृष्टि की प्रक्रिया का भी आख्यायिका-रूप प्रस्तुत करता है। सायणाचार्य ने वेदभाष्य में लिखा है कि देवासुर के युद्ध का जो वर्णन वेद के अन्तर्गत है, वह इतिहास है इसके पहले यह असत् था और कुछ भी न था तथा जगत की प्रारम्भिक अवस्था आदि सृष्टि प्रक्रिया पर प्रकाश डालने वाले आख्यान पुराण हैं। विष्णु, ब्रह्मांड, मत्स्य आदि महापुराणों में पुराण के पांच लक्षण निर्दिष्ट हुए हैं——

"सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वन्तराणिच।
वंशानुचरितश्चैव पुराणं पन्चलक्षणम्॥"

——अर्थात् सर्ग व सृष्टि तत्व, प्रतिसर्ग व पुनर्सृष्टि एवं लय, देव और पितरों की वंशावली, समस्त मन्वन्तर अर्थात् किस-किस मनु का कब तक अधिकार है तथा वंशानुचरित व सूर्य और चंद्रवंशीय राजाओं का संक्षिप्त विवरण, पुराण के ये पांच लक्षण हैं। इसके अनुसार वैदिक युग में भी पुराण का प्रचार था एवं आर्य ऋषियों ने अपनी अन्तर्दृष्टि द्वारा इसे अनायास प्राप्त किया था। पहले एक पुराण था फिर अट्ठारह

——एनसाइक्लोपीडिया ब्रिटानिका

व्हाल्यूम १३, पृष्ठ—५२७ (संस्करण, सन् १९११)

पुराण हुए जो वेदव्यास रचित माने जाते हैं। अट्ठारह पुराणों के नाम निम्नलिखित हैं—

ब्रह्म, पद्म, विष्णु, वायु अथवा शिव, भागवत, नारद, मार्कण्डेय, अग्नि, भविष्य ब्रह्म वैवर्त, लिंग, वाराह, स्कंद, वामन, कुर्म, मत्स्य, गरुड़ एवं ब्रह्मांड। इनके सिवा हिन्दुओं के अट्ठारह उप पुराण भी हैं, चौबीस जैन पुराण है तथा नौ बौद्ध पुराण हैं। इन पुराणों में प्राचीन कथा, बुद्धिमान व्यक्तियों के वंश—वृतांत आदि हैं। पुराणों में सभी तत्व आख्यायिका के रूप में हैं जिनमें देखी व सुनी हुई घटनाओं का वर्णन, रूपक—कल्पना, लोक—वार्ता अलौकिक तत्व, नीति के तत्व, किंवदन्तियां आदि मनोरंजक तथा सरस हो उठे हैं। इन पुराणों में जितना अंश पुरावृत्त (प्राचीन घटनाओं की कथा) है चाहे उनके प्रमाण प्रत्यक्ष हों व परोक्ष, वह इतिहास है।

पुराण के लिए अंग्रेजी में "**माइथोलाजी**" शब्द प्रयुक्त होता है। ग्रीक भाषा के अनुसार Muthos का अर्थ है "**कहानी** एवं logos का अर्थ है "किसी भी वस्तु की आलोचना व **सकारण विवरण**," इस तरह "माइथोलाजी" का व्युत्पत्यार्थ हुआ परम्परा से चली आती हुई कथाएं जिनमें प्राचीन काल के साधारण मानव समाज द्वारा उनकी सृष्टि संबंधी धारणा, धर्म-विश्वास, व्रत, कर्मकांड आदि पर प्रकाश डालने की चेष्टा की गई है। ये वैज्ञानिक सभ्यता में पले हुए मानव समाज की कृतियां नहीं हैं फिर भी इन रचनाओं के आधार पर यह नहीं माना जा सकता कि उनके बौद्धिक विकास का स्तर आधुनिक मानव समाज से नीचा था।

एन्साइक्लोपीडिया ब्रिटानिका के अनुसार 'माइथोलाजी' का तीन विभागों में वर्गीकरण कर उन पर प्रकाश डाला गया है। ये निम्नलिखित हैं—

१. खास पुराण (**मिथ प्रापर**)—इनमें सृष्टि तत्व तथा धार्मिक विश्वास संबंधी आख्यायिकाएं हैं।

२. किंवदन्तियां (**सागा, लीजेंड**) – इनके लोक-प्रचलित पुरावृत्त की पृष्ठभूमि पर कल्पना का रंग चढ़ाया जाता है।

३. लोक कथाएं (**मेरशेन, फोक-टेल**)—इनमें न तो कोई गम्भीर सृष्टि तत्व रहता है, न पुरावृत्त की पृष्ठभूमि किन्तु कल्पना के प्रयोग द्वारा सार्वभौम मानवीय भावनाओं की अभिव्यक्ति होती है। (व्हाल्युम १६ पृष्ठ–५४ संस्करण --सन् १९६२)।

माइथोलाजी के इन तीन रूपों का उत्तरोत्तर विकास भी होता है क्योंकि विभिन्न युगों के लेखक अपनी-अपनी कल्पना के अनुसार पुराण-वर्णित मुख्य घटनाओं की कार्य-कारण-परम्परा की रचना करते हैं एवं उन कथाओं की विशद व्याख्या द्वारा उसकी युक्ति संगत रूप रचना करते हैं। पौराणिक देवी देवता प्राकृतिक-शक्तियों के

प्रतीक हैं एवं अरूपक कथाओं में वैज्ञानिक तथा दार्शनिक तथ्य भरे पड़े हैं। पौराणिक आख्यानों में रूपक एवं इतिहास ही नहीं, मनोविश्लेषणात्मक स्वरूप की भी खोज हो रही है क्योंकि कई काल्पनिक पौराणिक आख्यानों में स्वप्न जैसा सादृश्य पाया जाता है।

प्राच्य तथा पाश्चात्य दृष्टिकोण के अनुसार **पौराणिक आख्यानों में कुछ ऐसे अंश हैं जिन्हें हम पुरावृत्त कह सकते हैं। अगर हम उन रूपकों की सही व्याख्या कर सकें व कल्पना द्वारा प्रक्षिप्त अंशों को अलग कर दें तो जो शेष रह जाता है वह इतिहास** है। हो सकता है कि पुराणों में जो इतिहास व पुरावृत्त का अंश है वह केवल राजनैतिक जीवन की विगत-कथा नहीं है, प्रकृति, धर्म, समाज आदि की भी विगत-कथा है। फिर भी प्रमाणों के अभाव में भी ये कोरी कल्पनाएं नहीं हैं, इनमें व्यापक सत्य भी छिपा हुआ रहता है। पौराणिक-आख्यानों की अगर युक्ति-संगत व्याख्या की जाये तो यह स्पष्ट हो जायेगा कि उनमें जगत की सभी वस्तुओं एवं प्राणी समाज का इतिहास निहित है।

साहित्याचार्य तथा साहित्यिकों के मत

इतिहास केवल मात्र किसी भी साम्राज्य के उत्थान-पतन का क्रमिक-विवरण ही नहीं, वह किसी भी जाति की सभ्यता तथा सस्कृति की, वर्तमान तथा भविष्य की आधार शिला है। अतः इतिहास केवल अतीत की गाथा नहीं है, वह भावी काल का प्रेरक भी है। फ्रैडरिक एच. **हार्टमन** लिखते हैं—

"येट हिस्ट्री इज दी रेकार्ड आफ दी एक्यूमूलेटेड एक्सपिरियेंस आफ पास्ट जेनेरेशन्स, एण्ड दी प्रेसेंट जेनेरेशन इज इनएव्हिडेंब्ली दी प्राडक्ट आफ दैट एक्सपिरियेंस, दी '**डेड हैंड आफ दी पास्ट' इज नाट रियली डेड,** इट कंटिन्यूज टू इन्फ्लुयेंस दी लिव्हिंग।"

इतिहास का ज्ञान प्रत्येक जाति के लिए अत्यन्त आवश्यक है। व्यापक दृष्टि से इतिहास के अन्तर्गत प्रमाणित तथ्य, किंवदन्तियां तथा सांस्कृतिक परम्पराएं भी शामिल हैं। **डा० जगदीशचंद्र जोशी** लिखते हैं—

"इतिहास की इन सब सामग्रियों पर इतिहासकार अपनी 'संश्लिष्ट सम्भाव्यता' का प्रयोग करता है और तभी ये उपकरण इतिहास का रूप धारण कर पाते हैं।' उन्होंने इतिहास का वर्गीकरण ध्रुव इतिहास, चल इतिहास तथा सांस्कृतिक इतिहास के रूप में किया है।

नाटककार जब ऐतिहासिक कथावस्तु का प्रयोग करता है तथा अपनी उद्भावनी शक्ति के द्वारा ऐतिहासिक घटनाओं को कार्य-कारण-श्रृंखला में बांध कर मानव जीवन के भावात्मक-सत्य को कल्पना से अनुरंजित कर उसे सजीव रूप देता है तब एक

विशिष्ट रस का उद्रेक होता है ।जिसे रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने "ऐतिहासिक रस" की आख्या दी है। भरत ने **नाट्यशास्त्र** में इतिहासाश्रित नाटकों को अत्यंत महत्व दिया है—

"धर्म्यर्यमर्थ्यं यशस्यं च सौपदेश्यं ससंग्रहम्
भविष्यतश्च लोकस्य सर्वं कर्मानुदर्शकम् ॥

सर्वशास्त्रार्थ सम्पन्नं सर्वं शिल्प प्रवर्त्तकम्
नाट्याख्यं पन्चंमं वेदं **सेतिहासं** करोम्यहम् ॥"[३]

कई उद्देश्यों से प्रेरित होकर नाटककार इतिहास के दबे हुए स्तरों में से मानवता की खोई हुई कहानी ढूँढ़ निकालता है। कभी वह राष्ट्र के पुनर्निर्माण के लिए, कभी संस्कृति की कड़ियों को जोड़ने के लिए, कभी किसी समस्या के समाधान के लिए एवं कभी मानव जीवन के चिरन्तन सत्य का चित्र खींचने के लिए ऐतिहासिक नाटकों की रचना में प्रवृत्त होता है। केवल प्राचीन का पुनरुद्धार करना ही उसका उद्देश्य नहीं होता, वह मानव-प्रेम, आशा, निराशा, हंसी, अश्रु की भाव-रेखाओं के द्वारा मानवता का नया तथा सुन्दरतर रूप अंकित करना चाहता है। भरत मुनि ने नाट्यों में इतिहास के जिस स्वरूप को समन्वित किया है वह इतिहास का व्यापक स्वरूप है। रवीन्द्रनाथ की दृष्टि इतिहास के संबंध में व्यापक है। उनके मतानुसार इतिहास केवल शासक वर्गों की विजय—पराजय—संघर्ष का प्रामाणिक लेखा-जोखा नहीं है, किसी भी देश के इतिहास के निर्माण में वहां की साधारण जनता जिस लक्ष्य की ओर अपनी सम्पूर्ण सत्ता के साथ अग्रसर होती है, उस आध्यात्मिक विजय पराजय—संघर्ष की भावपूर्ण अभिव्यक्ति भी इतिहास है, जिसमें महमूद के भारत आक्रमण से लेकर ब्रिटिश शासनकाल तक का वर्णन है, उसे अत्यंत तुच्छ तथा हमारे स्वदेश के स्वरूप को आच्छन्न करने वाला, भ्रामक तथा संकीर्ण इतिहास कहा है **"भारतवर्षेर इतिहास" लेख में रवीन्द्रनाथ** ने अपना मत उद्धृत किया है —

"भारतवर्षेर प्रधान सार्थकता की, ए कथार स्पष्ट उत्तर यदि केहो जिज्ञासा करेन से उत्तर आछे, भारतवर्षेर इतिहास सेइ उत्तरकेई समर्थन कोरिवे। भारतवर्षेर चिरदिनई एकमात्र चेष्टा देखितेछि, प्रभेदेर मध्ये **एक्यस्थापन करा,** नाना पथके एकई लक्षेर अभिमुखीन कोरिया देया एवं बहुर मध्ये एकके निःसंशयरूपे अन्तरतर रूपे उपलब्धि करा, बाहिरे जे सकल पार्थक्य प्रतीयमान हय ताहाके नष्ट ना कौरिया ताहार भितरकार निगूढ़ योग के अधिकार करा।"[१]

---

[१]—भारतवर्षेर इतिहास — रवीन्द्रनाथ ठाकुर,
"विचित्रा"—पृष्ठ २०६ (संस्करण सन् १९६१)

इतिहास के इस सूक्ष्म तथा आध्यात्मिक स्वरूप के सिवा रवीन्द्रनाथ ने इतिहास के उस ठोस तथा क्रियाशील स्वरूप पर भी प्रकाश डालने की चेष्टा की है जिसके द्वारा कोई भी जाति अपने अस्तित्व को बनाये रखने की चेष्टा करती है। रवीन्द्रनाथ की ऐतिहासिक धारणा, राष्ट्र दर्शन तथा लोक-संस्कृति दर्शन अत्यत व्यापक एवं उदार है।' भारत का इतिहास उनकी दृष्टि में जातीय जीवन के आदर्श का संकट काल, नूतन पथ का अनुसन्धान एवं समन्वय की आवश्यकता की समष्टि है।

"**ऐतिहासिक चित्र**"लेख में रवीन्द्रनाथ लिखते हैं—

"आसल कथा एइजे, जीवरे धर्म जेमन वर्तमाने जीवन रक्षा एवं भविष्यते वंशानुक्रमे आपनाके स्थायी कोरिबार चेष्टा, तेमनि जखन बहुसंख्यक विच्छिन्न लौकके कोनो एकटि विशेष मत वा भाव धारावाहिक स्मृतिपरम्परा एक जीवन दिया एक जीव कौरिया तोले तखन से वहिः शत्रुर आक्रमणे खाड़ा होइया दांड़ाइते पारे, एवं भविष्यत अभिमुखे आपन व्यक्तित्व, आपन सम्प्रदायगत ऐक्यके प्रेरण कोरिवार जन्य यत्नवान होइया उठे। इतिहास ताहार अन्यतम उपाय।"[२]

मानव-इतिहासि का और एक वस्तु-निरपेक्ष तथा अमूर्त (Abstract) स्वरूप भी है जिसके अन्तर्गत विज्ञान, दर्शन, राजनीति तथा समाजनीति के सूक्ष्म तत्वों की प्रतीक तथा संकेतों द्वारा अभिव्यक्ति होती है। रवीन्द्रनाथ ने "रक्तकरवी" नाटक में इस **अमूर्त इतिहासि** को मूर्त करने की चेष्टा की है। यह प्रयास पुराण का ही नव—रूपायण है। "रक्तकरवी" भावों का स्पष्टीकरण करते हुए रवीन्द्रनाथ लिखते हैं—नवदुर्वादलश्याम रामचन्द्रेर वक्ष-संलग्न सीता के स्वर्णपुरीर अधीश्वर दशानन हरण कोरे नियेछिलो, सेटा कि सेकालेर कथा ना एकालेर? सेटा कि त्रेतायुगेर ऋषिर कथा ना आमार मतो कलियुगेर कविर कथा? तखनौ कि सोनार खनिर मालिकरा नवदुर्वादल-विलासी कृषकदेर झूंटी घोरे टान दियेछिलो।"[३]

हिन्दी के सर्वप्रसिद्ध ऐतेहासिक नाटककार जयशंकर प्रसाद की इतिहास संबंधी धारणाएं अत्यन्त गम्भीर तथा गहन मनन, अध्ययन के फल हैं। यद्यपि **कल्हण रचित "राजतरंगिणी" ही एकमात्र संस्कृत इतिहास का ग्रन्थ** है जो कि प्राप्य है फिर भी **प्रसाद** ने प्रमाणित किया है कि आर्यों के प्राचीनतम ग्रंथ **ऋग्वेद में भी यथेष्ठ ऐतिहासिक तथ्य भरे पड़े हैं एवं** हमारे वेद पुराणों में मानव सभ्यता के इतिहास पर प्रकाश

---

[१]—रवीन्द्रायण (द्वितीय खंड)—सम्पादक श्री पुलिन बिहारी सेन (सं. १३६८ साल)

[२]—ऐतिहासिक चित्र—रवीन्द्रनाथ ठाकुर, रवीन्द्र रचनावली, नवम खंड, आधुनिक साहित्य, पृष्ठ—५०७

[३]—रक्तकरवी—रवीन्द्रनाथ ठाकुर, पृष्ठ—१०९ (१८८२ शकाब्द)

डालने योग्य सामग्री है जो कई अंशों में प्रक्षिप्त तथा कल्पना-समन्वित होते हुए भी अपने मूल-रूप में ऐतिहासिक है। "प्राचीन आर्यावर्त और उसका प्रथम सम्राट" लेख में प्रसाद लिखते हैं—

"इस लेख का सारांश यह है कि महावीर इन्द्र की विजयों ने प्राचीन आर्यावर्त के "त्रिसप्तकनद"—प्रदेश से असुर-उपासकों को हटा दिया। ईरान में वह असुर-उपासना, "अहुरमज्द"—धर्म, फूला फला। यह ऐतिहासिक प्रसंग ७५०० ईसवीं पूर्व से भी पहले का है। पिछले काल में भी मित्रायण, इक्ष्वाकु और क्षत्रिय जैसी आर्य धर्मानुयायी जातियां कभी-कभी उन असुर देशों में भी अपनी विजय वैजयंती उड़ा जाती थीं।

वह आर्य सभ्यता के इतिहास का प्रारम्भिक अध्याय है, जब इन्द्र ने आत्मवाद का प्रचार किया जब असुरों पर विजय प्राप्त की और आर्यावर्त में साम्राज्य स्थापन किया।"[1]

—इस प्रकार हम देखते हैं कि इतिहास के सम्बन्ध में भारतीय मनीषियों की दृष्टि अत्यन्त व्यापक तथा उदार है जब कि कई पाश्चात्य मनीषियों ने पक्षपातपूर्ण तथा भ्रामक धारणाओं के कारण भारतीय इतिहास के क्षेत्र को संकुचित रखने की चेष्टा की है। भारतीय इतिहास में भारतीय ही नहीं, सम्पूर्ण मानव-सभ्यता का इतिहास व्यक्त है।

साहित्य में इतिहास का प्रयोग

नाटकों में ऐतिहासिक तथ्य की विशुद्धता का कितना स्थान होना चाहिए इस विषय में मतभेद है। काव्य तथा इतिहास के महत्व की तुलना के संबंध में रवीन्द्रनाथ की यह उक्ति अत्यंत प्रसिद्ध है— 'जो व्यक्ति इतिहास पढ़ने का अवसर नहीं पायेगा, वह काव्य ही पढ़ेगा, वह हतभाग्य है। किन्तु जो व्यक्ति काव्य पढ़ने का अवसर नहीं पायेगा, इतिहास पढ़ेगा, संभवतः उसका भाग्य और भी बुरा है।" पाश्चात्य देशों में ऐतिहासिक नाटकों के स्वरूप पर यथेष्ट प्रकाश डाला गया है। अरस्तू ने ऐतिहासिक सत्य एवं संभाव्य सत्य दोनों के प्रयोग का समर्थन किया है। होरेस लिखते हैं—"इतिहास की घटनाएं नाम और तिथियां उसके लिए महत्व की नहीं होती, वह तो तीव्रता से घटनाओं

---

[1]—कोशोत्सव-स्मारक-संग्रह-सं० गौरीशंकर हीराचन्द ओझा,
—"प्राचीन आर्यावर्त और उसका प्रथम सम्राट"—लेखक श्री जयशंकर प्रसाद,
—पृष्ठ–१९४ (प्रकाशक काशी नागरी प्रचारिणी सभा, संस्करण, संवत् १९८५)

की ओर बढ़ता है और अपने पाठकों को मनोरंजक स्थलों की ओर इस प्रकार ले जाता है, जैसे उनका उन घटनाओं से पूर्व परिचय हो। जिस परिस्थिति को वह अपने रंग में रंगने में असमर्थ होता है, उसको छोड़ देता है और इस प्रकार कल्पना और सत्य का ऐसा मिश्रण प्रस्तुत करता है जिसमें कथा का मध्य उसके प्रारम्भ और अन्त दोनों से सम्बद्ध रहता है।"

इस विषय में **शिलर** की उक्ति भी महत्वपूर्ण है—

"काव्य का चरम लक्ष्य भावावेग है, अतः वह केवल प्रकृति के नियमों से बाध्य है, इतिहास के नियमों से नही। कलाकार को यह अधिकार है कि वह इतिहासकार को अपने न्यायालय में बुला सके और इतिहास पर काव्य का अन्तिम निर्णय दे सके। नाटककार को इतिहास की कसौटी पर कसना अनुचित है।"

कन्हैयालाल मुंशी का विचार है कि ऐतिहासिक कथा तथा चरित्रों में लेखक अपनी अनुभूतियो का मिश्रण कर सकता है—

"कलाकार इतिहास से उपलब्ध चरित्रों की रूपरेखा को पूर्णतया छोड़ नहीं सकता, उनके स्नायुओं में प्राण भर कर उन्हें जीवन्त अवश्य कर सकता है। परन्तु इन पात्रों में भी मनुष्य स्वभाव के मौलिक रंगों का पूर्ण समावेश होना चाहिए। वह कलाकार भूतकालीन पात्रों, उनके कृत्यो और प्रसंगों में स्वानुभव सिद्ध एकतानता द्वारा अपूर्वता की सृष्टि करता है।"

इन विभिन्न विद्वानों की उक्तियों से प्रमाणित है कि नाटककार इतिहास से उपकरण अवश्य ग्रहण करता रहता है किन्तु उसका **साध्य विषय काव्य एवं साधन इतिहास होता है।** दोनों का ही महत्व है एवं दोनों की अपनी अलग-अलग सीमा होती है। काव्यत्व इतिहास का गला न घोंट दे व इतिहास काव्य को रसहीन न बना दे।

धनंजय ने 'दशरूपकम्' में प्रख्यात कथावस्तु के संबंध में यह स्पष्ट कर दिया है कि अवान्तर कल्पना के योग द्वारा उसकी श्रृंखला शिथिल करना उचित नहीं है। **प्रासंगिक कथावस्तु में ही कल्पना का अधिक प्रयोग होना चाहिए।** उन्होंने प्रख्यात, उत्पाद्य तथा मिश्र तीन प्रकार की विभिन्न कथावस्तुओं का उल्लेख किया है—

"प्रख्यात मितिहासादेरुत्पाद्यं कवि कल्पितम्॥
मिश्रं च संकरात्ताभ्यां दिव्यमर्त्यादिभेदतः।"

भारतीय नाट्यशास्त्र के अनुसार रूपकों के प्रथम भेद **नाटक की कथावस्तु प्रख्यात** होना चाहिये। हिन्दी तथा बंगला नाटकों की रचना रूपक-भेद के अनुसार नहीं होती अतः नाटककार नाटक के किसी भी रूप में इतिहास का सहारा लेता है।

इतिहास का प्रयोग वह कई प्रकार से करता है। कभी-कभी वह इतिहास के तथ्यों का पूर्ण रूप से निर्वाह करता है। अतः मुख्य घटनाएं तथा मुख्य पात्र ऐतिहासिक होते हैं, इनके साथ सम्भाव्यता के आधार पर कल्पना का नियोजन होता है। कभी-कभी वह इतिहास के किसी मूल कथानक के आधार पर ही नाटक की सृष्टि करता है। कभी ऐतिहासिक पात्रों को काल्पनिक पृष्ठभूमि में रख कर नाटक की सृष्टि करता है। कभी पूर्ण कल्पना के आधार पर ऐसी कथा एवं पात्रों की सृष्टि करता है कि वे ऐतिहासिक न होते हुए भी ऐतिहासिक प्रतीत होते हैं।

ऐतिहासिक नाटकों का स्वरूप उसके **ऐतिहासिक तथ्य, कार्य-कारण-परम्परा, काल्पनिक वस्तु तथा पात्र**—सृजन के अतिरिक्त **ऐतिहासिक वातावरण सृजन** पर अधिक निर्भर करता है। सुदूर अतीत के स्थान, काल, क्रियाओं का इस तरह चित्रण करना कि वे वास्तविक प्रतीत होते हुए भी विगत लगें, आधुनिक विचारों का समावेश होते हुए भी वे भूतकालीन प्रतीत हों, सजीव चित्रण होते हुए भी मृत्यु का एक झीना पर्दा उनकी रहस्यमयता, सुदूरता तथा गम्भीरता की सृष्टि करे—ऐतिहासिक नाटकों की यह कसौटी है। लेखक की कुशलता इसी वातावरण-चित्रण पर निर्भर करती है एवं जो लेखक जितने सुदूर अतीत के रहस्यमय चित्र को स्पष्ट तथा सजीव-रेखाओं से खींच सकता है, वह उतना ही सफल ऐतिहासिक-नाटककार है। ऐतिहासिक तथ्यों की छान-बीन द्वारा उन नाटकों की उत्कृष्टता सिद्ध नहीं हो सकती, यद्यपि किसी विश्रुत सत्य के विपरीत कल्पना का प्रयोग करना अनुचित है। लेखक अपने ही देश एवं जाति के इतिहास को चित्रित करने का उद्देश्य रखता है एवं उसी में वह अधिक सफल भी होता है।

पुराण की अपेक्षा इतिहास की भित्ति अधिक ठोस होती है। **डा. देवर्षि सनाढ्य** लिखते हैं—"एक समय में पुराण और इतिहास समानार्थक थे, आगे चलकर उनमें साम्प्रदायिकता आई और धीरे-धीरे उन्हें वर्तमान स्वरूप प्राप्त हुआ। आज के दिन पुराण शब्द से जिस साहित्य का बोध होता है, वह यही विशेष मतवाद की पुष्टि के लिए निर्मित पुराण साहित्य है, जिसे पूर्ण अर्थों में इतिहास नहीं माना जा सकता। आज इतिहास '**इतिवृत्त का सच्चा बोध कराने वाला साहित्य** है और 'पुराण' अंशतया पूर्णतः ऐतिहासिक घटनाओं का सहारा लेकर आध्यात्मिक रहस्यों और तत्वों का बोध कराने वाला वाङ्मय है।" बीसवीं शताब्दी में पौराणिक कथाओं के द्वारा नाटकों में राजनैतिक तथा राष्ट्रीय विचारों की यथेष्ट अभिव्यक्ति हुई है फिर भी राष्ट्रीय विचारों की अभिव्यक्ति के लिए ऐतिहासिक वस्तु का चयन अधिक उपयुक्त सिद्ध होता है। उदाहरणार्थ—मन्मथ राय ने 'देवासुर' नाटक में राष्ट्रीय भावों के उन्मेष के लिये इस प्रसंग का मार्मिक चित्रण किया है कि दधीचि मुनि ने देव जाति की रक्षा के लिए प्राण-विसर्जित किये एवं उनकी अस्थि से निर्मित वज्र में इतनी शक्ति थी कि उसके द्वारा इन्द्र ने देव-शत्रु वृत्रासुर का वध किया। यह वृत्रसंहार की पौराणिक कथा रूपक

है एवं पृथ्वी पर सृष्टि के आदिकाल में मेघ का घुमड़ना, वज्रपात, वृष्टि एवं तत्पश्चात् सृष्टि के तत्वों पर इसमें प्रकाश डाला गया है। बंगला में कवि हेमचन्द्र ने इस कथा को लेकर "वृत्र-संहार" नामक काव्य की रचना की है। पुराणों की कथाओं में रूपक का तत्व समाया रहता है अतः वे उतनी वस्तुनिष्ठ नही हो पाती। नाटक की कथा-वस्तु जितनी वस्तुनिष्ठ होती है, उसका संबंध जितना लोक-जीवन से गहरा होता है, वह प्रभाव डालने में उतनी ही सफल होती है। राष्ट्रीय भावों को व्यक्त करने वाला द्विजेन्द्रलाल राय का "चन्द्रगुप्त" नाटक सर्वाधिक लोक-प्रिय अभिनीत नाटक है क्योंकि इसमें विदेशियों को विताड़ित कर एक विस्तृत भारत साम्राज्य गढ़ने के संघर्ष का, क्षत्रिय के वीरत्व और ब्राह्मण के त्याग का तथा दो महान् संस्कृति के मिलन के लिए चन्द्रगुप्त और हेलेन के विवाह के दृश्य हैं। चाणक्य का व्यक्तित्व दधीचि मुनि के व्यक्तित्व की अपेक्षा हमारे लिए अधिक ठोस वस्तु है क्योंकि वह इतिहास का पात्र है। राष्ट्रवादी दर्शन की अभिव्यक्ति के लिए मौर्यकाल से अधिक उपयुक्त काल क्या हो सकता है। **हिन्दी विश्वभारती** में इस काल के विषय में लिखा है—**"मौर्यकाल में** आकर भारत का राजनीतिक इतिवृत्त एक देदीप्यमान गौरवयुग में प्रविष्ट होता है, क्योंकि पौराणिक काल के बाद इसी युग में आकर पहले-पहल भारत की राष्ट्रशक्ति हमें एक सुगठित 'चातुरन्त' साम्राज्य के स्वर्ण सिहासन पर प्रतिष्ठित देखने को मिलती है।"

भारतीय साहित्य में राष्ट्रवादी दर्शन की प्रेरणा हमें बंकिमचन्द्र रचित **"वन्देमातरम्"** गीत से मिलती है। इस गीत को समग्र भारत ने अपना मंत्र बना लिया था एवं केवल भारत की सांस्कृतिक एकता ही नहीं, भारत की राष्ट्रीय-एकता "आनन्दमठ" नामक ऐतिहासिक उपन्यास के इस गीत द्वारा घोषित हुई। महा-महोपाध्याय हरप्रसाद शास्त्री "वन्देमातरम्" के विषय में लिखते हैं—"बंकिम बाबू ने जो भी कुछ किया वे सब एक पथ में मिले। वह पथ है जन्मभूमि की उपासना—जन्मभूमि को मां कहकर पुकारना—जन्मभूमि से प्यार करना—जन्मभूमि की भक्ति करना। उन्होंने जो यह कार्य किया, भारतवर्ष में और किसी ने नहीं किया।"

अतः ऐतिहासिक नाटकों की रचना का उद्देश्य केवल इतिहास का नाटकीय रूप प्रस्तुत करना नही था। इतिहास में कल्पना का मिश्रण हो जाने से **ऐतिहासिक रस** की अवतारणा होती है किन्तु बीसवीं सदी में जिन ऐतिहासिक नाटकों की रचना हुई उनका उद्देश्य अत्यन्त व्यापक, गूढ़ तथा महत्वपूर्ण था। द्विजेन्द्रलाल राय, जयशंकर प्रसाद, हरिकृष्ण प्रेमी जैसे प्रतिभाशाली लेखक केवल इसलिए ऐतिहासिक नाटकों की रचना नहीं कर रहे थे कि अतीत के खंडहरों में उनका मन बहल जाये, परन्तु इतिहास में प्रोथित भारत के गौरव का उद्धार कर वे उसे जन-मानस के समाने सजीव, सरस रूप में रखना चाहते थे। स्वदेश–प्रेम की व्यंजना, जीवन के उदास गुणों की अभि-व्यक्ति, महान वीरों के आत्मोत्सर्ग पर श्रद्धार्पण, देश-हितैषी साहित्यिक, समाज-सुधा-रक आदि के जीवन पर प्रकाश-पात इत्यादि ऐतिहासिक नाटककारों का उद्देश्य था।

ऐतिहासिक सामग्री के लिए उन्होंने टाड कृत 'राजस्थान का इतिहास,' स्मिथ, यदुनाथ सरकार, रमेशचन्द्र मजुमदार, डा. ईश्वरीप्रसाद, जायसवाल आदि प्रसिद्ध ऐतिहासिकों के ग्रंथ, पुराण, किम्वदन्ती, अक्षयकुमार मैत्र, राजेन्द्रलाल मित्र, हरप्रसाद शास्त्री, हीराचंद ओझा जैसे पुरातत्ववेताओं के लेख तथा जीवनियों को चुना ।

संस्कृत के ऐतिहासिक नाटक एवं हिन्दी तथा बंगला आदि देश-भाषाओं के साहित्य में उनके स्वरूप का विकास

संस्कृत नाट्यशास्त्र के अनुसार रूपक के दस भेदों में प्रथम नाटक कहलाता है । नाटक की कथावस्तु प्रख्यात होनी चाहिए । प्रख्यात से संस्कृत नाट्याचार्यों का तात्पर्य पौराणिक तथा ऐतिहासिक दोनों था । प्रख्यात कथावस्तु को लेकर संस्कृत साहित्य के स्वर्णयुग में कई उच्च कोटि के नाटकों की रचना हुई । भास रचित "प्रतिमा" तथा 'अभिषेक' नाटकों की कथावस्तु रामायण से तथा मध्यम व्यायोग, दूत-वाक्य, दूत घटोत्कच, कर्णभार, उरूभंग तथा पंचरात्र नाटकों की कथावस्तु महाभारत से ली गई है । इन पौराणिक नाटकों के सिवा भास की प्रसिद्धि उनके दो ऐतिहासिक नाटकों के लिए है । ये नाटक हैं—**स्वप्नवासवदत्ता** एवं **प्रतिज्ञा-योगंधरायण** । इन दोनों नाटकों में इतिहास प्रसिद्ध धीर ललित नायक, कौशाम्बी के महाराज उदयन की कथा है । उदयन का विवाह अवन्तिका के महाराज चंडप्रद्योत की कन्या वासवदत्ता से हुआ था । उदयन एक ऐतिहासिक चरित्र हैं किन्तु अनेक किंवदन्तियों की सृष्टि उदयन के चरित्र को लेकर हुई एवं आज हमारे सामने उदयन के विषय में जानने के लिए गुना-ढ्य की बृहत्कथा ही सहारा है । फिर भी उदयन के चरित्र को लेकर युक्तिसंगत रूप से जिन नाटकों की रचना हुई है वे ऐतिहासिक नाटक ही कहे जायेंगे, यद्यपि इस बात में सन्देह नहीं कि उनमें कल्पना का भी प्रचुर प्रयोग होगा । ऐतिहासिक तथ्यों में कल्पना के मिश्रण के सम्बन्ध में **श्री एच० एन० दासगुप्त एवं श्री एस० के० दे** का मत है—

"एट लिस्ट, दी आकरेंस आफ हिस्टोरिकल फैक्ट्स आर परसन्स डज नाट जस्टिफाइ दी डेसिगनेशन आफ ए हिस्टोरिकल ड्रामा टू दी वर्क आफ आर्ट, विच मस्ट नेसेसरिली ओ ए ग्रेट डील टू दी आथर्स **इमेजिनेशन** इन दी **इनजिनियस मेन्यूरिंग आफ दी स्टोरी।**"[१]

---

[१]—ए हिस्ट्री आफ संस्कृत लिटरेचर—एस० एन० दासगुप्त, एस० एन० दे
ह्वाल्यूम १, पृष्ठ—२६६
(यूनिवर्सिटी आफ कैलकटा, सन् १९४७)

कालिदास रचित **"अभिज्ञान-शाकुन्तलम्"** की कथावस्तु पद्मपुराण तथा महाभारत से ली गई है। इसमें दुष्यन्त-शकुन्तला के प्रणय के पतन, उत्थान का चित्र है। शकुन्तला भरत की माता बनकर ही सच्चे गौरव की अधिकारिणी होती है। शकुन्तला-पुत्र भरत के नाम पर भारतवर्ष का नामकरण हुआ। यह पौराणिक कथा है, इसमें अलौकिक घटनाओं का समावेश हुआ है फिर भी हस्तिनापुर के **पुरू-वंशी राजा दुष्यन्त** ऐतिहासिक चरित्र हैं। ऐतिहासिक क्षेत्र में संस्कृत का सबसे प्रसिद्ध नाटक विशाखदत्त-रचित **"मुद्राराक्षस"** है। इसमें नन्दवंश के पतन एवं मौर्यवंश के उत्थान की घटनाएँ हैं। चन्द्रगुप्त मौर्य इतिहासकारों द्वारा मान्य भारत के प्रथम चक्रवर्ती सम्राट हैं। पुराण, वृहत्कथा तथा ग्रीक इतिहास में चन्द्रगुप्त का उल्लेख है एवं चन्द्रगुप्त, चाणक्य, राक्षस तथा सवार्थसिद्धि ऐतिहासिक पात्र हैं। इस नाटक में भी इतिहास के साथ लेखक की कल्पना का यथेष्ट मिश्रण हुआ है किन्तु इतिहास-विरोधी घटनाएँ हैं। भवभूति रचित उत्तर रामचरित तथा महावीर चरित की कथावस्तु रामायण से ली गई है।

संस्कृत के ऐतिहासिक-पौराणिक नाटकों पर प्रकाश डालने से प्रमाणित होता है कि उनमें ऐतिहासिक तथा पौराणिक कथावस्तुओं के प्रयोग में अधिक भेद न था। दुष्यन्त, उदयन, चन्द्रगुप्त आदि नायकों की ऐतिहासिकता पर उन्हें पूर्ण विश्वास था। रामायण, महाभारत तथा पौराणिक आख्यानों का प्रयोग उन्होंने प्रख्यात कथावस्तु के रूप में किया। हिन्दी, बंगला आदि भारतीय देशभाषाओं के नाट्य-साहित्य में प्रारम्भ ही से पौराणिक तथा ऐतिहासिक नाटकों का भेद स्पष्ट हो गया। इनके दो कारण थे—प्रथम उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध में सांस्कृतिक- जागरण के फलस्वरूप भक्ति का ज्वार आया। फलस्वरूप भारतीय संस्कृति के पुनरुत्थान के लिए श्रीराम, श्रीकृष्ण जैसे पौराणिक नायकों के प्रति जन-मानस की भक्ति धारा उमड़ पड़ी। भक्ति के आवेश में अलौकिक तत्वों का उनमें यथेच्छ समावेश हुआ। इसके साथ ही सती नारियों के चरित्र, अवतार-पुरुषों के चरित्र आदि भी नाटककारों के प्रिय विषय हो गये। द्वितीय कारण यह था कि पाश्चात्य विद्वानों के विचारों के संस्पर्श से एक ओर इतिहास संबंधी हमारी धारणा संकुचित होकर प्रत्यक्ष प्रमाणों का आधार खोजने लगी एवं दूसरी ओर मौर्य-वंश, गुप्त वंश, राजपूत वंश एवं मुगल, मराठा आदि वंशों के इतिहास से सामग्री चुनकर राष्ट्रीय भावों की अभिव्यक्ति होने लगी। यह राष्ट्रीय-भावाभिव्यक्ति कभी उद्दीप्त भावनाओं के रूप में, कभी सांस्कृतिक गरिमा के वर्णन के रूप में देश के नेताओं, कवियों, समाज सुधारकों की जीवनी के नाट्य-रूपण में चित्रित हुई।

इस तरह बीसवीं सदी के प्रारम्भ से जिस ऐतिहासिक नाटकों के स्वर्णयुग का अभ्युदय हुआ उसमें **राष्ट्रप्रेम की प्रेरणा** सबसे अधिक थी। अतः पुरु, चंद्रगुप्त, स्कन्दगुप्त, महाराणा प्रताप, शिवाजी, दुर्गादास आदि नाटकों के नायक बने जो इतिहास के अनुसार विदेशी तथा विजातीय शत्रुओं से युद्ध ठानकर शौर्य एवं आत्म-बलिदान की अमर-निशानी छोड़ गये।

हिन्दी तथा बंगला के ऐतिहासिक नाटकों की पृष्ठभूमि

स्वदेशी आन्दोलन के तूर्यनाद से भारत में बीसवीं सदी का स्वागत हुआ। जनता एवं साहित्यिकों का ध्यान धार्मिक विषयों से हटकर राजनैतिक विषयों की ओर गया। बंग-भंग आन्दोलन, स्वराज्य आन्दोलन, जालियांवाला बाग हत्याकांड, सत्याग्रह आन्दोलन, सन् १९४२ का अगस्त-आन्दोलन, आजाद हिंद फौज एवं भारत की राजनैतिक स्वतंत्रता की घोषणा आदि घटनाएं भारत के इतिहास के पृष्ठों पर रक्ताक्षरों से लिखी गईं। ऐसे युग में यह स्वाभाविक है कि देश के साहित्य पर भी राष्ट्रीय-भावनाओं की छाप पड़ेगी। पाश्चात्य देशों में इस समय राष्ट्रवादी विचार धारा की प्रभुता थी जिसका चरमोत्कर्ष जर्मनी में हुआ। पाश्चात्य की इस राष्ट्रवादी-लहर ने भारतवासियों को स्वाधीनता प्राप्ति के लिए उद्‌बुद्ध किया। जहां एक ओर देश के लाखों नवयुवक शहीद हो रहे थे, वहां दूसरी ओर देश के साहित्यिक पृथ्वीराज, राणाप्रताप, शिवाजी आदि वीर नायकों के चरित्रों को लेकर काव्य, उपन्यास तथा नाटकों की रचना कर रहे थे।

इस युग में हिन्दी एवं बंगला नाट्य-साहित्य में उत्कृष्ट कोटि के ऐतिहासिक नाटकों की रचना हुई। इन ऐतिहासिक नाटकों में वही स्वदेशोद्‌दीपना के भाव हैं जिनका आभास हमें ज्योतिरिन्द्रनाथ ठाकुर के बंगला के ऐतिहासिक नाटक **'पुरु-विक्रम', 'अश्रुमती'**, **'स्वप्नमयी' एवं 'सरोजिनी'** में प्राप्त हुआ था। जिन नाटकों का लक्ष्य इतिहास को सजीव रूप देना हो वे ही विशुद्ध ऐतिहासिक नाटक कहे जा सकते हैं, यद्यपि इतिहास को नाट्य-रूप देने में उन्हें कल्पना का भी यथेष्ठ सहारा लेना पड़ता है। बीसवीं सदी में रचित सभी भारतीय भाषाओं के ऐतिहासिक नाटकों में अधिकांशतः राष्ट्रवाद की प्रबल हुंकार सुनाई देती है। ऐसे नाटकों को ऐतिहासिक-राष्ट्रवादी नाटक कहना ही उपयुक्त है। गिरीशचन्द्र घोष के नाटक **'सिराजद्दौला', 'मीरकासिम'** एवं **'छत्रपति शिवाजी'** ऐतिहासिक तथ्य-चित्रण के प्रति आग्रह अधिक है एवं उनमें काल्पनिक पात्र अत्यन्त कम हैं। जयशंकरप्रसाद ने यद्यपि अनेक काल्पनिक पात्र-पात्रियों की सृष्टि की है फिर भी ऐतिहासिक सत्य के साथ कल्पना का सुन्दर गठबन्धन हो गया है। इस युग के नाट्य-क्षेत्र में द्विजेन्द्रलाल राय का आविर्भाव सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। उनके वीररसात्मक, ऐतिहासिक तथा राष्ट्रप्रेम से अभिषिक्त नाटकों का केवल बंगाल में ही नहीं, समस्त भारत में स्वागत हुआ। **कर्नल टाड के 'राजस्थान' ग्रन्थ** से कथानक चयन कर 'ताराबाई' नामक नाटक से सन् १९०३ में इस कोटि के नाटकों का सूत्रपात हुआ जिसमें राष्ट्रवादी-स्वर उन्नीसवीं सदी के ऐतिहासिक नाटकों से भिन्न है तथा अत्यन्त तीव्र है। बीसवीं सदी की स्वदेशी-भावना हिन्दू मुसलमानों को एकसूत्र में बांध कर विदेशियो के विरुद्ध समग्र भारत की शक्ति को सगठित करने के लिये प्रेरित हुई। इस स्वदेशी-भावना का उत्स बंगदेश से ही प्रवाहित होकर समस्त भारत में प्रवाहित हुआ। बंगला काव्य क्षेत्र में हेमचन्द्र, नवीनचन्द्र सेन तथा रंगलाल जैसे कवियों की वाणी राष्ट्रप्रेम से अनुप्राणित हुई। बंगला नाट्य-क्षेत्र में ज्योतिरिन्द्रनाथ ठाकुर ने

अपने नाटकों में राष्ट्रप्रेम का उद्‌बोधन कियो। "पुरु-विक्रम", नाटक में सिकन्दर के आक्रमण से भारत की रक्षा के लिए रानी ऐलबिला सभी राजाओं को आमंत्रित करती हैं एवं अपना यह संकल्प भी सूचित करती है कि जो राजा सिकन्दर को पराजित कर सकेंगे उनको वे पति रूप में स्वीकार करेंगी। इस आमंत्रण ने पुरु को युद्ध के लिए प्रेरित किया। यह ऐतिहासिक तथ्य नहीं है एवं रानी ऐलबिला भी कल्पित चरित्र है फिर भी इस नाटक में समस्त भारत की शक्ति को संगठित करने के लिये उद्‌बोधित किया गया है।

ज्योतिरिन्द्रनाथ ठाकुर रचित "अश्रुमती" नाटक ऐतिहासिक-रोमांस है एवं 'राणा प्रतापसिंह की कल्पित कन्या अश्रुमती को सलीम के प्रेम में पागल होते दिखाकर यह नाटक कटु-आलोचना का विषय बना। बालकृष्ण भट्ट तथा बालमुकुन्द गुप्त ने अश्रुमती नाटक की अत्यंत कटु आलोचना की। 'अश्रुमती नाटक' नामक निबंध में बालमुकुन्द गुप्त लिखते हैं—"जिस प्रताप को मुसलमान नरेशों से घोर घृणा थी, उसी की लड़की को इसमें मुसलमान के प्रेम में कलंकित किया गया है।"[१]

इस नाटक में 'ग्रंथकारेर कैफियत", प्रथम पृष्ठ में लिखा है—"स्थल विशेषे ओ अवस्था विशेषे मानवप्रकृतिर किरूप विकास ओ परिणाम घटे, ताछा प्रदर्शन कराई नाटकेर मुख्य तात्पर्य।" अश्रुमती-सलीम की प्रेम कथा को प्राधान्य देने में लेखक का राष्ट्रवादी उद्देश्य व्यक्त होता है। सन् १९०५ के 'हिन्दू-मेला' में मुसलमानों के हाथ राखी बांधकर यही उद्देश्य व्यक्त किया गया था। लेखक ने काल्पनिक प्रेम कथा का सृजन करके अपनी रोमांटिक-प्रवृत्ति का भी परिचय दिया है। किन्तु प्रश्न यह है कि अश्रुमती को प्रतापसिंह की कन्या के रूप में चित्रित कर उन्होंने राणा प्रताप की मर्यादा को हानि क्यों पहुंचाई ? इसमें पाश्चात्य ट्रेजेडी का प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। राणा प्रताप के जीवन की दुखात्मक परिणति इससे अधिक और क्या हो सकती है कि उन्हीं की कन्या उनके शत्रु से प्रेम करे। यह प्रेम अनैतिहासिक है किन्तु असम्भाव्य नहीं। रानी रूपमती और मालवा के पठान शासक बाजबहादुर की प्रेम-कथा इतिहास प्रसिद्ध है। कुछ भी होज्योतिरिन्द्रनाथ के इन नाटकों में राष्ट्रवादी ऐतिहासिक नाटकों के बीज निहित थे। राष्ट्र-प्रेम की भावना से भारतीय-मनस बीसवी सदी के प्रारम्भ से ही आन्दोलित हुआ। द्विजेन्द्रलाल ने 'दुर्गादास', 'मेवाड़ पतन' आदि में **हिन्दू 'जातीयता के भावों को अधिक उद्दीप्त किया** एवं मुगलों को ब्रिटिशों का प्रतीक बनाया। हिन्दी के नाटककार भी राष्ट्र-प्रेम के पवित्र आवेग से झूम उठे थे, उनके समक्ष द्विजेन्द्रलाल के नाटकों का आदर्श था,

---

१—बालमुकुन्द गुप्त—निबन्धावली (प्रथम भाग)-पृष्ठ-५४९
सम्पादक श्री झाबरमल शर्मा, श्री बनारसीदास चतुर्वेदी (प्रथम संस्करण)

किन्तु उन्होंने द्विजेन्द्रलाल के समान राजपूतकाल को ही न लेकर मौर्यकाल, गुप्तकाल, मुगल काल आदि की ओर अपनी दृष्टि दौड़ाई। **जयशंकर प्रसाद ने गुप्तकाल को संस्कृति का** जो चित्रण किया उसका दर्शन हमें द्विजेन्द्रलाल के नाटकों में नहीं मिलता। **हरिकृष्ण प्रेमी ने हिन्दू-मुस्लिम ऐक्य** की भावना को ही अपना लक्ष्य बनाया। **सेठ गोविन्ददास के 'हर्ष', 'शशिगुप्त' आदि में ऐतिहासिक वातावरण** का अत्यन्त ध्यान रखा गया। बंगला के ऐतिहासिक नाटकों में रोमांटिक आवेग, उच्छ्वास की प्रबलता है। जिस तरह शेक्सपियर के ऐतिहासिक नाटकों के रोमन पात्र एलिजाबेथ के युग के अंग्रेज लगते हैं, उसी तरह द्विजेन्द्रलाल के कुछ पात्र भाव-प्रवण बंगाली प्रतीत होते हैं। 'शाहजहां' नाटक में शाहजहां के चरित्र पर एक ओर 'किंग लियर' का प्रभाव है, दूसरी ओर बृद्ध पिता के ममत्व मे भावुकता का अधिक समावेश है। क्षीरोदप्रसाद के ऐतिहासिक नाटक 'चांदबीबी', 'पलीशीर प्रायश्चित', 'बांगलार मसनद' आदि भी रोमांटिक परिवेश से पूर्ण हैं। द्विजेन्द्रलाल के **'नूरजहां'**, क्षीरोदप्रसाद के 'आलमगीर' और प्रसाद के **'ध्रुवस्वामिनी'** नाटक में अन्यान्य पक्षों पर भी प्रकाश डाला गया है। नूरजहां और औरंगजेब का मनोविश्लेषण ऐतिहासिक क्षेत्र में नवीन उद्भावना है। ध्रुवस्वामिनी के चरित्र में नारी जीवन की असहाय अवस्था, क्षोभ तथा विद्रोह की ज्वाला है। इतिहास की पृष्ठभूमि पर लेखक ने **चिरन्तर नारी-समस्या** पर प्रकाश डाला है एवं समाधान भी प्रस्तुत किया है।

अतः इस युग में ऐतिहासिक कथावस्तु की नाटककारों के प्रिय विषय रहे तथा उन्होंने विभिन्न भाव तथा विचारों को इतिहास की नींव पर खड़ा किया। ऐतिहासिक नाटकों की असंख्य रचनाएं हुईं। हिन्दी तथा बंगला के ऐतिहासिक नाटकों को उत्कृष्ट तथा कलात्मक रूप प्रदान करने का श्रेय द्विजेन्द्रलाल राय को है। बहिर्द्वन्द्व के साथ अन्तर्द्वन्द्व, साहित्यिकता के साथ अभिनेयता तथा नाटकीयता के साथ काव्य स्पन्दन का जो समावेश उनके नाटकों में हुआ, उसने अन्य नाटकों के लिये पथ-प्रदर्शन का कार्य किया।

हिन्दी नाट्य-क्षेत्र में प्रसाद के ऐतिहासिक नाटकों में विषय-वस्तु का वैचित्र्य तथा कलात्मक-उत्कर्ष प्रतिभासित हुआ जो उनके पूर्व के ऐतिहासिक नाटकों में नहीं था। बीसवीं सदी के पूर्व हिंदी में राधाकृष्णदास रचित **'महाराणा प्रताप'**, राधाचरण गोस्वामी रचित एकांकी **'अमरसिंह राठौर'**, काशीनाथ खत्री के **तीन ऐतिहासिक रूपक** (सिंधुदेश की राजकुमारियां, गुनौर की रानी, महाराजा लवजी का स्वप्न) तथा लाला श्रीनिवासदास रचित **'संयोगिता-स्वयंवर'** आदि नाटक रचित हुए थे। इनमें 'महाराणा प्रताप' ही उल्लेख योग्य है जिसमें राणा प्रताप के देशप्रेम तथा आत्म-बलिदान द्वारा राष्ट्रीय भावनाओं को प्रेरणा मिली थी एवं इस नाटक का अभिनय भी अनेक मंचों पर हुआ था। बीसवीं सदी के प्रारम्भ में शालिग्राम रचित 'पुरु-विक्रम' एवं **बद्रीनाथ भट्ट** रचित **'चन्द्रगुप्त'** तथा **'दुर्गावती'** उल्लेख योग्य हैं। इनमें भी विषय-वस्तु तथा नाट्य

शिल्प में कोई विशेषता नहीं है, केवल प्राचीन परिपाटी के साथ नवीन परिपाटी को मिलाने का प्रयास है। ऐतिहासिक तथ्यों के प्रति आग्रह, सफल ऐतिहासिक वातावरण का चित्रण, रमणीय कल्पना तथा उद्‌बोधक भावनाओं का मिश्रण इन नाटकों में नहीं **हैं** जिनका परिचय आगे चलकर प्रसाद के ऐतिहासिक नाटकों में मिलता है। फिर भी यह कहा जा सकता है कि द्विजेन्द्रलाल तथा प्रसाद के ऐतिहासिक नाटकों के बीच ज्योतिरिन्द्रनाथ ठाकुर के 'पुरु-विक्रम', 'अश्रुमती' तथा राधाकृष्णदास के 'महाराणा प्रताप' में नवजीवन लब्ध करने का प्रयास कर रहे थे। इनके भी पूर्व रचित माइकेल मधुसूदन रचित '**कृष्ण कुमारी**' तथा भारतेंदु रचित '**नीलदेवी**' में ऐतिहासिक नाटकों के नवीन दृष्टिकोण का अत्यंत क्षीण आभास मात्र था।

ऐतिहासिक नाटकों का प्रयोजन तथा नवीन चेतना का प्रसार

सन् १८६७ से ठाकुर परिवार द्वारा **हिन्दूमेला** का आयोजन हुआ था जिससे बंगाल में राष्ट्रीय भाव पनपने का सुअवसर प्राप्त हुआ था। ऐसे ही वातावरण में रवीन्द्रनाथ का निर्माण हुआ। सन् १८८५ से भारतीय जातीय कांग्रेस का वार्षिक अधिवेशन देश के विभिन्न स्थानो में होता रहा एवं उसने भारत की राष्ट्रीय भावनाओं को एक संगठित रूप दिया। बीसवीं सदी के प्रारम्भ से राष्ट्रीयता का उग्र रूप हमें देखने को मिलता है। १६ अक्टूबर, सन् १९०५ को बंगाल में राखी पुण्याह-दिवस मनाया गया, हिंदुओं ने मुसलमानों के हाथों में राखी बांधी एवं दोनों में भ्रातृ-भाव का बंधन दृढ़तर हुआ। इस युग में जो अग्निवाणी गीतों के रूप में मुखरित हुई उसने भी हमारी राष्ट्रीयता के निर्माण में योगदान किया। **श्री पृथ्वीशचन्द्र राय** लिखते हैं—"**दी नेशनल सॉंगस** कम्पोज्ड ड्यूरिंग दी पीरियड़ बाइ द्विजेंद्रलाल राय, रवीन्द्रनाथ टैगोर, सरला देवी चौधुरानी, मिस्टर ए० पी० सेन एण्ड दी लेट रजनीकांत सेन स्मोट आन दी हार्ट आफ दी प्यूपल एज ए जायंट्स हार्प, अवेकेनिंग आउट आफ इट ए स्टार्म एण्ड ए ट्यूमल्ट सच एज हैड नेव्हर बीन नौन थ्रू दी लांग सेंचुरीज आफ हर पौलिटिकल सर्फडम।"

इस राष्ट्रीय चेतना के नवजागरण के युग में प्रान्तीयता की भावना बिल्कुल नही थी। बंगला में रचित राष्ट्रीय गीतों ने समस्त भारत को प्रभावित किया जिनमें रवीन्द्रनाथ रचित "जन-गण-मन अधिनायक जय है, भारत-भाग्य- विधाता" आज स्वाधीन भारत का राष्ट्र-गीत है। इन गीतों के द्वारा राष्ट्रीय भावनाओं का प्रसार त्वरित गति से हुआ एवं भावना-क्षेत्र में समस्त भारतवासी एक हुए। साहित्य जगत में इसका प्रभाव भी अनुरूप ही हुआ। हिन्दी तथा बंगला में उपन्यासों की अपेक्षा नाट्यक्षेत्र पर राष्ट्रीय भावनाओं का प्रभाव अधिक पड़ा। भारत के वीर देशभक्तों के जीवन की संघर्षपूर्ण, सजीव झांकी दिखाने का उपयुक्त माध्यम नाटक है, इसके सिवा नाटक जन-कला है एवं जनता के भावों को उद्‌बुद्ध करने के लिए व जनता के भावों को अभिव्यक्त करने के लिए हिन्दी तथा बंगला नाटकों में जिस नवीन चेतना की

रागारूण-महिमा देखने को मिलती है वह अन्यत्र दुर्लभ है। भारत की प्राचीन-सस्कृति की छबि ऐतिहासिक नाटकों में सजीव और मूर्त हो उठी। नवीन राष्ट्रवादी चेतना का प्रभाव हिन्दी तथा बंगला के काव्य-क्षेत्र पर भी पड़ा किन्तु विषयमुखीन होने के कारण राष्ट्रवादी भावनाओं की श्रेष्ठ अभिव्यक्ति ऐतिहासिक नाटकों में ही हुई। इस विषय में श्री सोमेन्द्र गंगापाध्याय लिखते हैं—"स्वदेशी आन्दोलन के प्रभाव से बंगला नाटक के इतिहास में भी एक नूतन युग रचित हुआ। विषयमुखीनता (आब्जेक्टिविटी) की और पदक्षेप इस युग का प्रधान लक्षण है। यथपि यह पदक्षेप दृढ़-निश्चय नहीं, फिर भी नाट्यकारों के मानस में जो परिवर्तन साधित हुआ है, **कल्पलोक के आवरण को भेदकर वस्तुलोक की ओर अग्रसर होने की जो प्रेरणा प्राप्त की है,** वह स्पष्ट ही ज्ञात होता है।"

जब भारत की राष्ट्रीयता अत्यन्त सक्रिय हो उठी उस समय प्रथम विश्व-महा-युद्ध की ज्वाला भड़क उठी। भारत को ब्रिटिश के पक्ष में होकर युद्ध करना पड़ा किंतु युद्ध की समाप्ति के बाद भी उसे स्वतंत्रता नहीं मिली। सन् १९२१ से गान्धी जी ने राष्ट्रीय क्षेत्र में पदार्पण किया एवं उनके नेतृत्व में असहयोग आन्दोलन शुरू हुआ। तीव्र उत्तेजना और निराशा के बाद जन-मानस की दृष्टि आत्मोन्नति की ओर गई। भावना के क्षेत्र में इस परिवर्तन के कारण सांस्कृतिक गरिमा के चित्रण से पूर्ण ऐति-हासिक नाटकों की रचना होने लगी। हिन्दी में प्रसाद के नाटकों में राष्ट्रवादी स्वर की अपेक्षा आदर्शवादी चरित्रों की महिमा, भारतीय आध्यात्मिक शक्ति की दीप्ति एवं विगत युग की शालीनता का परिचय हमें अधिक मिलता है। इस समय देश के मनीषियों की जीवनी को नाट्यरूप देने का प्रयास पहले पहल बंगला साहित्य में दिखाई देता है। **"वनफूल" रचित "विद्यासागर" एवं "माइकेल मधुसूदन"** इस प्रयास के फल हैं हिन्दी में इस कोटि के नाटकों की रचना बाद में हुई क्योंकि जीवनी नाटक के लिए नायक के जीवन में नाटकीय उपादानों की प्रचुरता चाहिए एवं पात्र जितना ही विगत युग का होता है उतना ही उसका चित्रण सफल हो सकता है। माइकेल मधुसूदन का व्यक्तिगत, सामाजिक तथा साहित्यिक जीवन विद्रोह से परिपूर्ण रहा, हिन्दी-क्षेत्र में ऐसे पात्रों का अभाव था। **उग्र ने "महात्मा ईसा" को ऐति-हासिक नाटक के नाम से अभिहित किया है।** किंतु ईसा के जीवन की घटनाओं के साथ अलौकिक धारणाओं का इतना मिश्रण हो गया है कि उनके अस्तित्व की प्रमा-णिकता भी संदिग्ध ही है। ऐसी परिस्थिति में ऐतिहासिकता व जीवनी भित्तिहीन हो जाती है। उग्र ने ईसा के जीवन में राष्ट्रीय-भावों का भी आरोप किया है जो अधिक मर्मस्पर्शी तो नहीं हो सका किंतु नवीन विचारों का परिचायक है।

सेठ गोविन्ददास ने सन् १९५० के उपरान्त **"भारतेन्दु" नामक जीवनी नाटक** लिखा एव जीवनी नाटक लिखने की प्रवृत्ति का परिचय हिन्दी साहित्य में प्राप्त हुआ। द्वितीय विश्व महायुद्ध के बाद विश्व की आर्थिक परिस्थिति अत्यंत संकटजनक हो

गई। धीरे-धीरे **ऐतिहासिक नाटकों में भी समस्याओं का चित्रण** होने लगा जिसका एक पक्ष प्रसाद के **"ध्रुवस्वामिनी"** नाटक में चित्रित तलाक की समस्या है। मार्क्स-वादी दर्शन का प्रभाव भारत पर पड़ने लगा एवं ऐतिहासिक नाटकों की प्रधानता का स्थान धीरे-धीरे सामाजिक नाटकों ने ग्रहण किया।

वर्गीकरण

ऐतिहासिक नाटकों में जिन विभिन्न प्रवृतियों का परिचय मिलता है उसके अनुसार उसका वर्गीकरण विभिन्न रूपों में किया जा सकता है—

१—विशुद्ध—ऐतिहासिक नाटक,

२—ऐतिहासिक—राष्ट्रवादी नाटक,

३—सांस्कृतिक—चित्रण प्रधान नाटक,

४—जीवनी—नाटक।

१—विशुद्ध ऐतिहासिक नाटक

जिस तरह प्रागैतिहासिक-काल भारत की सांस्कृतिक एकता का द्योतक है उसी तरह ऐतिहासिक-काल भारत की राजनैतिक एकता का द्योतक है। अजातशत्रु, चन्द्र-गुप्त मौर्य, अशोक, समुन्द्रगुप्त, चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य, हर्षवर्द्धन, पृथ्वीराज आदि के काल से लेकर बंगाल के अंतिम नवाब सिराजुद्दौला तक एवं उसके बाद ब्रिटिश राज्य के काल से लेकर आज तक का इतिहास भारत की एकता की गाथा है। यथपि कभी-कभी अनेक छोटे-छोटे राज्यों का उदय हुआ, आपसी बैर ने विदेशियों को आमंत्रित किया फिर भी भारत की संहित नष्ट नही हुई। इस कारण पृथ्वीराज चौहान व सिराजुद्दौला केवल दिल्ली व बंगाल से संबंधित नहीं, उनकी जय-पराजय की कथा समस्त भारत की संवेदना के विषय हैं। अतः हिन्दी एवं बंगला में जो ऐतिहासिक नाटक रचित हुए, उनमें कल्पना का कुछ यथेष्ठ होते हुए, उनके पात्र सर्व-भारतीय हैं। उनकी वीरता व विश्वासघातकता ने भारत की भाग्यलिपि की रचना की।

बंगाल के कई नाटककारों ने बंगाल के इतिहास के खंडों को चुना जिसमें स्वतंत्र बंग के अंतिम नवाव **सिराजद्दौला** के जीवन का करुण पर्यवसान अत्यंत हृदयविदारक है। राष्ट्रीय भावना प्रच्छन्न रख, ऐतिहासिक तथ्यों के प्रति ध्यान रखते हुए बंगाल के नाटक-कार गिरीशचंद्र घोष ने ऐतिहासिक नाटक सिराजुद्दौला, छत्रपति शिवाजी तथा मीरकासिम की रचना की। हिन्दी में इन दोनों तत्वों की पूर्ति की क्षमता रखने वाले नाटककार प्रसाद हुए। गिरीशचंद्र के नाटक 'सिराजुद्दौला' में करीमचाचा, जहरा को छोड़ अधिकांश पात्र, पात्रियां एवं उनसे संबंधित क्रिया व्यापार ऐतिहासिक हैं। ईस्ट इण्डिया कंपनी के अधिकारी वर्गों ने उन देश द्रोहियों की सहायता से बंगाल के नवाब

सिराजुद्दौला को सिंहासन च्युत करना चाहा तब बंगाल के हिन्दू मुस्लिम दोनों सम्प्रदायों के देशभक्तों ने विदेशी वणिकों को विताड़ित करने के लिये सिराजुद्दौला का ही पक्ष ग्रहण किया। प्रथम अंक, प्रथम गर्भांक में मुर्शिदाबाद के मोती झील प्रासाद के कक्ष का दृश्य है। घसेटी बेगम तथा रायखुर्लभ, जगत सेठ आदि षड़यंत्रकारियों को दमन करने के लिए नवाब लाल कुटी भूमिसात् करने की आज्ञा देते हैं, हिन्दू मोहनलाल मंत्री बनाये जाते हैं एवं विश्वासपात्र मीर भवन सेनापति। प्रथम अंक, चतुर्थ गर्भांक में जहरा जाल पत्र द्वारा रानी भवानी की पुत्री तारा के प्रति सिराज की आसक्ति को उकसाकर हिन्दू मुस्लिम वेमनस्य की भावना को प्रवाहित प्रज्वलित करना चाहती है। अंग्रेजों द्वारा गुप्त रूप से सैन्य वृद्धि एवं दुर्ग निर्माण की वार्ता से अवगत हो सिराज मीरजाफर आदि विश्वासघातकों से निवेदन करते हैं --"जदि आभार प्रति विद्वेष परित्याग ना करेन, पूर्णियाय सकलजगेर संगे जोगदान करून किंवा विद्रोहीर ध्वजा उड्डीन कोरे जोग्यजनके सिंहासन प्रदान करून। किंतु स्थिर जानबेन, फिरिंगी बांगलार दुश्मन।"[१] एक और जहां भारत के विश्वासघातक निवासी षड़यंत्र रच रहें हैं, वहां दूसरी ओर अंग्रेजों का जाति प्रेम अनुकरणीय चित्रित किया गया है। फोर्ट विलियम में ड्रेक हालवेल से कहते हैं—"पैरिश लास्ट। दी डेविल हैज लेंट देम विंग्स। दी ऐनेमी लाइक लोकस्ट हैव सराउण्डेड दी फोर्ट। लेट अस डाइ लाइक इंग्लिसमेन।"[२] प्रथम अंक, द्वादश गर्भांक में इतिहास प्रसिद्ध 'ब्लैकहोल' का उल्लेख है। नाटक में बताया गया है कि यह कलंकित कार्य सिराजुद्दौला की अनुमति के बिना ही किया गया था। नाटककार ने सिराज के चरित्र को महत् दिखाने की चेष्टा की है एवं उसके साधन स्वरूप कल्पना नहीं वरन् प्रसिद्ध ऐतिहासिकों के मत को ही ग्रहण किया है। भूमिका में लेखक लिखते हैं—"विदेशी इतिहासे सिराज चरित्र विकृत वर्ण चित्रित होइयाछे। सुप्रसिद्ध ऐतिहासिक श्रीयुत बिहारीलाल सरकार, श्रीयुत अक्षयकुमार मैत्रेय, श्रीयुत निखिलनाथ राय, श्रीयुत कालीप्रसन्न बन्दोपाध्याय प्रभृत शिक्षित सुधीगण असाधारण अध्यवसाय सहकारे विदेशी इतिहास खंडन कोरिया **राजनैतिक ओ प्रजावत्सल सिराजेर** स्वरूप चित्र प्रदर्शने जत्नशील हन। आमि ओई समस्त लेखक गणेर निकट ऋणी।[३]

सिराज के इस तरह चरित्र चित्रण की प्रेरणा ऐतिहासिक सत्य के प्रति आग्रह के लक्षण हैं। सिराज के विपक्ष में जो दो नारी चरित्र हैं उनमें **घसेटी बेगम ऐतिहासिक** तथा उसकी बहन **जहरा कल्पित है**। दोनों चरित्रों की नीचता, प्रतिहिंसापरायणता ने

---

[१]—सिराजुद्दौला—लेखक महाकवि गिरिशचंद्र घोष (पृष्ठ संस्करण, माघ—१३६१ साल)

—प्रथम अंक, पंचम गर्भांक, पृष्ठ-२९

[२]—सिराजुद्दौला—प्रथम अंक, नवम गर्भांक, पृष्ठ-४०

[३]—सिराजुद्दौला—भूमिका गिरीशचंद्र घोष।

सिराज के चरित्र को और उज्वल कर दिया है। मीरजाफर की प्रतारणा तथा सिराज की उदारता जयशंकर प्रसाद रचित 'स्कन्दगुप्त' नाटक के उदार स्कंद एवं प्रतारक भटार्क से साम्य रखते हैं। दोनों नाटककारों ने यही प्रमाणित करने की चेष्टा की है कि अगर देश में एक दो ऐसे विश्वघातक न होते तो भारत की ओर आंख उठाकर देखने की हिम्मत विदेशी शत्रुओं में न होती। एक ने बंग इतिहास दूसरे ने गुप्तकाल (भारत का स्वर्णयुग) चुना। 'सिराजुद्दौला' नाटक में इतिहास प्रसिद्ध प्लासी का युद्धक्षेत्र एवं शिविर के दृश्य हैं। अंग्रेज-शिविर में जाकर जहरा राबर्ट क्लाइव से कहती है– "साहेब, तोमादेर स्वार्थ एकरूप—परस्पर स्वाथेर जन्य विवाद करो—किंतु इंग्राज-शत्रुर विरुद्धे सकले मिले भ्रातृभावे अस्त्र धारण करो। से स्वार्थ बंगलार हिंदू मुसलमानेर नय, अति हीन स्वार्थ, सेइ हीन स्वार्थेर आवरणे सकले अन्य होयेछे, ता होले बूझतो, से दूरदेश होते छःमास समुद्रे मेसे, निज स्वार्थ निमित्त एसैछे, तादेर स्वार्थेर जन्य नय। जुद्धे प्राण दिये तादेर गदी दिते आसो नाइ, आपनार प्रभुत्वेर जन्ये, एसेछो। सकलेइ बुद्धिमान किंतु स्वार्थ एरूप बलवान, जे तोमादेर स्वरूप मनोभाव बूझते केउ सक्षम हयनि।"[1]

अन्त में सिराज पक्ष की पराजय के बाद मुर्शिदाबाद में नवाब के दरबार के दृश्य में विश्वासघातक, देश-द्रोही मीरजाफर के प्रति बन्दी मोहनलाल की उक्ति राष्ट्रवादी भावनाओं के उज्वल प्रतीक हैं किन्तु उससे ऐतिहासिक तथ्य को किसी प्रकार आंच नहीं लगती। प्रसाद ने 'स्कंदगुप्त' में विजय का ऐतिहासिक कारण खोज निकाला एवं गिरीश ने सिराजुद्दौला में पराजय का। दोनों ने इतिहास को विकृत न करते हुए कल्पना का मिश्रण किया। देश-प्रेमी मोहनलाल की यह उक्ति केवल उच्छ्वसित उद्गार नहीं, सत्य है—'बैइमान, विश्वासघातक, कुलांगार, मुसलमान–कुल कलंक, आमार दम्भ समानइ आछे। लज्जाहीन, नीचात्मा, गुलामी गदीते बोसे हुकुम दिच्छो? जार गद्दी तारे छेड़े दे, क्लाइव साहेब के दे—जार पदे देश, मान, मर्जादा, मनुष्यत्व सकलइ विक्रय कौरेछिस—तारे गद्दी दिये पदप्रान्ते बोस। कृतदास पराधीन कुक्कुर, 'जीवने-मरणे आमार समान दम्भ रूहलों। वंगवासी हृदये आभार चिर आसन रहलो। घातकेर अस्त्रे हत होये आभार दम्भ नष्ट हबे ना! तुमि क्लाइवेर भारवाही नर्दभ होये धाको।"[2]

अन्तिम दृश्य में सिराज के समाधि मन्दिर में पुष्प अर्पित करती हुई बेगम कुल्फुन्निसा के अश्रु के साथ दर्शक भी बंगदेश के अन्तिम नवाब के प्रति अपनी श्रद्धा

---

[1]—सिराजुद्दौला—चतुर्थ अंक, प्रथम गर्भांक, पृष्ठ-१३४

[2]—सिराजुद्दौला—पंचम अंक—षष्ट गर्भांक—पृष्ठ-१८८

अर्पित किये बिना नहीं रह सकते। इस तरह भारतीय इतिहास का एक अध्याय समाप्त होता है।

अन्तर्कलह का चित्रण हरिकृष्ण प्रेमी ने **"विषपान"** नाटक में किया है। राजस्थान के मेवाड़, मारवाड़, अम्बर के राजाओं में एवं सरदारों में आपस में मैल की भावना नहीं थी। टाड रचित 'राजस्थान की कहानी' से मेवाड़ की राजकन्या कृष्णाकुमारी की कथा के आधार पर इससे पूर्व बंगला साहित्य में माइकेल मधुसूदन दत्त ने 'कृष्णकुमारी' नाटक की रचना की। कृष्णकुमारी नाटक पर पाश्चात्य शैली का बहुत अधिक प्रभाव था एवं लेखक ने उसे "ट्रेजेडी" का रूप देना चाहा था, किन्तु विषपान के लेखक का उद्देश्य एक ट्रेजेडी की रचना करना नही वरन भारत को एक शक्तिशाली राष्ट्र के रूप में पुनः देखने के लिए उसके सामने ऐतिहासिक मिसाल रखना था। 'विषपान' नाटक की भूमिका 'पुकार' में वे लिखते हैं—"मैंने अपने देश के इतिहास को ध्यानपूर्वक पढ़ा है। उसमें अपने देश के वर्तमान पतन के कारण खोजे हैं। इस देश के समान निर्बल देश संसार में दूसरा कोई नहीं है और इसके समान शक्तिवान भी नहीं है। जिस समय भारत एक होकर खड़ा हुआ संसार की कोई शक्ति इस पर विजय न पा सकी।"[१] आगे फिर वे लिखते हैं—"ऐतिहासिक नाटकों की ओर मेरी विशेष रुचि है। मेरे देश का सम्पूर्ण इतिहास गलत तरीके से उपस्थित किया गया है। मैं उस पर नया प्रकाश डालना चाहता हूं।"[२] यह हिन्दी लेखक प्रेमी का लक्ष्य है। द्विजेन्द्रलाल राय के ऐतिहासिक नाटकों से हरिकृष्ण प्रेमी अत्यन्त अनुप्राणित हुए थे किन्तु जहां द्विजेन्द्रलाल ने राष्ट्रीय भावनाओं को व्यक्त करने तथा इतिहास को नाटकीय बनाने के लिए इतिहास की अधिक परवाह नहीं की, वहां प्रेमी ने इतिहास के तथ्यों में से मिसाल खोज निकाने का प्रयास किया। 'विषपान' में कृष्णा का त्याग ऐतिहासिक है मेवाड़ की रूपसी राजकन्या कृष्णा को पाने के लिए तथा एक दूसरे को नीचा दिखाने के लिए मारवाड़ के महाराज मानसिह एवं अम्बर के महाराज जगतसिह मेवाड़ पर आक्रमण करने के लिए सैन्य सहित आते हैं। **मेवाड़ के चूड़ावात सरदार तथा शक्तावत सरदारों में आपसी ईर्ष्या तथा** वैमनस्य की भावना है और वे एक दूसरे से बदला लेने के लिए बाहरी शत्रुओं को आमंत्रित करते हैं। जवानदास जैसे दासी-पुत्र सामाजिक लांछना के प्रतिकार के लिए देश को शत्रुओं के हाथ बेच सकते हैं। ऐसी भीषण परिस्थिति में मेवाड़ के महाराणा अन्तर्द्वन्द्व से पीड़ित हैं। अन्त में विषपान कर कृष्णा देश को शत्रुओं के हाथ में जाने से एवं रक्तपात होने से बचाती है। देश की बलिवेदी पर निछावर होने पद्मिनी जैसी जौहर करने वाली नारियां उसके मानस को उद्दीप्त करती

---

[१]—विषपान—लेखक हरिकृष्ण प्रेमी (चतुर्थ संस्करण,) १९५१
—पुकार, पृष्ठ—७, हरिकृष्ण प्रेमी

[२]—पुकार, पृष्ठ—१३—१४, हरिकृष्ण प्रेमी

हैं। अन्तर्कलह की भयानक अग्नि को निर्वापित करने के लिए एक निष्पाप कली भस्म हो जाती है। इसी दुर्बलता पर प्रकाश डालते हुए मेवाड़ के सिसौदिया सरदार दौलतसिंह शक्तावत सरदार संग्रामसिंह से कहते हैं—'जब शक्तावतों का भाग्य उत्कर्ष पर आता है, तब चूड़ावतों को मिट्टी में मिला देने का यत्न किया जाता है। यह नहीं जानते कि हम अपने ही अंगों को काटकर फेंक रहे हैं। एक दौड़कर होलकर से सहायता मांगता है, दूसरा सिंधिया के पास जाता है और तीसरा अमीरखां को निमंत्रित करता है। ये सहायक आते हैं और मेवाड़ की भूमि और धन पर अपना अधिकार स्थापित करते हैं। भैया, इन बन्दर-बांट करने वाले पंचों से बचो। ये किसी के सगे नहीं हैं—ये केवल अपना उल्लू सीधा करना चाहते हैं।"[१] सिराजुद्दौला की जहरा सदृश्य विषपान की पात्री दासी राधा भी प्रतिहिंसा के लिए आतुर है एवं उसका कारण है समाज का वर्ग भेद। लेखक समाजवाद व साम्य के भी समर्थक हैं। राधा कहती है—"लेकिन मैं कह चुकी हूं— आपकी मृत्यु से उन लोगों के हृदय घायल होते हैं— जिनके प्रति मेरा मन विद्रोही है। इन उच्चवंशाभिलाषियों ने हमें सम्मानपूर्वक जीने का कोई मार्ग खुला नहीं रखा है। हम चाहे जितने सच्चरित्र, ईमानदार, परिश्रमी, सत्यवादी और धर्मात्मा हों— हमें समाज में ऊचा आसन नही मिल सकता ?"[२] इस तरह के आधुनिक विचारों की योजना भी अनैतिहासिक नहीं हैं। अंत में देश के कल्याण के लिए अपने को समर्पित करती हुई गर्विता कृष्णा कहती है—माताजी, उधर देखिए, उस चित्र में महारानी पद्मिनी वीरांगनाओं के साथ जौहर की ज्वाला में प्रवेश कर रही हैं। देश और जाति का गौरव रखने के लिए प्राण देने में छात्राणियां अपना सौभाग्य समझती हैं।"[३] टाड कृत राजस्थान की कहानियों के वृत्तांत पूर्णतः ऐतिहासिक नहीं है फिर भी हिन्दी तथा बंगला के ऐतिहासिक नाटककारों ने उन कथावृत्तों का प्रयोग किया। इतिहास को नाटक की वस्तु बनाना उनका ध्येय था।

बंगला साहित्य में **द्विजेन्द्रलाल राय** सबसे प्रसिद्ध ऐतिहासिक नाटककार हैं। उनके ऐतिहासिक नाटकों के संबंध में **देवकुमार रायचौधरी** लिखते हैं—"उनके ऐतिहासिक नाटक अति सावधानी सहित लिखित हैं। किसी भी स्थान में उन्होंने इतिहास को एकदम अतिक्रमण नहीं किया। जहां इतिहासकार नीख है, मात्र वहीं उनकी मोहिनी कल्पना ने अति निगुणता सहित वर्णपात किया है। **नाटक इतिहास नहीं है**, किंतु ऐतिहासिक नाटक एकदम इतिहास छोड़कर नहीं है—; वे तत्संबंध में अनभिज्ञ नहीं थे।" इतिहास की यथासम्भव रक्षा करते हुए द्विजेन्द्रलाल राय ने अपने ऐतिहासिक नाटकों में चरित्रगत अंतर्द्वन्द्व, उनके भावों का उतार चढ़ाव, उनका विकास आदि के साथ

---

१ —विषपान—अंक-१, दृश्य-२, पृष्ठ-९

२—विषपान—अंक-३ दृश्य ५, पृष्ठ-१०४

१—विषपान—लेखक हरिकृष्ण प्रेमी-अंक ३, दृश्य-५

राष्ट्रप्रेम की भावना को इस तरह गुंथ दिया है कि मानव हृदय की हलचल एवं बाह्य राष्ट्रीय हलचल एक प्राण हो गये हैं। प्रसाद के ऐतिहासिक नाटकों में भी अंतर्द्वन्द्व एवं बहिर्द्वन्द्व का समन्वय मिलता है। नवयुग की शंखध्वनि, भेरीनाद एव 'वंदेमातरम्' के मंत्रोच्चार के साथ बीसवीं सदी के पूर्वार्द्ध के ऐतिहासिक नाटककार दीक्षित हुए। उन्नीसवीं शताब्दी के शेषार्द्ध के नाटककार माइकेल मधुसूदन रजिया बेगम पर नाटक लिखना चाहते थे उसका कारण यही था कि षड़यंत्र संघर्ष आदि से परिपूर्ण मुगल इतिहास जिसमें मुस्लिम नारियों का भी योग रहा नाटकीय कथावस्तु के उपयुक्त है। परंतु **द्विजेन्द्रलाल, प्रसाद, प्रेमी आदि ने राजपूत काल, गुप्तकाल, मुगल काल के इतिहास को इसलिए चुना ताकि उस युग की सबलताओं तथा दुर्बलताओं से सुपरिचित हो भारत अपना नया इतिहास निर्माण कर सके।** द्विजेन्द्रलाल के दो प्रसिद्ध नाटक 'नूरजहां' और 'शाहजहां' मुगलकालीन इतिहास से संबंधित हैं। इतिहास का उन्होंने उतना ही उपयोग किया है जितना नूरजहां और शाहजहां के चरित्र को ऐतिहासिक बनाने के लिए आवश्यक है। "शाहजहां" नाटक में कहीं राष्ट्रवादी प्रच्छन्न स्वर है तो कहीं मानवता का चित्रांकन। एक वीर क्षत्राणी की भांति महामाया कहती है—"महाराज यशवंतसिंह युद्धे पराजित होये कखनो फिरे आसेननि। जे एसेछे से महाराज यशवंत सिंह नय। से तांर आकारधारी कौनो छद्मवेशी। ताके प्रवेश करते दियो जा। दुर्गद्वार रूद्ध करो।"[१] ब्रिटिश शासित वर्तमान भारत की परिस्थिति पर प्रकाश डालती हुई अतीत की **जहांनारा** कहती है—"आज जे अन्याय-नीतिर महाविप्लव, जे दुर्विसह अत्याचार—भारतवर्षेर रंगमंचे अभिनीत होये जाच्छे, ता एर पूर्वे बूझि कुत्रापि हय नाई। एतो बड़ो पाप, एतो बड़ो शाठ्य, आज धर्मेर नामे चोले जाच्छे। आर मेषशावकगण शुद्ध अनिमेष नेत्रे तार पाने चेये आछे। **भारतवर्षेर मानुषगुलो कि आज शुद्ध चाबुके चोलेछे?**"[२] मानवता की हत्या करने वाला औरंगजेब किस तरह विभीषिकामय, अनिद्र रजनी व्यतीत करता है—"ओ कि! आबार सेइ दारार छिन्न शिर। शुजार रक्ताक्त देह! मुरादेर कबन्ध! जाओ सब। आमि विश्वास कोरि ना ओइ तारा आबार! आभाय घिरे नाचछे! के तोमरा? ज्योतिर्मयी धूमशिखार मतो माझे-माझे आमार जाग्रत तन्द्राय ऐसे देखा दिये जाओ।"[३] अन्त में कोमल, क्षमाशील पिता शाहजहां की श्वेत झांकी—"आर चेये देख ओइ प्रस्तरीभूत प्रेमाश्रु, ओइ अनन्त आक्षेपेर आप्लुत वियोगेर अमर-काहिनी—ओइ स्थिर, मौन, निष्कलंक, शुभ्र मन्दिर, ओइ ताजमहलेर दिके चेये देख—से कि करुण। तादेर दिके चेये औरंगजेब के क्षमा कर—आर भाबते चेष्टा कर जे—ए संसार के जतो खाराप भाविस—से ततो खाराप नय, जहां नारा।"[४]

१—शाहजहां—अंक १, दृश्य–४।

२—शाहजहां—अंक २, दृश्य–५।

३—शाहजहां—अंक ५, दृश्य–५।

४—शाहजहां—अंक ५, दृश्य–६।

उदार, धार्मिक दारा की लांछित, करुण दशा, जयसिंह की अन्य राजपूत राजाओं की प्रभुता मानने में अस्वीकृति तथा विद्वेष, पिता को राज्यलोभ के कारण बन्दी करने वाले शठ औरंगजेब के प्रति जहांनारा का तीव्र आक्रोश तथा अन्त में पाशविकता को क्षमा करने वाले प्रेमी वृद्ध सम्राट शाहजहां की महानता मन की विभिन्न तरंगें हैं। इसमें नाटककार ने इतिहास से सामग्री लेकर मानव जीवन का मर्मस्पर्शी चित्र खीचा है। प्रसाद रचित 'अजातशत्रु' नाटक में [illegible] सदृश्य वृद्ध स्नेहशील पिता है तथा अजातशत्रु औरंगजेब सदृश्य उद्धत महत्वाकांक्षी पुत्र हैं। द्विजेन्द्रलाल ने पहले पहल बहिर्द्वन्द्व के साथ अन्तर्द्वन्द्व का समावेश किया। यह अन्तर्द्वन्द्व उनके नूरजहां चरित्र में अत्यंत तीव्र रूप में व्यक्त हुआ है। हिन्दी में प्रसाद के सभी नाटकीय चरित्रों में यह अन्तर्द्वन्द्व परिस्फुट हुआ है। विशेषकर 'स्कन्दगुप्त' नाटक में स्कन्दगुप्त, देवसेना और विजया के चरित्र का निर्माण मानसिक संघर्षों के द्वारा हुआ है।

क्षीरोदप्रसाद विद्याविनोद रचित अधिकांश ऐतिहासिक नाटक यथा आलमगीर, चांदबीबी, खां जहां आदि रोमांस-धर्मी ऐतिहासिक नाटक हैं। 'बांगलार मसनद', 'पलाशीर प्रायश्चित' में भी अत्यधिक रोमांस का पुट है। द्विजेन्द्रलाल राय रचित "दुर्गादास" नाटक के देवोपम नायक वीर दुर्गादास हिंदू जातीयता के इतिहास में अमर हैं। यशवंतसिंह की मृत्यु के उपरान्त उनकी प्रभूभक्ति ने क्षुद्र अंकुर के रूप में अजीतसिंह की रक्षा की। इस नाटक मे कासिम एवं दिलेर खां जैसे मुसलमान पात्रों की उदारता दिखाकर भी लेखक ने यह प्रमाणित करना चाहा कि मुसलमान मात्र ही नीच नहीं होते तथा बीकानेरपति श्यामसिंह की चाटुकारिता, जयपुर नरेश जयसिह की स्त्रैणता मराठा नायक शम्भाजी की शठता एवं अजीतसिंह की दुर्गादास के प्रति कृतघ्नता को व्यवहार के द्वारा यह प्रमाणित करना चाहा कि हिन्दु मात्र ही देवोपम नही होते। इन दोनों विशाल जातियों की शक्ति के सम्मेलन द्वारा ही भारत का पुनरुत्थान हो सकता है। सम्राज्ञी मुलनार की दुर्गादास के प्रति आसक्ति, औरंगजेब की पौत्री रजिया की अजीतसिह के प्रति आसक्ति ये सब बातें ऐतिहासिक तथ्य नहीं हैं। इनमें लेखक की रोमांस-प्रियता व्यक्त हुई है तथा यह भावना भी निहित है कि प्रेम जाति के भेद भाव को बहाकर एक नूतन दिव्य-लोक की रचना कर सकता है। द्विजेन्द्रलाल की राष्ट्रीय भावनाओं में मानव को मानव से मिलाने की कामना है एवं जिसे लोग हिंदु जातियता के भाव कहते हैं वह संकीर्ण जातीयता नहीं, देशप्रेम है। **दुर्गादास स्वगत कहते हैं—** "योद्धा बटे मराठा जाति ! अद्भुत [illegible], अद्भुत समर कौशल, अद्भुत सहिष्णुता। एर संगे यदि राजपूत जातिर एकाग्रता, त्याग आर दृढ़ता पेताम, कि ना होते पारतो ? ना, ता हबार नय। भारतेर भाग्य सुप्रसन्न नय। हिन्दूजाति जे विछिन्न होये गिये छे। आर एक हजार नय।"[1]

१—दुर्गादास—द्विजेन्द्रलाल राय—अंक–४, दृश्य–६

भारत के इतिहास में सम्राट अशोक का नाम चिर उज्ज्वल है। कलिंग युद्ध में किये गये नृशंस व्यवहार के उपरान्त अशोक का हृदय परिवर्तन एवं अभिधर्म की शरण में आना इतिहास प्रसिद्ध घटना है। इस घटना को घेर कर नाटकीयता की अभिव्यक्ति के लिये यथेष्ट सामग्री अशोक संबंधी दंत कथाओं में है। बंगला साहित्य में गिरीशचंद्र घोष, क्षीरोदप्रसाद, मन्मथ राय तथा हिन्दी साहित्य में चन्द्रगुप्त विद्यालंकार, चंद्रराज भंडारी, लक्ष्मीनारायण मिश्र ने अशोक के चरित्र पर नाटक रचना की। डा. रामकुमार वर्मा कृत एकांकी नाटक 'चारुमित्रा' तथा पूर्ण नाटक 'विजय पर्व (सन् १९५६)में नाना बौद्ध ग्रंथों के सहारे अशोक के सहानुभूतिपूर्ण चित्रण की ओर ध्यान दिया गया है। सबसे प्रारम्भिक रचना है—**गिरीशचन्द्रघोष रचित 'अशोक'**, । इस नाटक में अशोक के चरित्र का बहुत ही सशक्त चित्रण हुआ है न तो द्विजेन्द्रलाल के पत्रों के समान भावावेशमय रूप दिया है। और न चिर प्रचलित अशोक के प्रारंभिक जीवन संबंधी क्रूरता की धारणा के अनुसार उन्हें भाव शून्य व हृदय हीन ही दिखाया गया है। पिता बिंदुसार के वे आज्ञाकारी पुत्र हैं, माता सुभद्रांगी का आशीर्वाद उनके जीवन की मूल शक्ति है, प्रथमा पत्नी पद्ममावती तथा उनके पुत्र कुणाल के प्रति अशोक का व्यवहार सहृदय पूर्ण है, द्वितीया पत्नी देवी अपने को सम्राट के अयोग्य समझ पुत्र महेंद्र एवं पुत्री संघमित्रा सहित अन्यत्र रहती हैं, अशोक ने उनका त्याग नहीं किया, अशोक की तृतीया पत्नी तिष्यरक्षिता जो इसमें वारविलासिनी चित्तहरा के रूप में अंकित की गई है, मार की सहायता से अशोक के मन को मोह लेती है— परंतु किसी भी स्थल पर अशोक राजकार्य विस्मृत स्त्रैण नहीं चित्रित किये गये। वीर, महान होते हुए भी एकछत्र चक्रवर्ती सम्राट बनने की महत्वाकांक्षा ने भ्राता सुसीम एवं उसके परिवार के साथ अत्याचार किया तथा माथा उठाने वाले कलिंग राज्य को ध्वंस कर देना चाहा। प्रिय पुत्र कुणाल को अंधा कर देने में उनका हाथ न था उसमें कामुक तिष्यरक्षिता की प्रतिहिंसा की भावना थी। अशोक की आज्ञा से किये गये अनेक नृशंसताओं का उल्लेख हुआ है किंतु सबके मूल में श्री अशोक की महत्वाकांक्षा एवं ज्योतिषियों द्वारा कही गई उनके संबंध में सम्राट बनने की भविष्यवाणी अशोक कहते हैं—

जे हय से हय
होइबो धरणीपति नाहिक संशय।
वेगवान नदे केबा रोधे,
के बारे उद्यमशील तुरुषेर गति।
तक्षशिला निश्चय कोरिबो अधिकार।"[1]

१—अशोक—गिरीशचंद्र घोष—अंक–१, गर्भांक–५

हिंदी नाट्य-क्षेत्र में इतिहास के प्रति निष्ठावान एवं आग्रहशील लेखक श्री जयशंकर प्रसाद हैं। उनके छोटे नाटक सज्जन, करुणालय, एक घूंट आदि हैं, किंतु उनके बड़े नाटकों में इतिहास के प्रति प्रबल उत्कंठा ही व्यक्त हुई। विशाख, राज्यश्री, अज्ञातशत्रु चंद्रगुप्त, स्कन्दगुप्त एवं ध्रुवस्वामिनी में भारत के जिस विस्तृत ऐतिहासिक काल के बाह्य संघर्ष एवं पात्रों की जटिल मनोभावनाओं का अंकन हुआ है वह ऐतिहासिक नाटकों की महत्ता को घोषित करता है। "**विशाख' नाटक की भूमिका में प्रसाद लिखते हैं**—'मेरी इच्छा भारतीय इतिहास के अप्रकाशित अंशों में से उन प्रकांड घटनाओं का दिग्दर्शन कराने की है, जिन्होंने हमारी वर्तमान स्थिति को बनाने का बहुत कुछ प्रयत्न किया है और जिन पर कि वर्तमान साहित्यकारों की दृष्टि कम पड़ती है।" प्रसाद ने इन नाटकों की रचना इतिहास की अनेक छान-बीन के उपरान्त की है। **'अजातशत्रु' नाटक के कथा प्रसंग में प्रसाद लिखते हैं**—"भारत का ऐतिहासिक काल गौतम बुद्ध से माना जाता है, क्योंकि उस काल की बौद्ध-कथाओं में वर्णित व्यक्तियों का पुराणों की वंशावली में भी प्रसंग आता है। लोग वहीं से प्रामाणिक इतिहास मानते हैं। पौराणिक—काल के बाद गौतम बुद्ध के व्यक्तित्व ने तत्कालीन सभ्य संसार में बड़ा भारी परिवर्तन किया। इसलिए हम कहेंगे कि भारत के ऐतिहासिक-काल का प्रारम्भ धन्य है, जिसने संसार में पशु-कीट-पंतक से लेकर इन्द्र तक के साम्यवाद की शंख-ध्वनि की थी। केवल इसी कारण हमें, अपना अतीव प्राचीन इतिहास रखने पर भी, यहीं से इतिहासकाल का प्रारम्भ मानने में गर्व होना चाहिये।"

प्रसाद के नाटकों पर दार्शनिकता, काव्यात्मकता, अनभिनेयता, कथावस्तु की शिथिलता आदि अनेक दोषारोपण किये गये हैं किन्तु इन सबका एकमात्र कारण है उनका इतिहास प्रेम। भारत के अंधकाराच्छन्न इतिहास पर भावात्मक ढंग से प्रकाश डालने के लिए 'अजातशत्रु' नाटक में सात वर्षों का, 'चन्द्रगुप्त' में चौबीस वर्षों, का 'राज्यश्री' में, अड़तीस वर्षों का एवं 'स्कन्दगुप्त' में, दस वर्षों का काल रखा गया है। इसका यह कारण नहीं है कि प्रसाद की नाट्य-कला प्रौढ़ नहीं थी। डा० जगन्नाथ प्रसाद शर्मा का प्रसिद्ध आलोचनात्मक ग्रंथ 'प्रसाद के नाटकों का शास्त्रीय अध्ययन' प्रसाद की कला-कुशलता का साक्षी है। 'ध्रुवस्वामिनी' नाटक में उन्होंने शकारि विक्रमादित्य याने चन्द्रगुप्त द्वितीय द्वारा भ्रातृजाया ध्रुवदेवी का शकों से उद्धार एवं उनसे विवाह के कथानक को सीमित काल के अन्तर्गत इस चुस्ती से संगठित किया है कि वह आधुनिक समस्या-नाटकों की कसौटी पर खरा उतरता है। किन्तु अजातशत्रु, चन्द्रगुप्त एवं स्कन्दगुप्त हिन्दी नाट्य-साहित्य के गौरव ग्रंथ हैं जिनके ऐतिहासिक वातावरण एवं सांस्कृतिक गरिमा की तुलना में बंगला नाट्य-साहित्य में विरले ही ग्रंथ हैं। इसका कारण यही है कि बंगला नाटककारों ने जब भी ऐतिहासिक कथानक का चयन किया है उसे अपनी भावुकता तथा उद्दीप्त राष्ट्रवाद से भूषित किया है। उन नाटकों में इतिहास के प्रति निष्ठा कम है किन्तु उनकी विशेषता कुछ अलग ही है।

प्रसाद के प्रत्येक नाटक में बाह्य-संघर्ष एवं अन्त र्द्वन्द्व का समन्वय हुआ है जब कि बंगला के अधिकांश ऐतिहासिक नाटक ममत्व, कामना, वासना, प्रतिहिंसा, महात्वा-

कांक्षा आदि भावनाओं की आँधी से आच्छन्न हैं। प्रसाद के प्रत्येक ऐतिहासिक नाटक में **प्राच्य और पाश्चात्य नाटक-तत्वों का समन्वय** हुआ है जब कि बंगला में पाश्चात्य तत्वों को अधिक अपनाने की चेष्टा की गई है । द्विजेन्द्रलाल के 'चन्द्रगुप्त' नाटक के नायक चन्द्रगुप्त अन्तःपुर-निर्वासिता दासी मूरा के पुत्र हैं, चाणक्य के अंतःकरण में एक स्नेह-कंगाल पिता का रूप छिपा है। उनके 'नूरजहां' नाटक की नायिका नूरजहां लेडी मैकवेथ के समान मानसिक द्वन्द्वों के कशाघात से उन्माद हो जाती है—इन प्रसंगों की अवतारणा नाटकों को ट्रेजेडी का रूप देने के उद्देश्य से की गई है। प्रसाद के नाटकों का वातावरण आदि, मध्य और अन्त में भी प्रसादमय है किन्तु संघर्ष ही उनके नाटकों का प्राण है । 'अजातशत्रु' नाटक में बिम्बसार कहते हैं—"तब तो देवि ! प्रत्येक असम्भावित घटना के मूल में यही बवंडर है। सच तो यह है कि विश्व-भर में स्थान-स्थान पर वात्याचक्र है, जल में उसे भंवर कहते हैं, स्थल पर उसे बवडर कहते हैं, राज्य में विप्लव, समाज में उच्छृंखलता और धर्म में पाप कहते हैं। चाहे इन्हें नियमों का अपवाद कहो चाहे बवंडर—यही न ?"[1]

हिन्दी के ऐतिहासिक नाटकों में सेठ गोविन्ददास रचित **'हर्ष,' 'शशिगुप्त,'** उदयशंकर भट्ट रचित **'दाहर'** अश्क रचित **'जय पराजय'** आदि प्रसिद्ध हैं। किन्तु अतुलनीय प्रतिभा, प्रकांड पाण्डित्य एवं समन्वयात्मक शक्ति के कारण **प्रसाद विशुद्ध ऐतिहासिक नाट्य-क्षेत्र के सम्राट कहे जा सकते हैं।** इसी महत्ता को स्वीकार करते हुए हिन्दी नाट्य-साहित्य का एक गौरवमय युग प्रसाद काल (सन् १९१५ से सन् १९३३) के नाम से अभिहित किया जाता है।

२—ऐतिहासिक—राष्ट्रवादी नाटक

बीसवीं सदी के प्रारम्भ से भारत में राष्ट्रीय चेतना का नवजागरण हुआ। ब्रिटिशों की दमन-नीति ने इसे और भी प्रचंड रूप दिया। इन विक्षुब्ध प्रहरों में उद्बोधनकारी साहित्य का सृजन हुआ जिसने जनता को उद्दीप्त किया, उद्बोधित किया एवं राष्ट्रीय-मंत्रों से दीक्षित किया। इस क्षेत्र में नाट्य-साहित्य एवं रंगमंचों ने सबसे महत्वपूर्ण कार्य किया। ऐतिहासिक नाटकों की रचना राष्ट्रीवादी उद्देश्य लेकर होने लगी एवं विगत भारत की श्री समृद्धि, महानता एवं ऐश्वर्य का जो चित्रण एवं भव्य भावों की जो अभिव्यक्ति इन राष्ट्रवादी नाटकों में मिलती है, वे अन्यत्र दुर्लभ हैं। इस राष्ट्रवाद का चरम विकास जर्मनी में हुआ।

१—अजातशत्रु—लेखक जयशंकर प्रसाद—दूसरा अंक छठा दृश्य।

हिन्दी तथा बंगला नाट्य-साहित्य में राष्ट्रवादी भावों को व्यक्त करने के लिए अनेक उच्च कोटि के नाटकों की रचनाएँ हुईं। विशेषकर सन् १९०० से सन् १९३० तक के नाट्य-साहित्य में ऐतिहासिक-राष्ट्रवादी नाटकों का एकाधिपत्य रहा। रंगमंचों पर राष्ट्रीय भावों का अभिनय देख जनता का हृदय जोश से भड़क उठता था एवं उस युग में राष्ट्र प्रेम ही सबसे बड़ा धर्म माना जाने लगा था। द्विजेन्द्रलाल राय जिन नाटकों के लिए सबसे अधिक लोकप्रिय हुए वे इस कोटि के नाटक हैं। द्विजेन्द्रलाल के 'सीता,' 'पाषाणी,' 'भीष्म' पौराणिक नाटक हैं, 'शाहजहां' एवं 'नूरजहां' ऐतिहासिक नाटक हैं जिनमें मानव मन की सबलता, दुर्बलता की झांकी है किन्तु उनके नाटक प्रतापसिंह, दुर्गादास एवं मेवाड़-पतन में भारत की वीर राजपूत जाति के उत्थान और पतन का जो भव्य-चित्र खींचा गया है वे भारत की राष्ट्रीयता के इतिहास के अनमोल रत्न हैं। उन्होंने अपनी सामग्री इतिहास, टाड रचित 'राजस्थान' तथा अपनी अनोखी कल्पना से ग्रहण की एवं भारत की राष्ट्रीय भावनाओं की पवित्र माधुरी को अत्यन्त गरिमामयी शैली में हमारे सामने रखा। भारत के इतिहास-काल के प्रथम चक्रवर्ती सम्राट चन्द्रगुप्त मौर्य पर रचित उनका नाटक 'चन्द्रगुप्त' भारतीय तथा ग्रीक जाति के संघर्ष एवं भारत की विजय-घोषणा के गौरव से मंडित है। बंगला नाट्य-क्षेत्र में माइकेल मधुसूदनदत्त के 'कृष्णकुमारी' नाटक ने ज्योतिरिन्द्रनाथ ठाकुर के 'अश्रुमती' नाटक ने जिस बीज का वपन किया था, द्विजेन्द्रलाल के 'प्रतापसिंह' में वह अंकुर लहलहा उठा। आधुनिक काल के नाट्यकार शचीन सेनगुप्त, महेन्द्रगुप्त आदि ने भी कई उच्च कोटि के ऐतिहासिक-राष्ट्रवादी नाटकों की रचना की है किन्तु द्विजेन्द्रलाल के नाटकों में राष्ट्र का जो भव्य एवं पवित्र रूप अंकित हुआ है उनका अभिनय आज भी देखकर हृदय श्रद्धावनतहोता है।

हिन्दी नाट्य-साहित्य के साथ सबसे अधिक सम्पर्क द्विजेन्द्रलाल के नाटकों का रहा। शेक्सपियर की शैली से उनका परिचय भी द्विजेन्द्रलाल के नाटकों के अनुवादों से हुआ। किंतु द्विजेन्द्रलाल की राष्ट्रीय भावनाओं का भी सबसे अधिक प्रभाव हिंदी जगत पर पड़ा। स्थायी रंगमंच के अभाव में भी नाट्योत्साही व्यक्तियों द्वारा हिन्दी में उनके नाटकों का अभियन हुआ क्योंकि जनता राष्ट्रीय-मंत्र में दीक्षित होना चाहती थी और उसे ऐसे नाटकों की आवश्यकता थी। इस मांग की पूर्ति हिन्दी नाट्य-क्षेत्र में हरिकृष्ण प्रेमी ने की। जयशंकर प्रसाद के ऐतिहासिक नाटक जन-साधारण की वस्तु न थे, इसके सिवा उनके नाटकों में इतिहास, काव्य और दार्शनिकता का समन्वय हुआ है। द्विजेन्द्रलाल राय के राष्ट्रवादी नाटकों को आदर्श बनाकर हरिकृष्ण प्रेमी का प्रादुर्भाव हुआ। **द्विजेन्द्रलाल तथा प्रेमी के कुछ ऐतिहासिक-राष्ट्रवादी नाटकों** पर प्रकाश डालने से इनका स्वरूप और स्वष्ट होगा। द्विजेन्द्रलाल रचित 'दुर्गादास' एवं प्रेमी रचित 'शिवा साधना' दो चरित्र-प्रधान नाटक हैं जिनमें दो वीरों को राष्ट्र-नायक के रूप में चित्रित किया गया है। **लार्ड कर्जन की भेद-नीति** से विक्षुब्ध होकर १६ अक्टूबर १९०५ से बंग-भंग-आन्दोलन प्रारम्भ हुआ। बंग-भंग के सम्बन्ध में **श्री जगदीश शरण शर्मा** लिखते हैं—

"इट इनज्यूओर्ड दी फीलिंग्स आफ वन आफ दी मोस्ट इमोशनल प्यूपल इन दी वर्ल्ड। देयर वाज फियर्स एजि टेशन इन दी कन्ट्री । दी बेंगाल पालिटिशियन्स मैनेज्ड टू विन दी सीम्पैथिस आफ दी होल आफ इण्डिया आन देयर साईड । इट मे बी सेड दैट आउट आफ दी ट्राबेल्स आफ बेंगाल, इण्डियन नैशनलिज्म वाज बार्न ।"

इन आन्दोलनकारियों में बंगाल के साहित्यिकों ने अत्यंत सक्रिय भाग लिया था एवं नाट्य-क्षेत्र पर इस आन्दोलन का अत्यंत प्रभाव पड़ा । 'दुर्गादास' नाटक की रचना ५ नवम्बर, १९०६ में हुई जो राष्ट्रीय भावनाओं की दृष्टि से श्रेष्ठ नाटक है । स्वामी-भक्ति देश-प्रेम, आत्म-त्याग तथा उदारता आदि देवोपम गुणों से भूषित यह चरित्र अस्वाभाविक होते हुए भी मर्मस्पर्शी है । दुर्गादास के चरित्र से लेखक के आदर्शवाद एवं निराशा की अभिव्यक्ति हुई है किन्तु यह पाश्चात्य के ट्रेजेडी का अनुकरण नहीं है। केवल मात्र करुण दृश्यों की प्रचुरता, नियति के साथ मानव-प्रचेष्टाओं का द्वन्द्व, नायक की निष्फलता आदि ट्रेजेडी के लक्षण नहीं हैं, ट्रेजेडी में किसी एक चरित्र-दोष के कारण नायक का पतन होता है । वीर दुर्गादास निष्फल होते हैं किन्तु उनके चरित्र की उज्ज्वलता से दर्शकों का हृदय भास्वर हो उठता है । **पेशोला के तीरवर्ती प्रासाद में एकाकी दुर्गादास** अपनी निराशा व्यक्त करते हैं—

व्यर्थ होयेछि । पाल्लमि ना ए जातिके टेने तुलते ।
सहस्त्र वत्सरेर निष्पेषणे जाति निर्जीव होये छे ।"[१]

यहां एक वीर जाति के वीर-श्रेष्ठ के मुख से लेखक ने अपनी राष्ट्रवादी निराशाजनित भावों को व्यक्त किया है क्योंकि भारत की परिस्थिति स्वदेशी आन्दोलनों के समय अधिक फलवती न थी । 'दुर्गादास' नाटक में दिलेर खां की उदारता व्यंजक उक्तियां भी हिंदू-मुस्लिम मिलन के अकांक्षी लेखक के हृदय की वाणी है—

"औरंगजेव—हिंदू मुसलमान एक हबे दिलेर खां ?

दिलेर खां—केनो हबे ना सम्राट ? तारा एतोदिन एकई आकाशेर नीचे,
एकई वातास सेवन करे, एकई जल पान करे, एकइ भूमिजात
शस्य खेये आसछे। एखनो कि तादेर प्राण एक हइनि ?"[२]

हिन्दी नाट्य-क्षेत्र में हिन्दु-मुस्लिम ऐक्य के राष्ट्रीय उद्देश्य को सामने रखकर नाटक रचना करने वालों में हरिकृष्ण प्रेमी अत्यंत सफल हुए । उनका नाटक **"रक्षा-बंधन"** अत्यंत लोकप्रिय हुआ । मेवाड़ की महारानी कर्मवती गुजरात के बादशाह

१—दुर्गादास—लेखक द्विजेन्द्रलाल राय । पंचम अंक, अष्टम दृश्य ।

२—दुर्गादास—पंचम अंक, चतुर्थ दृश्य ।

बहादुरशाह से अपनी रक्षा के लिये मुगल-सम्राट हुमायूँ को राखी भेजती हैं एवं हुमायूँ राखी की लाज रखने अपनी हिंदू बहन के पास दौड़ जाते हैं किंतु उसके पूर्व ही रानी कर्मवती चिता में जलकर भस्म हो जाती हैं। इस ऐतिहासिक घटना को प्रेमी ने चुना एवं अपने भावों को व्यक्त किया—

"कर्मवती—मैं हुमायूँ को राखी भेजूँगी।

जवाहरबाई—हुमायूँ को ! एक मुसलमान को भाई बनाओगी ?

कर्मवती—चोंकती क्यों हो जवाहर बाई ! मुसलमान भी इन्सान है।—

कर्मवती—हमारी राखी वह शीतल प्रलेप है जो सारे घाव भर देता है, वह वरदान है जो सारे वैर भावों को गला कर भस्म कर देता है। राखी पाने के बाद भी क्या कोई वैर-विरोध याद रख सकता है ?"[१]

बीसवीं सदी के भारत के स्वाधीनता संग्राम के इतिहास में गांधीजी का प्रादुर्भाव एक युगान्तरकारी घटना है। प्रथम-महायुद्ध के बाद भारत में गांधीजी के नेतृत्व में असहयोग आन्दोलनों का प्रारम्भ हुआ। सन् १९२०, सन् १९३१-३४ तथा सन् १९४२ के आन्दोलन स्मरणीय हैं। गांधीजी की नीति प्रेम, अहिंसा, त्याग, आत्मोन्नति, ब्रह्मचर्य आदि का हिंदी के साहित्यिकों पर अत्यंत प्रभाव पड़ा, हिंदी काव्य-क्षेत्र में सियारामशरण गुप्त, उपन्यास-क्षेत्र में जैनेन्द्रकुमार एवं नाट्य-क्षेत्र में हरिकृष्ण प्रेमी तथा सेठ गोविन्ददास पर गांधीवादी दर्शन का सबसे अधिक प्रभाव पड़ा। अगर हम वीर दुर्गादास के चरित्र का सूक्ष्मावलोकन करें तो ज्ञात होगा कि गांधीजी के प्रादुर्भाव के पूर्व ही द्विजेन्द्रलाल ने एक आदर्श चरित्र की कल्पना की जिसका बीज भारत के इतिहास ही में है। दिलेरखां—"जे प्रभुर जन्य प्राण पण करे, देशेर पाये सर्वस्व अर्पण करे, आश्रित के रक्षा कबरि जन्य देश छाड़े, अप्सरा सम्राज्ञीर अबँध प्रेम प्रत्याख्यान करे, प्रपीड़ित अबलार प्राण रक्षार्थ निजेर बूक आगिये दैय, शैषे आश्रिता कुमारीर धर्म रक्षार जन्य निर्वासित हय—सेरूप चरित्र तोमादेर पुराणेइ कयटा आछे दुर्गादास ?"[२]

यह लेखक की नवीव चेतना है जिसके आलोक में मानव की महानता घोषित हुई। यह चित्र विष्णु के अवतार श्रीराम का नहीं, मेवाड़ के एक वीर का है। बंगाल के लेखकों ने सुदूर राजस्थान के देशप्रेमी वीरों की गाथा को नाट्य-रूप देकर उन्हें और भी हमारे हृदय के निकट ला दिया। उसी तरह हिंदी नाट्य-कार हरिकृष्ण प्रेमी

१—रक्षा-बंधन—लेखक हरिकृष्ण प्रेमी। पहला अंक, छठा दृश्य।

२—दुर्गादास—पंचम अंक, अष्टम दृश्य।

ने मराठा-केशरी शिवाजी पर नाटक लिखकर उनके चरित्र को देशवासियों के समक्ष स्पष्ट किया। इसका कारण यह है कि बीसवीं सदी के प्रारम्भ से ही भारत में राष्ट्रीयता की भावना प्रसारित होने लगी थी एवं जाति, भाषा, धर्म, भूगोल आदि की अनेकता की उपेक्षा कर 'राष्ट्र' नामक एक मानस-पदार्थ की उपलब्धि देश का हर व्यक्ति कर रहा था।

रवीन्द्रनाथ रचित नाटक "ताशेर देश" एवं शचीन सेनगुप्त रचित नाटक "गैरिक पताका" नेताजी को उत्सर्ग किये गये। शचीन्द्रनाथ सेनगुप्त ने शिवाजी के देवोपम चरित्र को केन्द्र कर **"गैरिक पताका"** नामक नाटक की रचना की। इस नाटक का उद्देश्य पूर्णतः राष्ट्रवादी है तथापि इतिहास के पात्र पात्री तथा घटनाओं का यथासाध्य संयोजन हुआ है। लेखक ने इस नाटक की रचना १९३७ साल में की जब कि भारत के **विप्लवी वीर नेताजी सुभाषचन्द्र बसु** कारारुद्ध थे। नाटक नेताजी को ही उत्सर्ग किया गया है। इस नाटक के प्रारम्भ में ही भवानी मन्दिर में **शिवाजी** तानाजी के निकट अपने उद्देश्यों को व्यक्त करते हैं जिनमें **एक साम्यवादी राष्ट्र गठन की इच्छा** निहित है—"आमि ताई शक्तिर आराधना कोरछि, आमि ताई तेरी कोरते चाइछि एमनि एकटा जाति, जार प्रतिटि मानूष सकल अधिकार आयत कोरे धरणीर बूके वेड़े उठते पारे, तारई जन्य आमार राज्येर प्रयोजन।"[१]

इस साम्य से लेखक का इंगित मार्क्सवादी साम्यवाद की ओर नहीं है परन्तु यह ऐक्य के महान उद्देश्य को व्यक्त करता है जिसमें हिन्दू मुसलमान स्त्री पुरुष, मिल मालिक, मजदूर और किसान सभी एक होकर राष्ट्र के महायज्ञ में सम्मिलित हों। स्वाधीनता के पूर्व के भारत का यही एकमात्र ध्येय था जिसे लेखकों ने ऐतिहासिक कथाओं के माध्यम से नाना रूप में व्यक्त किया। राष्ट्रोन्नति के लिए नेताओं का चरित्र भी निर्मल, दृढ़ तथा संयमी होना चाहिए। जिस समय शिवाजी के सेनानायक कल्याण के शासक मौलाना अहमद की पुत्रवधू को बन्दी करके शिवाजी को भेंट चढ़ाकर उन्हें प्रसन्न करना चाहते हैं उस समय शिवाजी की क्षोभपूर्ण उक्ति उनकी चारित्रिक दृढ़ता का परिचय देती है— सेना नायक जेखाने एमनि अपदार्थ, राजा जेखाने लम्पट बोले विवेचित—से खाने धर्मराज्य प्रतिष्ठार कथा दारूण परिहास।"[२]

यह घटना ऐतिहासिक है साथ ही शिवाजी के सम्बन्ध में यह धारगा भी है कि वे मुगल आततायियों के शत्रु थे किंतु दीन मुसलमान प्रजा पर कभी अत्याचार

१—गैरिक पताका—लेखक शचीन्द्रनाथ सेनगुप्त, प्रथम अंक, प्रथम दृश्य।

२—गैरिक पाताक—लेखक शचीन्द्रनाय सेनगुप्त, प्रथम अंक, पचम दृश्य।

नहीं करते थे। उनकी मराठा सेना वाहिनी अत्यंत दुर्घर्ष थी एवं उनके द्वारा किये गये असहायों पर अत्याचार को शिवाजी ने कभी प्रोत्साहित नहीं किया।

शचीन्द्रनाथ सेनगुप्त के समसामयिक हिंदी लेखक हरिकृष्ण प्रेमी हैं जिन्होंने शिवाजी के चरित्र को लेकर एक नाटक लिखा। **"शिवा-साधना"** नाटक के प्रारम्भ में लेखक की यह उक्ति दृटव्य है—"शिवाजी के चरित्र को साहित्यकारों ने जिस रूप में अंकित किया है, उससे हिंदुओं और मुसलमानों के हृदय दूर ही होते हैं। इनके विपरीत मैंने इस नाटक में बताया है कि शिवाजी न केवल महाराष्ट्र में बल्कि सम्पूर्ण भारत-वर्ष में जनता का स्वराज्य स्थापित करना चाहते थे, उनके हृदय में मुसलमानों के प्रति कोई द्वेष न था। मेरी इस धारणा की इतिहास भी पुष्टि करता है।"[1]

दुर्गादास, शिवाजी आदि का इस आदर्श रूप मे चित्रण करना ताकि समस्त भारत उन पर गर्व कर सके—यह हिंदी तथा बंगला के नाट्यकारों का स्तुत्य प्रयास था। किंतु इसका अतिरेक कहीं-कहीं अशोभन तथा अनैतिहासिक सिद्ध होता है। मुगल सम्राज्ञी गुलनार का दुर्गादास के प्रति आसक्ति तथा मुगल शाहजादी जेबुन्निसा का शिवाजी के प्रति आसक्ति रोमांटिक प्रवृत्ति के परिचायक हैं। **प्रो० यदुनाथ सरकार के ग्रन्थ "स्टेडीज इन मुगल इंडिया"** में इनका कोई उल्लेख नहीं मिलता। ऐतिहासिक आचार्य श्री यदुनाथ सरकार कामबख्श की माता उदिपुरी का उल्लेख यों करते हैं—

"ए लो एनिमल टाइप आफ पार्टनर।—शी रिटेंड हर चार्मस् एण्ड इन्फ्लुयेंस ओव्हर दी एम्परर टिल हिज डेथ, एण्ड वाज दी डार्लिंग आफ हिज ओल्ड एज।"

इसी तरह औरंगजेब की पुत्री **जेबुन्निसा** के विषय में तथा शाहजहां की पुत्री **जहांनारा** के विषय में यूरोपीय इतिहासकार की राय उच्च कोटि की धारणाओं का पोषण नहीं करती किन्तु राष्ट्रीयता के उन उद्दीप्त क्षणों में हिंदी तथा बंगला के साहित्यिकों ने विदेशी साहित्यिकों की राय को पक्षपातपूर्ण ठहराकर हिंदू तथा मुसलमान चरित्रों का सहानुभूतिपूर्ण चित्रण किया। उन्होंने यही प्रमाणित करना चाहा कि हिंदू मात्र ही सत् नहीं होते एवं मुसलमान मात्र ही असत् नहीं होते। हमारे इतिहास में कई ऐसे हिंदू विश्वासघातक हैं जिन्होंने विदेशियों के हाथों अपने देश को बेच डाला।

इन **विश्वासघातियों के घृणित रूप का चित्रण** गिरीशचंद्र के **'सिराजुद्दौला'** एवं **'मीरकासिम'** में हुआ है। हिंदी में संधिकाल (सन् १९०५ से १९१५) के प्रसिद्ध नाट्य-

---

१—शिवा-साधन—लेखक हरिकृष्ण प्रेमी—अपनी बात।

कार बद्रीनाथ भट्ट के '**दुर्गावती**' नाटक में भी यही इंगित है। गढ़ा मंडले (जबलपुर के पास) की वीर गोंड रानी दुर्गावती इन्हीं घृणित विश्वासघातकों के विषय में कहती है—रानी--"जब तक किसी देश में विश्वासघाती नहीं होते, तब तक उस देश की स्वतंत्रता पर कहीं से कोई वार नहीं हो सकता—लोहा अकेला पेड़ को कब काट सकता है भला, जब तक कि लकड़ी का हथेला हो नहीं उसमें सला।"[1] हिन्दी नाट्य-क्षेत्र में 'दुर्गावती' नाटक एक अभिनयोपयोगी सफल नाटक है जिसमें अकबर सदृश्य प्रतापी मुगल सम्राट के विरुद्ध एक नारी की विजय-गाथा है। मध्यप्रदेश के इतिहास में रानी दुर्गावती एक स्मरणीय चरित्र हैं जिन्होंने मालवाधिपति बाज बहादुर तक को पराजित कर उनसे भोपाल छीन लिया था एवं मुगल सेना के विरुद्ध युद्ध करते करते प्राण निछावर कर दिया था। सन् १८५७ के सिपाही विद्रोह में भाग लेने वाली झांसी की रानी की वीरता की प्रशंसा अंग्रेजों ने भी की एवं उनकी प्रसिद्धि भी अधिक है एवं उन पर नाटक भी लिखे गये किंतु जबलपुर के मदनमहल के ध्वंसाव-शेषों में जिस गोंड रानी की वीरता की कहानी छिपी है उस पर बद्रीनाथ भट्ट ने आलोक पात किया। बाद में बंगला लेखक महेंद्र गुप्त ने भी रानी दुर्गावती पर राष्ट्रवादी भावपूर्ण एक नाटक लिखा। बंकिमचंद्र एवं द्विजेन्द्रलाल के सृजन में पुरुषत्व अधिक है किन्तु बंकिमचन्द्र के समान द्विजेन्द्रलाल 'देवी चौधरानी' की सृष्टि न कर सके। नूरजहां, जहांनारा, हेलेन आदि में वीरत्व नहीं हैं। उनका प्रथम ऐतिहासिक नाटक '**ताराबाई**' में नायक पृथ्वी-राज की अपेक्षा नायिका ताराबाई के चरित्र की मानवीयता, शौर्य एवं दृढ़ता अधिक व्यंजित हुई हैं। ऐतिहासिक नाटकों में जिस स्वदेश प्रेम की व्यंजना हुई उसका प्रथम आभास इस वीर रमणी पर रचित नाटक से प्राप्त होता है, जिसकी कथा लेखक ने टाड कृत राजस्थान से ग्रहण की। यह भी एक आगे की ओर पदक्षेप था। स्वदेशी आन्दोलन के उस युग में सहकर्मिणी बनने के लिये गृह-काराबद्ध नारी जाति का आह्वान हुआ एवं नाटकों में ऐतिहासिक वीर रमणियों का चित्रण हुआ।

ऐतिहासिक नाटकों में नारी चित्रण का पक्ष अधूरा रह जायेगा अगर **प्रसाद के नारी चरित्रों** का उल्लेख न हो। उनके ऐतिहासिक नाटकों के अधिकांश नारी चरित्र कल्पित हैं अतः उन्हें वह महत्व नहीं प्राप्त हो सकता जितना कि ऐनिहासिक-पात्रियों को दिया जाना चाहिये। उनके नाटक 'राज्यश्री' की नायिका राज्यश्री ऐतिहासिक है एवं प्रसिद्ध राजा हर्षवर्द्धन की भगिनी हैं। राज्यश्री का चित्रण वीरता से मंडित नहीं, त्याग, उदारता एवं सहिष्णुता से भूषित हुआ है। जो नारी सुलभ गुण,प्रेम त्याग द्वारा परिपूर्ण होकर देवसेना के चरित्र में अवतरित हुआ है वह हिंदी एवं बंगला नाट्य साहित्य की अनुपम सृष्टि है। हूणों से देश की रक्षा के लिए वह स्कन्दगुप्त के चरणों पर मालवा निछावर कर देती है किंतु प्रतिदान में कुछ नहीं चाहती। देश के कल्याण

१—दुर्गावती—लेखक बद्रीनाथ भट्ट–पहला अंक, तीसरा दृश्य।

के लिये प्रेमी का त्याग एक स्वर्गीय कल्पना है। जिसके समक्ष सत्य भी फीके प्रतीत होते हैं। देवसेना कहती हैं—"इस हृदय में—आह ! कहना ही पड़ा, स्कन्दगुप्त को छोड़कर न तो कोई दूसरा आया और न वह जायगा। अभिमानी भक्त के समान निष्काम होकर मुझे उसी की उपासना करने दीजिये, उसे कामना के भंवर में फंसाकर कलुषित न कीजिए। नाथ ? मैं आपकी ही हूं, मैंने अपने को दे दिया है। अब उसके बदले कुछ लेना नहीं चाहती।"[1]

इस आदर्शवादी चरित्र **देवसेना** के साथ प्रसाद के यथार्थवादी चरित्र **ध्रुव-स्वामिनी** की तेजस्विता तुलनीय है। उसमें भी राष्ट्रवादी भावना है, शकों के समक्ष आत्म-समर्पण करने में क्षोभ ही व्यक्त हुआ है किन्तु ध्रुवस्वामिनी की वीरता एवं विद्रोह अपने नारीत्व की मर्यादा की रक्षा हेतु व्यक्त हुआ है, किसी उच्च आदर्श के कारण नहीं। द्विजेन्द्रलाल रचित **'मेवाड़ पतन'** नाटक में **कल्याणी, सत्यवती** एवं **मानसी** क्रमशः दाम्पत्यप्रेम, देशप्रेम एवं विश्व-प्रेम के प्रतीक हैं। इस युग के नाटकों में हिन्दी तथा बंगला लेखकों ने नारी को उच्च कोटि के गुणों से भूषित किया है। कहीं-कहीं नारी के महिमा गान के समक्ष पुरुष पात्र निस्प्रभ लगते हैं। राष्ट्र की उन्होंने मातृ-रूप में पूजा की अतः नाटकों के नारी-पात्रों का चित्रण मनोहर एवं पावन होना स्वाभाविक था। ध्रुवस्वामिनी' की रचना से हिंदी में समस्या नाटकों का प्रारंभ हो गया, राष्ट्रीय उत्तेजना शीतल होती गई एवं नारी का चित्रण यौन-समस्या की पृष्ठभूमि पर अत्यंत संकीर्ण तथा यथार्थवादी रूप में होने लगा। ऐसी परिस्थिति में भी पवित्र राष्ट्रीय भावों से परिपूर्ण मधुर-कठोर **भारमली** की सृष्टि अश्क की लेखनी द्वारा हुई। **'जय-पराजय'** ऐतिहासिक नाटक की नायिका, मेवाड़ की गायिका भारमली जितनी प्रेममयी है उतनी ही तेजस्विनी भी है। रणमल के उल्लास भवन में छुरा हाथ में लिए भारमली कहती है—

"लोगों ने समझा होगा, भारमली नीच गायिका ही निकली। कुमार के मरने पर रणमल के विलास-भवन का खिलौना बनने आ गई, अपमानित होकर मर नहीं गई। उन्हें क्या मालूम—भारमली मरना चाहती थी' भारमली मर जायगी, किन्तु प्रतिहिंसा की आग ने उसे अब तक मरने न दिया। वह बदला लेकर मरना जानती है। अपमान की ज्वाला को शांत किये बिना मरना नहीं जानती।"[2]

बीसवीं सदी के हिंदी ऐतिहासिक राष्ट्रवादी नाटकों में नारी-चित्रण अपना विशिष्ट स्थान रखता है। उनमें भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के नाटक 'नीलदेवी' में राजा सूर्यदेव की रानी का प्रतिबिम्ब है, **द्विजेन्द्रलाल की मातृ-पूजा की भावना है, टाड के 'राजस्थान' एवंगौरीशंकर हीराशंकर ओझाजी के ग्रंथों की ऐतिहासिकता है** जिनमें राजपूत रम-

---

१—स्कन्दगुप्त—लेखक जयशंकर प्रसाद, पंचम अंक।

२—जय पराजय—लेखक उपेन्द्रनाथ अश्क—अंक—५, दृश्य—७

णियों के जौहर की गाथाएं हैं। माधुर्य और पौरुष की समन्वित सृष्टि में हिंदी नाटकों की देवसेना, राज्यश्री, कर्मवती, दुर्गावती, ध्रुवस्वामिनी तथा भारसली बंगला नाटकों की नूरजहां, जहांनारा, चांदबीबी, रजिया बेगम, लुत्फुन्निसा आदि से अधिक गरिमामयी हैं।

आज के जीवन में राजनीति एवं अर्थनीति का स्थान प्रमुख होता जा रहा है एवं नाटकों में उनकी अभिव्यक्ति हो रही है। ऐतिहासिक नाटक **अधिकांशतः रोमांस-धर्मी** होने के कारण उसमें राजनीति, विदेशी पात्र तथा उनसे संबंधित घटनाओं का भावपूर्ण चित्रण हुआ है। तार्किक व विश्लेषणात्मक न होते हुए राजनीति के कूट कौशल विदेशियों के साथ भारतवासियों के रागात्मक सम्पर्क आदि के जो चित्र हैं वे राष्ट्रवादी ऐतिहासिक नाटकों की विशेषताएँ हैं। शुद्ध ऐतिहासिक नाटकों में देश-काल-चित्रण का जो महत्व है, राष्ट्रवादी नाटकों में जातिगत पारस्परिक भाव विनिमय के चित्रण का उतना ही महत्व है। यही कारण है कि चन्द्रगुप्त मौर्य से संबंधित नाटकों में सिकन्दर, सेल्युकस, एटिगोनस एवं हेलेन जैसे पात्र-पात्रियां हमारी दृष्टि आकर्षित करते हैं तथा टीपू सुल्तान व मीरकासिम से संबंधित नाटकों में हम अंग्रेज पात्रों को अधिक गौर से देखते हैं। यद्यपि **विदेश-नीति** व **विदेशी पात्र** गौण स्थान अधिकार रखते हैं फिर भी उनके संघात में हमारा राष्ट्रवाद उन नाटकों में पुष्ट हो उठता है।

झैलम नदी (ग्रीक 'Hydaspes', वैदिक 'विपाशा' नदी संस्कृत 'वितस्ता नदी) के तीर पर ग्रीक-विजेता सिकन्दर तथा पंजाब के वीर पुरु की युद्ध-कहानी ऐतिहासिक है। इस विषय में अधिक तथ्यों का ज्ञान हमें ग्रीक इतिहास से ही प्राप्त होता है। सिकन्दर की मृत्यु के पश्चात् सेल्युकस भारत-विजय की अभिलाषा लेकर आते हैं एवं चन्द्रगुप्त मौर्य से पराजित होकर अपनी कन्या हेलेन का विवाह चन्द्रगुप्त से कर देते हैं। यह यथार्थ में प्रेम विवाह नहीं था, इसका राजनैतिक उद्देश्य था एवं प्राचीनकाल में विजितों के द्वारा नारी समर्पण ही इनकी पराजय का प्रमाण था। इन ऐतिहासिक पात्र पात्रियों का द्विजेन्द्रलाल ने 'चन्द्रगुप्त' नाटक में बहुत ही भावपूर्ण चित्रण किया है। नाटक के प्रारम्भ में ही सिकन्दर की भारत संबंधी धारणा हमें मुग्ध कर देती है— सिकन्दर—"सत्य सेलूकस ! कि विचित्र एई देश। दिने प्रचंड सूर्य एर गाढ़ नील आकाश पुड़िये दिये जाय, आर रात्रिकाले शुभ्र चंद्रमा एसे ताके स्निग्ध ज्योत्स्नाय स्नान कोरिये देय। तामसी रात्रे अगण्य उज्ज्वल ज्योतिः पुंजे जखन ऐर आकाश झलमल करे, आमि विस्मित आतंके चेये थाकि।"[1]

जब दो महान् जातियों में संघर्ष होता है तब उनके गुण और भी स्फुलिंग सदृश्य चमक उठते हैं। **"चन्द्रगुप्त"** नाटक में एक ऐतिहासिक तथ्य का प्रारम्भ ही में उल्लेख है। सिकन्दर एवं पौरस की भेंट का प्रसंग है। जे० बी० **बरी लिखते हैं**—

१—चंद्रगुप्त—द्विजेन्द्रलाल राय, प्रथम अंक, प्रथम दृश्य।

"दी व्हिक्टर, राइडिंग आउट टू मीट दी ओल्ड प्रिन्स, वाज इम्प्रेस्ड वाइ हिज स्टेचर, एण्ड बिउटी, एण्ड आस्क्ड हिम हाउ वुड ही फेन बी ट्रीटेड। 'ट्रीट मी लाइक ए किंग' सेड पौरस। 'फार माइ ओन सेक।"....देट, 'रिप्लाइड पौरस, 'कन्टेनेथ आल।" इस घटना का यथातथ्य चित्रण द्विजेन्द्रलाल ने किया है—

सिकन्दर—'पुरूके बन्दी कोरे आनि जखन—से की बल्ले जानों ?—अमि जिज्ञासा कोलभि, 'आमार काछे किरूप आवरण प्रत्याशा करो ?'—से निर्भीक निष्कम्प स्वरे उत्तर दिलो, 'राजार प्रति राजार आचरण ?' चमकित होलाभ ? माबलाम—ए एकटा जाति बटे ! आमितत्क्षणात् ताके तार राज्य प्रत्यर्पण कलमि।"[१]

एक विदेशी विजेता के मुख से अपनी जाति की यह प्रशंसा वाणी सुनकर हृदय पुलकित हो उठता है। जिस उत्कट राष्ट्रवाद की अभिव्यक्ति "चन्द्रगुप्त" नाटक में हुई है उतनी हिन्दी और बंगला के किसी नाटक में नहीं हुई क्योंकि ब्राह्मण चाणक्य जैसे कूट राजनीतिज्ञ और चन्द्रगुप्त जैसे उदार वीर इन दोनों ने मिलकर भारत को एक साम्राज्य में गठित करने का संकल्प जिस युग में किया था, यह नाटक उस युग का चित्र है। **चन्द्रगुप्त और हेलेन के विवाह द्वारा पूर्व और पश्चिम के मिलन का चित्र** भी इसी नाटक में है। युग-चेतना का अभाव है। हेलेन चन्द्रगुप्त के प्रति आसक्ति से उन्मत्त नहीं है, वह दो महान् संस्कृति के मिलन का स्वप्न देखनी है। हेलेन —"एइ विवाहे पूर्व ओ पश्चिम, समुद्र ओ आकाश, स्वर्ग ओ मर्त्य, इहकाल ओ परकाल परस्परे लीन होये गेलो।"[२]

जयशंकर प्रसाद रचित 'चन्द्रगुप्त' नाटक की कार्नेलिया भी भारत के प्रति ममत्व की भावना का पोषण करती है, केवल चन्द्रगुप्त तक ही उसकी दृष्टि आबद्ध नहीं है। कार्नेलिया चन्द्रगुप्त से कहती है —"सिकन्दर ने भारत से युद्ध किया है और में ने भारत का अध्ययन किया है। मैं देखती हूं कि यह युद्ध ग्रीक और भारतीयों के अस्त्र का ही नही इसमें दो बुद्धियां भी लड़ रही हैं। यह अरस्तू और चाणक्य की चोट है, सिकन्दर और चन्द्रगुप्त उनके अस्त्र हैं।"—तृतीय अंक। द्विजेन्द्रलाल के 'चन्द्रगुप्त' एवं प्रसाद के 'चन्द्रगुप्त' नाटक की तुलनात्मक आलोचना यथेष्ठ हो चुकी है। राष्ट्र-वादी दृष्टिकोण से ही दोनों नाटकों की रचना हुई है किन्तु दोनों ने उसे विभिन्न रूप से व्यक्त किया है। द्विजेन्द्रलाल के चन्द्रगुप्त की माता शूद्राणी मुरा है एवं नन्द चन्द्र-गुप्त के वैमात्रेय-भाई हैं जो मुरा के साथ अपमानजनक व्यवहार करते हैं। चाणक्य चन्द्रगुप्त की मातृभक्ति ही को उकसाकर उसे देशमाता की वेदी तक ले जाते हैं। प्रसाद

१—चन्द्रगुप्त—लेखक डी० एल० राय—प्रथम अंक, प्रथम दृश्य।

२—चन्द्रगुप्त—लेखक डी० एल० राय—पंचम अंक, चतुर्थ दृश्य।

के चन्द्रगुप्त क्षत्रिय कुल के हैं एवं वीरोचित अभिलाषा के वशीभूत होकर स्वीय व्यक्ति-तत्व के कारण चाणक्य की मंत्रणा ग्रहण कर अन्त में चक्रवर्ती सम्राट बनते हैं। प्रसाद ने 'चन्द्रगुप्त' नाटक की ऐतिहासिक कथावस्तु के विषय में भूमिका में चन्द्रगुप्त मौर्य से सम्बन्ध रखने वाले जिन ऐतिहासिक ग्रंथों तथा तथ्यों का परिचय दिया है वह उनके इतिहास सम्बन्धी गहन पांडित्य का उदाहरण है। उन्होंने भूमिका में मौर्य वंश, पिप्पली-कानन के मौर्य, चन्द्रगुप्त का बाल्य जीवन, सिकन्दर और चन्द्रगुप्त पंजाब में, मगध में चन्द्रगुप्त, विजयी चन्द्रगुप्त का शासन, चन्द्रगुप्त के समय का भारतवर्ष तथा चाणक्य आदि विषयों पर ऐतिहासिक दृष्टिकोण से प्रकाश डाला है जिसके अन्तर्गत विंसेन्ट स्मिथ, जस्टिनस, मैक्सम्यूलर आदि के मतामत तथा पुराण, अर्थ-कथा, स्थविरावली, कथा सरित्सागर, ढुण्ढि आदि का विस्तृत उल्लेख है। भारतेन्दु ने 'मुद्राराक्षस' के अनुवाद के प्रारम्भ में जो भूमिका लिखी है वह अधिक स्थलों पर संस्कृत 'मुद्राराक्षस' के टीकाकार का लिखा उपोद्घात है। द्विजेन्द्रलाल ने बहुत ही संक्षिप्त भूमिका लिखी है जिसमें उन्होंने केवल पुराण एवं ग्रीक इतिहास का उल्लेख किया है। प्रसाद मौर्य-वश के विषय में लिखते हैं—बौद्धों के विवरण से ज्ञात होता है, कि शैशुनाग-वंशी महानन्द के संकर-पुत्र महापद्म के पुत्र घननन्द से मगध का सिंहासन लेनेवाला चन्द्रगुप्त मौरियों के नगर का राजकुमार था। वह मौरियों का नगर पिप्पली-कानन था, और पिप्प-ली कानन के मौर्य-नृपति लोग भी बुद्ध के शरीर-भस्म के भाग लेनेवालों में एक थे।"

प्रसाद के 'चन्द्रगुप्त' में विवेक, दृढ़ता एवं कर्मनिष्ठा है तथा द्विजेन्द्रलाल के चंद्रगुप्त में वही मातृ-पूजा की भावात्मक प्रेरणा है जिस शक्ति के द्वारा व्यक्ति असाध्य साधन कर सकता है। सेठ गोविन्ददास रचित 'शशिगुप्त' में प्रसाद के 'चन्द्रगुप्त' से अधिक कोई विशेषता नहीं है। हर्ष व शिलादित्य के सदृश्य उनके शशिगुप्त व चन्द्रगुप्त का चरित्र निष्प्रभ रह गया है। भावावेग, अन्तर्द्वन्द्व आदि का अभाव है इसीलिए दृश्यों तथा पात्रों में वे प्राण फूँक नही सके। बाह्य संघर्ष एवं अन्तर्द्वन्द्व की दृष्टि से प्रसाद रचित "**स्कन्दगुप्त**" नाटक श्रेष्ठ है।

जब भारत पर पश्चिम से हूणों का आक्रमण हो रहा था तब स्कन्दगुप्त जैसे वीर ने हूणों को देश से विताड़ित किया। यह नाटक उस गौरवमय गुप्त युग (२७५ ई०—५४० ई० तक) में एक खण्ड पर लिखा गया है। हूणों से संघर्ष का सजीव चित्र है। संघर्ष के इस चित्रण में लेखक का राष्ट्रवादी उद्देश्य स्पष्ट है। किन्तु इस बाह्य संघर्ष के दृश्य को सजीव बनाने में वे स्थान एवं काल के ऐक्य की रक्षा न कर सके। सुविस्तृत आर्य साम्राज्य का चित्र खींचने के लिए लेखक ने मालव से मगध तथा उत्तर में काश्मीर, गान्धार की घाटी आदि दृश्यों की अवतारणा की है। रंगमंचीयता तथा अभिनेयता की दृष्टि से यह नाटक अनुपयुक्त सिद्ध हो सकता है किन्तु आर्य साम्राज्य का जो संघर्ष-मुखर चित्र एक विशाल पट्-भूमि पर अंकित हुआ है वह ऐतिहासिकता तथा राष्ट्रीयता की दृष्टि से अतुलनीय है। बाह्य संघर्ष एवं आभ्यन्तरीय संघर्षों की थपेड़ों से विक्षुब्ध **स्कन्दगुप्त का यह स्वगत कथन** अत्यन्त मार्मिक है—

स्कंदगुप्त––"बौद्धों का निर्वाण, योगियों की समाधि और पागलों की-सी संपूर्ण विस्मृति मुझे एक साथ चाहिए।—मेरा स्वत्व न हो, मुझे अधिकार की आवश्यकता नहो। यह नीति और सदाचारों का महान् आश्रय-वृक्ष–गुप्त साम्राज्य–हरा-भरा रहे और कोई भी इसका उपयुक्त रक्षक हो। ओह ? जाने दो, गया, सब कुछ गया। मन बहलाने को कोई वस्तु न रही। कर्त्तव्य––विस्मृत, भविष्य-अंधकार-पूर्ण, लक्ष्यहीन दौड़ और अनन्त सागर का संतरण है।[१]

यह स्वगत कथन शेक्सपियर के हेमलेट के एकांत कथनों (Soliloguies) से साम्य रखता है, फर्क इतना ही है कि हैमलेट की उक्तियां पारिवारिक अशान्ति के परिणाम-स्वरूप हैं एवं स्कन्दगुप्त की उक्तियां राष्ट्रीय, पारिवारिक तथा मानसिक अशान्ति के परिणाम-स्वरूप हैं। स्कंदगुप्त इस परिस्थिति में ट्रेजेडी के नायक के समान नियति के कंदुक प्रतीत होते हैं। निस्पृद नेता बनकर वे आर्यावर्त की रक्षा करना चाहते हैं किंतु षड़यन्त्रों की मेघ राशि भारत के भाग्योदय को रोकना चाहती है। स्कन्दगुप्त के चरित्र में एक छिद्र अवश्य है—वह है विजया के प्रति आसक्ति, किन्तु देशप्रेम के होमानल में वे अपने व्यक्तिगत भावों की आहुति दे डालते हैं। इसके बाद वे ट्रेजेडी के नायक नहीं भारतीय नाटकों के धीरोदात्त नायक बन जाते हैं। अन्त में वे आततायी हूणों को परास्त करते हैं। इस नाटक के गौण पात्र बन्धुवर्मा, पर्णदत्त आदि भी देश की बलि-वेदी पर निछावर हो जाते हैं तथा पुरगुप्त, भटार्क, शर्वनाग आदि पश्चात्ताप की अग्नि में दग्ध होते हैं। देवसेना, जयमाला तथा देवकी जैसी देवियां भारतीय नारी के आदर्श हैं तथा विजया जैसी चंचल-प्रवृत्ति की नारी की भी सार्थकता इस नाटक में इसलिए है कि उसकी अपार धन राशि देश रक्षा के कार्य में प्रयुक्त होती है। विजयी राष्ट्रवीर स्कन्दगुप्त, पुरगुप्त को युवराज का पद देते हुए गृह-कलह का अन्त करते हैं एवं कहते हैं—"इस हूंण को छोड़ दो, और कह दो कि सिन्धु के इस पार के पवित्र देश में कभी आने का साहस न करे।"[२]

ग्रीक, शक, हूंण एवं पठान, मुगलों के आक्रमण का युग बीत गया, फिर शश्य श्यामला भारत के प्रति अंग्रेजों की दृष्टि आकर्षित हुई वे वणिक बनकर आये एवं शासक बन बैठे। प्रायः डेढ़ सौ वर्षों तक भारत पर उन्होंने राज्य किया। केवल हमारी संस्कृति पर पाश्चात्य संस्कृति का प्रलेप ही नहीं चढ़ा, भारत के असंख्य महाप्राण अत्याचारों का प्रतिवाद कर शहीद हो गये। इन शहीदों पर अग्रेजों के राजस्व काल ही में नाटक लिखना एवं अभिनय करवाना दुस्साहसिक कार्य था। 'चंद्रगुप्त', 'अशोक' जैसे नाटकों में प्रच्छन्न राष्ट्रप्रेम की भावना थी किन्तु **'महाराज नन्दकुमार'** एवं **'टीपूसुल्तान'** जैसे नाटकों में ब्रिटिशों के प्रति खुले विद्रोह की चिनगारी थी। बंगला के नाट्यकार महेंद्र

१—स्कन्दगुप्त––लेखक जयशंकर प्रसाद, चतुर्थ अंक।

२—स्कन्दगुप्त –लेखक जयशंकर प्रसाद, पंचम अंक।

गुप्त ने शासकों के रोष की परवाह न कर ऐसे नाटकों की रचना की। मन्मथ राय रचित पौराणिक नाटक "कारागार" का अभिनय निषिद्ध किया गया था किन्तु इन दोनों नाटकों का अभिनय सफलतापूर्वक हुआ। "स्टार" थियेटर में महाराजा नंदकुमार का प्रथम अभिनय ४ जून, सन् १९४३ को एवं "टीपू सुलतान" का प्रथम अभिनय १९ मई सन् १९४४ को हुआ। सिराजुद्दौला की मृत्यु के उपरान्त दीवान नन्दकुमार जिन्होंने **वारेन हेस्टिग्स** के अत्याचारों का विवरण इंग्लैंड की विचार-सभा में लिख भेजा था, उन पर दलील जाल कराने का अभियोग किया गया एवं हेस्टिग्स के मित्र विचारपति इम्पे इंग्लैड के कानून के अनुसार नन्दकुमार को फांसी की सजा देते हैं। इस नाटक में कउन्सिल एवं परवर्ती गवर्नर वारेन हेस्टिग्स के अहंकारी एवं अत्याचारी रूप का चित्र है—

हेस्टिग्स—होल्ड ! होल्ड ! जस्ट होल्ड यौर टंग।

नन्दकुमार—सत्यभाषणे नंदकुमार कखनो वितरत हबे ना वारेन हस्टिंग्स !
आमृत्युकाल आमि ऐमनि उच्चशिरे दाड़िए तोमादेर स्वेराचारेर
विरुद्धे प्रतिवाद कारबो, न्यायेर दरबारे अभियोग करबो।

हेस्टिग्स—वी केयरफुल ! वारेन हेस्टिग्स नौज हाउ टू बो डाउन योर हेड।[1]

नाट्यकार महेंद्र गुप्त को रंगमंच का यथेष्ट अनुभव है। इस नाटक के परिचालक वे स्वयं थे। नाट्यकला की दृष्टि के इसकी शैली यथार्थवादी है। इस नाटक में रोमांटिक उच्छ्वास कम है, ऐतिहासिक तथ्यों का पूर्णत: प्रयोग हुआ है। एकमंड वर्क लिखित "इम्पीचमेंट आफ वारेन हेस्टिग्स" तथा तत्कालीन परिस्थिति से संबंधित अनेक मूल्यवान ग्रंथों का सहारा लिया गया है। शैली की दृष्टि से नाटक सुगठित एवं तीन अंकों का है। इस नाटक की विशेषता अन्त के एक कल्पना-चित्र में है जो **टेकनीक तथा भावना** दोनों दृष्टि से अनुपम है। फांसी के लिए जाते हुए नन्दकुमार कहते हैं—

"जारा अत्याचार कोरलो, जारा आमार देश के निर्यातित कौरलो, जारा आमार देशेर स्वाधीनता हरण कोरलो तारा केउ रेहाई पाबे ना,—तादेर विचार हबे—तादेर विचार हबे।"—

इस कथन के बाद समुद्र गर्जन के साथ कल्पना के पट पर इंग्लैंड के पार्लियामेंट की महासभा का दृश्य दिखाई देता है जिसमें आसामी के कटघरे में वारेन हेस्टिग्स खड़ा है एवं उदारचेता, न्यायप्राण एडमंड बर्क के मुख से ध्वनि गर्जित होती है—

१—महाराज नन्दकुमार—लेखक श्री महेंद्रनाथ गुप्त-द्वितीय अंक, तृतीय दृश्य।

"आई इम्पीच वारेन हेस्टिंग्स एसक्वायर इन दी नेम आफ दी कामन्स आफ ग्रेट ब्रिटेन इन पार्लियामेंट एसेम्बेल्ड, हूज पार्लियामेंटरी ट्रस्ट ही हैज बिट्रेड ! आइ इम्पीच हिम इन दी नेम आफ दी प्यूपल इन इण्डिया, हूज लाज, राइट्स एण्ड लिबर्टीज ही हैज सबवर्टेड, हूज प्रापरटीज ही हैज डेस्ट्रायड, हूज कन्ट्री ही हैज लैंड वेस्ट एण्ड डिसोलेट।"[1] नाटक के अन्त में रंगमंचीय प्रभाव किस तरह क्रांति का उत्तेजक है यह भी रंग निर्देश में दृष्टव्य है—

(कारागृहेर क्षुद्र रन्ध्रपथे प्रभात-सूर्येर आलो नन्दकुमारेर चोखे, मुखे, सुप्रशस्त ललाटे आसिया पड़िलो।—सेइ, रक्त—आलोक मृत्यु-रथ-यात्री वृद्ध नन्दकुमारेर मूर्ति के एक अपरूप महिमाय मंडित कोरिया तुलिलो ! रक्त—आलोक वन्यार मध्ये उन्नत मस्तके नन्दकुमार वध्य-भूमिर दिके अग्रसर हौइलेन। धीरे-धीरे नाटकेर शेष यवनिका नामिया आसिलो।"[2]

अंग्रेजों के राजत्व काल में अंग्रेजों के अत्याचार का वर्णन इस तरह अग्निमयी वाणी और रक्तस्नात दृश्यों में हिन्दी रंगमंच पर कभी नही उतरा। प्रथम कारण तो हिन्दी रंगमंच अस्थाई एवं आशक्त था। द्वितीय कारण यह है कि हिन्दी में ऐसे नाटकों की रचना नहीं हुई अग्निमयी वाणी प्रचार करने में स्वदेशी आन्दोलन के युग में बंगाल अग्रणी रहा। तृतीय कारण यह है कि अंग्रेजों से प्रथम संघर्ष बंगाल का ही हुआ जिसकी कहानी प्लासी के मैदान में रक्ताक्षरों से लिखी गई। अतः स्वदेशी आन्दोलन के युग में सबसे अधिक विप्लवी वीरों को जन्म बंगभूमि ने दिया। स्वाधीनता प्राप्ति के पूर्व तक बंगाल का वातावरण क्रान्ति की लपटों से उष्ण रहा, ऐसी परिस्थिति में इस कोटि के नाटक की रचना स्वाभाविक है। उन्नीसवीं सदी के शेषार्द्ध में रचित बंगला नाटक 'नीलदर्पण' अंग्रेजों के अत्याचारों के प्रतिवाद स्वरूप प्रथम प्रयास था एवं 'महाराज नन्दकुमार' तथा 'टीपू सुलतान' स्वाधीनता प्राप्ति के कुछ वर्ष ही पूर्व के हैं। 'नीलदर्पण' में ग्राम्य-चित्रण एवं शोषित किसान परिवार की दर्दनाक कहानी है, तथा 'महाराज नन्दकुमार' में प्राचीन कलकत्ता नगरी एवं विगत-वैभव नवाब सिराजुद्दौला के परिवार की झांकी है।

सन् १९४२ की अगस्त क्रांति के समय हिन्दी भाषी क्षेत्रों ने राष्ट्रीय उद्दीपन का यथेष्ट परिचय दिया था किंतु इस काल के करीब अधिकांश **हिन्दी के ऐतिहासिक**

१—महाराज नन्दकुमार—लेखक श्री महेन्द्रनाथ गुप्त, तृतीय अंक, तृतीय दृश्य।

२—महाराज नन्दकुमार—लेखक श्री महेन्द्रनाथ गुप्त, तृतीय अंक, तृतीय दृश्य।

नाटकों में इस कोटि की राष्ट्रीय उत्तेजना का अभाव है जिसमें अंग्रेजी शासन की किसी घटना का हृदय-विदारक चित्रण हो। जाति के लिये, राष्ट्र के लिए बलिदान हो जाने वाले महाप्राणों की कहानी अधिकांशतः टाड के 'राजस्थान' से ली गई है। आधुनिक युग के प्रतिभाशाली लेखक उपेन्द्रनाथ अश्क द्वारा सन् १९३७ में रचित **"जय पराजय"** नाटक में राष्ट्रीय कल्याण के लिए मर मिटने की आकांक्षा मेवाड़, मंडोवर, मांडू के संघर्षों के इतिहास द्वारा व्यक्त की गई है। इस नाटक का अभिनय भी सफलतापूर्वक हुआ है क्योंकि लेखक को रंगमंच का यथेष्ट अनुभव है। राजस्थान के इतिहास के इस खण्ड में मेवाड़ के राणा लक्षसिंह के द्वितीय पुत्र राघवदेव के प्राणों की आहुति होती है एवं उनकी प्रेमिका गायिका भारमली मंडोवर के निर्वासित राजकुमार रणमल को मार कर प्रतिहिंसा की ज्वाला शांत कर स्वयं भी बलिदान हो जाती है। **सारांश यह है कि इस युग के ऐतिहासिक नाटक बलिदान की गाथाओं से परिपूर्ण हैं जो राष्ट्रवादी उद्देश्य की पूर्ति करते हैं।**

३—सांस्कृतिक चित्रण-प्रधान ऐतिहासिक नाटक

भारत एक गौरवमयी संस्कृति का जन्मदाता है। इस संस्कृति की अविच्छिन्न धारा सिंधुघाटी सभ्यता, वैदिक सभ्यता के समय से बहती चली आ रही है। विदेशियों के आक्रमण होते रहे, जीर्ण संस्कारों ने उस धारा को पंकिल करने की चेष्टा की किंतु पथ के रोड़ों को हटाती हुई भारतीय संस्कृति की धारा बह चली। महाकाव्य काल, पुराणकाल, बौद्ध काल की संस्कृति सुदूर प्रसारित हुई। शैव, शाक्त, वैष्णव, वाकाटक, पल्लव, चोल, मौर्य, गुप्त, वर्द्धन, राजपूत, मुगल आदि ने मिलकर भारतीय संस्कृति को नित नवीन तथा विकसित रूप दिया। आज पाश्चात्य संस्कृति के झंझावात से हम अपनी संस्कृति को पुरातन तथा जीर्ण समझकर उसकी उपेक्षा कर रहे हैं। वीर ग्रीक जाति तथा रोमन जाति के उत्तराधिकारी यूरोप तथा अमेरिका जिस संस्कृति के धारक हैं वह संस्कृति भी उच्च कोटि की है। उनके विज्ञान, दर्शन तथा कर्मनिष्ठा ने उन्हें विश्व में सबसे अधिक शक्तिशाली बना दिया है, किंतु जब भारतवासी अपनी संस्कृति को भुलाकर उनका अनुकरण करते हैं। तब वह हास्यास्पद एवं लज्जाजनक बोध होता है। स्वाधीनता प्राप्ति के पूर्व तक हम अपनी संस्कृति से अनभिज्ञ थे क्योंकि शिक्षा का माध्यम विदेशी प्रभुओं की भाषा अंग्रेजी बन गई एवं यूरोपीय लेखकों के ग्रंथों से ही हम अपनी धारणाओं की पुष्टि करते रहे। अधिकांश यूरोपीय विद्वानों ने हमें यही विश्वास दिलाना चाहा कि हमारा साहित्य, हमारी कला, हमारा शिल्प सब कुछ यूनान तथा रोमवालों से सीखी हुई विद्या है। बीसवीं शताब्दी में भारत में कई धुरंधर विद्वान हुए जिन्होंने हमारी संस्कृति की मौलिकता, उदारता तथा प्राचीनता का हमें विश्वास दिलाया। अमेरिका के मेक्सिको तथा पेरू में, पूर्वी द्वीप समूहों में आज भी भारतीय संस्कृति के निदर्शन पाये जाते हैं। भारत का बौद्ध धर्म आज भी एशिया महाद्वीप में चीन, जापान तक विस्तृत है। भारत के अद्वैत वेदान्त दर्शन को जानने के लिए विदेशों

से लाखों विद्यार्थी यहां आते हैं एवं ज्ञान-तृष्णा निवारण करते हैं । इस गरिमामयी संस्कृति का चित्र खींचने के लिए हिंदी तथा बंगला के नाटककारों ने इतिहास का सहारा लिया यद्यपि कल्पना के द्वारा बहुत अंशों को जोड़ना पड़ा । **भारत में शैव, वैष्णव एवं बौद्ध संस्कृति का बहुत प्रभाव रहा** तथा संघर्ष की दृष्टि से **आर्य, अनार्य तथा हिन्दू, मुस्लिम** संघर्ष अनेक वर्षों तक चलता रहा । **संघर्ष एवं मिलन से** हमारी संस्कृति सर्वांगपूर्ण बनी । हिन्दी तथा बंगला के कुछ नाटकों के विश्लेषण द्वारा हम सांस्कृतिक चित्रण पर प्रकाश डाल सकते हैं । रवीन्द्रनाथ रचित **"नटीर पूजा"** नाटक में **बौद्ध धर्म के मानवतावाद** का तत्कालीन जीवन पर कैसा प्रभाव पड़ा इसका सजीव चित्र है । कथानक 'अवदानशतक' की एक कथा से लिया गया है एवं अजातशत्रु के राजत्व काल से संबंधित है । बुद्ध ने समस्त प्राणी समाज के साम्य की ही घोषणा नहीं की, उन्होंने नारी को पुरुष के समान धर्म पथ अवलम्बन करने का अधिकार दिया । महाराज बिम्बसार बुद्ध के परम भक्त थे इस कारण भगवान बुद्ध के जन्मोत्सव के लिए उन्होंने अशोक चैत्य पर पूजा का आयोजन किया । किंतु अजातशत्रु ने बुद्ध के अहिंसा धर्म को स्वीकार नहीं किया था । उन्होंने पूजा निषिद्ध करवा दी । इस नाटक में सभी नारी पात्रियां हैं, केवल दूसरे संस्करण में बौद्ध भिक्षु उपालि सूचना के अन्तर्गत प्रवेश करते हैं एवं राजनटी से प्रार्थना करते हैं—

"आज तोमारि काछे भिक्षा जानाते एसेछि"[1]

इस नाटक में उस मानसिक आलोड़न का वर्णन है जो बुद्ध के प्रभाव के कारण मगध के नारी समाज में व्याप्त हो गया था । महाराज बिम्बिसार की पत्नि लोकेश्वरी अहिंसा की नीति की विरोधी हैं, राजकुमारीगण अशान्त हैं तथा राजनटी श्रीमती अपने जीवन की उपेक्षा कर उसे बुद्ध की पूजा वेदी पर समर्पित कर देती है । बौद्ध दुःखवाद के दर्शन से प्रभावित होकर अनेक स्त्रियां भिक्षुणी हो गई एवं गृह त्याग कर विहारों में रहने लगीं । श्रीमती के कथनों में इसका सुन्दर चित्रण हुआ है—

"कतो मेये घर बेधेछिलो, आज तारा घर भांगलो, कतो मेये चीवर परे पथे वेरियेछे, के जाने से कि पथेर टाने ना पथिकेर टाने ! कतोबार हात जोड़ कोरे मने प्रार्थना कोरि बोलि 'महापुरुष', उदासीन थेको ना, आज घरे घरे नारीर चोखेर जले तुमिइ वन्या बइये दिले, तुमिइ तादेर शान्ति दाओ ।"[2]

बुद्ध का आविर्भाव भारतीय सस्कृति के इतिहास में धर्म, दर्शन एवं समाज-विप्लव का सूचक बना । धर्म के क्षेत्र में बुद्ध ने भगवान के अस्तित्व को अस्वीकार

१—नटीर पूजा—लेखक रवीन्द्रनाथ–सूचना (विश्वभारती, सन् १९६१)

२—नटीर पूजा—लेखक रवीन्द्रनाथ–प्रथम अंक ।

किया, दर्शन के क्षेत्र में दुःख को ही परम सत्य माना, सामाजिक क्षेत्र में सबकी समानता स्वीकार की। इस नाटक के अन्त में अजातशत्रु बुद्ध की पूजा की मनाही की आज्ञा का परिहार करते हैं। इसके पूर्व ही पूजा के रूप में नृत्यरता श्रीमती का वध होता है। उसके इस चरम बलिदान के प्रभाव से लोकेश्वरी के हृदय का भी परिवर्तन होता है। इस नाटक की विशेषता इसके नृत्य गीतों में है। शान्त रस के गीत एवं पुजारिन-नृत्य से एक पवित्र वातावरण की सृष्टि होती है एवं भारत की तपस्वी-प्रवृत्ति मूर्तिमान हो उठती है। राजोद्यान में भिक्षुओं का प्रवेश तथा गान होता है—

"सकलकलुष तामस हर,
जय होक तव जय।
अमृतवारि सिंचेन करो
निखिल भुवन मय।
महाशान्ति महाक्षेम
महापुण्य महाप्रेम।"[1]

रवीन्द्रनाथ ठाकुर बौद्ध संस्कृति से अत्यन्त प्रभावित थे। उन्होंने अजातशत्रु के ऐतिहासिक काल को चुना किन्तु नाटक की नायिका कोई राजकुमारी नहीं, सामान्या नटी है। महाराज बिम्बिसार एवं अजातशत्रु का उल्लेख है किन्तु वे पात्र रूप में नहीं हैं। इस नाटक की रचना कवि ने शांतिनिकेतन की छात्राओं द्वारा अभिनय हेतु की थी एवं कवि के जन्मोत्सव पर २५ वैशाख, १३३३ साल के सायंकाल में उत्तरायण के कोनार्क में इसका प्रथम अभिनय हुआ। फिर भी इस नाटक में बिम्बिसार, अजातशत्रु एवं गौतम बुद्ध को पात्र न बनाकर श्रीमती, मालती आदि पात्रियों के द्वारा आवेग, अनुभूति, ममत्व एवं त्याग का दृश्य निर्माण किया है। सांस्कृतिक चित्रण की यही विशेषता है कि वह राजा महाराजाओं की विजय गाथाओं का लेखा-जोखा न होकर आध्यात्मिक तथा भावात्मक पक्ष को प्रधानता देता है। हिन्दी में चन्द्रगुप्त विद्यालंकार रचित **'रेवा'** नाटक में इसी कोटि का सांस्कृतिक चित्रण है। कथा यशोवर्मा के इतिहास काल से संबंधित तथा शैव संस्कृति का चित्रण है। इस नाटक की ऐतिहासिकता के संबंध में लेखक की उक्ति है—"रेवा ऐतिहासिक नाटक नहीं, फिर भी उसका आधार ऐतिहासिक अवश्य है।"[1]

इस नाटक के सांस्कृतिक महत्व के संबंध में वे लिखते हैं—"इस एटम-युग में स्वतंत्र भारत विश्व भर को शांति-मार्ग का सन्देश दे रहा है। 'रेवा' नाटक में चोल-

१—नटीर पूजा—लेखक रवीन्द्रनाथ—तृतीय अंक (राजोद्यान)
२—रेवा—लेखक चंद्रगुप्त विद्यालंकार—भूमिका, पृष्ठ—१ (द्वितीय संस्करण, सन् १९५७)

राजकुमारी इन्दिरा के प्रयत्न और ऋषि पुंडरीक के शान्ति सन्देश भारत के इसी प्राचीन उद्देश्य की ओर संकेत करते हैं।"[1]

नायिका आशा द्वीप की रानी है जो काम्बोज के युवराज यशोवर्मा से प्रेम करती है। दुबारा जब सम्राट यशोवर्मा सम्राज्ञी इन्दिरा के साथ आशा द्वीप पर आते हैं तब वह अर्द्ध जलनग्न है, केवल शिवमंदिर की पहाड़ियां शेष हैं। **पूर्वी द्वीप समूहों के शिव-मंदिर आज भी वहां तक विस्तृत भारतीय संस्कृति के परिचायक हैं।** ऐतिहासिक आधार पर कल्पित आशा द्वीप की कल्पित रानी रेवा मानों उस संस्कृति की मूर्तिमयी प्रतीक है। अन्त में रेवा अतल समुद्र में बिलीन हो जाती है एवं उसकी वेदना सिंचित गीत—ध्वनि गूंजती है—

"शून्य मंदिर में बनूंगी,
आज मैं प्रतिमा तुम्हारी।"[2]

यह भारतीय प्रेम-दर्शन है जिसमें विरह की साधना ही मिलन का मूल-मंत्र है, त्याग ही भोग की कुंजी है। हिन्दी तथा बंगला नाटककारों ने इस प्रेम-दर्शन को नहीं भुलाया। रवीन्द्रनाथ और प्रसाद का यही प्रेम दर्शन है जो उनके नाटकों में व्यक्त होकर भारतीय संस्कृति का चित्र अंकित करते हैं।

हिन्दी में वृन्दावनलाल वर्मा न केवल प्रसिद्ध ऐतिहासिक उपन्यासकार हैं, वरन् प्रसिद्ध ऐतिहासिक नाटककार भी हैं। उनके दो प्रसिद्ध नाटक **'हंस मयूर'** और **'पूर्व की ओर'** ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर सांस्कृतिक चित्रण के लिए अपना विशिष्ट महत्व रखते हैं। 'हंस मयूर' में उत्तर भारत, विशेषकर मालव गणराज्य की संस्कृति एवं 'पूर्व की ओर' में दक्षिण भारत, विशेषकर पल्लव संस्कृति के चित्र हैं। हिन्दी में प्रचलित विक्रम संवत् भारत के इतिहास में राजनैतिक तथा सांस्कृतिक महत्व रखता है। 'हंस मयूर' नाटक में उससे संबंधित ऐतिहासिक घटनाओं पर प्रकाश डाला गया है। इस विषय को लेकर बाद में हरिकृष्ण प्रेमी ने 'संवत् प्रवर्तन' नामक नाटक लिखा किन्तु बंगला में शक तथा हूणों के आक्रमणकाल तथा उस समय की संस्कृति पर रचित कोई नाटक नहीं है। दक्षिणात्य की संस्कृति की ओर भी बंगला नाटककारों की दृष्टि नही गई है, इसका यही कारण है कि मुगल-साम्राज्य की चकाचोंध में उन्हें अन्य दिशाएँ अन्धकार-पूर्ण प्रतीत हुई। 'हंस मयूर' नाटक में ऐतिहासिक तथ्यों का उपयोग करते हुए अत्यंत पांडित्यपूर्ण सांस्कृतिक चित्रण हुआ है। इतिहास के संबंध में लेखक का कथन है—

१—रेवा—लेखक चन्द्रगुप्त विद्यालंकार—भूमिका, पृष्ठ—७

२—रेवा—लेखक चंद्रगुप्त विद्यालंकार—अंक—५, दृश्य—५

"विक्रम संवत् और विक्रमादित्य के संबंध का पुराना ऐतिहासिक मत चंद्रगुप्त द्वितीय में अपना स्त्रोत बहुत समय तक पाता रहा। परन्तु शिला लेखों और सिक्कों से यह मत बिलकुल निराधार प्रमाणित हुआ है। अब यह निर्विवाद रूप से सिद्ध है कि विक्रम संवत् ईसा से ५७ वर्ष पूर्व ही स्थापित हुआ था और मालव गणतंत्र की पुनः स्थापना के उपलक्ष में इसका प्रचलन किया गया था।"[१] शकारि विक्रमादित्य का राज्य उज्जैन अधिकृत करने के पूर्व नासिक, पूना तथा कल्याण तक प्रसारित था।

मालव गणतंत्र के प्रमुख नलपुर के इन्द्रसेन ही "कृतसेन" हैं। इस नाटक के प्रारम्भ से ही सांस्कृतिक वातावरण निर्मित हो जाता है। इसके **नान्दी** का श्लोक भी उत्कृष्ट है—

गायन्ति देवाः किल गीत कानि,
धन्यास्तु ते भारत भूमि भागे।
स्वर्गापवर्गास्पद हेतु भूते
भवन्तिभूयः पुरुषाः सुरत्वात्॥"

—**विष्णु पुराण** २।३।२४

इस नाटक की एक और सांस्कृतिक विशेषता यह है कि इसके **गीत शास्त्रीय संगीत** के राग रागनियों पर आधारित हैं।

उदाहरण—गीत—**हम्मीर राग**

"वन पर्वत जनपद मधु घोले
उमग भरी मुस्कानों बोले
बहुजन हिताय, बहुजन सुखाय,
जीवन-क्रम का हो यह निकाय।"[२]

भारतीय संस्कृति में **हंस भक्ति का** एवं **मयूर पुरुषार्थ का प्रतीक** है। विदिशा की कुछ दूरी पर जहां से **उदयगिरि की गुफाएं** दिखाई देती हैं, बेतवा की एक धार के पास खड़े होकर इन्द्रसेन रामचन्द्र नाग से कहते हैं—भक्ति और पुरुषार्थ का, तपस्या और जीवन का, त्याग और भोग का, विनय और महिमा का, सौन्दर्य और तेज का, बुद्धि और बल का, विशालता और स्फूर्ति का, कोमलता और दृढ़ता का, क्षमा और दंड का

१—हंस मयूर—लेखक श्री वृन्दावनलाल वर्मा, परिचय, पृष्ठ—५
(द्वितीय संस्करण, सन् १९४९)

२—हंस मयूर—लेखक श्री वृन्दावनलाल वर्मा, पहला अंक, पहला दृश्य।

क्रिया और विचार का, शान्ति और सक्रियता का समन्वय वैष्णव धर्म है। शकों को पराजित करके क्या हम उनके बाल बच्चों का वध करेंगे ? कभी नहीं राजन् ! यदि वे हमारी संस्कृति के होकर हमारे देश में रहेंगे तो उनकी उसी प्रकार रक्षा की जायगी जैसी आर्य जनों की जाती है।"[1]

इस नाटक में **भूमक, नहपान, उषवदात तथा भूमक-पुत्री तन्वी आदि शकों का अनुरूप चित्रण हुआ है।** तन्वी भारतीय संस्कृति से प्रेम करती है एवं तन्वी तथा इन्द्रसेन का मिलन दोनों जातियों के बैर को मिटाने में सहायक होता है ऐतिहासिक काल में भारत में मगध एवं अवन्तिका का अत्यंत समृद्धिशाली प्रदेश थे। बंगला नाटककारों की दृष्टि अवन्तिका की संस्कृति के चित्रण की ओर नहीं गई। वे मगध के वैभव से अधिक प्रभावित रहे क्योंकि प्राचीनकाल में बंग मगध के ही अन्तर्गत था।

इसी तरह **दक्षिण की संस्कृति** के प्रति भी बंगला नाटककारों ने उदासीनता दिखाई है। वृन्दावनलाल वर्मा ने **'पूर्व की ओर'** नाटक में ऐतिहासिक तथ्यों के आधार पर पल्लव संस्कृति का चित्रण कर यह घोषणा की है कि पल्लव काल (२०० ई० से ११०० ई०) में भारतीय संस्कृति के प्रसार के लिए अनेक समुद्र यात्राएं की गई थीं एवं भारत की नो-शक्ति स्पृहणीय थी, पूर्वी द्वीप समूहों में शैव संस्कृति तथा अल्प परिमाण में बौद्ध संस्कृति के जो चिन्ह प्राप्त होते हैं वे इस तथ्य की पुष्टि करते हैं। प्राचीन भारत हिसात्मक राजनैतिक विजय की अपेक्षा सांस्कृतिक विजय को महात्तर समझता था। आर्य साम्राज्य सुदूर प्रसारित था। 'पूर्व की ओर' नाटक में तीसरी शताब्दी के अन्त के लगभग **धान्यकटक, नागार्जुनी कोंडा, प्रतिष्ठान और नागद्वीप तथा नागद्वीप तथा वारुणद्वीप तक प्रसारित भारतीय संस्कृति के उत्कृष्ट दृश्य हैं।**

बंगला में उच्छ्वास पूर्ण राष्ट्रवादी नाटक रचना की ओर लेखकों की प्रवृत्ति अधिक आकर्षित हुई एवं यह आकर्षण स्वाधीनता-प्राप्ति तक रहा। स्वाधीनता प्राप्ति के कुछ काल पूर्व से ही आर्थिक संकटों के कटु अनुभव के कारण उनकी प्रवृत्ति यथार्थवादी समस्या नाटक रचना की ओर झुकी। **सांस्कृतिक चित्रण का विश्राम-स्थल बंगला नाट्य-साहित्य के इतिहास में नहीं आया** क्योंकि वह युग-चेतना के साथ अत्यंत तीव्र गति से अग्रसर हो रहा था। **किन्तु हिन्दी में युगचेतना का प्रभाव धीरे-धीरे पड़ा।** आर्थिक वैषम्य और भारतविभाजन की परिस्थिति में भी सन् १९४८ में वृन्दावनलाल वर्मा ने 'हंस मयूर', पं० लक्ष्मीनारायण मिश्र ने 'गरुड़ध्वज' एवं १९४९ में पं० उदयशंकर भट्ट ने 'शक-विजय' नाटक एक ही प्रसंग को लेकर लिखे।

इसका यह अर्थ नहीं है कि बंगला नाटककारों के लिए भारतवर्ष के सांस्कृतिक चित्रण का कोई महत्व न था। जिस तरह जयशंकर प्रसाद तथा सेठ गोविन्ददास के

१—हंस मयूर—लेखक श्री वृन्दावनलाल वर्मा, तीसरा अंक, पहला दृश्य।

ऐतिहासिक नाटकों में अन्य विशेषताओं के साथ सांस्कृतिक चित्रण भी मिलता है, उसी तरह बंगला के कतिपय ऐतिहासिक नाटकों में यत्र-तत्र हम इसका चित्र ढूँढ सकते हैं। गिरीशचन्द्र घोष के 'अशोक' नाटक में मौर्यकालीन संस्कृति का यथेष्ट चित्रण हुआ है। राष्ट्र की शांति एवं ऐक्य-भावना के संबंध में मिश्र के राजदूत कहते हैं—"कि अद्भुत कौशले एइ विराट राज्य एकभाषी होयेछे, ताहा निर्णय कोरते बुद्धि पराजित।"[1] आज जब भारत पुनः भाषा-समस्या के सम्मुखीन हुआ है, यह दृष्टांत अनुकरणीय है। **रामकुमार वर्मा** रचित **'चारुमित्रा'** नामक एकांकी में अशोककालीन संस्कृति एवं **'दीपदान'** नामक एकांकी में राजपूतकालीन संस्कृति का चित्रण हुआ है। हिन्दी में डा० रामकुमार वर्मा एवं बंगला में श्री **मन्मथ राय** की दक्षता एकांकी नाटकों में सांस्कृतिक-चित्रण करने में अपूर्व है। जयशंकर प्रसाद ने 'स्कन्दगुप्त' में गुप्त काल का, सेठ गोविंद-दास ने 'हर्ष' में वर्द्धनकाल का एवं हरिकृष्ण प्रेमी ने 'रक्षा बन्धन' में राजपूत काल का सुन्दर सांस्कृतिक चित्रण किया है जिनमें 'छंगी' और 'साका' जैसे शब्द देश-काल के वातावरण को सजीव कर देते हैं।

ऐतिहासिक नाट्य-क्षेत्र के लब्ध-प्रतिष्ठित लेखक द्विजेन्द्रलाल राय के नाटकों में राष्ट्रवाद के साथ-साथ सांस्कृतिक चित्रण भी हुआ है, यद्यपि वह चित्रण अत्यधिक **भावनात्मक है** एवं लेखक के उद्देश्य की प्रमुखता घोषित करता है। उन्होंने विशेषतः मुगल काल एवं राजपूत काल को चुना एवं भारत की मध्यकालीन संस्कृति का चित्र खींचा। इस काल में राजपूत जैसी वीर जाति का पतन हो रहा था, अपनी बेटियां वे मुगलों के घर ब्याहने लगे थे एवं कई देशद्रोही मुगलों से जा मिले थे। इस पतनोन्मुखी जाति के चित्रण में अस्तगामी सूर्य की लालिमा तथा म्लान छबि निहित है जो हमें रोमन साम्राज्य के पतन की याद दिलाती है। द्विजेन्द्रलाल रचित 'प्रतापसिंह' नाटक का पूरक 'मेवाड़-पतन' नाटक है। इस नाटक में अमरसिंह के समय के हतोत्साही राज-पूत जाति का चित्रण है। अजयसिंह का त्याग, सत्यवती के राष्ट्रीय भाव व्यंजक गीत तथा वीर गोविन्दसिंह की ललकार भी इस पतनोन्मुखी जाति को न उठा सकी। लेखक ने विश्व-प्रेम का पथ निर्देश कर नूतन आशा का संचार किया है। भावोच्छ्वासी राष्ट्रीयता से लेखक का मन भर गया था एवं वे अपनी जाति को उच्चतर भाव-लोक की ओर ले जाना चाहते थे। भारत ने प्राचीन काल में इसी विश्व-प्रेम का प्रचार किया था एवं आधुनिक युग के नाटककार ने इस ऐतिहासिक नाटक में उसी उदार संस्कृति का परिचय दिया है। **"मेवाड़ पतन" नाटक की भूमिका में** वे लिखते हैं—

"मद्रचित अन्यान्य नाटक होइते एइ नाटकेर पार्थक्य लक्षित होइबे, आमार अन्यान्य नाटके चरित्रांकन भिन्न अन्य कोनो उद्देश्य छिलो ना। पाषाणीते आमि आदर्श

१—अशोक—लेखक गिरीशचन्द्र घोष, अंक—५, गर्भांक—१।

ब्राह्मण-चरित्र, राणा प्रतापसिंह आदर्श क्षत्रिय चरित्र, दुर्गादासे आदर्श पुरुष चरित्र एवं सीताते आदर्श नारी च.रत्र लइया बोसियाछिलाभ । आबार ताराबाई ओ नूरजाहान इत्यादिते आमि वास्तव मनुष्य-चित्र .चत्रित कोरिते प्रयासी होइया-छिलाम । तदिभन्न से नाटकगुलिते अन्य कोनो उद्देश्य छिलो ना । किन्तु एइ नाटके आमि एकटि महानीती लइया बोसियाछि, से नीति विश्व-प्रेम । कल्याणी, सत्यवती ओ मानसी एइ तिनटी चरित्र यथाक्रमे दाम्पत्य प्रेम, जातीय प्रेम, एवं विश्वप्रेमेर मूर्तिरूपे कल्पित होइयाछे । एइ नाटके इहाई कीर्तित होइयाछे जे विश्व प्रीतिई सर्वापेक्षा गरीयसी ।"

इस नाटक की रचना लेखक ने २७ दिसम्बर, सन् १९०८ में की जब राष्ट्रीय उत्तेजना समस्त देश में व्याप्त थी । ऐसी परिस्थिति में राजपूत जाति के गुण दोषों का मार्मिक चित्रण कर उन्होंने पतन की कलंक-कालिमा को **विश्वप्रेम के अरुणोदय** में निमज्जित कर दिया । यही आनन्दवादी, आशावादी भारतीय संस्कृति है । यही विश्व-कल्याण की भावना से पूर्ण शिव-संस्कृति व वाराणसी-संस्कृति है ।

४—जीवनी–नाटक

संस्कृत, ग्रीक तथा रोमन, नाट्य-साहित्य में जीवनी-नाटकों का अभाव था । जीवनी-नाटक ऐतिहासिक नाटक की ही एक शाखा है जिसका **विकास यूरोप में अट्ठारहवीं शताब्दी से हुआ** । एडीसन रचित **'कैटो,'** आर्ज स्मिथ ग्रीन रचित **'क्रामवेल,'** ग्लोव्हर रचित **'बोडिसिया'** आदि प्रसिद्ध हैं । जीवनी-नाटक इतिहास एवं काव्य का समन्वित रूप है । इतिहास की भित्ति पर उसका भवन निर्माण होता है किन्तु वह महान् व्यक्ति जिसकी जीवनी का अंकन होता है वह अत्यंत सुदूर अतीत का नहीं होता । सुदूर अतीत के महापुरुषों की जीवनी के साथ इतनी अलौकिक घटनाओं तथा किंवदन्तियों का मेल हो जाता है कि काल्पनिकता उस जीवनी की यथातथ्यता का विनाश कर देती है । इसी कारण न तो शंकराचार्य व ईसा मसीह जीवनी-नाटकों के नायक हो सकते हैं और न महाराणा प्रताप व टीपू सुलतान । जिनमें अलौकिक व धार्मिक तत्वों का समावेश हुआ वे पुराणिक-धर्मी नाटक तथा जिनमें इतिहास एवं कल्पना का समावेश हुआ वे इतिहास-धर्मी नाटक कहलाये । पौराणिक एवं ऐतिहासिक होने के कारण लेखकों की प्रवृत्ति स्वच्छन्दतावादी चित्रण की ओर झुकी एवं हिंदी तथा बंगला के जो नाटक बहुत पुरातन युग के वीर तथा धार्मिक महापुरुषों पर लिखे गये वे ऐतिहासिक तथा पौराणिक नाटक कहलाये ।

जीवनी-नाटक का महापुरुष होते हुए युग का किन्तु किसी सुदूर युग का नहीं, निकट अतीत का ही व्यक्ति होता है । इसी कारण नाटककार ऐतिहासिक तथ्यों में बिलकुल हेरफेर नही कर सकता, कल्पना का यथेच्छ पुट नही दे सकता, यहां तक कि प्रचलित धारणाओं के विरुद्ध भी एक शब्द भी नहीं लिख सकता । इतने बन्धन होते हुए भी जीवनी-नाटक एक काव्य है अतः कलाकार के नाते नाटककार को उसे

सुनियोजित, जीवन-सत्य का अभिव्यंजक तथा रसात्मक रूप देना पड़ता है । **जीवनी के विषय में डोनाल्ड ए स्टोफर** लिखते हैं—

"दी बायोग्राफर मूव्स बिटवीन दी पोल्स आफ पोयेट्री एण्ड हिस्ट्री । ही मस्ट रिकार्ड दी पर्टिकुलर बाइ दी व्हेरी नेचर आफ हिज आर्ट, बट ही कैन नाट रिफ्रेन फ्राम एप्रेजल्स एण्ड व्हैल्यूज बेस्ड अपआन यूनिवर्सल्स । दी नियर डेसिशन टू राइट दी लाइफ आफ ए सर्टेन मैन, दी सिलेक्शन एण्ड काम्बीनेशन आफ डिटेल्स, इम्प्लाइ जजमेंट्स । दी बायोग्राफर इज ए क्रानिक्लर हू मिक्स इम्पोर्ट इन हिज क्रानिकल । दी प्यूओर हिस्टोरियन इन हिम मेक्स हिम राइट आफ **लाइफ एज इट इज,** दी प्यूओर आर्टिस्ट, शेपिंग, आर्डरिंग, एम्फेसाइजिंग, ऐसेसिंग, मेक्स हिम कन्सिडर **लाइफ एज इट शुड बी**, लाइफ एज सिग्निफिकेंट । एट वन पोल इज दी एन्साइक्लोपीडिस्ट, डिसपैशनेटली कलेक्टिंग फैक्ट्स, एट दी अदर पोल इज दी 'पोयेट,' दी क्रियेटर आफ सिग्निफिकेंट फिक्शन्स । इन बिटवीन लिव्स दी बायोग्राफर ।"

जीवनी-नाटकों का ऐतिहासिक-नाटकों से सम्बन्ध

जीवनी-नाटक ऐतिहासिक नाटक की ही एक शाखा है । **आज का वर्तमान कल का अतीत बन जाता है** एवं अगर उसमें किसी भी जाति के राजनैतिक, धार्मिक, अर्थ-नैतिक व सामाजिक उत्थान व पतन के तत्व हैं तो वह इतिहास कहलाने का अधिकारी हो जाता है । संकीर्ण-अर्थ में इतिहास का राजनीति से अधिक सम्पर्क रहा, अतः साम्राज्य व राष्ट्रों के उत्थान पतन के क्रमिक विवरण तथा कारणों की खोज ऐतिहासिकों का लक्ष्य बन गया । ऐतिहासिक नाटकों के नायक भी ऐसे ही व्यक्ति बने जिनका साम्राज्य, राष्ट्र व देश की राजनैतिक व्यवस्था तथा मुक्ति से सम्बन्ध रहा । इस तरह के ऐतिहासिक पात्रों की कालगत दूरी वर्तमान से इतनी अधिक होती है कि नाटक-कार जब जनश्रुति के सहारे व अपनी कल्पना के सहारे उनसे संबंधित ऐतिहासिक घटनाओं को नाटकीय कथावस्तु का रूप देता है तब अपनी सम्भाव्य-कल्पना के प्रयोग [illegible] स्वच्छन्द रहता है । नाटककारों का उद्देश्य कल्पना के सहारे इतिहास, राष्ट्रप्रेम, संस्कृति आदि के चित्रण द्वारा ऐतिहासिक रस की सृष्टि करना होता है । किन्तु जीवनी-नाटकों के पात्रों की कालगत दूरी वर्तमान से इतनी अधिक नहीं होती कि कल्पना का यथेच्छ प्रयोग हो सके । यह भी हो सकता है कि **उन पात्रों का संबंध केवल देश की राजनीति से न होकर धर्म, दर्शन, समाज, साहित्य आदि से भी हो ।** ऐसे व्यक्तियों के संबंध में किंवदन्तियों की सृष्टि भी नहीं हो पाती । उदाहरणार्थ उदयन के चरित्र को केन्द्रित करके साधारण ऐतिहासिक नाटकों की सृष्टि हो सकती है जिसकी रचना के लिए नाटककार इतिहास, पुराण किंवदन्तियां, कल्पना आदि का सहारा ले सकता है किन्तु **राजा राममोहन, दयानंद सरस्वती, विवेकानन्द, महात्मा गांधी, नेताजी** आदि के चरित्र को केन्द्रित करके जो नाटक रचित होंगे उनमें कल्पना के प्रयोग का अधिक अवकाश नहीं रहेगा । उन व्यक्तियों की जीवनी से तथ्य संग्रह करके नाटककार को उनके जीवन के प्रारम्भ से अन्त तक का नाटकीय-चित्र खींचना होगा जिसमें उनका चरित्र-वैशिष्ट्य घटनाओं के घात-प्रतिघात में विकसित होता दिखाई दे । ये व्यक्ति अतीत के होने के

कारण इनसे संबंधित नाटक ऐतिहासिक-नाटक की ही एक शाखा होगी जिनमें इतिहास की अपेक्षा जीवनी के तथ्य अधिक होंगे।

जीवनी नाटकों की विशेषता

जीवनी एवं जीवनी-नाटक का यद्यपि घनिष्ट सम्पर्क है फिर भी किसी जीवनी को दृश्य रूप में लिख देने से ही वह जीवनी-नाटक नहीं बन जाता। जीवनी में व्यक्ति का जीवन जन्म से मृत्यु पर्यन्त वर्णित होता है। इसे ज्यों का त्यों नाटकीय रूप देने में देश तथा **कालगत ऐक्य** की हानि होती है। जीवनी में व्यक्ति की विचित्र, अनेक मुखी कर्म-धारा का उल्लेख रहता है। इन विभिन्न धाराओं को नाटकों में स्थान देने से **एक लक्ष्यमुखी नाटकीय प्रभाव** की हानि होती है। इसके सिवा न केवल मात्र घटनाओं का दृश्य-क्रम नाटक बन जाता है, न केवल संलाप ही नाटकीय रूप की पहचान है। घटनाओं, आदर्शों व भावों का द्वन्द्व एवं परिणति उन्हें नाटकीयता प्रदान करती है तथा **संलापों** में व्यक्त आवेग, संघर्ष एवं सांकेतिकता उन्हें नाटकीय रूप देती है। अतः किसी भी व्यक्ति की जीवनी का अध्ययन कर उसे जीवनी-नाटक का रूप देने में नाटककार को ऐतिहासिक, जीवनी मर्मज्ञ तथा कलाकार का परिचय देना पड़ता है। **जीवनी-नाटक में अत्यन्त सुपरिचित तथा निकट इतिहास-काल के किसी स्वनामधन्य, प्रतिभाशाली व्यक्ति की जीवनी का संघर्ष-पूर्ण**, नाटकीय-रूप व्यक्त होता है।

जीवनी नाटकों की आलोचना

हिन्दी तथा बंगला नाट्य-साहित्य में जो इने गिने जीवनी-नाटक प्राप्त होते हैं, वे बीसवीं शताब्दी की उपज हैं, इनके पीछे कोई परम्परा नहीं है। प्रथम जीवनी-नाटक रचना के प्रति उत्साह बंगला के उपन्यास लेखक बलाई चांद मुखोपाध्याय ने व्यक्त किया एवं सन् १९३९ में बंगला के प्रसिद्ध कवि माइकेल मधुसूदन दत्त की जीवनी के आधार पर **"श्री मधुसूदन"** नाटक की रचना की। इसकी प्रेरणा उन्हें **योगीन्द्रनाथ बसु रचित "माइकेल मधुसूदन दत्तेर जीवन-चरित्र"** नामक जीवनी से प्राप्त हुई। सन् १९४२ में श्री बलाइचांद ने प्रसिद्ध समाज-सुधारक एवं संस्कृत के पंडित ईश्वरचन्द्र विद्यासागर की जीवनी के आधार पर **"विद्यासागर"** नाटक की रचना की। इसकी प्रेरणा उन्हें **चंडीचरण बन्दोपाध्याय रचित विद्यासागरेर जीवन-चरित** नामक जीवनी से प्राप्त हुई। इन दोनों जीवन-चरितों के सहारे जीवनी-नाटक लिखने का प्रयास लेखक ने किया। इस समय तथा इसके बाद सन् १९५० तक भी हिन्दी में जीवनी-नाटक लिखने का प्रयास किसी लेखक ने नहीं किया इसका यही कारण है कि उल्लेख योग्य जीवनी ग्रंथ का हिन्दी में अभाव था। जीवन-चरित तथा आत्मजीवनी के ग्रंथ हिन्दी तथा बंगला में अत्यंत कम हैं। देवेन्द्रनाथ ठाकुर की आत्मजीवनी तथा रवीन्द्रनाथ ठाकुर की आत्म-जीवनी 'जीवन स्मृति' बंगला में प्रसिद्ध हैं। गांधीजी तथा जवाहरलाल

नेहरू की आत्म-जीवनी इस प्रसंग में उल्लेख योग्य हैं। किंतु हिंदी तथा बंगला के किसी लेखक ने इन आत्म-जीवनियों का प्रयोग कर जीवनी-नाटक नहीं लिखा।

जीवनी नाटकों की संख्या अत्यन्त विरल होने का कारण यह है कि किसी भी व्यक्ति की सुदीर्घ जीवन-व्यापी घटनाओं को एक-सूत्र में पिरोकर एक ही परिणति की ओर गतिवान नाटकों की रचना करना दुष्कर कार्य है। इसी कारण इर्विंग स्टोन रचित इताली के प्रसिद्ध शिल्पी माइकेल एंजेलो की जीवन-संबंधिनी घटनाओं के वर्णन के आधार पर जब फिलिप डन्ने ने **"दी एगोनी एण्ड दी एक्सटैक्सी"** नामक फिल्म नाटक लिखा तब उन्होंने उस महान शिल्पी के ९० वर्ष के जीवन की घटनाओं में से केवल **चार वर्ष** ही चुन लिया जब कि वे 'सिस्टिन सीलिंग' के फ्रेस्को बनाने में व्यस्त थे। बलाइचांद मुखोपाध्याय 'वनफूल' ने मधुसूदन को नाटक में स्थान दिया। इस प्रयास में अनेक त्रुटियों का होना स्वाभाविक था। कुछ ही वर्ष पूर्व सेठ गोविन्ददास द्वारा हिंदी में रचित जीवनी-नाटक 'भारतेन्दु' वनफूल रचित जीवन-नाटकों के साथ तुलना के योग्य है। इन तीनों व्यक्तियों के जीवन से पाठक इतने परिचित हैं कि उनके संबंध में कल्पना का प्रयोग करना याने पाठकों को असंतुष्ट करना है।

"श्री मधुसूदन" नाटक में अंक नहीं, सोलह दृश्य हैं। इस नाटक का प्रारम्भ मधुसूदन की तरुणावस्था से होता है। प्रथम दृश्य में जब मधुसूदन के पिता पुत्र की उच्छृंखलता के विषय में अपनी पत्नि के समक्ष क्षोभ व्यक्त करते हैं, उस समय मधु अपने मित्र भोलानाथ, गोरदास, बंकु आदि से कहते हैं—"आइ नो, आए फील। आइ शैल बी ए ग्रेट पोयेट। आइ शैल क्रास दी ओशेन एण्ड गो टू इग्लेंड—दी लेंड आफ शेक्सपियर एण्ड मिल्टन। आमार जीवनेर आकांक्षा अनेक बेशी—आइ शैल नाट रेस्ट आइ शैल शोर—आमार जीवनेर जे संगिनी हबे शी मस्ट बी माइ टू कम्पेनियन—आइ कैन नाट मेरी ए बेबी—सिम्पली आइ कान्ट।"[1] नाटक के लिए आवश्यक है बाह्य द्वन्द्व अथवा भाव-द्वन्द्व। महाकवि मधुसूदन दत्त यद्यपि अत्यंत भावविलासी थे किंतु उन्हें तत्कालीन समाज से अपनी नवीन धारणाओं के कारण यथेष्ट द्वन्द्व करना पड़ा। भाव-क्षेत्र में उनकी मातृभक्ति एवं यूरोप जाकर विद्याध्ययन करने की महत्वाकांक्षा में द्वन्द्व हुआ। उन्होंने पहले रेबेका से प्रेम विवाह किया फिर उनसें विवाह-विच्छेद के पश्चात् हेनरियेटा से प्रेम विवाह किया। उनकी विलासिता एवं अर्थभाव में भी संघर्ष हुआ। याने कवि के जीवन में नाटकीय द्वन्द्व के यथेष्ट उपादान हैं।

१—श्री मधुसूदन—लेखक बलाइचांद मुखोपाध्याय—प्रथम दृश्य। द्वितीय दृश्य।

"विद्यासागर" नाटक पंचांकी है। प्रारम्भ उनकी तरुणावस्था से हुआ है। वीरसिंह नाम में विद्यासागर 'सीतार वनवास' ग्रंथ लिख रहे हैं। उनके चरित्र की प्रमुख विशेषता है उनकी परदुःख कातरता। उनकी इस परोपकारी वृत्ति से उनकी पत्नि दिनमयी असतुष्ट है क्योंकि इस महान आदर्शवादी पति को वे अपने आंचल में बांध नहीं पातीं। विद्यासागर के जीवन में केवल कर्म-संघर्ष ही नहीं, कर्म-वैचित्र्य भी है। लेखक ने केवल उनकी विधवा विवाह प्रचेष्टाओं को ही प्रकाशित किया है। अपनी बाल्य-संगिनी सुरो को बाल विधवा होते देख उनके हृदय को अत्यंत आघात पहुंचा था, किंतु इस भावनात्मक-आलोड़न पर लेखक की ओर से कुछ लिखना असंभव है क्योंकि नायक सर्वजनबरेण्य हैं, प्रामाणिक तथ्यों के सिवा जीवनी नाटकों में कुछ भी प्रवेश नहीं पा सकता है। अत: विद्यासागर नाटक में नीरस शास्त्र चर्चा एवं वाद विवाद है। उनके मित्र जब शास्त्रों में लिखित विधवाओं के पवित्र एवं उच्चादर्शो की बातें कहते हैं तब विद्यासागर कहते हैं—"शास्त्रे जा जा आछे सब मानो तुमि शास्त्रे क्षेत्रज पुत्रेर बिधान आछे, गाण्धर्व्व विवाहेर समर्थन आछे, अहल्या आछे, द्रौपदी आछे, कुन्ती आछे, हिड़िम्बा आछे, शकुन्तला आछे, राधाकृष्ण आछे—एदेर जे कोनो एकटार आदर्श बरदास्त कोरते पारो तुमि?"[1]

विधवा-विवाह कानून लागू कराने के लिए उन्हें समाज में यथेष्ठ संघर्ष करना पड़ा। उन्होंने अपने पुत्र का विवाह एक विधवा से किया तथा अनेक व्यक्तियों की खुशामद करके उन्हें विधवा-विवाह करने के लिए प्रेरित किया। समाज ने कुपित होकर वीरसिंह ग्राम में उनका मकान जला दिया। इसी तरह नेताजी सुभाषचन्द्र बसु का जीवन अत्यन्त संघर्ष-मुखर रहा। सन् १९४६ में **शैलेश बिशी ने "नेताजी"** नामक जीवनी नाटक लिखा। आधुनिक भारत के प्रथम समाज-विप्लवी राजा राममोहन राय थे। उन्हें केवल समाज से ही नहीं अपने माता पिता से भी संघर्ष करना पड़ा। सती दाह प्रथा बन्द कराने के लिए उन्हें समाज से संघर्ष करना पड़ा तथा पौतालिक-पूजा के विरोधी होने के कारण उन्हें माता पिता से संघर्ष करना पड़ा। सन् १९५४ में बंगला के उपन्यासकार **नारायण गंगोपाध्याय** ने **'राममोहन'** नामक जीवनी-नाटक लिखा। किसी भी महान व्यक्ति के जीवन-संघर्ष को नाटकीय रूप में विन्यस्त करना जीवनी-नाटककार का काम है।

जब कि बंगला में उल्लेख योग्य जीवनी-नाटक चार मिलते हैं तब हिन्दी में **सेठ गोविन्ददास की रचना "भारतेन्दु"** ही उल्लेख योग्य है, वह भी हाल ही की रचना है। बीसवीं सदी में रचित जीवनी-नाटक के लिए यह आवश्यक था कि उसके नायक उन्नीसवीं सदी के कोई समाज सुधारक हैं। अनेक मनीषियों को बंगाल ने उन्नीसवीं सदी में जन्म

१—विद्यासागर—लेखक बलाइचांद मुखोपाध्याय, प्रथम अंक, द्वितीय दृश्य।

दिया क्योंकि सांस्कृतिक-पुनरुत्थान की लहर पहले पहल बंगभूमि में उमड़ी। किन्तु जब कि समस्त भारत की सांस्कृतिक एकता स्पृहणीय है तब राजा राममोहन व विद्यासागर, जिनकी प्रचेष्टाओं से सती दाह बन्द हुआ एवं विधवा-विवाह शुरू हुआ,—ऐसे कर्मवीरों की जीवनी पर हिन्दी लेखक भी जीवनी-नाटक की रचना कर सकते थे, परन्तु किसी ने यह प्रयास नहीं किया क्योंकि उनकी दृष्टि राष्ट्रवादी नाटक लिखने के बाद सांस्कृतिक नाटक रचना की ओर गई।

इस क्षेत्र में हिन्दी में सेठ गोविन्ददास रचित 'भारतेन्दु' नाटक उल्लेख योग्य है एवं वह सन् १९५० के बाद की रचना होने पर भी उसकी विशिष्टताओं पर प्रकाश डालना आवश्यक है। इस नाटक के प्रारम्भ में **'उपक्रम'** के अन्तर्गत पांच वर्ष के बालक हरिश्चन्द्र की एक छोटी सी झांकी दिखाई गई है जिसमें उनके जीवन के द्वन्द्व का आभास मिलता है। श्रीकृष्ण की पूजा में मग्न पिता गोपालचंद्र को हरिश्चंद्र स्वरचित चार पंक्तियों की एक कविता सुनाते हैं जिसमें उनके महाकवि होने की संभावना है। इसके बाद तर्पण पूरा होने पर हरिश्चंद्र कहते हैं—

"इस तरह पानी में पानी मिलाने से क्या लाभ है, बाबूजी ?

गोपालचंद्र—(अपना सिर ठोकते हुए। जान पड़ता है तू कुल बोरेगा)।

हरिश्चंद्र—(कुछ विचारते हुए) तो–तो–मैं–मैं-महाकवि भी होऊंगा और कुल भी बोरुंगा। आप मुझे वर भी देते हैं और शाप भी।"[१] इसके बाद पहला अंक पहला दृश्य जब प्रारम्भ होता है तब हरिश्चंद्र सोलहवां वर्ष पूर्ण कर सत्रहवें में प्रवेश कर रहे हैं। बंगला के जीवनी-नाटक के रचयिता पात्रों के चेहरे तथा वेश-भूषा का अधिक वर्णन नहीं देते हैं किंतु जीवनी-नाटक के लिए कम से कम नायक के रूप वर्णन, हावभाव, वेश-भूषा आदि का सूक्ष्म वर्णन निर्देश के अंतर्गत होना चाहिए।

दाहरार्थ

'भारतेन्दु' नाटक में— (इस कक्ष में हरिश्चंद्र के घर के ठाकुर श्री मदनमोहन जी की मूर्ति प्रतिष्ठित है।—अब हरिश्चंद्र युवावस्था में प्रवेश कर चुके हैं। वर्ण कुछ सांवला, कद कुछ ऊंचा, शरीर एकहरा, न बहुत मोटे और न दुबले। आंखें कुछ छोटी और धंसी हुई, नाक बड़ी सुडौल, कान कुछ बड़े, जिन पर घुंघराले बालों की लटकती हुई लटें। ललाट ऊंचा, जिस पर वल्लभकुल सम्प्रदाय का कुमकुम का तिलक। ऊपर के ओंठ पर रेख निकल आई है। शरीर पर बगलबन्डी और सोला। वर्ण सांवला होने, पर भी आकृति सुन्दर।)[२] सेठजी ने भारतेन्दु के रूप का ही नहीं,

---

१—भारतेन्दु—लेखक सेठ गोविन्ददास। उपक्रम।
२—भारतेन्दु—लेखक सेट गोविन्ददास। पहला अंक, पहला दृश्य।

उनके पारिवारिक जीवन के वातावरण का तथा आचार-विचारों का भी अत्यन्त सूक्ष्म चित्रण किया है क्योंकि उन्होंने 'निवेदन' के अन्तर्गत लिखा है—'इसलिए इस नाटक का वायुमंडल मेरा परिचित वायुमंडल है।" इस नाटक को लेखक ने 'ऐतिहासिक' लिखा है क्योंकि इसमें हिरिया को छोड़कर शेष पात्र वास्तव चरित्र हैं। जीवनी-नाटक में कल्पित पात्रों की कोई गुंजाइश नहीं है, अगर उनका प्रयोग होता भी है तो अत्यन्त गौण पात्र के रूप में होना चाहिए।

जिस तरह 'श्रीमधुसूदन' नाटक में उनके काव्यों का यत्र तत्र परिचय मिल जाता है उसी तरह 'भारतेन्दु' में भी उनके काव्यों का परिचय मिलता है। जिस तरह 'श्री मधुसूदन' में रेबेका और हेनरियेटा के बीच कवि का मानसिक द्वन्द्व स्पष्ट प्रस्फुटित नहीं हो पाया उसी तरह 'भारतेन्दु' में भी उनकी पत्नि मन्नोदेवी एवं उनकी उपपत्नियां मल्लिका तथा माधवी के बीच कवि का मानसिक द्वन्द्व बिल्कुल अपरिस्फुट है। मानसिक द्वन्द्व को व्यक्त करना ही कलाकार की कुशलता है, वरना जीवनी और जीवनी नाटक में केवल पाठ्य और दृश्य का ही अन्तर रह जाता है।

जीवनी नाटक का अन्त भी नाट्य-कुशलता की अपेक्षा रखता है। यों तो सभी जीवनी का अन्त मृत्यु में ही है किंतु उस मृत्यु को भी ट्रेजेडी व कामेडी के रूप में दिखाना कलाकार का काम है। 'श्री मधुसूदन' के अंतिम दृश्य में मधुसूदन मद्यपान में डूबे हुए हैं, दीनबन्धु मित्र ने निमचांद 'के रूप में उनका चरित्र-चित्रण 'सधबार एकादशी' में किया इसलिए वे क्षुब्ध हैं, प्रतिभावान होते हुए भी वे सुखी न हो सके इसका अभियोग उनके कंठ में है। यथार्थ में बंगाल के इस महाकवि की जीवनी-संध्या अत्यत करुण तथा मार्मिक है।

मधु—"आमि तो टाका चाइना—आमि सुखे थाकते चाइ। किंतु ए जीवने ता आर होलो ना—केमन जेनो गोलमाल होये गेलो।"[१]

इसके विपरीत विद्यासागर की जीवन-संध्या आशामयी है—

विद्या—"एइ लो, एइ तो, एइ तो, एइ तो—दिगन्त-विस्तृत मरुभूमिर माझखाने एइ तो एकटि सदूज शीष। बास्—"[२]

मधुसूदन का जीवन नियति के हाथों का खिलौना बना किन्तु विद्यासागर उस समय विधवा विवाह प्रचलित कराने में अधिक कृतकार्य न होने से भी उनका आदर्श,

---

१—श्री मधुसूदन—लेखक बलाइचांद मुखोपाध्याय। षोड़श दृश्य।

२—विद्यासागर—लेखक बलाइचांद मुखोपाध्याय। पंचम अंक, चतुर्थ दृश्य।

उनकी आशा भंग नहो हुई। लेखक ने ट्रेजेडी तथा सुखांत भावना दोनों का हो परिचय दिया एवं यह दिखाना चाहा कि मृत्यु मात्र ही शोकांत नहीं है। **भारतेन्दु का मृत्यु दृश्य** दिखाने के लिए सेठ गोविंददास ने नई शैली का प्रयोग किया है। '**उपसंहार**' में वह दृश्य रखा गया है। हरिश्चंद्र मृत्यु-शय्या पर लेटे हैं, पास में उनके भाई गोकुलचंद हैं। मन्नोदेवी, विद्यावती, माधवी, मल्लिका तथा शिवप्रसाद जी भी पास खड़े हैं। हरिश्चंद्र कहते हैं--"यह पानी नहीं, घनानन्द का सवैया चाहिये।"[१] शिवप्रसादजी सवैया सुनाते हैं एवं 'श्रीकृष्ण' का नाम उच्चारण करते हुए एक प्रतिभाशाली साहित्यिक अपने कर्म जीवन को अधूरा छोड़कर महाप्रयाण करता है। नेपथ्य में हरिश्चन्द्र के संबध में विरुद्ध वाणी सुनाई देती है। यह अन्त भी शान्तिपूर्ण तथा आशावादी है। 'श्री मधुसूदन' नाटक के दसम् दृश्य में मधुसूदन के मित्र गौरदास स्वप्न में विदेश में स्थित मधुसूदन को देखते हैं। इस स्वप्न में ही कई तथ्यों की सूचना दे दी गई है--उनकी पत्नि रेबेका उनके साथ है, '**Captive Lady**' काव्य की रचना हुई है आदि। इसी तरह 'भारतेन्दु' नाटक के पांचवें अंक, तीसरे दृश्य में काशी की नाट्यशाला में भारतेन्दु के नाटक 'भारत-दुर्दशा' का दृश्य है जिसमें भारतेन्दु अभिनय करते हुए मूर्छित हो जाते हैं।

हिन्दी में भारतेन्दु की जीवनी पर आधारित **लक्ष्मीनारायण मिश्र रचित 'कवि भारतेन्दु'** (सन् १९५५) नाटक भी उल्लेख योग्य है जिसमें भारतेन्दु तथा उनके समकालीन साहित्यकारों का व्यक्तित्व जिन्दादिली के साथ व्यक्त हुआ है। महात्मा गांधी के चरित्र को केन्द्रित करके 'पगध्वनि' (सन् १९५२) तथा '**मृत्युन्जय**' (सन् १९५९) नाटक रचित हुए जिनमें गांधीजी के व्यक्तित्व का अनुरूप चित्रण नहीं हो पाया है। बगला में नारायण गंगोपाध्याय रचित जीवनी-नाटक 'राममोहन' (सन् १९५४) प्रसिद्ध है। जिसमें राजा राममोहन के कर्ममुखर जीवन की सभी घटनाओं का समावेश नहीं हो पाया है। जीवनी को जीवनी-नाटक का रूप देने में घटनाओं के कुशल चयन की अत्यन्त आवश्यकता है क्योंकि नाटक की छोटी परिधि में तथा नाट्य प्रयोजन के अनुसार किसी व्यक्ति के जीवन की सभी प्रमुख घटनाओं को स्थान देना असम्भव हो जाता है। हिंदी तथा बंगला के नाट्यकारों ने सुदीर्घ-जीवन की घटनाओं को श्रृंखलित तथा नाटकीय बनाने तथा उनकी यथातथ्यता की रक्षा करने का प्रयास किया एवं हमारे सामने कुछ जीवनी-नाटकों के उदाहरण प्रस्तुत किये। जीवनी-नाटक रचना के लिए जिस उच्च कोटि की कलात्मकता की आवश्यकता है, उसका इन दोनों साहित्य मे अभाव है। उत्कृष्ट जीवन-चरित तथा उनमें से घटना-विन्यास तथा कुशल चयन की आवश्यकता है।

श्री हिरन्मय सेन रचित "**पागल ठाकुर**" चित्रनाट्य में अलौकिक तत्व भी हैं।

१—भारतेन्दु—लेखक सेठ गोविंददास। उपसंहार।

इस तरह बीसवीं सदी के प्रारम्भिक काल में अनेक ऐतिहासिक नाटकों की रचना हुई जिनके लक्ष्य भिन्न-भिन्न थे। **अधिकांशतः द्विजेन्द्रलाल की राष्ट्रीयता व्यंजक भाव-धारा एवं शैली की प्रमुखता रही।** बंगला में अपरेशचंद्र मुखोपाध्याय ने राजस्थान के इतिहास पर 'राखी बंधन' लिखा एवं हिंदी में प्रेमी ने 'रक्षा बंधन' लिखा। दोनों में ही रोमांटिक तत्व विद्यमान हैं। रोमांटिक तत्वों का बहिष्कार कर किस प्रकार उच्चकोटि के ऐतिहासिक नाटकों की सृष्टि हो सकती है इसके उदाहरण जार्ज बर्नार्ड शा के नाटक 'जौन आफ आर्क' तथा 'सीजर एंड क्लियोपेट्रा' हैं। बंगला में अपरेशचन्द्र मुखोपाध्याय रचित 'अयोध्यार बेगम', मनमोहनराय रचित 'रजिया', योगेशचन्द्र चौधरी रचित, 'दिग्विजयी', शचीन्द्रनाथ सेनगुप्त रचित 'सिराजद्दौला,' 'राष्ट्रविप्लव' 'धात्री पन्ना' आदि में द्विजेंद्रलाल की नाटकीय-धारा प्रवाहित रही। हिन्दी में जगन्नाथ प्रसाद मिलिन्द रचित 'महाराणा प्रताप,' प्रेमी रचित 'स्वप्न भंग,' 'कीर्तिस्तम्भ,' 'विषपान,' 'प्रतिशोध' आदि में भी कोई नवीनता नहीं है। बंगला में महेंद्र गुप्त एवं हिन्दी में हरिकृष्ण प्रेमी ऐतिहासिक नाट्य-क्षेत्र में बहुत सफल हुए किंतु इन्होंने अपने नायकों को अत्यन्त आदर्शवादी रूप में अंकित किया, क्योंकि अपने देश के इतिहास के राष्ट्रनायकों को ये सर्व गुण सम्पन्न ही देखना चाहते थे। केवल बंगला में मन्मथ राय ने एवं हिंदी में रामकुमार वर्मा ने 'विजय पर्व' में मानव अशोक का भी हमें परिचय दिया। सेठ गोविंददास, अश्क, उदयशंकर भट्ट तथा वृन्दावनलाल वर्मा ने हिंदी नाट्य-क्षेत्र को समृद्ध किया। इतनी **विपुल संख्या** में ऐतिहासिक नाटकों की रचना होने पर भी, **विशिष्टता की दृष्टि से नाटकों की संख्या अल्प है।** राष्ट्रीय उत्तेजना के उस युग में हिंदी तथा बंगला नाटकों ने अपने युग-बोध का प्रशंसनीय परिचय दिया यद्यपि उनकी राष्ट्रीयता भाव-प्रधान थी, स्वप्न-स्वरूपा थी। के० आर० पापर ऐसे ही **राष्ट्रवाद** के संबंध में लिखते हैं—"दी प्रिंसिपल आफ दी नैशनल स्टेट इज नाट ओन्ली इनएप्लिकैबल बट इट हैज नेह्वर बीन क्लियरली कनसीव्ड। इट इज ए मिथ। इट इज एन इरेशनल, ए रोमांटिक एण्ड **यूटोपियन ड्रीम,** ए ड्रीम आफ नैचरलिज्म एण्ड आफ ट्राइबल कलेक्टिव्हिज्म।" हिन्दी तथा बंगला के ऐतिहासिक नाटकों में भावोच्छ्वसित-राष्ट्रवाद तथा सांस्कृतिक-चित्रण का ही प्राधान्य है।

हिन्दी तथा बंगला नाट्य-साहित्य में द्विजेन्द्रलाल राय तथा जयशंकर प्रसाद के ऐतिहासिक नाटकों का महत्व

द्विजेन्द्रलाल राय तथा प्रसाद के नाटकों में राष्ट्रप्रेम एवं मानवता का, इतिहास एवं कल्पना का, नाटकत्व एवं कवित्व का ऐसा मणि-कांचन योग हुआ है कि आधुनिक भारतीय नाट्य-साहित्य के क्षेत्र में उनकी कृतियां गौरव की वस्तुएँ हैं जिनमें **भारत के जातीय-जीवन का अतीत, वर्तमान तथा भविष्य छिपा हुआ है।** प्रभाव-विस्तार की दृष्टि से द्विजेन्द्रलाल राय के ऐतिहासिक नाटक अधिक सफल हुए क्योंकि उनके नाटक रंगमंचीय होने के कारण केवल बंगाल में ही नहीं हिन्दी भाषी क्षेत्रों में भी अभिनीत हुए एवं असंख्य हृदयों को राष्ट्रप्रेम की भावना से उद्बोधित किया। **प्रसाद ने अपने नाटकों को रंगमंचीय बनाने की कोई चेष्टा नहीं की क्योंकि वे चाहते थे कि नाटकों**

के उपयुक्त रंगमंच का निर्माण हो । प्रसाद का प्रधान लक्ष्य था भारतीय इतिहास तथा दर्शन के मनन द्वारा भारतीय-मनस् की अभिव्यक्ति करना । उनका ऐतिहासिक दृष्टि-कोण अत्यंत गहन, व्यापक तथा प्रमाणों पर आधारित था एवं उनका दार्शनिक मनो-भाव **शैव आनन्दवाद** से प्रभावित था । 'विशाख' नाटक की भूमिका में प्रसाद लिखते हैं—"मेरी इच्छा भारतीय इतिहास के अप्रकाशित अंश में से उन प्रकांड घटनाओं का दिग्दर्शन कराने की है, जिन्होंने हमारी वर्तमान स्थिति को बनाने का बहुत कुछ प्रयत्न किया है, और जिनपर कि वर्तमान साहित्यकारों की दृष्टि कम पड़ती है ।" **द्विजेन्द्रलाल** की दृष्टि ऐतिहासिक तथ्यों की प्रामाणिकता पर अधिक नहीं थी, वे इतिहास का प्रयोग नाटकों में किस तरह होना चाहिए इस विषय के प्रति अधिक सचेत थे । '**ताराबाई**" नाटक के विषय में वे लिखते हैं—"इस नाटक के उपादान टाड प्रणीत 'राजस्थान' से गृहीत हुए हैं ।—मैंने यद्यपि इस नाटक का मूल वृतान्त 'राजस्थान' से लिया है, तथापि अप्रधान घटना-संबंध में स्थान-स्थान पर **इतिहास के सहित इस नाटक का अनैक्य में भारात्मक विवेचन नहीं करता हूं, क्योंकि नाटक इतिहास नहीं है ।"**

इन विभिन्न दृष्टकोणों को ध्यान में रखते हुए हिन्दी तथा बगला के दो प्रसिद्ध नाटककारों ने इतिहास से ही कथावस्तु लेकर अधिकांश नाटकों की रचना की । हिन्दी तथा बंगला ऐतिहासिक नाटकों की रचना का जो प्रारम्भ माइकेल मधुसूदन दत्त रचित 'कृष्णकुमारी' एवं भारतेन्दु रचित 'नीलदेवी' से हुआ वह द्विजेन्द्रलाल रचित प्रतापसिंह, मेवाड़-पतन, शाहजहां, नूरजहां आदि में तथा प्रसाद रचित अजातशत्रु, स्कन्दगुप्त, ध्रुवस्वामिनी आदि में अपनी परिपक्वावस्था को पहुंचा । अन्तर्द्वन्द्व तथा बहिर्द्वन्द्व का सामंजस्य, भारतीय संस्कृति के उपयुक्त गरिमामयी भाषा का प्रयोग, राष्ट्रीय चेतना तथा मानव-चरित्रों का सहानुभूतिपूर्ण अंकन दोनों नाटककारों ने अपने नाटकों में किया है तथापि उनकी कतिपय रचनाओ पर प्रकाश डालने से उनकी विशेषताएँ स्पष्ट हो उठती हैं । स्वदेशी-आन्दोलन के देश प्रेम की भावना से उद्‌बुद्ध द्विजेन्द्रलाल रचित प्रथम नाटक **'प्रतापसिंह'** है । इसकी कथावस्तु टाड रचित 'राजस्थान' से ली गई है । इसमें मेवाड़ के राज्यश्रेष्ट राणा प्रताप की वीरता की कहानी है । समस्त राजपूत राज्य मुगल शासन के सम्मुख सिर झुका चुका था कितु मेवाड़-केशरी प्रताप ने कभी मुगलों की अधीनता स्वीकार नहीं की । अपने सदरि तथा अनुचरों के साथ प्रताप ने अरण्य का आश्रय ग्रहण किया, हल्दीघाटी में विपुल मुगल सैन्य का सामना किया एवं अपने देश को मुगलों के अधिकार से छीन लेने के लिए प्राण तक विसर्जन किया, किंतु मुगलों के सामने सिर झुकाने वाले मानसिंह को उन्होंने सदैव घृणा की दृष्टि से देखा । मानसिंह के साथ भोजन न कर उन्होंने उनका इसलिए अपमान किया क्योंकि मानसिंह ने अपनी भग्नी का विवाह मुगल घराने से किया । प्रतापसिंह के भाई शक्तिसिंह भी ऐतिहासिक चरित्र हैं । मेवाड़ से शैशव से ही विच्छिन्न शक्तिसिंह का मेवाड़ के प्रति कोई ममत्व नहीं है एवं इसलिए वे मुगलों का पक्ष ग्रहण करते हैं किंतु युद्ध भूमि में भाई प्रताप की रक्षा करने के लिए वे दौड़ आते हैं । **प्रतापसिंह ट्रेजेडी के नायक हैं ।** अन्त तक वे चित्तौड़

का उद्धार करने में असमर्थ रहे। यद्यपि उनके चरित्र का पतन न दिखाकर महिमा का ही चित्रण हुआ है किंतु उनके समय से ही रोपण किया हुआ जाति के ध्वंस का बीज "मेवाड़ पतन" नाटक में अंकुरित हो उठता है। देश के पतन का कारण बाह्य-शत्रु नही, भाई भाई का विवाद है। यदि प्रतापसिंह मानसिंह के अपमान के द्वारा हिंदू जाति की संकीर्णता का परिचय न देते, यदि 'मेवाड़-पतन' के वीर चरित्र महावत खां जाति-विद्वेषी न होते तो राजपूत जैसी वीर जाति कभी पराजित न होती। प्रतापसिंह जैसे महान् चरित्र की वह एक भूल थी कि उन्होंने जाति की संकटावस्था मे सहिष्णुता तथा उदारता से काम न लेकर मानसिंह का चरम अपमान किया। इस ऐतिहासिक कथानक को द्विजेन्द्रलाल ने युग के संदेश का वाहन बनाया। साथ ही उसमें वीर रस के साथ श्रृंगार रस की धारा प्रवाहित करने के लिये शक्तिसिंह एवं दौलत-उन्नीसा की प्रणय-कहानी का संयोजन किया। इस नाटक में ऐतिहासिक तथ्यों के प्रति निष्ठा रखते हुए कल्पना का मिश्रण हुआ है किंतु राणा प्रताप से संबंधित प्रधान कथावस्तु अपने पूर्ण प्रभाव के विस्तार में असमर्थ है। इस नाटक की सार्थकता अकबर और प्रतापसिंह के द्वन्द्व में नही किंतु प्रतापसिंह एव शक्तिसिंह के अंतर्द्वन्द्व में है जो घटनाओं की सृष्टि कर चरित्रों को प्रबल प्रभंजन के बीच छोड़ देता है।

इसी तरह देशप्रेम की भावना की अभिव्यक्ति प्रसाद रचित **"स्कन्दगुप्त"** नाटक मे हुई है जो प्रसाद के ऐतिहासिक नाटकों में नाट्य-शिल्प की दृष्टि से भी श्रेष्ठ कहा जा सकता है। गृह-शत्रु और बाह्य-शत्रु के आक्रमणो से घिरे हुए गुप्तकाल के वीर पुंगव स्कन्दगुप्त की प्रथम झांकी राणा प्रताप जैसी है। किंतु प्रसाद ने **स्कन्दगुप्त का चित्रण ट्रेजेडी के नायक के समान नहीं किया।** स्कन्दगुप्त भारतीय नाट्यशास्त्र के **धीरोदात्त नायक** हैं। कुमार गुप्त के पुत्र स्कंदगुप्त ने हूणो को पराजित किया था वह ऐतिहासिक तथ्य है। प्रसाद के नायक स्कंदगुप्त को भी फल की प्राप्ति होती है, वे विजयी होते हैं किंतु दुखवादी दर्शन से नाटक को मंडित करने के लिए वे छोटे भाई पुरगुप्त का अभिषेक कर आजन्म कौमार-व्रत धारण करने को प्रतिज्ञा करते हैं। इस नायक-चरित्र में महानता के साथ वह भूल नहीं है जिसके कारण प्रतापसिंह ने अपनी जाति के अन्य लोगों को अपना शत्रु बना लिया था। किंतु यह चरित्र द्विजेन्द्रलाल के दुर्गादास के समान आदर्श चरित्र व अति-मानवीय चरित्र भी नहीं है। उनमें प्रणय की सुखद-कल्पना है जो नियति की क्रीड़ा से आघात प्राप्त करती है। दो कल्पित नारी चरित्र विजया और देवसेना ने इस नायक को मानवोचित रूप प्रदान किया। विजया ने उसे आकर्षित कर दग्ध किया एवं देवसेना ने आत्मसमर्पण कर उन्हें शीतल किया। इस तरह द्विजेन्द्रलाल ने ऐतिहासिकता की रक्षा के लिए अपने प्रधान चरित्रों के जीवन में किसी अनैतिहासिक प्रणय-व्यापार की कल्पना नहीं की, किंतु प्रसाद ने अजातशत्रु, स्कन्दगुप्त जैसे प्रधान चरित्रों को मानवीय भावनाओं से स्पन्दित करने के लिए रम्य कल्पनाओं का प्रयोग किया।

नाट्य-शिल्प की दृष्टि से द्विजेन्द्रलाल के सामने शेक्सपियर की नाट्यशैली का आदर्श था। उनके कथानकों में बाह्य संघर्ष है, चरित्रों के हृदय में भी तूफान है—इस शैली को प्रसाद ने भी अपनाया। **चरित्र-चित्रण में द्विजेन्द्रलाल की क्षमता शेक्सपियर जैसी वैचित्र्यपूर्ण है।** द्विजेन्द्रलाल ने विपरीत चरित्रों की सृष्टि की एवं प्रतिनायकों को तुच्छ मनोवृत्ति के साथ कोमल तथा सद्भावनाओं से भी भूषित किया। यह कलाकार की परख है जो हीन चरित्रों को भी हमारी सहानुभूति का पात्र बना मानव का जयगान करता है। द्विजेन्द्रलाल के प्रतिनायक शक्तिसिंह देशद्रोही हैं किंतु निर्भीक वीर भी हैं जो युद्ध भूमि में आहत भाई के पास खिंचे जाते हैं किंतु 'स्कन्दगुप्त,' के हीन मनोवृत्तियुक्त चरित्र पुरगुप्त, भटार्क आदि शुरू से अंत तक अपनी हीनता का ही परिचय देते हैं। इसका कारण यही है कि **प्रसाद ने पाश्चात्य नाट्य-शिल्प के साथ प्राच्य नाट्य शिल्प का समन्वय करना चाहा।**

द्विजेन्द्रलाल राय ने सन् १९११ में **'चन्द्रगुप्त'** नाटक की रचना की जिसकी कथावस्तु भारत के प्रथम चक्रवर्ती सम्राट चंद्रगुप्त मौर्य से संबंधित है। इसी कथावस्तु को लेकर प्रसाद ने सन् १९१२ में **'कल्याणी-परिणय'** एवं सन् १९३१ में **"चन्द्रगुप्त"** नाटक को रचना की। द्विजेन्द्रलाल एवं प्रसाद रचित "चंद्रगुप्त" नाटक में चन्द्रगुप्त के वंश-परिचय के विषय में मत वैभिन्न है। द्विजेन्द्रलाल राय अपने नाटक की **भूमिका** में लिखते हैं—

"चंद्रगुप्तेर जीवनवृतांत इतिहासे विशेष किछू पाओआ जाय ना। पुराणमते तिनि महापद्मेर शूद्राणी-पत्नि गर्भजात पुत्र ओ नन्देर वैमात्रेय भाई।" **एच० सी० राय चौधरी के ग्रंथ "पोलिटिकल हिस्ट्री आफ एनशियेंट इंडिया"** के अनुसार चंद्रगुप्त मौर्य नामक क्षत्रिय वंश में पैदा हुए थे। प्रसाद ने भारत के ऐतिहासिककाल के प्रथम सम्राट को वंश-गरिमा से ही भूषित करना उचित समझा। केवल चंद्रगुप्त को उच्च वंशजात ही न दिखलाकर प्रसाद ने उसे स्वाधीन व्यक्तित्व से मंडित किया। विशाखादत्त रचित **"मुद्राराक्षस"** चंद्रगुप्त चरित्र में तथा द्विजेन्द्रलाल के चंद्रगुप्त चरित्र में व्यक्तित्व का गौरव नहीं है। इसका कारण "चंद्रगुप्त" नाटक रचना में द्विजेन्द्रलाल का उद्देश्य वर्णभेद पर प्रकाश डालना था। भूमिका में वे लिखते हैं—"मुसलमान इतिहासकारगण निजेदेर पराजयगुलि गोपन कोरिलेओ नाटक लिखिवार यथेष्ट उपकरण राखिया गियाछेन। हिंदू इतिहासकारगण आपनादेर विजयकाहिनी पर्यन्त गोपन कोरियाछेन। तांहारा वर्णभेद लइयाइ व्यस्त। सेइजन्य **वर्णभेदकेइ** वर्तमान नाटकेर भित्ति-स्वरूप करा होइयाछे।" अत: अगर प्रसाद के नाटक में चंद्रगुप्त का राज्योचित व्यक्तित्व तथा चाणक्य का आदर्श ब्राह्मणत्व परिस्फुट हो उठा है तो द्विजेन्द्रलाल के नाटक में **चंद्रगुप्त जननी शुद्राणी मूरा** के अपमानित हृदय की अश्रुधारा ही वह प्रेरक शक्ति है जिसने आर्य्यावर्त **साम्राज्य की स्थापना की।** द्विजेन्द्रलाल रचित 'चंद्रगुप्त' नाटक ही मातृपूजा की वह **सार्थक अभिव्यक्ति** है जो मंत्र बनकर ऋषि वंकिम के गान "वन्देमातरम" में उच्चरित

होकर समस्त भारत की राष्ट्रीय प्रेरणा बनी थी। उदाहरण—चाणक्य—'मा-जार संगे एक दिन एक अंग छिले—एक प्राण, एक मन, एक निश्वास, एक आत्मा—जेमन सृष्टि एक दिन विष्णुर योगनिद्राय अभिभूत छिलो,—"[1]

द्विजेन्द्रलाल तथा प्रसाद दोनों के 'चंद्रगुप्त' नाटक में चाणक्य का व्यक्तित्व बहुत प्रभावशाली है। **प्लूटार्क, जस्टिनस आदि इतिहासकारगण यह स्वीकार करते हैं कि चाणक्य चंद्रगुप्त के गुरु** थे, जिनके बुद्धि-वैभव के बिना चंद्रगुप्त का साफल्य संभव नहीं था। भारतीय दृष्टि में चाणक्य बुद्धिमान तथा कूट-राजनीतिज्ञ थे। दोनों नाटककारों ने इस विराट प्रतिभा को मानवीय गुणों से भूषित किया है। प्रसाद के चाणक्य में सुवासिनी का प्रेमी एवं द्विजेन्द्रलाल के चाणक्य में आत्रेयी का पिता छिपा है। इन भावनाओं के अभाव में वह मनुष्यत्व खोकर बुद्धि-सम्पन्न अतिकाय दैत्य ही प्रतीत होता। किंतु इन नाटककारों ने भारतीय साम्राज्य के प्रतिष्ठाता ब्राह्मण चाणक्य के मानवत्व एवं आत्म-त्याग का भी परिचय दिया है। इस कारण नाना कूट-कौशलों द्वारा यवनों को तथा देश के शत्रुओं को पराजित करके भी वे निष्काम कर्मयोगी हैं। राज्यश्री चंद्रगुप्त को प्राप्त होती है इसी कारण चंद्रगुप्त नाटक के नायक हैं किंतु क्रिया-व्यापार के संचालन में चाणक्य प्रधान होते हुए भी फलाकांक्षा अपने स्वार्थ के लिए नहीं शिष्य चंद्रगुप्त के लिये है। आर्य्यावर्त के कल्याण के लिए है।

प्रसाद के 'चंद्रगुप्त' नाटक में चाणक्य कहते हैं—"सुवासिनी, आर्य दांड्यायन के आश्रम में पहुंचने के लिए मैं पथ भूल गया हूं। मेघ के समान मुक्त वर्षा-सा जीवन-दान, सूर्य के समान अबाध आलोक विकीर्ण करना, सागर के समान कामना-नदियों को पचाते हुए सीमा के बाहर न जाना, यही तो ब्राह्मण का आदर्श है। मुझे चंद्रगुप्त को मेघयुक्त चंद्र देखकर, इस रंगमंच से हट जाना है।"—चतुर्थ अंक।

द्विजेन्द्रलाल राय के 'चंद्रगुप्त" नाटक में चन्द्रगुप्त कहते हैं—"गुरुदेव! आमाके कि अपराधे त्याग कोरे जाच्छेन ?"

> चाणक्य—"तोमार कोनी अपराध नाई वत्स! आमि जा एतो दिन
> कोरेछि—ता अद्भुत होलेओ ब्राह्मणेर काज नय। दर्प, उच्चाशा,
> प्रतिहिंसा—ब्राह्मणैर उचित प्रवृत्ति नय। ब्राह्मणेर धर्म-क्षमा, तितिक्षा, त्याग।"
>
> —पंचम अंक, पंचम दृश्य॥

इस प्रकार दोनों नाटककारों की कृतियों में चाणक्य चरित्र में भिन्नता होते हुए भी चाणक्य के महान् उद्देश्य में भिन्नता नहीं है। द्विजेन्द्रलाल के 'चंद्रगुप्त' नाटक

१—चंद्रगुप्त—द्विजेन्द्रलाल राय। द्वितीय अंक, पंचम दृश्य।

में नन्द द्वारा चाणक्य का अपमान एक क्लीव द्वारा भारत के आदर्श का अपमान था एवं ब्राह्मण चाणक्य ने उसका प्रतिशोध लिया, यह दिखाने के लिए कि अब भी भारत में ब्राह्मण की शक्ति सुप्त नहीं हुई।

चंद्रगुप्त के प्रणय-व्यापार में दोनों नाटककारों ने कल्पना का अबाध प्रयोग किया है जिसके कारण नाटक की संहति नष्ट हुई है। द्विजेन्द्रलाल ने सेल्यूकस की कन्या हेलेन का भारत-ग्रीस मैत्री हेतु चंद्रगुप्त से पाणिग्रहण कराया एवं चंद्रकेतु की भगिनी छाया के प्रणय को विफल किया। प्रसाद ने कार्नेलिया (हेलेन) को चंद्रगुप्त के प्रति आसक्त भी दिखाया है एवं कल्याणी तथा मालविका जैसी प्रेमिकाओं का भी सृजन किया है। ग्रीक इतिहास में इसका उल्लेख है कि सेल्यूकस के साथ चंद्रगुप्त का युद्ध हुआ एवं पराजित सेल्यूकस को अपनी कन्या का विवाह चंद्रगुप्त से करना पड़ा। इस विवाह से सेल्यूकस प्रसन्न थे या नहीं इसका उल्लेख इतिहास में नहीं है। किंतु दो जातियों की मैत्री को रमणीय रूप देने के लिए इससे अच्छा उदाहरण और क्या हो सकता है! प्रतिनायक के रूप में हेलेन के पाणि-प्रार्थी एंटिगोनस का चरित्र चित्रण द्विजेन्द्रलाल ने मर्म-स्पर्शी रूप में किया है, प्रसाद का फिलिप्स चरित्र उतना प्रभावशाली नहीं है।

इस तरह इन दो 'चंद्रगुप्त' नाटकों में चरित्र-चित्रण अत्यंत भिन्न रूप में हुआ है। अतः नाटक के प्रभाव में भी भिन्नता है। नाट्य-शिल्प की दृष्टि से दोनों नाटकों में कथानक की शिथिलता तथा संकलनत्रय का अभाव समान रूप से है फिर भी हिंदी तथा बंगला के ऐतिहासिक नाटकों में ये दो "चंद्रगुप्त" नाटक अमर कृतियां हैं। दो प्रसिद्ध नाटककारों ने अपने-अपने दृष्टिकोण से भारत के इतिहासकाल के प्रथम बहिर्शत्रु **ग्रीक विजेता सिकन्दर** का मार्मिक एवं सहानुभूतिपूर्ण चित्रण किया तथा विभिन्न राज्यों में विभक्त आर्य्यावर्त के एकीकरण की चेष्टाओं का सफल, सजीव चित्रण किया। इतिहास, कल्पना, राष्ट्रीयता, मानवता, भाव, भाषा आदि सभी दृष्टियों से चंद्रगुप्त नाटक सार्थक रचनाएँ हैं।

द्विजेन्द्रलाल रचित "**शाहजहां**" नाटक नाट्यकला की दृष्टि से उनके अन्य नाटकों से श्रेष्ठ है एवं प्रसाद रचित "स्कंदगुप्त" नाटक प्रसाद के अन्य नाटकों से श्रेष्ठ है। इनकी आलोचना हो चुकी है। "शाहजहां" नाटक में **सम्राट शाहजहां के जीवन की ट्रेजेडी है** जिसमें दारा के प्रति अधिक पक्षपात के कारण उन्हें अपने ही पुत्र औरंगजेब द्वारा वंदी होना पड़ा किन्तु अन्त तक पिता शाहजहां ने कुपुत्र औरंगजेब को भी क्षमा कर दिया। पितृ-हृदय की ऐसी छवि प्रसाद रचित 'अजातशत्रु' नाटक में है जिसमें बिम्बसार के पास आकर अजातशत्रु क्षमा-याचना करते हैं। द्विजेन्द्रलाल के नाटक 'दुर्गादास' के नायक दुर्गादास एवं प्रसाद के नाटक 'स्कंदगुप्त' के नायक स्कंदगुप्त दोनों देश रक्षा के लिए अपनी कामनाओं की बलि देकर युद्ध किये जाते हैं किन्तु दुर्गादास विफल होते हैं एवं स्कन्दगुप्त सफल। सफलता तथा विफलता के परे इनमें नाटककारों का राष्ट्रीय उद्देश्य ही प्रधान है। '**विशाख**" नाटक में प्रसाद ने सत्यशील तथा महापिंगल के रूप

में बौद्ध भिक्षुओं के पतनशील चरित्र का अंकन करके बौद्ध युग का पतन चित्रित किया है एवं मेवाड़-पतन' नाटक में द्विजेन्द्रलाल ने गृह-कलह में लिप्त राजपूत जाति का पतन चित्रित किया है। अर्थात् इन नाटककारों की दृष्टि केवल इतिहास के गरिमामय युग के प्रति ही नहीं, इतिहास के पतन-शील युग के प्रति भी थी एवं उन उत्थान तथा पतन के सजीव चित्रण द्वारा वे वर्तमान पीढ़ी को उनके कारणों से सचेत कर देना चाहते थे। केवल ऐतिहासिक रस की अवतारणा के लिए उन्होंने ऐतिहासिक नाटकों की रचना नहीं की किन्तु राष्ट्रीय उत्तेजना से पूर्ण वातावरण में पले हुए इन नाटककारों ने अतीत को वर्तमान के लिए उपादेय बनाना चाहा एवं इस प्रयास को उन्होंने अत्यन्त कलात्मक ढंग से व्यक्त किया।

द्विजेन्द्रलाल तथा प्रसाद ने नारी चरित्रों को प्रधानता दी। शेक्सपियर के नाटकों में नारी चरित्रों की प्रधानता दिखाई देती है। लेडी मैकबैथ प्रथम नारी चरित्रों में एक है जिन्होंने कार्य-व्यापार को संचालित करने में अपूर्व क्षमता का परिचय दिया है। "स्कन्दगुप्त" में कुमार गुप्त की छोटी रानी अनन्तदेवी तथा 'अजातशत्रु' में बिम्बसार की छोटी रानी छलना (चेलना) इसी प्रकार षड़यन्त्रों द्वारा अपनी महत्वाकांक्षा की पूर्ति करना चाहती हैं—इस कोटि के नारी चरित्र के विपरीत कुमारगुप्त की बड़ी रानी देवकी तथा बिंबसार की बड़ी रानी वासवी हैं जो स्नेह परायणा, पतिप्राणा तथा सहनशीला है। द्विजेन्द्रलाल के नाटकों में इस तरह विपरीत धर्म के नारी चरित्रों का सृजन नहीं हुआ किन्तु उन्होंने नारी चरित्रों को कहीं-कहीं अत्यन्त जटिल तथा गूढ़ रूप प्रदान किया है। द्विजेन्द्रलाल तथा प्रसाद के नाटकों में प्रेमिका के रूप में जितने नारी चरित्र हैं जैसे देवसेना, वाजिरा, दौलतउन्नीसा, कार्नेलिया, छाया, पियारा आदि उनका चरित्र-चित्रण मूढ़ रूप में व मनस्तात्विक रूप में न होकर रोमांटिक पद्धति में हुआ है। द्विजेन्द्रलाल ने **नूरजहां** तथा प्रसाद ने **ध्रुवस्वामिनी** के चरित्र-चित्रण में अपनी कुशलता तथा नवीनता का परिचय दिया है। द्विजेन्द्रलाल के 'ताराबाई' नाटक में लेखक ने तारा को नायक से भी अधिक महत्वपूर्ण स्थान देना चाहा किंतु वे तारा के व्यक्तित्व को भी अधिक ऊंचा न उठा सके। मेवाड़ के निर्वासित राजकुमार पृथ्वी के ही बाहुबल द्वारा तारा के पिता के राज्य का उद्धार होता है। इसी तरह प्रसाद के 'राज्यश्री' नाटक में राज्यश्री का व्यक्तित्व भी अधिक तेजस्विनी रूप में प्रस्फुटित नहीं हो सका है। 'राज्यश्री' नाटक में छठी शताब्दी के अन्त में स्थानेश्वर, कान्यकुब्ज, मालवा और गौड़ के बीच जिन राजनीतिक कुचक्रों की सृष्टि हो रही थी ऐतिहासिक तथ्यों के अनुसार उनका चित्रण करना ही उद्देश्य था। सर्व प्रथम **नूरजहाँ** तथा ध्रुवस्वामिनी के चरित्र में नारी के जटिल, कोमल-कठिन, मनोवैज्ञानिक रूप का उद्घाटन होता है एवं नारी अपनी प्रेम-परायणता नहीं, अपने स्वाभिमान तथा क्षमता का भी परिचय देती हैं। इन चरित्रों में दोष, गुण, दुर्बलता तथा सबलता का मिश्रण हुआ है। अतः ये देवसेना व मानसी सदृश्य केवल आदर्श की प्रतीक न बन अपने स्वाभाविक मानवी रूप में दृष्टिगोचर होती हैं। इनका चरिण मनोविश्लेषणात्मक न होकर रोमांटिक पद्धति में

ही हुआ है फिर भी इन दो नारी चरित्रों के अन्तर्द्वन्द्व, अपने व्यक्तित्व की प्रतिष्ठा की अभिलाषा, कार्य-व्यापार संचालित करने की शक्ति आदि ने उन्हें नाटक का प्रधान चरित्र बना दिया एवं वे नायक की प्रेयसि होने के कारण नाटक की नायिका नहीं हैं वरन् नाटक के कार्य व्यापार को प्रधान रूप से संचालित करने के कारण नाटक की नायिका हैं।

ऐतिहासिकता तथा नाटकीयता की दृष्टि से ये दो नाटक अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं। नूरजहां वह ऐतिहासिक चरित्र है जिसने अपने पति जहांगीर के राज्य का शासन-भार संभाला एवं ध्रुवस्वामिनी ने अपने क्लीव पति को त्यागकर शकों को पराजित करने वाले वीर चन्द्रगुप्त को व ण करने का साहस किया। **नूरजहां तथा ध्रुवस्वामिनी दोनों के प्रथम पति शेरखां व रामगुप्त की मृत्यु होती है किंतु वैधव्य में ही** उनके **व्यक्तित्व की समाप्ति नहीं होती। पुनर्विवाह के उपरान्त उनका व्यक्तित्व और भी निखर उठता है।** आदर्श की कसौटी पर नारी चरित्र को परखा नहीं गया किंतु नारी में जिस **शक्ति का उत्स** है उसका दीप्त रूप चित्रित किया गया है। नूरजहां कुशाग्र बुद्धि-सम्पन्ना तथा अपूर्व सुन्दरी नारी थी जिस पर विवाह के पूर्व ही सलीम आसक्त थे। नाटक में उसके चरित्र में महत्वाकांक्षा है, प्रतिहिंसा की भावना है, मातृत्व है। क्षमता के लोभ में वह नारीत्व की कोमलता भी कभी-कभी विसर्जन करती है जिसकी प्रतिक्रिया स्वरूप लेखक ने अन्त में उसके असहाय उन्मदिनी रूप का चित्रण किया है। ध्रुवस्वामिनी भी बुद्धि-सम्पन्ना, सुन्दरी नारी है जिसका स्वाभिमान अपमानित होकर जाग्रत हो उठता है एवं वह शकराज के शिविर में उपहार के स्वरूप जाने से इन्कार करती है। सामाजिक समस्या-नाटकों में आगे चलकर नारी के व्यक्तित्व पर जो प्रकाश डाला गया ऐतिहासिक नाटकों के ये दो नारी चरित्र नूरजहां तथा ध्रुवस्वामिनी उनकी पथ-प्रदर्शिका हैं।

इस प्रकार द्विजेन्द्रलाल तथा प्रसाद ने ऐतिहासिक नाटकों के क्षेत्र में विषय चयन, इतिहास तथा कल्पना का समन्वय, चरित्रों की विभिन्नता, तथा जटिलता, राष्ट्रीय भावना, नाट्य शिल्प की कुशलता का जो परिचय दिया उसके समक्ष अन्य ऐतिहासिक नाट्यकारों की कृतियां उनके नाटकों की अनुगामिनी ही बनी रहीं। **हिंदी तथा बंगला नाटकों का उत्कर्ष द्विजेन्द्रलाल तथा प्रसाद के नाटकों द्वारा हुआ।**

द्विजेन्द्रलाल तथा प्रसाद केवल नाटककार ही नहीं, उच्च कोटि के कवि भी थे। अतः उनके नाटकों में जिन **गीतों का प्रयोग हुआ है** उनका काव्य गुण भी यथेष्ट है। यों तो नाटकीय दृष्टि से उनका प्रयोग हुआ है तथा वातावरण सृजन के लिए, भावों की अभिव्यक्ति के लिए, उद्बोधन के लिये, इत्यादि, किंतु उनके कतिपय गीत राष्ट्रीय भावनाओं एवं प्रेम की कोमल भावनाओं से अनुप्राणित होने के कारण स्वतंत्र रूप से

भी अमर हो गये हैं। राष्ट्रप्रेम की भावनाओं से ओत-प्रोत द्विजेन्द्रलाल का यह गीत प्रसिद्ध है—

"धनधान्य पुष्प भरा आमादेरे एइ वसुन्धरा,
ताहार माझे आछे देश एक—सकल देशेर सेरा,
ओ से स्वप्न दिये तेरी से देश स्मृति दिये घेरा,
एमन देशटि कोथाओ खूँजे पावे नाको तुमि,
सकल देशेर रानी से जे—आमार जन्मभूमि।"
—शाहजहां, तृतीय अंक, षष्ठ दृश्य।

ऐसा ही पवित्र देश प्रेम की भावना से अनुरंजित प्रसाद का यह गीत है—

"हिमाद्रि तुंग श्रृंग से
प्रबुद्ध शुद्ध भारती—
स्वयं प्रभा समुज्ज्वला
स्वतंत्रता पुकारती—

अमर्त्य वीर पुत्र हो, दृढ़ प्रतिज्ञ सोच लो,
प्रशस्त पुण्य पंथ है—बढ़े चलो, बढ़े चलो,।"
—चन्द्रगुप्त, चतुर्थ अंक।।

द्विजेन्द्रलाल के उपरान्त बंगला नाट्य-साहित्य में अपरेशचन्द्र रचित **'रामानुज'** धर्ममूलक ऐतिहासिक नाटक है जैसा कि उग्र ने **'महात्मा ईसा'** को ऐतिहासिक नाटक का रूप दिया है। अपरेशचन्द्र रचित **'राखी-बन्धन'** राजपूत ऐतिहासिक कथा पर आश्रित है एवं **'अयोध्यार बेगम'** अयोध्या के नवाब शुजाउद्दौला तथा बंगाल के राज्यच्युत नवाब मीरकासिम के विषय में जो जनश्रुति है उसपर आधारित है। विषय तथा नाट्यशिल्प की दृष्टि से इनमें कोई नवीनता नहीं है। इसी तरह योगेशचन्द्र रचित **'नादिरशाह,'** मनमोहन राय रचित **'रजिया'** आदि द्विजेन्द्र शैली की ही अनुगामिनी कृतियां हैं।

द्विजेन्द्रलाल के परवर्ती नाटककारों में **महेन्द्र गुप्त** ने राष्ट्रीय चेतना से उद्बुद्ध होकर **ब्रिटिश-काल के इतिहास** में से विषय-चयन किया है जैसे 'महाराज नन्दकुमार,' 'टीपू सुल्तान' आदि। **मन्मथ राय ने पौराणिक कथाओं** को इतिहास के रूप में चित्रित किया जैसे 'देवासुर,' 'कारागार' आदि। प्रसाद रचित 'जनमेजय का नागयज्ञ' इस कोटि के नाटकों का प्रथम उदाहरण कहा जा सकता है क्योंकि जैसा कि पहले लिखा जा चुका है कि प्रसाद इन्द्र को आर्यावर्त का प्रथम ऐतिहासिक सम्राट मानते हैं।

के उपरांत एवं उसके कुछ पूर्व से ही राष्ट्रीय-उत्तेजना का अवसान हो चला था जिसके फलस्वरूप उत्कृष्ट कोटि के ऐतिहासिक नाटकों की रचना का ह्रास हो चला था। बंगला में सामाजिक समस्या-मूलक नाटकों के प्रति लेखकों ने अपनी पूरी शक्ति नियोजित की, किंतु हिंदी में **लक्ष्मीनारायण मिश्र** जैसे सामाजिक-समस्याओं को ही नाटकों का लक्ष्य बनाने वाले नाटककार ने भी कई ऐतिहासिक-सांस्कृतिक नाटकों की रचना की जैसे— **गरुड़ध्वज, वत्सराज, नारद की वीणा, दशाश्मेघ, वितस्ता की लहरें** आदि। 'अशोक' (सन् १९२६) मिश्रजी का प्रथम ऐतिहासिक नाटक है एवं गरुड़ध्वज, वत्सराज आदि की नाट्यकला उससे अधिक प्रौढ़ है। 'गरुड़ध्वज' में शकों के आक्रमणकाल का इतिहास है, 'वत्सराज' के नायक उदयन हैं, 'वितस्ता की लहरें' में सिकंदर और पुरु के इतिहास प्रसिद्ध युद्ध की कथा है, एवं 'दशाश्वमेघ' में कुषाण-शक्ति के विरुद्ध भारशिव नागों की वीरता की कथा है। 'नारद की वीणा' की पौराणिक कथावस्तु अत्यंत युक्ति संगत, ऐतिहासिक बुद्धिवादी नाटक के रूप में रचित हुई है। जिसमें शैव, हिरण्यक, शिपु एवं वैष्णव प्रह्लाद के मतविरोध के चित्र हैं। लक्ष्मीनारायण मिश्र के ये सांस्कृतिक नाटक मन्मथ राय के सांस्कृतिक नाटकों के तुल्य हैं। किंतु भारतीय-संस्कृति का जैसा परिष्कृत-चित्रण द्विजेन्द्रलाल तथा प्रसाद के ऐतिहासिक नाटकों में हुआ है उसे वे अधिक उत्कर्ष प्रदान न कर सके।

हिन्दी तथा बंगला के ऐतिहासिक नाटकों की विषय-वस्तु

हिंदी तथा बंगला नाट्य-साहित्य में ऐतिहासिक नाटकों का उत्कर्ष बीसवीं सदी के प्रारम्भ से हुआ। यह युग बंगला में स्वदेशी आंदोलन का युग कहलाया। हिंदी भाषी क्षेत्रों में महात्मा गांधी के राजनीति क्षेत्र में पदार्पण करने के उपरांत स्वराज्य आंदोलन के युग का आरम्भ हुआ। ऐसी परिस्थिति में अधिकांश ऐतिहासिक नाटक सोद्देश्य रचित हुए जिनमें **अतीत के देशभक्त वीरों को नायक बनाकर** भारतीय संस्कृति की गरिमा की अभिव्यक्ति हुई।

ऐतिहासिक प्रमाणों के आधार पर भारत के प्रथम विदेशी आक्रमणकारी ग्रीक थे एवं उन्हें खदेड़कर आर्य्यावर्त में साम्राज्य प्रतिष्ठित करने वाले प्रथम सम्राट **चन्द्रगुप्त मौर्य** थे। संस्कृत में मुद्राराक्षस' नाटक में चंद्रगुप्त, चाणक्य, राक्षस एवं सिद्धार्थ जैसे ऐतिहासिक पात्रों का चित्रण हुआ एवं हिंदी में भारतेन्दु ने तथा बंगला में ज्योतिरिन्द्रनाथ ठाकुर ने 'मुद्राराक्षस' का अनुवाद किया। उसके बाद हिंदी तथा बंगला के दो प्रसिद्ध नाटककारों की दृष्टि इस वस्तु की ओर गई, द्विजेंद्रलाल तथा प्रसाद ने 'चंद्रगुप्त' नाटक की रचना की। इसके पूर्व ज्योतिरिन्द्रनाथ ने 'पुरु-विक्रम' की रचना की थी जिसके नायक सिकंदर को, अपनी वीरता द्वारा मुग्ध करने वाले पंजाब के वीर पुरु थे। बद्रीनाथ भट्ट ने 'चंद्रगुप्त' तथा सेठ गोविंददास ने चंद्रगुप्त के ही चरित्र को लेकर 'शशिगुप्त' नाटक की रचना की। इन नाटककारों ने इतिहास एवं कल्पना का यथेष्ठ मिश्रण किया है जिसमें प्रसाद रचित 'चंद्रगुप्त' में ऐतिहासिकता का

सबसे अधिक निर्वाह हुआ है एवं द्विजेंद्रलाल के चंद्रगुप्त उद्देश्य प्रमुख हो गया है। अन्य कई नाटककारों ने इस विषय को चुना।

प्रसाद ने भारत के इतिहास का प्रारम्भ इतिहास-पुराण के आधार पर इन्द्र से माना है जो असुरों को खदेड़कर देव साम्राज्य की प्रतिष्ठा करने वाले प्रथम सम्राट थे। **अतः प्रसाद ने प्रागैतिहासिक काल से लेकर हर्षवर्द्धन के समय तक के इतिहास पर आधारित नाटकों की रचना की।** 'जनमेजय का नागयज्ञ' कलियुग के इतिहास (कृष्ण की मृत्यु के उपरांत कलियुग का आरंभ) पर रचित, 'अजातशत्रु' बौद्ध युग के इतिहास पर रचित,' चंद्रगुप्त' मौर्य-वंश से संबंधित, 'स्कंदगुप्त' गुप्त-काल से संबंधित, 'राज्यश्री' हर्ष के समय से संबंधित तथा 'विशाख' काश्मीर के राजा नरदेव के समय से संबंधित है। जबकि बौद्ध-संस्कृति का पतन हो रहा था। **द्विजेन्द्रलाल के 'चन्द्रगुप्त'** नाटक के सिवा अन्य ऐतिहासिक नाटक **मुगल-काल** तथा **राजपूत-वंश** से संबंधित हैं। राजपूत वंश के वीर-श्रेष्ठ मेवाड़ के राणा प्रतापसिंह थे। प्रतापसिंह के चरित्र को लेकर बीसवीं सदी के पूर्व ज्योतिरिन्द्रनाथ ने 'अश्रुमति' एवं राधाकृष्णदास ने 'महाराणा प्रताप नाटक की रचना की थी। 'मिलिंद' ने सन् १९२८ में हिंदी में 'प्रताप प्रतिज्ञा' नाटक की रचना की। द्विजेंद्रलाल ने 'प्रतापसिंह' नाटक में प्रताप संबंधी वस्तु को इतिहास, कल्पना तथा नाटकीय निपुणता के सहारे और भी निखार दिया।

राजपूत काल को नाटकों में अमर कर देने वालों में श्री हरिकृष्ण प्रेमी का श्रेय अधिक है। 'रक्षाबन्धन,' 'विषपान,' 'कीर्तिस्तम्भ,' भग्न-प्राचीर' आदि राजपूत इतिहास संबंधी नाटक हैं एवं प्रेमी ने इन नाटकों की रचना टाड कृत 'राजस्थान' के सिवा ऐतिहासिक ग्रंथ तथा किंवदन्तियों के आधार पर की है। प्रेमी के अधिकांश नाटकों का विषय आपसी फूट तथा ऐक्य की आवश्यकता से संबंधित है। राजपूत गरिमा की पतनोन्मुख छवि द्विजेन्द्रलाल रचित 'दुर्गादास' एवं 'मेवाड़ पतन' में है। द्विजेन्द्रलाल रचित मुगल-वंश के दो नाटक 'शाहजहां' और 'नूरजहां' तथा क्षीरोदप्रसाद रचित 'आलमगीर' प्रसिद्ध हैं। इन नाटकों में इतिहास के तथ्यों की अपेक्षा मानव-चरित्र का विश्लेषण अधिक हुआ है। हिंदी में इस कोटि के ऐतिहासिक नाटकों की रचना नहीं हुई। प्रसाद रचित 'ध्रुवस्वामिनी' में चरित्र विश्लेषण की अपेक्षा सामाजिक समस्या का स्वरूप ही प्रमुख है।

मराठा-केशरी शिवाजी के चरित्र पर प्रेमी रचित 'शिवासाधना,' गिरीशचन्द्र घोष रचित 'छत्रपति शिवाजी' तथा शचीन सेनगुप्त रचित 'गैरिक पताका' उल्लेख योग्य हैं।

प्रियदर्शी सम्राट अशोक पर कई नाटक रचित हुए जिनमें गिरीशचंद्र घोष रचित 'अशोक,' मन्मथ राय रचित 'अशोक' बंगला में एवं चन्द्रगुप्त विद्यालंकार

रचित 'अशोक' तथा लक्ष्मीनारायण मिश्र रचित 'अशोक' हिंदी में प्रसिद्ध हैं। अशोक ने किसी विदेशी शत्रु को पराजित नहीं किया था किंतु कलिंग के युद्ध में किये गये अत्याचारों की प्रतिक्रिया स्वरूप उनका जो हृदय परिवर्तन हुआ उसे कार्य-कारण-परम्परा द्वारा नाट्यरूप देना इन नाटकों का लक्ष्य रहा। अतः नाटकीय दृष्टि से अशोक पर रचित नाटक श्रेष्ठ हैं।

बौद्ध युग के पराक्रमी तथा कलाप्रेमी राजा उदयन पर भी अनेक नाटकों की रचना हुई। भास ने 'वासवदत्ता' एवं 'प्रतिज्ञा यौगंधरायण' में उदयन को ही नायक बनाया। उदयन के चरित्र से संबंधित प्रसाद रचित 'अजातशत्रु', गोविन्दवल्लभ पंत रचित 'अंतःपुर का छिद्र,' लक्ष्मीनारायण मिश्र रचित 'वत्सराज' तथा राजकुमार वर्मा रचित 'कला और कृपाण' आदि हिंदी में प्रसिद्ध हैं। बंगला नाटककार उदयन संबंधी कथावस्तु से अधिक आकृष्ट नहीं हुए क्योंकि उदयन का प्रेमी स्वरूप ही अधिक प्रतिष्ठित है, राष्ट्र नायक के गुण उनमें नहीं थे।

शकों को पराजित कर संवत् प्रवर्तन करने वाले चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य, जैन गुरू कालकाचार्य तथा तत्कालीन शक आक्रमणों को केंद्रित करके कई हिंदी नाटकों की रचना हुई। उदयशंकर भट्ट ने 'शक विजय,' वृन्दावनलाल वर्मा ने 'हंस-मयूर,' लक्ष्मीनारायण मिश्र ने 'गरुड़ध्वज,' प्रसाद ने 'ध्रुवस्वामिनी' तथा हरिकृष्ण प्रेमी ने 'सवत् प्रवर्तन' की रचना की। यह विक्रम संवत् हिंदी भाषी प्रदेशों में प्रचलित होने के कारण हिंदी नाटककारों की दृष्टि इस ओर गई एवं बंगला नाटककार इस विषय से उदासीन रहे।

अंग्रेजों के आगमन के उपरान्त **ब्रिटिश-काल** के भारतीय इतिहास पर रचित कतिपय बंगला नाटक उत्कृष्ट हैं। इनमें गिरीशचंद्र घोष रचित 'सिराजद्दोला,' मीर-कासिम,' एवं महेंद्रगुप्त रचित 'महाराज नंदकुमार,' 'टीपू सुल्तान' आदि प्रसिद्ध हैं। हिंदी में ब्रिटिश-काल पर रचित ऐतिहासिक नाटकों का प्रायः अभाव है इसका यही कारण है कि प्लासी का युद्ध एवं बंग-भंग आन्दोलन की स्मृति जितनी बंगभूमि के दग्धहृदय पर अंकित है उतनी अन्य प्रदेशों में नही। वृंदावनलाल वर्मा रचित 'पूर्व की ओर में, **प्राचीन पल्हव-काल तथा** 'झांसी की रानी' में **सिपाही विद्रोह** का चित्रण हुआ है।

इन ऐतिहासिक कथावस्तुओं के चयन पर ध्यान देने से यह प्रमाणित होगा कि बंगला नाटककारों ने अधिकांशतः उन्ही विषयों को अपनाया है जिनके द्वारा वे अपनी **क्रान्तिकारी-राष्ट्रीय-भावनाओं** को व्यक्त कर सकें। इसके विपरीत हिंदी नाटककारों की दृष्टि अधिकांशतः भारत के **सांस्कृतिक** चित्रण पर निबद्ध रही। शेक्सपियर के ऐतिहासिक नाटकों के समान राजोचित व्यक्तित्व एवं वैभव की सृष्टि नहीं हुई।

इन ऐतिहासिक कथावस्तुओं के साथ उन कथावस्तुओं का भी योग है जो उन प्रसिद्ध व्यक्तियों पर लिखेगये जिनकी कालगत-दूरी हमसे अधिक नहीं है। ऐसे व्यक्तियों पर **जीवनी-नाटक** लिखे गये। संस्कृत में इस कोटि के जीवनी नाटक नहीं लिखे गये । पाश्चात्य साहित्य की देखा देखी इनका अनुगमन बंगला में वनफूल रचित 'विद्यासागर' एवं 'मधुसूदन' द्वारा हुआ । हिंदी में भारतेन्दु पर सेठ गोविन्ददास तथा लक्ष्मीनारायण मिश्र ने 'भारतेन्दु' जीवनी नाटक की रचना की । इनके सिवा महात्मा गांधी की जीवनी पर हिंदी में 'मृत्युन्जय' एवं सुभाषचंद्र की जीवनी, पर 'बंगला में नेताजी' की रचना हुई । विषय-वस्तु की दृष्टि से ऐसे महान् लोगों की जीवनी के प्रति कम ही लेखक नाटक रचना हेतु प्रवृत्त हुए क्योंकि ऐसे व्यक्ति जिनका समय हमसे अधिक दूर नहीं, उनके संबंध में किसी भी प्रकार की कल्पना का प्रयोग करना अरुचिकर होगा।

इस प्रसंग में यह कहना अनुचित नहीं होगा कि जार्ज बर्नार्ड शा ने 'सेंट जोआ' नाटक में इतिहास का जैसा रोमांस-वर्जित, कामेडी के रूप में चित्रण किया है उसका हिंदी तथा बंगला ऐतिहासिक नाटकों में अभाव है । **हिन्दी तथा बंगला ऐतिहासिक नाटकों में ऐतिहासिक तथ्य कम एवं रोमांस की मात्रा अत्यधिक है ।**

हिन्दी तथा बंगला के ऐतिहासिक नाटकों का नाट्य-शिल्प

कथावस्तु

ऐतिहासिक नाट्य-शिल्प की कथानक संबंधी यह विशेषता होती है कि उनमें किसी प्रसिद्ध ऐतिहासिक चरित्र से सबंधित घटनाओं का इतिहास से चयन होता है एवं उस घटना की सार्थक परिणति दिखाने के लिए आरम्भ से कार्य-कारण परम्परा का सृजन नाटककार करता है । इस **कार्य-कारण-परम्परा** को सम्भाव्य रूप देने में नाटककार की कुशलता प्रमाणित होती है । नायक व नायिका के हृदय में सुप्त वासनाओं से घटनाओं का सृजन होता है एवं घटनाओं के घात-प्रतिघात में विभिन्न चरित्रों का विकास होता है । इस तरह ऐतिहासिक घटनाएँ जुड़कर नाटकीय कथावस्तु बन जाती हैं । संस्कृत नाटकों की कथावस्तु में सन्धियों का होना आवश्यक माना जाता था एवं उन नाटकों में नायक क्रमशः फल-प्राप्ति की ओर अग्रसर होता है । हिंदी के ऐतिहासिक नाटकों में **प्रसाद ने संधियों की योजना की है** एवं उनके नायक अंत में फल के अधिकारी होते हैं जैसे चन्द्रगुप्त, स्कंदगुप्त, अजातशत्रु, जनमेजय आदि का अंत में उत्कर्ष दिखाया गया है किंतु अधिकांश हिंदी तथा बंगला ऐतिहासिक नाटकों में द्विजेन्द्र-शैली का ही निर्वाह हुआ है । **द्विजेन्द्रलाल ने पाश्चात्य रीति के अनुसार सन्धियों को अधिक महत्व न देकर संघर्ष के आरम्भ, विकास, चरमसीमा आदि को** महत्व दिया है । **उनके नायकों का नैतिक पतन तो नहीं होता है किन्तु पराजय होती है** जैसे राणा प्रताप चित्तौड़ का उद्धार नहीं कर पाते, दुर्गादास विफल होते हैं, शाहजहां बन्दी होते हैं, नूरजहां उन्मादिनी हो जाती है इत्यादि । हरिकृष्ण प्रेमी के नाटकों के कथानक भी इसी

शैली पर रचित हुए हैं। उनके सर्व प्रसिद्ध नाटक 'रक्षा-बन्धन' में राखी पाकर हुमायूँ हिंदू बहन की रक्षा करने दौड़ आते हैं किन्तु उसके पूर्व ही रानी कर्मवती जल कर भस्म हो जाती है। ऐतिहासिक नाटककारों ने ऐतिहासिक तथ्यों का प्रयोग किया है एवं उनके साथ कल्पना का मिश्रण वहीं हुआ है जहां कि इतिहास मौन है। **हिन्दी तथा बंगला के नाटककारों ने प्रणय-व्यापारों के चित्रण में कल्पना का इतना पुट मिलाया है कि वे ऐतिहासिक चरित्रों से कहीं-कहीं मेल नहीं खाते** जैसे चन्द्रगुप्त के प्रति हेलेन का प्रेम व स्कन्दगुप्त के प्रति देवसेना का प्रेम अशोभन नहीं लगता किन्तु प्रताप कन्या अश्रुमती का सलीम के प्रति प्रेम, औरंगजेब की कन्या का शिवाजी के प्रति आकर्षण तथा गुल-नार बेगम की दुर्गादास के प्रति आसक्ति, उदयन की पत्नि पद्मावती की गौतम के प्रति आसक्ति अशोभन प्रतीत होती हैं। हिंदी तथा बंगला के ऐतिहासिक नाटकों के कथानक में प्रेमिकाओं की सृष्टि करके नाटककारों ने नायक की विजय तथा पराजय के कारणों को पुष्ट करने की चेष्टा की है। रोमांस की अधिकता के कारण नाटकीयता को क्षति पहुंची है।

चरित्र-चित्रण

घटनाओं का मूल-कारण पात्रों के चरित्र में निहित रहता है अतः ऐतिहासिक नाटकों में विशेषतः पात्रों का चरित्र चित्रण इस तरह होता है कि **उनकी सुप्त वासना बाह्य-द्वन्द्व की सृष्टि** कर सके। बाह्य-द्वन्द्व के साथ अन्तर्द्वन्द्व के सृजन द्वारा नाटककार अपने चरित्रों के मानवीय-रूप की सूक्ष्म रेखाएँ खींचता है। द्विजेन्द्रलाल ने ऐतिहासिक नाटकों के चरित्र में **अन्तर्द्वन्द्व** की सृष्टि की। 'शाहजहां' नाटक में पिता को बन्दी करने वाला औरंगजेब पिता से क्षमा-याचना करता है। शाहजहां के हृदय में स्थविर-केशरी के आहत अभिमान तथा पितृ-स्नेह में द्वन्द्व उपस्थित होता है एवं अंत में पितृ-स्नेह ही विजयी होता है। प्रसाद के नाटकों के चरित्र में भी अंतर्द्वन्द्व है। 'स्कंदगुप्त' नाटक में स्कंदगुप्त, भटार्क, विजया, देवसेना सभी का हृदय अंतर्द्वन्द्व से मथित होता है। हरि-कृष्ण प्रेमी के नाटक चरित्र-प्रधान न होकर कार्य-व्यापार प्रधान हैं अतः उनके चरित्रों में अंतर्द्वन्द्व का अभाव है। द्विजेन्द्रलाल तथा प्रसाद के सिवा हिंदी तथा बंगला के साधारण कोटि के नाटककार अंतर्द्वन्द्व की सृष्टि करने में अधिक सफल नहीं हुए। अशोक चरित्र का अंतर्द्वन्द्व एव हृदय-परिवर्तन इतिहास-विश्रुत है। डा० रामकुमार वर्मा ने **'विजय पर्व'** नाटक मे अशोक के हृदय में कलिग के प्रति क्रोध, कलिग-कन्या चारुमित्रा की प्रभु-भक्ति से उत्पन्न स्नेह तथा माताओं की रुदन-ध्वनि से जाग्रत करुणा का द्वन्द्व अत्यंत नाटकीय ढंग से चित्रित किया है। घटनाओं के घात-प्रतिघात से चरित्रों का विकास दिखाया जाना भी नाटकीयता की परख है। शेक्सपियर के ऐतिहासिक नाटकों में प्रधान चरित्र क्यों सफल हुए व निष्फल हुए यह दिखाया गया है किंतु हिंदी तथा बंगला ऐतिहासिक नाटकों में केवल प्रधान चरित्र ही नहीं **जाति के चरित्र का भी चित्रण हुआ। राजपूत जाति** की संकीर्ण सामाजिक मनोवृत्ति तथा अंग्रेजों के आगमन

काल में उमीचंद, जगत सेठ जैसे व्यक्तियों की विश्वास-घातकता आदि भी ऐतिहासिक चरित्रों की रूप-रेखाएँ हैं। प्रधान चरित्रों का देश के मंगल के लिए आत्म-बलिदान भी ऐतिहासिक चरित्र-चित्रण की विशेषता रही।

ऐतिहासिक नाटकों के अंतर्गत कई उत्कृष्ट कोटि के **नारी-चरित्रों** की सृष्टि हुई उ० देवसेना, भारमली, हेलेन, कार्नेलिया, रजिया, चांदबीबी, जहांनारा, उदीपुरी, ताराबाई, दुर्गावती, ध्रुवस्वामिनी, मानसी, पन्ना, पद्मिनी, जीजाबाई, झांसी की रानी, लुत्फ उन्नीसा इत्यादि। इनमें कई ऐतिहासिक हैं तथा कई काल्पनिक। ऐतिहासिक नाटक राजनीति से संबंधित होने के कारण कई षड़यंत्र-कारिणी नारियों की भी सृष्टि हुई जैसे अनंतदेवी, छलना, घसेटी बेगम, नूरजहां इत्यादि। इनके सिवा सात्विक प्रवृत्ति की कई देवी सदृश्य नारियां हैं एवं कामना की वन्हि से प्रज्वलित कई गुण-दोष समन्वित नारियां भी हैं। इस प्रकार हिंदी तथा बंग्ला के ऐतिहासिक नाटकों ने कई अविस्मरणीय नारी-चरित्रों की सृष्टि की है।

ऐतिहासिक वातावरण

ऐतिहासिक नाटकों की सफलता ऐतिहासिक-वातावरण पर निर्भर करती है। **नाटककार घटनाओं तथा पात्रों का चित्रण यह ध्यान रखते हुए करता है कि वह ऐतिहासिक काल मूर्त तथा सजीव हो उठे।** केवल पात्रों में प्राण फूंकने से यह सम्भव नहीं होता किंतु पात्रों के कार्य, चिन्तन, भावधारा, मुद्रा, वेश-भूषा सभी उसके युग के अनुकूल होने चाहिए। कई आलोचकों का कहना है कि रोमन नाटककारों के ग्रीक पात्र भी रोमन प्रतीत होते हैं एवं शेक्सपियर के रोमन पात्र अंग्रेज प्रतीत होते हैं। इसी तरह **द्विजेन्द्रलाल के अधिकांश ऐतिहासिक पात्र भाव-प्रवण बंगाली प्रतीत होते हैं** जैसे सेल्यूकस, चाणक्य, शाहजहां, जहांगीर आदि की भावुकता स्वाभाविक नहीं प्रतीत होती। कभी-कभी नाटककार सूक्ष्म अंशों में निर्देशों के द्वारा भी ऐतिहासिक वातावरण का निर्माण कर सकता है जैसे सेठ गोविन्ददास के नाटक हर्ष, शशिगुप्त आदि में जो सूक्ष्म अंश हैं वे दीर्घ है एवं उस युग के चित्र खींचने के प्रयास स्वरूप लिखे गये है। द्विजेन्द्रलाल तथा प्रसाद की गरिमामयी भाषा सांस्कृतिक युग में हृदय को ले जाने में समर्थ है। हिंदी तथा बंगला के ऐतिहासिक नाटकों में द्विजेन्द्रलाल के नाटकीय चरित्रों की भव्यता, प्रसाद के सांस्कृतिक चित्रण एवं वृन्दावनलाल वर्मा के ऐतिहासिक घटनाओं के चित्रण ऐतिहासिक वातावरण की सृष्टि करते हैं।

शैली

ऐतिहासिक नाटकों की शैली के दो प्रमुख अंग है — रचना-शैली एवं भाषा-शैली। ऐतिहासिक नाटकों की शैली विशिष्टतापूर्ण होती है। **रचना-शैली** के अंतर्गत नाटककार का प्रधान लक्ष्य यह होता है कि इतिहास को नाटकीय घटना का स्वरूप

कैसे प्रदान करे। ऐतिहासिक घटनाओं को जोड़ देने से ही नाटक की रचना नहीं हो जाती, घटनाओं के उतार-चढ़ाव का चरित्रों से सामंजस्य रखते हुए इस तरह चित्रण करना पड़ता है कि वे नाटकीय प्रतीत हों। इसमें नाटककार बाह्य-द्वन्द्वों की कार्य-कारण परम्परा को श्रृंखलित करने का प्रयास करता है। **हरिकृष्ण प्रेमी के नाटक कार्य-व्यापार प्रधान होने के कारण उन्होंने रचना-शैली की निपुणता अधिक प्रदर्शित की है। प्रसाद ऐतिहासिक तथ्यों में उलझ जाते हैं एवं द्विजेन्द्रलाल भावना प्रदर्शन मे**। क्षीरोद प्रसाद के ऐतिहासिक नाटक भी स्वच्छन्दतावादी शैली के प्रभाव में ऐतिहासिक नाटकों के उपयुक्त कथावस्तु की श्रृंखला खो बैठते हैं। सेठ गोविंददास की रचना-शैली सुलझी हुई होती है किन्तु नाटकीय नहीं हो पाती। ऐतिहासिक नाटकों की भाषा-शैली अत्यन्त गरिमामयी, पात्रों की संस्कृति के अनुकूल होनी चाहिए तथा **संलाप नाटकीय** होने चाहिए। इसका तात्पर्य यह है कि गुप्त काल के पात्र अत्यन्त परिमार्जित भाषा का प्रयोग करें, मुसलमान पात्र अरबी, फारसी तथा उर्दू मिश्रित भाषा का प्रयोग करें, यूरोपियन पात्र अंग्रेजी शब्दों का बीच बीच में प्रयोग करें एवं संलाप कोरे संवाद न होकर पात्रो के अन्तर्द्वन्द को व्यक्त करें व नाटकीय-वक्रता की सृष्टि करें। इस दृष्टिकोण से **प्रसाद** की भाषा शैली युग के उपयुक्त गरिमामयी तथा **दार्शनिकता एवं काव्यात्मकता** समन्वित है। **द्विजेन्द्रलाल की भाषा राष्ट्र-जननी के बोधन के उपयुक्त शुचि एवं दीप्त** है। **पात्रानुकूल एवं रंगमंच के अनुकूल हरिकृष्ण प्रेमी की भाषा** आदर्श नाटकीय भाषा कही जासकती है। महेद्र गुप्त के अंग्रेज पात्रो की भाषा उनके स्वभाव के अनुकूल है। "मधुसुदन" नाटक में माइकेल मधुसूदन का बीच बीच में अंग्रेजी साहित्य से उदाहरण देना अत्यन्त स्वाभाविक प्रतीत होता है। भारतेन्दु की भाषा भी भारतेन्दु-शैली के अनुकूल है। ऐतिहासिक नाटकों में पात्रों का अन्तर्द्वन्द्व पर प्रकाश डालने के लिए स्वगत कथनों का प्रयोग उपयुक्त प्रतीत होता है जैसा कि द्विजेन्द्रलाल तथा प्रसाद के नाटकों में प्रयुक्त हुआ है। **मानसिक उलझन तथा अशान्ति व्यक्त** करने के लिए क्षीरोदप्रसाद ने **"आलमगीर"** नाटक में आलमगीर द्वारा बहुत ही स्वाभाविक भाषा का प्रयोग कराया है। हिन्दी तथा बंगला के अधिकांश ऐतिहासिक नाटकों की भाषा अत्यन्त अलंकृत है तथा संलाप दीर्घ है। **गीतों** का भी प्रचुर प्रयोग हुआ है।

उद्देश्य

संस्कृत नाटकों का रस ही लक्ष्य होता है। संस्कृत के ऐतिहासिक नाटकों में **वीर तथा श्रृंगार रस की प्रधानता** अधिक दिखाई देती है। हिन्दी तथा बंगला के ऐतिहासिक नाटकों में भी वीर रस के साथ श्रृंगार का सुन्दर सामंजस्य उपस्थित किया है। कहीं-कहीं शान्त रस की भी अवतारणा हुई है जिसके कारण **प्रसाद के नाटक प्रसादान्त** बन गये हैं। फिर भी अधिकांश हिन्दी तथा बंगला के ऐतिहासिक नाटक सोद्देश्य रचित हुए हैं। **द्विजेन्द्रलाल के प्रायः सभी ऐतिहासिक नाटक राष्ट्र**

प्रेम के उद्बोधन के लिए रचित हुए हैं। "शाहजहां" में भी राजस्थान के चारण चारणिय के गीत राष्ट्रीय भावों के उद्बोधक हैं। वर्तमान राजनैतिक, साम्प्रदायिक तथा सामा जिक समस्याओं को सुलझाने के लिए प्रसाद ने ऐतिहासिक नाटकों की रचना की जिनं राजनीति और धर्म, समाज तथा दर्शन एक साथ गुथे हुए पाये जाते हैं। **प्रेमी नाटकों का प्रधान** उद्देश्य हिंदू-मुस्लिम ऐक्य है। इसी कारण शिवाजी जैसे पात्र भं मुस्लिम विद्वेषी के रूप में चित्रित नहीं हुए हैं। क्षीरोदप्रसाद के "आलमगीर" का भं यही उद्देश्य है। वृन्दावनलाल वर्मा के नाटकों में भारत के उस युग की संस्कृति प्रति बिम्बित हुई जब जावा, सुमात्रा आदि द्वीप-पुंजों में भारतीय संस्कृति फैल गई थी मन्मथराय, महेन्द्र गुप्त, अश्क तथा उदयशंकर भट्ट के नाटकों में भी राष्ट्रवाद व देशप्रेम की भावनाएं प्रमुख हैं। **गिरीशचन्द्र घोष रचित 'अशोक' में इतिहास का शुद्ध रूप** व्यक्त हुआ है। **लक्ष्मीनारायण मिश्र सांस्कृतिक लक्ष्य** लेकर ऐतिहासिक नाटको की रचना कर रहे हैं।

इस तरह बीसवीं सदी के पूर्वार्द्ध में ऐतिहासिक नाटकों का उत्कर्ष हुआ एवं हिंदी तथा बंगला में कई उच्च कोटि के नाटकों की रचना हुई। **इन ऐतिहासिक नाटकों का दृष्टिकोण आदर्शवादी तथा शैली रोमान्स-धर्मी रही।**

निष्कर्ष

बीसवीं सदी के प्रारम्भिक-काल में हिंदी तथा बंगला नाट्य-साहित्य में सबसे अधिक रचना ऐतिहासिक नाटकों की हुई। भारत की पराधीनता एवं जन-गण का जागरण इसके कारण थे। समस्त भारत की राजनैतिक परिस्थिति एक ही थी एवं ऐतिहासिक पृष्ठभूमि भी एक थो। अतः अगर "**अशोक**" नामक नाटक की रचना बंगला में गिरीशचंद्र घोष द्वारा हुई तो हिंदी में चंद्रगुप्त विद्यालंकार, चंद्रराज भंडारी द्वारा भी हुई। आधुनिक विचारों से प्रभावित बंगला में मन्मथराय ने भी "अशोक" लिखा एवं हिंदी में लक्ष्मीनारायण मिश्र ने भी "अशोक" लिखा। युग युग तक भारत एक साम्राज्य के अंतर्गत रहा, पल्लव काल से उत्तर भारत एवं दक्षिण भारत दोनों मिलकर भारतवर्ष कहलाया। **ब्रिटिशों की सुदृढ़ शासन-प्रणाली तथा अत्याचारों ने समस्त आर्य भाषाओं के साहित्य में राष्ट्रीय भावों को उद्दीप्त किया।**

ऐतिहासिक नाटकों के क्षेत्र में हिंदी तथा बंगला में द्विजेन्द्रलाल के नाटकों की सबसे अधिक धूम रही। **बंगला रंगमंचों पर चन्द्रगुप्त, दुर्गादास, मेवाड़ पतन अत्यंत सफल हुए तथा अनेक हिंदी अनुवादों** के अभिनय का हिंदी जगत ने सादर स्वागत किया। जब तक हिंदी में जयशंकरप्रसाद व हरिकृष्ण प्रेमी जैसे उत्कृष्ट ऐतिहासिक नाटककारों का आविर्भाव नहीं हुआ, तब तक द्विजेन्द्रलाल की रचनाओं द्वारा हिंदी

भाषी जनता राष्ट्रीय प्रेरणा प्राप्त करती रही। हिंदी ने द्विजेन्द्रलाल के नाटकों को एवं उनकी शैली को बहुत जल्द अपना लिया। क्योंकि उन नाटकों के मूल-भाव के साथ उनका तादात्म्य हो गया। जयशंकर प्रसाद जैसे प्रतिभाशाली लेखक ने अपनी मौलिकता तथा **समन्वयात्मक प्रवृत्ति** का भी परिचय दिया। प्रसाद तथा सेठ गोविंद-दास ने ऐतिहासिक नाटकों के देश-काल चित्रण में संस्कृति-प्रेम का सुन्दर परिचय दिया। हरिकृष्ण प्रेमी की शैली पर द्विजेन्द्रलाल का अत्यधिक प्रभाव होते हुए भी उनके राजस्थान के ऐतिहासिक चित्रण में द्विजेन्द्रलाल के भावोच्छ्वासी उद्‌गारों के स्थान पर यथातथ्य चित्रण अधिक है। उन्नीसवीं सदी के साहित्यिक, समाज-सुधारक, महान् व्यक्तियों की जीवनी पर आधारित, ऐतिहासिक यथातथ्यता का निर्वाह करते हुए, बंगला तथा हिंदी में **जीवनी-नाटक** नामक एक नूतन ऐतिहासिक नाटक की शाखा का विकास हुआ।

ऐतिहासिक नाटकों की इन सामान्य प्रवृत्तियों पर ध्यान देने से हिंदी तथा बंगला में कुछ साम्य तथा वैषम्य दृष्टिगोचर होते हैं।

हिन्दी तथा बंगला के ऐतिहासिक नाटकों में साम्य

१— **चन्द्रगुप्त मौर्य** तथा **अशोक** जैसे चक्रवर्ती सम्राटों पर दोनों साहित्य में नाटक रचना हुई क्योंकि यहीं से ऐतिहासिक काल का प्रारम्भ होता है।

२ – **राजपूत तथा मुगलों के संघर्ष का चित्रण** इनके नाटकों में सबसे अधिक हुआ, अतः यह कहा जा सकता है कि हिंदू जातीयता वाद की भित्ति पर नवीन राष्ट्र-वाद की स्थापना हुई। द्विजेन्द्रलाल तथा प्रेमी के नाटकों में दिलेरखां तथा हुमायूँ जैसे उदार मुसलमानों का परिचय हमें मिलता है, किंतु वे हमारा चरित्र मर्म उस तरह स्पर्श नहीं कर पाते हैं जिस तरह प्रतापसिंह, दुर्गादास, गोविन्दसिंह, शिवाजी आदि हमारा हृदय आन्दोलित करते है।

३— दोनों साहित्य के ऐतिहासिक नाटक अधिक **रोमांस-धर्मी** हैं जिसका परिचय हमें 'दुर्गादास' में दुर्गादास के प्रति गुलनार का आकर्षण एव 'शिवा-साधना' में शिवाजी के प्रति जेबुन्निसा का आकर्षण तथा उनके चित्रणों मे मिलता है, जो अनैतिहासिक है।

४— राष्ट्रीय भावों के उच्छ्वास के साथ **वीर तथा त्यागमयी नारियों** का चित्रण इन नाटकों की विशेषता है। महामाया, कल्याणी, सत्यवती, मानसी, देवसेना, भारमली, हेलेन (कार्नेलिया), रानी दुर्गावती, झांसी की रानी आदि **कल्पित तथा ऐतिहासिक नारी** चरित्र इसके उदाहरण हैं।

५— इस युग के ऐतिहासिक नाटकों में **उद्‌बोधनकारी गीतों** की सृष्टि हुई । हिंदी तथा बंगला नाटकों के कुछ उत्कृष्ट गीत ऐतिहासिक नाटकों की सम्पत्ति है ।

६— इस युग के ऐतिहासिक नाटकों में **परवर्ती समस्या-नाटकों के बीज** भी हमें मिलते हैं । उदाहरणार्थ '**नटीर पूजा**' में गृह-धर्म का विरोध करने वाली नारी समाज के आध्यात्मिक तथा सामाजिक चेतना का उदय तथा '**ध्रुवस्वामिनी**' में नपुंसक पति के विरुद्ध स्वाभिमान का उदय होना दिखाया गया है । इन ऐतिहासिक समस्या-नाटकों की शैली यथार्थवादी नहीं हो पाई किंतु इतिहास में समस्याओं एवं उनके समाधानों की खोज नवीन प्रवृत्ति के परिचायक हैं ।

हिन्दी तथा बंगला के ऐतिहासिक नाटकों में वैषम्य

१— राष्ट्रवादी ऐतिहासिक नाटकों की संख्या बंगला में अधिक है तथा शुद्ध ऐतिहासिक नाटकों की संख्या हिंदी में अधिक है क्योंकि **स्वदेशी आन्दोलन की उद्दीपना बंगला में अधिक थी ।**

२— केवल सांस्कृतिक चित्रण को उद्देश्य मानकर ऐतिहासिक नाटकों की रचना बंगला की अपेक्षा हिंदी में अधिक हुई क्योंकि **बंगला के नाटककार सामाजिक अर्थ-वैषम्य के चित्रण में व्यस्त हो गये** एवं स्वाधीनता प्राप्ति के पूर्व ही से 'नवान्न' जैसे नाटकों की सृष्टि करने लगे ।

३ —**ऐतिहासिक-रोमांटिक नाटकों की सृष्टि बंगला में अधिक हुई** जैसे **चांदबीबी, खांजहां** आदि । बंगला नाटककारों की प्रवृत्ति आरम्भ ही से स्वच्छन्दतावादी रही ।

४— '**नूरजहां**,' '**शाहजहां**' तथा '**आलमगीर**' जैसे ऐतिहासिक नाटक जिनमें पात्रों का **मनोविश्लेषण** अधिक हुआ है, हिंदी में रचित नही हुए । समस्या-नाटकों में आजकल जिस तरह मनस्तत्व-विश्लेषण की रीति रहती है, उसके वे प्रारम्भिक रूप हैं । इसका यही कारण है कि द्विजेन्द्रलाल ने नाटकों में अंतर्द्वन्द्व के चित्रण को अधिक महत्व दिया ।

५— **नारी-पूजा के भाव हिन्दी में बंगला साहित्य से प्राप्त हुआ** किंतु ऐतिहासिक नाटकों में हिंदी में जिन कल्पित तथा ऐतिहासिक नारियों का चित्रण हुआ उनकी अपनी अलग विशिष्टता है ।

६— सन् १९५० तक बंगला में दो तीन **जीवनी-नाटकों** की रचना हुई जब कि हिंदी

में उसका अभाव रहा क्योंकि बंगला में इसके पूर्व कुछ **उत्कृष्ट जीवन-चरित्रों** की भी रचना हो चुकी थी।

इन विशिष्टताओं पर ध्यान देते हुए यह कहा जा सकता है कि जैसे उन्नीसवीं सदी के शेषार्द्ध में पौराणिक नाटकों के उत्कर्ष में भारतीय संस्कृति की एकता घोषित हुई, उसी तरह बीसवीं सदी के पूर्वार्द्ध में ऐतिहासिक नाटकों के उत्कर्ष में **भारत की राष्ट्रीय-एकता घोषित** हुई। ऐतिहासिक नाटक इस युग के श्रेष्ठ सम्पद हैं।

अध्याय ५

सामाजिक नाटक

सामाजिक नाटकों के स्वरूप की व्याख्या

जिन नाटकों में अलौकिक, ऐतिहासिक, सामयिक व भविष्य की घटनाओं व व्यक्ति-मन का इस रूप से चित्रण होता है कि वे **सामाजिक पहलू** पर प्रकाश डाल सकें, सामाजिक नाटक कहलाते हैं। इस दृष्टि से व्यापक रूप से कई पौराणिक व ऐतिहासिक नाटक भी सामाजिक नाटक कहला सकते हैं। यदि प्रतीकात्मक रूप में भी किसी सामाजिक-तथ्य व मानव-मन की गहराइयों का परिचय मिलता है व भविष्य की समाज-कल्पना के चित्र मिलते हैं तो वे भी सामाजिक नाटक कहला सकते हैं। अर्थात् नाटक के देश, काल की परिस्थिति कुछ भी हो, अगर उसमें सामाजिक व्यवस्था तथा व्यक्ति-मन की आकांक्षाओं के संघर्ष का चित्रण प्रमुख हो तो वह सामाजिक नाटक की सीमा के अन्तर्गत आ जाता है। संकीर्ण दृष्टि से देखने पर जिन नाटकों की **घटनाएँ तथा चरित्र सम-सामयिक तथा स्थानीय** होते हैं वे ही सामाजिक नाटक कहलाते हैं। इस दृष्टि से पाश्चात्य कामदी तथा सभी देशों के लोक-नाटकों में सामाजिक नाटकों के तत्व अधिक पाये जाते हैं। प्रहसनों में सामयिक तथा स्थानीय वर्ग-चरित्रों की असंगति का चित्रण होता है जिससे हास्य रस का उद्रेक होता है। इनमें समाज में प्रचलित कुरीतियों पर व्यंग्यात्मक प्रहार किये जाते हैं। वर्तमान नाट्य-साहित्य में समस्याओं की प्रमुखता तथा तंत्र की विशिष्टता की दृष्टि से जिन नाटकों में किसी राजनैतिक, सामाजिक, आर्थिक व धार्मिक **समस्या** का इस रूप में चित्रण होता है कि उनमें घटना व चरित्र का स्थूल-चित्रण गौण तथा आलोचना एवं सूक्ष्म **वैज्ञानिक मनोविश्लेषण** का स्थान प्रमुख हो, वे सामाजिक समस्या-मूलक नाटक कहलाते हैं। ऐसे नाटकों में कभी-कभी कलाकार का व्यक्तित्व दब जाता है एवं वक्ता, संवाददाता तथा दार्शनिक का व्यक्तित्व उभर आता है।

व्यापक, संकीर्ण तथा तंत्र संबंधी विशिष्टता की दृष्टि से देखने पर सामाजिक नाटकों की अनेक-रूपता परिलक्षित होती है किंतु इनकी एक-रूपता इस बात में है कि इन नाटकों में नाटककार का विप्लवी-स्वरूप प्रकट हो उठता है। यद्यपि श्रेष्ठ नाट्य-कला वही है जिसमें नाटककार का व्यक्तित्व प्रच्छन्न रहता है एवं घटना तथा पात्र कार्य-कारण परम्परा के अनुसार अग्रसर होते हैं। फिर भी सामाजिक नाटकों का लेखक पात्रों के माध्यम से परोक्ष रूप से अपने विचारों को व्यक्त किये बिना नहीं रह सकता। असंगति की मात्रा बढ़ते ही नाटक **कामदी** का स्वरूप-ग्रहण करता है एवं असंगति

की अति से हास्य के अश्रु में परिवर्तित होने पर नाटक **त्रासदी** का स्वरूप ग्रहण करता है। मनुष्य जीवन के ये ही दो पक्ष हैं हंसी एवं रुदन। सामाजिक नाटककार साधारण मनुष्य की इन संवेदनाओं को सामाजिक पृष्ठभूमि पर अपने नाट्य-कौशल से असाधारण बना देता है चाहे वह महाभारत की अम्बा हो, इतिहास की ध्रुवदेवी हो या यूरोपीय समाज की नोरा हो।

समाज के दो पहलू हैं—**समाज एवं व्यक्ति**। सामाजिक नाटक इन दोनों पहलुओं को अपने विचारों से प्रकाशित करना चाहता है अतएव वह समाज-विज्ञान एवं मानव-मनोविज्ञान का ज्ञाता होता है। समाज-शास्त्र के अनेक तत्व कौटिल्य के 'अर्थ-शास्त्र' तथा अरस्तू के 'पालिटिक्स' में प्राप्त हो सकते हैं किंतु उनका है शास्त्र के रूप में वैज्ञानिक पद्धति से विवेचन आधुनिक युग की देन है। **समाज-शास्त्र के मूल में राजनैतिक-दर्शन, इतिहास-दर्शन, जीव-विज्ञान के विकास** संबंधी सिद्धांत एवं **सामाजिक तथा राजनैतिक सुधार की प्रेरणाएँ हैं**। एम० **गिन्सबर्ग** "रीजन एण्ड अनरीजन इन सोसाइटी" में लिखते हैं—

"ब्राडली इट में बी सेड देट सोशियोलाजी हैज हेड ए फोरफोल्ड ओरिजिन इन पौलिटिकल फिलासाफी, दी फिलासाफी आफ हिस्ट्री, बायोलाजिकल थियोरीज आफ इव्होल्यूशन, एण्ड दी मूवमेंट्स फार सोशियल एण्ड पोलिटिकल रिफार्म विच फाउन्ड इट नेसेसरी टू अंडरटेक सरवेज आफ सोशियल कंडीशन्स'। इन तत्वों के द्वारा सामाजिक भित्ति का निर्माण होता है एवं नाटक में लेखक अपनी कलात्मक प्रतिभा द्वारा इनके सहारे सामाजिक-पृष्ठभूमि का चित्रण करता है।

सामाजिक-पृष्ठभूमि के अन्तर्गत सांस्कृतिक, राजनैतिक, आर्थिक, धार्मिक तथा साम्प्रदायिक बातें प्रचलित समाज-व्यवस्था के साथ आ जाती हैं। नाटक व्यक्ति-चरित्रों को ही लेकर निर्मित होता है, अतः सामाजिक नाटकों में सामाजिक तत्वों तथा सामुहिक संवेदनाओं के साथ व्यक्ति-मानस की जटिलताओं का भी दिग्दर्शन होता है। ये व्यक्ति-चरित्र कभी स्वतंत्र व्यक्तित्व के रूप में तथा कभी किसी वर्ग व सिद्धांत के प्रतिनिधि के रूप में नाटक में चित्रित होते हैं। समाज इनके जीवन में कभी अनुकूलता की सृष्टि करता है, कभी प्रतिकूलता की। बीसवी सदी में जब कि भगवान के प्रति आस्था उखड़ती जा रही है, मनुष्य अपने को विभिन्न समस्याओं से घिरा हुआ देख रहा है। सामाजिक नाटकों के प्रधान चरित्र वे ही बन रहे हैं जिनमें समाज के प्रति विद्रोह की अग्नि भड़क उठी है। इसका यह अर्थ नहीं है कि वे समाज का ध्वंस चाहते हैं। वे समाज का नही, प्रचलित समाज-व्यवस्था का अन्त चाहते हैं। "मैन एण्ड सुपर मैंन" की भूमिका में 'दी रिवोल्यूशनिस्ट्स हैंड बुक' में **जार्ज बर्नार्ड शॉ** लिखते हैं—"ए रिवोल्यूशनिस्ट इज वन हू डिजायरस टू डिसकार्ड दी एक्सिसटिंग सोशियल आर्डर एण्ड ट्राइ एनदर।"—इस दृष्टि से राजा राममोहन, विवेकानन्द, रवीन्द्रनाथ, रूसो, जोला, मार्क्स, लेनिन, फ्रायड, इब्सन, चेखाव, शा आदि सभी विप्लवी

हैं जो समाज-व्यवस्था की रूढ़ियों को तोड़कर उसे प्रगति की ओर ले जाना चाहते हैं। सामाजिक नाटकों में इन सभी मनीषियों की विचारधाराओं का संगम दिखाई देता है।

सामाजिक नाटकों का रूप विधान

सामाजिक समस्या-मूलक नाटकों की जो सबसे प्रबल वेगवती धारा है उसकी रचना-शैली अन्य नाटकों से विशिष्टतापूर्ण है। इन नाटकों की शैली यथार्थवादी है। इनमें साधारण तथा निम्न श्रेणी के लोगों के जीवन की वास्तविक घटनाओं का चित्रण होता है एवं वे घटनाएँ लेखक के सिद्धांत के प्रतिपादन के लिए आलोचना का द्वार खोल देती हैं। इन नाटकों का प्रारम्भ व परिस्थिति का सृजन **अतीत-सम्पर्कित विधि (Retrospective Method)** से होता है।

साहित्य समाज-जीवन का दर्पण है एवं नाटक में उस समाज-जीवन का यथा-तथ्य, सजीव तथा प्रत्यक्ष चित्रण होता है। नाटक में लेखक व्यक्तिगत भाव व विचारों को केवल पात्रों के माध्यम से व्यक्त कर सकता है जो कि समाज की इकाई के रूप में दर्शकों के सामने आते हैं। पौराणिक नाटकों में धर्म का गुण कीर्तन, भक्ति का प्रवाह, अलौकिक घटनाएँ आदि क्यों न हों व्यक्ति ही आधार होते हैं। ऐतिहासिक नाटकों में देशभक्ति तथा भावादर्श का कैसा भी चित्रण हो, व्यक्ति ही उन चित्रों में रंग भरता है। उसी तरह सामाजिक नाटकों में परिवार, समाज व समस्याओं के कितने ही जटिल द्वन्द्व क्यों न हों, व्यक्ति ही उनका सृष्टा है। व्यष्टि के समष्टिगत रूप का ही नाम समाज है, अतः व्यक्ति एवं समाज का अभिन्न सम्पर्क है। **साहित्य का 'व्यक्ति' यही सामाजिक व्यक्ति' है।** व्यक्ति कभी-कभी समाज को अपने ही **अनुकूल** पाता है। इसका चित्रण जिन सामाजिक नाटकों में होता है उनमें प्रथम थोड़े बहुत द्वन्द्वों की सृष्टि की जाती है एवं निर्वहण में जटिलताओं के निराकरण द्वारा सुखान्त परिणति दिखाई जाती है। व्यक्ति जब समाज को अपने **प्रतिकूल** पाता है तब नाटकों में व्यक्ति एव समाज के बीच ऐसे द्वन्द्वों की सृष्टि की जाती हैं जो उत्तरोत्तर जटिल होकर व्यक्ति को अपने निर्मम नागपाश में फंसाकर उसे दुःखान्त परिणति की ओर ले जाते हैं। साधारण अर्थ में सामाजिक नाटकों के ये ही दो कामद और त्रासद रूप होते हैं। गूढ़ अर्थ में इनका स्वरूप भी जटिल हो जाता है। इसके अन्तर्गत व्यक्ति का अस्तित्व तीव्र अनुमति, जाग्रत आत्मबोध, दुर्दमनीय बाह्य तथा मानसिक संघर्षों से समन्वित होता है एवं समाज का अस्तित्व समाज-विज्ञान, भौतिक-विज्ञान, नीति, दर्शन, जीव-विज्ञान, राजनीति तथा अर्थनीति पर आधारित होता है। जब व्यक्ति एव समाज के बाह्य संघर्षों पर प्रकाश डाला जाता है तब **सामाजिक, राजनैतिक व अर्थनैतिक समस्याओं** का स्वरूप प्रकट होता है एवं जब व्यक्ति की प्रवृत्ति के साथ सामाजिक-संस्कार तथा नीतिबोध के आभ्यंतरीन संघर्ष पर प्रकाश डाला जाता है तब यौन-समस्या व अन्य **मनोवैज्ञानिक**

समस्याओं का स्वरूप प्रकट होता है। कला के आदर्श के संबंध में शिल्पी-मन में सौंदर्य परक-समस्याओं का भी उदय होता है।

नाटक में **यथार्थवादी जीवन-दृष्टि** इन्हीं सामाजिक-नाटकों में पाई जाती है। पौराणिक तथा ऐतिहासिक कथावस्तुओं में भी समाज चित्रण होता है। किंतु उनका दृष्टिकोण आदर्शवादी एवं रोमांसधर्मी होता है। सामाजिक कथावस्तुओं में देवी देवता व देवोपम चरित्र नहीं व शक्तिशाली, विजयी सम्राटों का चरित्र नहीं, मनुष्यों का चरित्र एवं उनके देनन्दिन संग्राम-रत जीवन की कहानी रहती है। युगचेतना का भी सबसे अधिक प्रभाव सामाजिक-नाटकों में पाया जाता है। आधुनिक भारतीय नाट्य साहित्य में युग-चेतना का प्रारम्भिक रूप राष्ट्रवादी-ऐतिहासिक नाटकों में व्यक्त हुआ, तदनन्तर उसका प्रबल रूप सामाजिक समस्या-मूलक नाटकों में व्यक्त हुआ। बीसवीं सदी के हिंदी तथा बंगला नाटकों में ही **व्यक्ति तथा समाज के इस विरोध का स्वरूप** निर्मित हुआ यह बात नहीं है। हिंदी तथा बंगला नाटकों का प्रारम्भ ही सांस्कृतिक तथा सामाजिक नव-जागरण के रूप में हुआ। समाज-विप्लवी राजा राममोहन राय, दयानन्द सरस्वती आदि नवीन-समाज के दीपस्तम्भ थे। तत्कालीन समाज से उनका विरोध था। उनकी प्रेरणाओं से जिन साहित्यिकों ने नाटक रचना की वे नाटक संस्कार-वादी थे, सामाजिक कुरीतियों पर व्यंग्यात्मक प्रहार कर, समाज के तथाकथित नेताओं के पाखंड का चित्र खींचकर उन्होंने समाज का संस्कार करना चाहा। सुधार-वादी साहित्य का काल था। आधुनिक युग में अनेक प्राचीन कुप्रथाओं का निराकरण हो गया है एवं नवीन विकट परिस्थितियों का उद्भव हुआ है। **वर्तमान सामाजिक नाटकों के आदर्श इब्सन तथा शा, मार्क्स** तथा फ्रायड हैं। स्त्री स्वाधीनता के कारण उत्पन्न यौन-समस्या तथा आर्थिक वैषम्य से उत्पन्न वर्ग-समस्या आज के समाज की विनाशकारी समस्याएँ हैं। अन्तश्चेतनावादी साहित्य एवं मानवतावादी साहित्य दोनों का लक्ष्य है कि आज की सबसे अधिक **महत्वपूर्ण सत्ता 'मानव'** आसन्न विनाश से अपनी रक्षा करे। समस्या-मूलक नाटक इसीलिए **बुद्धिवादी** हैं एवं सिद्धांतों के **प्रतिपादन** के अनुसार उनका रूप-विधान भी भिन्न हो गया है। समस्या का **उद्घाटन**, समस्या-मूलक **परिस्थिति** एवं उस पर **तार्किक आलोचना** ये ही आज के सामाजिक नाटकों के अंग हैं। भविष्य की अनिश्चयता एवं समाधान का अभाव इन नाटकों के विशिष्टस्वरूप हैं।

संस्कृत, प्राकृत तथा अपभ्रंश के नाटकों में सामाजिकता के तत्व

संस्कृत नाटकों की कथावस्तु प्रख्यात हुआ करती थी अतः उनमें सामाजिक वस्तु का अभाव तथा इतिहास-पुराण के आख्यानों का प्राधान्य है। **प्रकरण** में कल्पित कथावस्तु का प्रयोग होता था अतः उनमें सामाजिक तत्वों का समावेश अधिक हो सका है। ऐतिहासिक तथा पौराणिक नाटकों के सूक्ष्म-विश्लेषण करने पर उनमें निहित सामाजिक तत्वों का आभास मिलता है। कालिदास रचित **'अभिज्ञान शाकुन्तलम्' में**

तत्कालीन समाज के यथेष्ट चित्र हैं जो कि रचयिता के काल से अधिक संबंध रखते हैं। उदाहरणार्थ दुष्यन्त के चरित्र में तात्कालिक राजाओं की लम्पटता तथा कोतवालों द्वारा मछुए पर किये गये पीड़न में शासन-व्यवस्था पर प्रकाश पड़ता है। यद्यपि कालिदास ने अत्यंत कुशलता से सहनायक के दुर्गुणों को छिपाना चाहा फिर भी शकुन्तला के प्रत्याख्यान में समाज की एक चिरन्तन, मार्मिक समस्या को उन्होंने सबसे अधिक महत्व दिया है। विशाखदत्त रचित **'मुद्रा-राक्षस'** नाटक से ऐतिहासिक होते हुए भी तत्कालीन **राजनैतिक परिस्थिति** का हमें आभास मिलता है। शूद्रक रचित **'मृच्छकटिक'** नामक प्रकरण में उज्जयिनी के समाज के विविध चित्र मिलते हैं। नायक चारुदत्त की उदारता, गणिका वसन्तसेना का निश्छल प्रेम, राजा के संबंधियों की शठता तथा समाज के निम्नतर व्यक्तियों का चरित्र-चित्रण 'मृच्छकटिक' में अत्यन्त सजीव हुआ है। संस्कृत के भाण तथा प्रहसनों में सामाजिक तत्व यथेष्ट हैं।

प्राकृत के नाटकों में सट्टक अधिक लोकप्रिय बने क्योंकि उनमें लोक-नाटक के तत्वों का लोक भाषा के साथ समावेश होता था। अतः नाट्य-कला की दृष्टि से अधिक उन्नत न होते हुए भी उनमें स्थानीय तथा कालगत विशेषताएं अधिक होती थीं। राजशेखर रचित **'कर्पूरमंजरी'** नामक सट्टक में एक तांत्रिक की योगसाधना द्वारा विषयासक्त राजा चन्द्रपाल कुन्तल देश की सुन्दरी राजकन्या कर्पूरमंजरी को प्राप्त करते हैं एवं षड़यंत्रों से विवश होकर रानी विवाह की अनुमति देती हैं। **सिद्धों के कुप्रभाव** तथा **जन-जीवन के अधःपतन** के संबंध में लेखक ने जो दृश्य उपस्थित किये हैं उनमें सामाजिक-तत्व विद्यमान हैं जिनसे प्रेरित होकर भारतेन्दु ने इस सट्टक का हिन्दी में अनुवाद किया।

अपभ्रंश नाटकों की प्रधान विशेषता थी चरित्रों का असंगति युक्त, हास्य-विनोद पूर्ण चित्रण जिसका कि उल्लेख डा० दशरथ ओझा ने 'हिन्दी नाटकः उद्भव और विकास' ग्रंथ में राजा भोज की कथा में किया है।[1] इसके सिवा अपभ्रंश साहित्य के 'रासक' नामक श्रृंगार प्रधान कथाओं में तथा **चरिउ नाटकों में** जिनमें तीर्थंकरों तथा दानी **श्रेष्ठियों की जीवन-गाथा** रहती थी, सामाजिक तत्वों का आभास मिलता है।

सामाजिक और सांस्कृतिक नाटकों में अन्तर

सामाजिक नाटकों में किसी भी देश के **समसामयिक समाज-जीवन की** झांकी मिलती हैं जिसके निर्माण करने वाले तत्व अस्थायी होते हैं किन्तु सांस्कृतिक नाटकों में

१—हिन्दी नाटक : उद्भव और विकास—लेखक डा० दशरथ ओझा।
पृष्ठ—६३, ६४ (तृतीय संस्करण, १९६१)।

किसी भी देश के **अतीत समाज-जीवन** की वह झांकी मिलती है जिसके निर्माण करने वाले तत्व काल की परीक्षा में उत्तीर्ण होकर उस देश की संस्कृति का रूप धारण कर लेते हैं। उदाहरणार्थ दीनबंधु रचित बंगला नाटक **'नील दर्पण'** सामाजिक नाटक है क्योंकि 'नील-दर्पण' में दीन कृषक समाज पर नील की खेती कराने वाले साहबों के जिस अत्याचार के चित्र हैं वे अस्थायी थे। वर्तमान काल में न तो वे अत्याचारी साहब हैं और न तत्कालीन कृषक समाज की कोई रीति-नीति ऐसी रह गई है जिससे संस्कृति का निर्माण हो। भारतेन्दु रचित 'नीलदेवी' हिन्दी का प्रथम सांस्कृतिक नाटक है क्योंकि लेखक ने ऐतिहासिककाल की एक घटना में उस सामाजिक-क्रांति का दिग्दर्शन कराया है जिसमें एक हिन्दू विधवा नर्तकी के रूप में शत्रु शिविर में पहुंच कर दुर्वृत्त शत्रु को हत्या करती है। यह घटना भारतीय संस्कृति के एक गौरवमय पथ का निर्देश करती है, जिसके अनुसार दुर्वृत्त के दमन हेतु भारतीय नारियां लज्जा तथा संकोच त्याग कर चंडी का रूप धारण करती हैं। समाज में यह परिस्थिति बारम्बार दिखाई देती है एवं स्त्रियों को अपने सम्मान की रक्षा के लिए रूढ़ियों का त्याग करना पड़ता है। इतिहास पुराण के आख्यानों में इस तरह के सांस्कृतिक तत्व भरे पड़े हैं जिन्होंने भारतीय संस्कृति की रूप-रेखा हमारे सामने रखी है। नाटककार इन रेखाओं में रंग भरकर ऐसे चित्र उपस्थित करता है जिससे ऐतिहासिक व प्रागैतिहासिक काल का समाज-जीवन प्राणवन्त हो उठता है। **अतीत के समाज के चित्र हमारे लिए उतने ही महत्व के हैं जितने वर्तमान समाज के चित्र हैं।** वर्तमान की समस्याओं को अतीत के समाज-जीवन में से खोज निकालकर हम समाधान भी प्राप्त कर सकते हैं जैसाकि प्रसाद ने **'ध्रुवस्वामिनी'** नाटक की रचना द्वारा नारी-जीवन की एक समस्या का समाधान सामने रखने का प्रयास किया है। इसी तरह कर्ण-चरित्र में कुमारी माता के गर्भ-जात संतान की समस्या है, सीता चरित्र में लोकापवाद से कलंकिता नारी की समस्या है, अहल्या-चरित्र में पर पुरुष-संसर्ग से कलुषिता नारी की समस्या है तथा अम्बा चरित्र में हरण की गई नारी की समस्या है। द्विजेन्द्रलाल ने **'सीता'** तथा **'पाषाणी'** में भारतीय समाज का चित्रण सांस्कृतिक दृष्टिकोण से किया है। प्रसाद के हिन्दी नाटकों में प्रागैतिहासिक काल से लेकर हर्ष वर्द्धन तक के समाज का सांस्कृतिक चित्रण हुआ है एवं द्विजेन्द्रलाल तथा हरिकृष्ण प्रेमी के नाटकों में मुस्लिम तथा राजपूत काल की संस्कृति सजीव हो उठी है।

हिन्दी तथा बंगला के सामाजिक नाटकों की पृष्ठभूमि

१९ वीं सदी के उत्तरार्द्ध में हिन्दी एवं बंगला नाटककारों का ध्यान समाज की ओर आकृष्ट हुआ था। किंतु वह धार्मिक नव जागरण का युग था। इस कारण पौराणिक तथा ऐतिहासिक आख्यानों को लेकर भारतीय संस्कृति का गौरवमय चित्रण नवीन आलोक में अधिक हुआ। परन्तु हम यह नहीं कह सकते कि मानव जीवन के दैनन्दिन सुख दुःख की ओर लेखकों का ध्यान नहीं गया अथवा समाज के निम्न स्तर के लोगों की करुणा-विवशता लेखकों के हृदय को स्पर्श न कर सकी थी। बंगाल के प्रसिद्ध नाटककार दीनबन्धु रचित **'नीलदर्पण'** में अत्याचारी, प्रतापशाली नीलकर साहबों द्वारा दलित

दरिद्र किसानों की जीवन-गाथ का जो चित्र अंकित किया गया है] वह यह सूचित करता है कि आज जो अभिजात एवं मध्यवर्ग के सिवा निम्न वर्ग का समाज अपनी अभिव्यक्ति के लिए जागरूक है। उसका बीजारोपण हमारे सांस्कृतिक नव-जागरण के साथ ही हुआ। माईकेल मधुसूदन दत्त के प्रहसन **'ऐकई की बले सभ्यता'** और **'बूढ़ो शालिकेर घाड़े रों'** में नवीन पंथी समाज एवं पुरातन पंथी समाज दोनों पर व्यग किया गया है। भारतेन्दु रचित **'प्रेमयोगिनी'** में समाज का यथार्थवादी चित्रण उत्कृष्ट हुआ हैं। हिन्दी साहित्य में भारतेन्दु एवं उनके समकालीन नाटककारों ने भी अनेकों प्रहसन लिखे जिनमें सामाजिक कुरीतियों का चित्रण करके समाज-संस्कार का प्रयत्न किया गया। किन्तु प्रहसन होने के कारण इनका विषय गुरुत्व-व्यंजक नहीं था एवं इनका प्रभाव भी क्षणस्थायी रहा। इस तरह हम देखते हैं कि हिंदी एवं बंगला नाट्य साहित्य के समाज संबंधी नाटकों के क्षेत्र में प्रारम्भिक प्रवृत्ति प्रहसन लिखने की थी।

बीसवीं सदी के पूर्व से ही समाज की दुर्दशा ने नाट्यकारों को अपनी ओर आकर्षित किया। बंगाल में राजा राममोहन राय तथा हिंदी भाषी प्रदेशों में स्वामी दयानन्द सरस्वती के समाज-सुधार के कारण हिंदी तथा बंगला के जो सामाजिक नाटक प्रारम्भिक काल में रचित हुए उनमें सुधारवादी दृष्टिकोण है, कलात्मकता का उनमें अभाव हैं।

रामायण तर्करत्न रचित **'कुलीन कुलसर्वस्व'** (सन् १८५४) नाटक में सामाजिक प्रथाओं की कुत्सित वास्तविकताओं का उद्घाटन हुआ है। लेखक ने निम्नस्तर के लोगों का अत्यंत सजीव चित्रण किया है। इस नाटक में संस्कृत एवं जात्रा शैली का मिश्रण हुआ है। संस्कृत की शैली के अनुसार नान्दी, प्रस्तावना, कवित्वपूर्ण प्रकृति चित्रण आदि हैं एवं जात्रा शैली के नाटकों के अनुसार निम्न कोटि के हास्य की सृष्टि हुई है। हिंदी में भारतेन्दु काल के लेखकों ने तत्कालीन समाज की समस्याओं पर अनेक नाटकों की रचना की एवं इस समस्या प्रधान धारा का प्रारम्भ भारतेन्दु के 'प्रेमजोगिनी' (सन् १८७५) नाटक से माना जा सकता है। तत्कालीन समाज की समस्याएं थीं—बाल विवाह, विधवा विवाह, पुरुषों की बहु-विवाह-प्रथा, अशिक्षा, कुसंस्कार, पाश्चात्य सभ्यता का अनुकरण, मद्यपान, वैश्यावृत्ति आदि। दीनबंधु मित्र रचित 'नीलदर्पण' में गण चेतना है, स्वदेश हितैषणा के अंकुर हैं किन्तु उसमें जीवन की किसी मौलिक-समस्या का उद्घाटन नहीं हुआ है। सामाजिक चित्रण की दृष्टि से उनके प्रहसन **'सधवार एकादशी'** एवं **'विये पागला बूड़ो'** अधिक सफल हैं। निम्नस्तर के लोगों के चरित्र-चित्रण में दीनबन्धु सिद्धहस्त हैं। इस युग में समाज संस्कार की प्रेरणा हिंदी तथा बंगला नाट्य-क्षेत्र में प्रबल थी। हिन्दी में देवकीनन्दन त्रिपाठी रचित **'बाल विवाह,'** काशीनाथ खत्री का **'विधवाविवाह'**, प्रताप नारायण मिश्र का **कलि कौतुक रूपक'**, अंबिका दत्त व्यास रचित **'गो संकट'**, राम गरीब चौबे रचित 'नागरी विलाप' आदि भारतेन्दु काल के लेखकों के नाटक समाज की समस्याओं पर आधारित हैं। इन नाटकों द्वारा किसी

विशिष्ट शैली का विकास नहीं हुआ। प्रहसन व एकांकी के रूप में ये नाटक लेखक के विचारों के ही पृष्ठपोषक है।

राष्ट्रीय-चेतना से अनुप्राणित द्विजेन्द्रलाल की सामाजिक चेतना भी अत्यन्त महत्वपूर्ण है। 'सीता' तथा 'पाषाणी' जैसे पौराणिक नाटकों ने उन्होंने सामाजिक समस्या को स्थान दिया। '**समाज-विभ्राट ओ कल्कि-अवतार**' प्रहसन ने नव्यहिन्दू, ब्राह्म, पंडित और विलायत से लौटे हुए सम्प्रदायों पर व्यंग्यात्मक-प्रहार किया। '**प्रायश्चित**' प्रहसन में विलायत से लौटे हुए लोगों की अर्थ लोलुपता एवं विलासिता पर व्यंग्य किया। '**परपारे**' तथा '**वंगनारी**' नाटकों में भी समाज के प्रति तीव्र व्यंग्य तथा विद्रूप है। बंगाली समाज की वास्तविक झांकी हमें गिरीशचन्द्र घोष के सामाजिक नाटक 'शास्ति कि शान्ति' तथा '**प्रफुल्ल**' नाटक में मिलती है। गिरीशचन्द्र के पूर्व दीनबन्धु मित्र और मनोमोहन वसु ने समाज-चित्रण नाटकों में किया। दीनबन्धु रचित 'सधबार एकादशी' के नीमचांद तथा मनोमोहन रचित 'प्रणय-परीक्षा' के नटवर दोनों मद्यप हैं किन्तु 'प्रफुल्ल' नाटक के मद्यप योगेश का चरित्र ट्रेजेडी के नायक सदृश्य है जिसमें अनेक महान् तथा सात्विक गुणों के साथ वैंक फैल होने पर मद्यप का दुर्गुण समा गया है जो आत्मशक्ति में अविश्वास का परिचायक है। गिरीशचन्द्र रचित '**हाराविधि**' नाटक के दुष्ट चरित्र अघोर को भी उन्होंने मनुष्यता का आलोक प्रदान किया है। '**गृहलक्ष्मी**' नाटक में वारांगना कुमुदिनी के गृह पर विभिन्न षडयन्त्रों की सृष्टि होती है। '**शास्ति कि शान्ति**' में तीन विधवाओं की समस्याओं पर तीन दिशाओं से प्रकाश डाला गया है।

इस तरह बंगला के सामाजिक नाटक रामनारायण तर्करत्न से प्रारम्भ होकर माइकेल, दीनबन्धु, मनोमोहन, द्विजेन्द्रलाल के नाटकों तथा प्रहसनों में पुष्ट होकर गिरीशचन्द्र के सामाजिक नाटकों में प्रौढ़ रूप में व्यक्त हुए। इसके बाद या तो दीनबन्धु व गिरीश की शैली का अनुकरण हुआ या पाश्चात्य की समस्या-मूलक नाट्य शैली पर सामाजिक नाटक रचित हुए।

हिन्दी क्षेत्र में बीसवीं सदी के प्रारम्भ में भारतेन्दु के समय रचित प्रहसनों के सदृश्य रचना होने लगी। धीरे-धीरे हिन्दी के सामाजिक नाटकों में राजनैतिक समस्याओं का समावेश होने लगा जिसका पूर्ण विकास आगे चलकर सेठ गोविन्ददास रचित '**प्रकाश**,' '**सेवापथ**' आदि में दिखाई देता है। सामाजिक नाटकों के क्षेत्र में मिश्रवन्धु रचित '**नवोन्मीलन**' का महत्व इसलिए है क्योंकि उसमें लेखकों के अदालत के अनुभवों को नाटक में स्थान दिया है। आगे चलकर समस्या नाटकों में कानून की समस्या बहुत महत्वपूर्ण बन जाती है। हिन्दी में रंगमंचीय नाटकों में अपनादास मेहरा रचित सामाजिक नाटक '**जवानी की भूल**' तथा '**हिन्दू कन्या**' में विवाहिता स्त्री का पति द्वारा ठुकराया जाना तथा बाद में पति को उसके आदर्श तथा निष्ठा से द्रवीभूत होकर अपनी भूल समझना व्यक्त किया गया है। आगे चलकर अश्क रचित '**स्वर्ग की झलक**' में

ऐसा ही दिखाया गया है कि रघु सोचा करता है कि उसके मित्र अशोक तथा राजेन्द्र शिक्षिता स्त्री पाकर अधिक सुखी हैं किन्तु उनकी यथार्थ परिस्थिति से परिचित होकर वह अपनी अर्धशिक्षिता स्त्री की कद्र करने लगता है ।

हिन्दी तथा बंगला के सामाजिक नाटकों की पृष्ठभूमि के अध्ययन से यह प्रमाणित होता है कि उनके सामाजिक नाटक अपनी पुरानी शैली तथा पुराने विषयों की राह पर से धीमी चाल में गुजर रहे थे जब कि सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक तथा अन्तर्जातिक विवर्तनों ने उसे एक नवीन दिशा सूचित की एवं उसके फलस्वरूप समस्या मूलक नाटकों का आविर्भाव हुआ ।

नवीन परिस्थितियों का उद्‌भव

धीरे-धीरे देशभक्ति की उत्तेजना मन्द होती गई एवं चिन्तनशील व्यक्तियों का ध्यान सामाजिक समस्याओं के प्रति एक साथ आकृष्ट हुआ । राष्ट्र, समाज एवं व्यक्ति तीनों की समस्याएँ एक दूसरे से उलझी हुई थीं । एक ओर ब्रिटिश शासकों द्वारा दिये गये झूठे आश्वासन, निराशा, अगस्त आन्दोलन, बंगला दुर्भिक्ष, भारत विभाजन एवं स्वतंत्रता की प्राप्ति इन घटनाओं ने हमारे राजनैतिक जीवन में उथल पुथल मचा दी थी, दूसरी ओर समाज के क्षेत्र में पाश्चात्य चिन्तकों द्वारा हम अत्यन्त प्रभावित हुए— **मिल के उपयोगितावाद, जोला के प्रकृतवाद, डारविन के विकासवाद** एवं **मार्क्स के द्वन्द्वात्मक-भौतिकवाद का प्रभाव भारतीय समाज पर पड़ने लगा, व्यक्ति-स्वातंत्रय का प्रश्न भी अछूता न रहा ।** सामाजिक रूढ़ियों एवं व्यक्तिगत स्वतंत्रता तथा आत्मबोध के बीच संघर्ष शुरू हो गया । इसका प्रधान कारण था स्त्री शिक्षा का प्रसार । स्त्रियों की शिक्षा, स्वाधीनता एवं पुरुषो के साथ निर्बन्ध मेल मिलाप ने समाज की परिस्थिति ही बदल डाली । सामाजिक मान्यताओं के कटघरे में बुद्धिवाद के आलोक द्वारा जागृत नवजीवन समा न सका । **यूरोप में इब्सन, चेखाव, स्ट्रिंडवर्ग, सडरमैन, आस्कर वाइल्ड, हाप्टमैन, गाल्सवर्दी, बर्नार्ड शा आदि प्रतिभाशाली नाटककारों की कृतियों ने तहलका मचा दिया ।** इब्सन के 'डाल्स हाउस' की नायिका नोरा नारी के आत्मबोध की सुदृढ़ प्रतीक बनी । उनके नाटक 'लव्स कामेडी' में प्रेम और विवाह संबंधी सिद्धान्तों पर प्रकाश डाला गया । भारत में भी नारी स्वातंत्रय के साथ-साथ प्राचीन सामाजिक मर्यादाओं के प्राचीर ढह गये एवं यूरोप जैसी समस्याएँ यहां भी दिखाई देने लगीं । फ्रायड के मनोविश्लेषण द्वारा व्यक्ति के यौन-जीवन की जटिल गुत्थियों को समझने के लिए नया प्रकाश मिला । प्रकृतवाद ने हमें समझाया कि पशु के समान मानव भी काम तथा क्षुधा की ताड़नाओं से आक्रान्त है । समाजवादी भौतिकवाद ने समझाया कि हमारी भौतिक आवश्यकताएँ ही प्रमुख हैं एवं साहित्य उसका साधन है । राष्ट्र, समाज एवं व्यक्ति के सम्मुख आर्थिक समस्या सबसे अधिक स्पष्ट हो उठी । पहले जो व्यष्टि-समस्याओं का बलिष्ट चित्रण होता था, धीरे-धीरे उनका स्थान श्रेणी समस्या ने अधिकृत किया ।

यूरोपीय साहित्य में टी० डब्ल्यु० राबर्टसन द्वारा सन् १८६५ में रचित **'सोसाइटी'**, जिसमें विवाह जैसे पवित्र संबंध में आर्थिक महत्व पर प्रकाश डाला गया, प्रथम समस्या-मूलक यथार्थवादी नाटक माना जाता है किन्तु सन् १८८६ में अभिनीत इब्सन रचित **'डाल्स हाऊस'** ने वहां युगान्तर ला दिया।

हिन्दी नाट्य क्षेत्र में प्रसाद की भावुकता पर प्रबल प्रहार करते हुए इब्सन तथा शा के बुद्धिवाद तथा यथार्थवाद से प्रभावित **लक्ष्मीनारायण मिश्र** का प्रादुर्भाव हुआ। यद्यपि इन्होंने बुद्धिवाद के तीक्ष्ण कुठार द्वारा प्राचीन संस्कार तथा आदर्शों का उन्मूलन करना चाहा किन्तु भारतीयता तथा कोमल भावों को अपनाये बिना भी न रह सके। शा की तार्किक शैली का अनुकरण किया किंतु अधिक सफल न हो सके। इसी तरह हिन्दी के अन्य लेखक जिन्होंने समाज पर प्रकाश डालने का प्रयत्न किया जैसे उपेन्द्रनाथ अश्क, सेठ गोविन्ददास, भगवतीचरण वर्मा, पृथ्वीनाथ शर्मा, वृन्दावनलाल वर्मा, जगदीशचन्द्र माथुर आदि ने भी इब्सन, गाल्सवर्दी एवं शा का ही अधिक अनुकरण किया है।

भारत में जो समस्याएँ हिन्दी भाषी क्षेत्र में थीं वे ही समस्याएँ अन्य भाषा भाषी क्षेत्रों में भी थी। जिस तरह संस्कृति एवं देशभक्ति की भावपूर्ण लहर बंगभूमि से निकली एवं समस्त भारत में फैल गई उसी तरह आर्थिक समस्याओं से आक्रांत वस्तुवादी विचार-धारा भी दुर्भिक्ष तथा दंगा से पीड़ित बंगाल से निकली एवं समस्त भारत में फैल गई। बंगला साहित्य के क्रमविकास की धारा में **रवीन्द्रनाथ** का उल्लेख तो नहीं हो सकता किन्तु हम यह अस्वीकार नहीं कर सकते कि नाटक रचना करते वक्त **समाज की भीषण वास्तविकता के प्रति वे सचेत थे। 'बाँशरी'** में उन्होंने नर-नारी के प्रेम-व्यापार पर प्रकाश डाला है एवं **'मुक्तधारा'** में यंत्र-दानव द्वारा समाज का शेषण दिखाया गया है। शा की व्यंग्य शैली की अभिव्यक्ति प्रमथनाथ बिशी के नाटकों द्वारा हुआ। विधायक भट्टाचार्य ने केवल सामाजिक विषयों को चुना। जलधर चट्टोपाध्याय, शचीन सेनगुप्त आदि ने भी सामाजिक समस्याओं पर प्रकाश डाला। नव-नाट्य-आन्दोलन के उपरान्त बंगाल में आर्थिक समस्या प्रबल होकर दिखाई देने लगी एवं विजन भट्टाचार्य रचित **'नवान्न'** नाटक ने, जिसमें दुर्भिक्ष पीड़ित कृषक श्रेणी का मार्मिक चित्रण हुआ, बंगला नाट्य साहित्य में युगान्तर ला दिया। हिन्दी भाषी क्षेत्र भीषण दुर्भिक्ष से बंगाल की तरह आक्रांत नहीं हुए, अतः 'नवान्न' जैसे मार्मिक नाटकों की रचना नही हुई। गोविन्दवल्लभ पन्त ने **'ययाति'** नामक पौराणिक नाटक में अन्न समस्या पर प्रकाश डाला है।

यद्यपि पराधीनता के युग में भारत एक गरीब देश ही रहा है फिर भी दरिद्रता का निर्मम प्रहार बंगवासियों को अधिक सहना पड़ा। बंगीय समाज हिन्दी भाषी समाज की अपेक्षा द्रुततर गति से आधुनिकता की ओर बढ़ा क्योंकि **पाश्चात्य शिक्षा का प्रचार** वहां सर्वप्रथम हुआ।

हिन्दी एवं बंगला नाटककारों ने जिन समस्याओं पर प्रकाश डालने की चेष्टा की उनमें बहुत कुछ साम्य भी है क्योंकि पाश्चात्य सभ्यता का प्रभाव समस्त भारत में फैलने लगा। अधिक प्रकाश **यौन-समस्या** पर ही डाला गया। स्वच्छन्द प्रेम और विवाह में विरोध होने के कारण आधुनिक समाज में किस तरह विशृंखला की सृष्टि हो रही है यही लेखकों का प्रमुख विषय रहा। लक्ष्मीनारायण मिश्र के अधिकांश नाटकों में यही समस्या है। इब्सन के मतानुसार प्रत्येक व्यक्ति अपने विचारों के अनुसार अपने जीवन का लक्ष्य निर्धारित करने का अधिकारी है। नाटककारों ने व्यक्ति के अधिकार और समाज के अधिकार में संघर्ष दिखाकर सामाजिक आदर्शों के खोखलेपन को दिखाने की चेष्टा की है। कई स्थलों पर यौन-समस्याओं पर तार्किक शैली में विशद् विवेचन है किन्तु अन्त में समाधान या तो अस्वाभाविक है या समाधान का अभाव है। पति-पत्नि में जिस **वैमनस्य** की सृष्टि होती है उन पर शचीन सेनगुप्त रचित **'स्वामी स्त्री'** में प्रकाश डाला गया है। उपेन्द्रनाथ अश्क ने **'कैद'** में सामाजिक बन्धनों से जकड़ी हुई नारी की अतृप्ति जनित विवशता एवं **'उड़ान'** में पुरुषों के सहयोग से वंचित एकाकी अपने जीवन पथ निर्माण में समर्थ नारी का चित्रण किया है। बंगला नाटककारों में विधायक भट्टाचार्य ने बंगाल के नागरिक समाज का करुण चित्रण **'माटीर घर'** में किया है। इन लेखकों ने मध्यम वर्ग के स्त्री पुरुषों की यौन-समस्या तथा विवाह की समस्या पर अधिक प्रकाश डाला है। इन नाटकों की विशेषता है पात्रों का मनोविश्लेषण, जिस पर फ्रायड का प्रभाव स्पष्ट है। दहेज, विधवा समस्या, बहुविवाह आदि समस्याओं की अपेक्षा मन में छिपे देव तथा दानव की समस्या प्रबल हो उठी।

यौन-समस्या के अतिरिक्त हिन्दी में लक्ष्मीनारायण मिश्र एवं सेठ गोविंददास के कुछ नाटकों में **राजनीतिक समस्याएँ** बहुत स्पष्ट हो उठी हैं। बंगला में राजनीतिक समस्याओं की अपेक्षा बृहद् समाज जीवन, विभिन्न मत एवं आदर्शों पर अधिक प्रकाश डाला गया है। विधायक भट्टाचार्य रचित **'क्षुधा'** में दरिद्र समाज की सूक्ष्म अनुभूतिया हृदय को स्पर्श करती हैं तथा ताराशंकर बन्दोपाध्याय कृत **'दुई पुरुष'** में पिता एवं पुत्र के आदर्शों के संघर्ष का सुन्दर चित्रण हुआ है। बंगला में जलधर चट्टोपाध्याय ने हिंदु-मुस्लिम साम्प्रदायिकता के विषय को लेकर **'थामाओ रक्तपात'** की रचना के साथ ही **'नारी धर्म'** में नारीत्व के प्राचीन आदर्शों का समर्थन किया। इन आधुनिक नाटकों पर अतीत का संस्कार एवं भविष्य का स्वप्न भी था। नारी-समस्या के अन्तर्गत इस युग में पतिताओं के प्रति समाज के कर्त्तव्य का प्रश्न उठाया गया एवं उनका सहानुभूतिपूर्ण चरित्र-चित्रण हुआ। नारी समस्या किसी भी समाज की चिरन्तन-समस्या है।

ज्यों-ज्यों भारत की राजनैतिक परिस्थितियां बदलती गईं, त्यों-त्यों नई-नई समस्याएँ भी सामने आईं एवं हिंदी व बंगला दोनों नाट्य साहित्य में इन नवीन समस्याओं का भी चित्रण होने लगा। विदेशियों के आक्रमण की आशंका, देश विभाजन, अछूत समस्या, मद्यपान की समस्या, धनो वर्ग की उच्छृंखलता, दरिद्र वर्ग की खाद्य समस्या, नवीन

परिस्थितियों के कारणों से उत्पन्न पारिवारिक कलह, राजनैतिक दलो में कलह, ग्राम्य समस्या इत्यादि का चित्रण हिन्दी बंगला के सामाजिक नाटकों में होने लगा क्योंकि ये समस्याएँ सर्व भारतीय थी। कई पौराणिक आख्यानों में समाज संबंधी समस्या पर लेखकों ने प्रकाश डाला जिनमें हिंदी में उदयशंकर भट्ट रचित **'विद्रोहिनी अम्बा'** प्रसिद्ध है। इसी तरह बंगला नाटक **'केदार राय'** में मुसलमानों द्वारा अपहृता नारी जब पुनः अपने समाज में प्रवेश करना चाहती है तब किस तरह उसकी दुर्दशा होती है, इसका चित्रण हुआ है। जयशंकर प्रसाद रचित **'ध्रुवस्वामिनी'** में इस तरह इतिहास की पृष्ठभूमि पर समाज संबंधी समस्याओं को अंकित किया गया है एवं इतिहासानुमोदित-समाधान भी उसमें है।

कई सामाजिक उपन्यासों के नाट्यरूपों में भी समाज चित्रण की झांकी मिलती है। बंगला में शरतचन्द्र के तीन **उपन्यास 'पल्लीसमाज', 'दत्ता' एवं 'देना पाओना'** के नाट्यरूप क्रमशः **'रमा', 'विजया'** एवं **'षोड़शी'** के नाम से प्रकाशित हुए एवं अभिनीत होने पर लोकप्रिय भी हुए। 'पल्लीसमाज' के साथ प्रेमचन्द रचित **'गोदान'** का साम्य है क्योंकि इन दोनों में ग्रामीण वातावरण में वर्द्धित नाना तरह के जीवन की वास्तविकताओं का एवं वैचित्र्य का विदग्ध-चित्रण हुआ है, किन्तु इन्हीं **उपन्यासों ने जब नाटक का रूप धारण किया तब समाज-जीवन बहुत संकुचित हो गया** एवं रमा तथा होरी के **अन्तर्विश्लेषण** पर आधारित व्यक्ति-जीवन स्पष्ट हो उठा, जिनमें नाटककार के आदर्श-बोध की छाप गहरी हो गई। इस तरह ताराशंकर बंद्योपाध्याय रचित **'कालिन्दी'** उपन्यास के नाट्यरूप में नाटक संबंधी अनेक त्रुटियां रह गई हैं एवं रामेश्वर की नृशंसता चारित्रिक वैचित्र्य होती हुई भी घटनाओं द्वारा अपनी उपयुक्तता समर्थित न कर सकी। फिर भी इस तरह के नाटकों में लेखकों की जो सूक्ष्म जीवन दृष्टि है वह समाज के लिए महत्वपूर्ण है। प्रथम विश्व-महायुद्ध ने राष्ट्रवाद के भीषण परिणामों का उद्घाटन किया एवं यह प्रमाणित किया कि युद्ध के उपरांत विजयी एवं विजित दोनों देशों की आर्थिक परिस्थिति शौचनीय हो उठती है। इस तरह राजनैतिक एवं आर्थिक समस्याओं की ओर नाट्यकार आकृष्ट हुए।

द्वितीय विश्व-महायुद्ध के बाद भारत की एवं विशेषतः बंगाल की परिस्थिति दुर्भिक्ष के कारण अत्यधिक शौचनीय हो उठी। ब्रिटिश साम्राज्यवाद के अत्याचार से समस्त भारत त्रस्त था किन्तु बंगाल पर जो दुर्भाग्य के बादल घुमड़ आये उनने युग की चिन्तन धारा को आलोड़ित कर डाला। बंगाल दुर्भिक्ष ने खेतों को फसल रहित एवं पथों को मानव कंकालों से स्तूपीकृत किया। जापानी आक्रमण की आशंका से महानगरी कलकत्ता अंधकारपूर्ण हो गई। भारत विभाजन के कारण पूव बंग की जनता निराश्रित होकर पश्चिमी बंग में आने लगी। स्त्रियों की इज्जत लुट गई। मानवता की नैतिक मृत्यु हुई क्योंकि विपदा ग्रस्त भाई बहनों की हम रक्षा न कर सके। विकराल छाया को देख लेखकों ने तीव्र स्वर से घोषित किया कि कला जीवन के लिए है। **जीवन संग्राम**,

मानवता की प्रतिष्ठा, किसान मजदूर तथा मध्यम वर्ग के शोषण का अवसान यही कथाकारों एवं नाटककारों का लक्ष्य हुआ एवं बंगाल में **सन् १९४४ में 'भारतीय गणनाट्य संघ'** द्वारा अभिनीत विजन भट्टाचार्य रहित **'नवान्न'** ने जनता की दृष्टि दूसरी ओर फेर दी। किसान, मजदूर, भिखारी, अपराधी, पतित इत्यादि के जीवन को उज्जवल करके चित्रित किया गया। बंगला के 'नवान्न' नाटक जैसी **समाज-चेतना** की अभिव्यक्ति हिन्दी के **'कोणार्क'** नाटक में हुई। जीवन की समस्या, सूक्ष्म मनोविश्लेषण, शरणार्थी समस्या, ग्राम उन्नयन, गण संग्राम, मध्यम वर्ग का निम्न वर्ग में लय इत्यादि वास्तविक तथ्य सन् १९४३ के बाद रचित बंगला नाटकों में स्पष्ट हो उठे। हिन्दी के नाटककारों ने भी यही स्वीकार किया कि नाटक केवल मनोरंजन की वस्तु नहीं व अतीत के पर्दे हटाकर विस्मित कर देने वाली कलाकृति नहीं वरन् जन-जीवन के विकास का अमोघ अस्त्र है। **बौद्धिकता, प्रतीक योजना तथा मनस्तत्व के प्रयोग द्वारा हिन्दी नाटकों ने भी व्यष्टि-संवेदना को समष्टि-संवेदना से संयुक्त करने का प्रयास किया।**

स्वाधीनता प्राप्ति के बाद देश-प्रेम की रही-सही उत्तेजना भी लुप्त हो गई एवं आर्थिक समस्या ही सामाजिक जीवन की प्रधान समस्या बन गई। समाज की ये सब समस्याएँ पल-पल परिवर्तित हो रही हैं। हिन्दी तथा बंगला नाट्य-क्षेत्र में समाज संबंधी नाटक लिखने वालों में यद्यपि कई कुशल नाटककार हुए हैं, फिर भी अभी तक इब्सन, शा, प्रसाद व रवीन्द्रनाथ जैसी प्रतिभा का प्रादुर्भाव नहीं हुआ है। जब लेखक जीवन के सत्य की गहराई तक पहुंच जायेंगे तब समाज के उन पक्षों का उद्घाटन होगा जो व्यक्ति एवं समाज के विकास के द्वार खोल देंगे।

यूरोप में इब्सन के आविर्भाव के बाद यथार्थवादी समस्या-मूलक नाटकों की यात्रा शुरू हो गई। विश्व महायुद्धों ने विज्ञान की प्रगति के विनाशकारी प्रभावों को नर-कंकालों के रूप में सामने रख दिया। पुरातन संस्कार, धर्म पर आस्था, आदर्शों का अनुसरण आदि जीर्ण-पत्रों की तरह वात्याहत हुए। मानव कुंठा, निराशा तथा अवसाद से ग्रस्त हुआ एवं उसकी अभिव्यक्ति सामाजिक नाटकों में सफल रूप से हुई। शा के नाटकों में विवाह पतिताओं की स्थिति, युद्ध, चिकित्सा, क्रिश्चियनिटी, आभि-जात्य, सामाजिक आदर्श, मानव का सुदूर भविष्य आदि सभी पक्षों को व्यंग्य के तीक्ष्ण आलोक से स्पष्ट किया गया। समस्याओं का स्पष्ट, तर्क-सम्मत, बुद्धिवादी तथा मनो-वैज्ञानिक स्वरूपों का उद्घाटन करना उनका लक्ष्य था एवं कलात्मक प्रतिभा के कारण वे अत्यन्त सफल हुए। हिन्दी तथा बंगला के नाटककारों का परिचय पाश्चात्य दर्शन एवं साहित्य से हुआ, साथ ही उनका भी समाज धीरे-धीरे इन्हीं समस्याओं का शिकार होता गया। ऐतिहासिक रोमांटिक नाटकों की गति प्रतिहत हुई एवं सामाजिक परि-स्थितियों का चित्रण ही नाटककारों का प्रधान लक्ष्य हो गया। इसके पूर्व हिन्दी तथा बंगला नाट्य-क्षेत्र में भारतेन्दु, दीनबन्धु, द्विजेन्द्रलाल, गिरीशचन्द्र घोष, रवीन्द्रनाथ तथा

प्रसाद जैसे प्रतिभाशाली साहित्य के नेताओं ने निजी नाट्य-प्रणालियों को उत्कर्ष प्रदान किया किन्तु उनके बाद इस कोटि के एक-नायकत्व का अभाव नाट्य-क्षेत्र में हुआ। बंगला में मन्मथ राय, शचीन सेनगुप्त, महेंद्र गुप्त, विधायक भट्टाचार्य आदि तथा हिंदी में उपेन्द्रनाथ अश्क, उदयशंकर भट्ट, लक्ष्मीनारायण मिश्र, पृथ्वीनाथ शर्मा आदि नाट्यकार हुए जिनकी कई नाट्य-कृतियां उत्कृष्ट हुईं किंतु वे किसी विशिष्ट धारा के प्रवर्तक न बन सके। सामाजिक नाटकों के एक विशिष्ट रूप का भी वे प्रतिपादन न कर सके। अतः कई सामाजिक नाटक पारिवारिक समस्याओं में उलझ गये, कई नाटक सुखांत व दुःखांत रूप को लेकर रचित हुए, कई नाटकों में इब्सन तथा शा की शैली का भारतीय रूपान्तर हुआ, कई नाटकों में प्रहसनों का परिष्कृत रूप दृष्टिगोचर हुआ।

यद्यपि बंगला साहित्य के रवीन्द्रोत्तर युग में एवं हिन्दी साहित्य के प्रसादोत्तर युग में सामाजिक नाटकों की रचना सबसे अधिक हुई, फिर भी उत्कृष्ट कोटि के सामाजिक नाटक, जिनमें जीवन-सत्य की सफल अभिव्यक्ति हो, अनुभूति की गहराई हो, विरल ही हुए। इसका यही कारण है कि **प्राचीन आदर्श एवं नवीन विचारों के बीच पड़ा हमारा भारतीय समाज अत्यन्त शक्तिहीन हो गया है।** सामाजिक नाटकों के क्रम-विकास पर विहंगम- दृष्टि डालने से यह स्पष्ट हो जायेगा।

बीसवीं सदी में भारत में क्रमशः जो राष्ट्रीय एवं सामाजिक विवर्तन हुआ उसका प्रभाव समस्त देश पर पड़ा। पहले जो राष्ट्रवाद केवल भावभूमि पर आश्रित था, धीरे-धीरे वह बहुमुखी-कर्मशीलता की ओर प्रवृत्त हुआ। राष्ट्रीय एवं सामाजिक दृष्टि से भारत के सभी प्रदेशों की परिस्थिति युगों से बन्धन के सूत्र में आबद्ध है। **अतः विवर्तन स्वरूप जिन नवीन परिस्थितियों का उदय हुआ वे भारत के सभी साहित्यिकों का ध्यान आकृष्ट करने लगीं।** ऐतिहासिक नाटकों की रचना कम होने लगी क्योंकि नाटककारों का ध्यान अब समाज संगठन तथा व्यक्ति-समस्या की ओर झुका। उन्नीसवी सदी के उत्तरार्द्ध के हिंदी तथा बंगला के नाट्यकार समाज-संस्कार की प्रेरणा से प्रहसन रचना की ओर प्रवृत्त हुए थे किन्तु बीसवी सदी में प्रहसन रचना की प्रवृत्ति का ह्रास होता गया। देश की परिस्थिति से प्रेरित हो तथा पाश्चात्य समस्या-नाटकों से परिचित एवं प्रभावित हो हिंदी तथा बंगला के समस्या-नाटक की धारा दिन-प्रतिदिन वेगवती हुई। आर्थिक समस्या, जाति भेद की समस्या, वर्ग की समस्या, राजनैतिक दलों की समस्या, अन्न-वस्त्र की समस्या, अन्तर्जातिक समस्या एवं व्यक्ति के लिए सबसे अधिक महत्वपूर्ण काम-समस्या (Sex Problem) पर बौद्धिक प्रकाश डालना ही नाटककारों का ध्येय हो गया। केवल सामाजिक ही नहीं पौराणिक तथा ऐतिहासिक कथा-वस्तुओं का चित्रांकन भी इन समस्याओं के दृष्टिकोण से होने लगा। बंगला नाटककारों ने रोमांस का पल्ला बहुत शीघ्र त्याग दिया एवं परम्परा से विच्छिन्न होकर नितांत वस्तुधर्मी सामाजिक-नाटकों को ही लक्ष्य बना लिया किंतु हिंदी नाटककारों ने इतिहास,

पुराण की कथाओं के साथ सामाजिक समस्या के प्रश्न को जड़ित रखने का प्रयास किया।

बंगला नाट्य-क्षेत्र में **गिरीश धारा के सामाजिक नाटकों** के बाद रवीन्द्रनाथ का महत्वपूर्ण युग आता है। **रवीन्द्रनाथ के सामाजिक नाटकों** का स्वतंत्र मूल्य है। उनके **'गृहप्रदेश'** तथा **'शोधबोध'** पारिवारिक जीवन से संबंधित हैं, **'बांसरी'** में नवीन विचारों से दीप्त नारी के मानसिक संघर्ष का चित्र है, **'रक्तकरवी'** तथा **'मुक्तधारा'** में प्रतीकशैली में धनतंत्र एवं यान्त्रिक सभ्यता की समस्याएँ हैं, **'नटीरपूजा'** में धार्मिक समस्या है, **'चंडालिका'** में अस्पृश्य-समस्या है तथा **'चित्रांगदा'** में चिरन्तन-नारी-समस्या है। रवीन्द्रोत्तर युग में बंगला के सामाजिक नाटकों ने एक नया-मोड़ ग्रहण किया जिसका रवीन्द्रनाथ की नाट्य-धारा से कोई सम्पर्क न था। स्त्री स्वाधीनता, आर्थिक समस्या तथा देशविभाजन की नवीन परिस्थिति से चिन्ताग्रस्त होकर नाटककारों ने लेखनी उठाई एवं उन नवीन रचनाओं का अब विचार-प्रधान दृष्टिकोण होना स्वाभाविक था। विधायक भट्टाचार्य, जलधर चट्टोपाध्याय, शचीन सेनगुप्त आदि के नाटकों के पारिवारिक तथा सामाजिक चित्र जटिल होते जा रहे थे जब कि सन् १९४४ में अभिनीत विजन भट्टाचार्य रचित 'नवान्न' नाटक ने गण-चेतना की अभिव्यक्ति से बंगला नाट्य-क्षेत्र में युगान्तर ला दिया।

हिंदी नाट्य-क्षेत्र में जयशंकर प्रसाद के पूर्व तक भारतेन्दु धारा ही चली आ रही थी। प्रसाद के ऐतिहासिक नाटकों में भारत के सांस्कृतिक युग के समाज का जो चित्रांकन हुआ वह प्रसाद की अनुपम देन है। उनके नाटकों में बौद्ध तथा गुप्त-कालीन संस्कृति, राज-शक्ति तथा पुरोहित एवं महन्तों की धर्म-शक्ति का सघर्ष, बाह्य शत्रुओं की संस्कृति से संघर्ष, ब्राह्मण—बौद्ध वैमनस्य, देश की विभिन्न राज-शक्तियों में संघर्ष तथा कर्तव्य एवं प्रेम के संघर्ष के चित्र हैं। **इस तरह प्रसाद के नाटकों में राष्ट्र, समाज, संस्कृति तथा व्यक्ति एक-सूत्र में गूँथ दिये गये।** प्रसाद के नाटकों में परम्परा का विकास हुआ एवं प्रसादोत्तर नाट्य-साहित्य में बाह्य-प्रभावों के साथ प्रसाद द्वारा विकसित परम्परा का भी योग रहा। प्रसाद रचित **'ध्रुवस्वामिनी'** नाटक (सन् १९३३) में ऐतिहासिक-भित्ति पर समस्या-नाटक की पुष्ट शैली का सूत्रपात हुआ। प्रसादोत्तर काल में जो ऐतिहासिक-पौराणिक-समस्या नाटक रचित हुए उनपर प्रसाद का प्रभाव स्पष्ट है। बंगला में मन्मथ राय ने पौराणिक नाटकों में नवीन-विचारों की योजना की, किंतु उनमें उस शैली का दर्शन नहीं होता है जो 'ध्रुवस्वामिनी' में है। 'ध्रुवस्वामिनी' में रोमांटिक शैली के साथ समस्या-नाटक-शैली का गंठबन्धन हुआ है। लक्ष्मीनारायण मिश्र रचित **'सन्यासी'** (सन् १९२७) हिंदी का प्रथम समस्या-नाटक माना जाता है।

प्रसादोत्तर-काल में सेठ **गोविन्ददास रचित 'सेवापथ'** तथा **'प्रकाश'** में राजनीतिक समस्या है, वृन्दावनलाल वर्मा रचित 'धीरे-धीरे' में गांधीवादी नीति और उसकी कर्म-सम्पादन-विधि के असामंजस्य पर व्यंग्य है, हरिकृष्ण प्रेम रचित **'छाया'** में

साहित्यिक की जिन्दगी की आर्थिक समस्या है, गोविन्दवल्लभ पन्त रचित **'अंगूर की बेटी'** में मद्यपान की समस्या है तथा 'अन्तःपुर का छिद्र' में राजा उदयन की पारिवारिक समस्याएँ हैं। उपेन्द्रनाथ अश्क ने 'स्वर्ग की झलक' में एवं पृथ्वीनाथ शर्मा ने **'दुविधा'** में शिक्षिता नारियों की परिस्थिति पर प्रकाश डाला है। लक्ष्मीनारायण मिश्र ने, जो कि हिंदी के समस्या-नाटकों के क्षेत्र में अधिक प्रसिद्ध हुए, स्त्री पुरुष की काम-समस्याओं पर प्रकाश डाला। मिश्रजी पर शा की तार्किक शैली तथा फ्रायड की मनोविश्लेषणात्मक-पद्धति का प्रभाव पड़ा एवं भारतीय आदर्श के साथ वर्नार्ड शा के विचारों का समन्वय कराने में वे जुट गये। इस तरह हिंदी के सामाजिक नाटकों का मार्ग भी प्रशस्त होता गया।

आर्थिक-समस्या के प्रबल होने पर हिंदी तथा बंगला के सामाजिक नाटकों पर मार्क्स के द्वन्द्वात्मक-भौतिकवाद का प्रभाव पड़ने लगा। राजनैतिक चेतना, गण-आंदोलन तथा वर्ग-संघर्ष की अभिव्यक्ति नाटकों में होने लगी। सामाजिक नाटकों में दो विभिन्न प्रवृत्ति तथा पद्धति स्पष्ट हो उठी— अन्तश्चेतनावादी प्रवृत्ति की **मनोविश्लेषणात्मक पद्धति** तथा समाजवादी प्रवृत्ति की **सामूहिक-संवेदन-चित्रण की पद्धति**। एकांकी नाट्य-क्षेत्र में भी ये ही प्रवृत्तियां प्रबल हो उठीं जिनका विवेचन एकांकी परिच्छेद में किया गया है।

नवीन परिस्थिति में हिंदी तथा बंगला सामाजिक नाटकों में समाज-चेतना, **आत्म-**बोध, मानव के अस्तित्व की महत्ता, मनोविज्ञान की बारीकी आदि की बलिष्ठ अभिव्यक्ति हुई। सामाजिक नाटकों की जो विभिन्न शाखाएँ विकसित हुईं उनका वर्गीकरण निम्नलिखित रूप में किया जा सकता है—

१—समस्या-मूलक नाटक

अ—यथार्थवादी शैली के समस्या-नाटक

ब—रोमांटिक शैली के समस्या-नाटक

२—साधारण सामाजिक नाटक

अ—पारिवारिक तथा सामाजिक गम्भीर प्रकृति के नाटक

ब—कामेडी तथा प्रहसन जैसे प्रफुल्ल प्रकृति के नाटक।

१ समस्या—मूलक नाटक

अ—यथार्थवादी शैली के हिन्दी तथा बंगला के समस्या-नाटकों का उद्भव

भारतीय भाषाओं के आधुनिक नाट्य-साहित्य में समस्या-मूलक नाटक रचना का प्रारम्भ सन् १९२५ के बाद से होता है। लगातार आर्थिक संकटों ने बंगला नाटकों की रोमांटिक प्रवृत्ति को वास्तववादी जीवन-दृष्टि तथा जागरूक समाज चैतन्य में बदल दिया। हिंदी नाटकों की प्रवृत्ति उतनी रोमांटिक भी न थी एवं आर्थिक संकटों का सामना उन्हें कम करना पड़ा। हिंदी नाटकों में सामाजिक-आदर्शवाद का व्याख्यात्मक रूप था, संघर्ष की तीव्र व्यंजना व विद्रोह के कठोर स्वर का भी उनमें अभाव था। ऐसी परिस्थिति में हिंदी नाट्य-क्षेत्र में समस्या-मूलक नाटक लेखकों के अग्रणी के रूप में **लक्ष्मीनारायण मिश्र** का आविर्भाव हुआ। उनका **'संन्यासी'** नाटक सन् १९३६ में प्रकाशित हुआ। उनका दृष्टिकोण प्रतिक्रियात्मक रहा। जिस तरह बर्नार्ड शा ने शेक्सपियर का विरोध किया उसी तरह मिश्रजी ने द्विजेन्द्रलाल तथा प्रसाद की रोमांटिक शैली के नाटकों पर प्रहार करना शुरू किया।

बंगला नाट्य-साहित्य में सामाजिक व पारिवारिक समस्याओं को लेकर नाटक लिखने वालों में श्री **विधायक भट्टाचार्य ने** ख्याति प्राप्त की। ९ सितम्बर, सन् १९३९ में रंगमहल में **'माटीर घर'** का प्रथम अभिनय हुआ। उसमें नागरिक समाज के मध्य-वित परिवार की कन्याओं की समस्या है। बंगला के नाटककारों ने रोमांटिक लेखकों पर दोषारोपण करने में शक्ति व्यय नहीं की किंतु हिंदी में मिश्रजी ने समस्त रोमांटिक लेखकों की कृतियों को जीवन-घातिनी कहा एवं द्विजेन्द्रलाल राय तथा प्रसाद के रोमांटिक ऐतिहासिक नाटकों को नव जीवन के निर्माण के लिए निरर्थक कहा। **'संन्यासी' की भूमिका** में वे लिखते हैं—"लेकिन जिसे जीवन की कल्पना करनी है—जीवन का निर्माण करना है—जीवन की अभिव्यक्ति करनी है, वह इतिहास के गड़े मुर्दे नहीं उखाड़ता।"[1] इस तरह उन्होंने एक तत्वदर्शी कलाकार के नाते जीवन की समस्याओं को समझना एवं समझाना ही कर्त्तव्य समझा। लक्ष्मीनारायण मिश्र सामाजिक समस्या नाटकों की रचना में इतने उत्तेजित हो उठे थे तथा जार्ज बर्नार्ड शा के विचारों का उनपर इतना गहरा-प्रभाव पड़ा था कि प्रसाद व डी० एल० राय की कृतियों का यथार्थ मूल्य वे न आंक सके। अतीत की भित्ति पर ही तो वर्तमान एवं भविष्य का प्रासाद खड़ा होता है। यद्यपि प्रसाद व राय की शैलियों पर रोमांटिक प्रवृत्ति के अतिरेक का आरोप लगाया जा सकता है पर यह नहीं कहा जा सकता कि जीवन की

१—संन्यासी—लेखक लक्ष्मीनारायण मिश्र (प्रथम संस्करण)
—एक आलोचक मित्र से—पृष्ठ-२

वास्तविक समस्याओं से वे अनभिज्ञ थे। जीवन की उदात्त वृत्तियां प्रेम, करुणा, देशप्रेम आदि उनकी लेखनी में उज्जवल हो उठी। किंतु प्रेम के साथ विवाह की तथा तलाक की समस्या, करुणा के साथ वीरता की समस्या, देशप्रेम के साथ समाज की समस्या उनकी सूक्ष्म दृष्टि के परे नहीं थी। प्रसाद के प्रसिद्ध नाटक **'ध्रुवस्वामिनी'** में ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर यदि कोमा के रोमांटिक प्रेम का चित्रण हुआ है तो चन्द्रगुप्त के प्रति रामगुप्त की पत्नि ध्रुवस्वामिनी के बलिष्ठ प्रेम तथा विवाह की समस्या का भी चित्रण हुआ है। एक क्लीव भाई के प्रति करुणा होते हुए भी किस तरह ध्रुवस्वामिनी के छद्मवेश में चन्द्रगुप्त ने शकराज से लोहा लिया एवं अपनी वाग्दत्ता भ्रातृवधु ध्रुवस्वामिनी से विवाह कर साहस का परिचय दिया। यह हमारी संस्कृति में निहित पुरुषत्व का द्योतक है।

लक्ष्मीनारायण मिश्र अधिकांशत: यौन-समस्या का चित्रण करते हैं एवं **'संन्यासी'** में उन्होंने रोमांटिक प्रेम की पराजय एवं काम तथा क्षुधा निवृत्ति के प्रयोजन को अधिक महत्व दिया है। विधायक भट्टाचार्य ने अधिकांशत: जो समस्याएँ रखी हैं वे पारिवारिक एवं सामाजिक हैं। समाज के जिस अंश को अधिकतर लेखकों ने चुना है वह भी नागरिक समाज है। अत: इसी बुद्धिजीवी मध्यवित्त समाज से संबंधित प्रेम, विवाह, शिक्षा, राजनीति आदि पर प्रकाश डाला गया है। लक्ष्मीनारायण मिश्र तथा सेठ गोविन्ददास के कई समस्या नाटकों में सामाजिक, व्यक्तिगत समस्या के साथ राजनीतिक समस्या का भी चित्रण हुआ है। जैसे संन्यासी में एशियाई संघ की स्थापना, किंतु बंगला नाटकों में इस तरह सामाजिक तथा राजनीतिक समस्याओं का एकीकरण कम हुआ है। इन सामाजिक नाटकों पर बौद्धिकता की छाप होते हुए भी भारतीय आदर्श एवं रोमांटिक मनोभावों का भी परिचय मिलता है।

लक्ष्मीनारायण मिश्र ने **'राक्षस का मंदिर'** नाटक में आधुनिक समाज के खोखलेपन को एवं उस समाज के सुधारक कहलाने वाले व्यक्तियों के देवत्व के झूठे आवरण को हटा उसके अन्तर में छिपे राक्षस को स्पष्ट रूप से चित्रित किया है। **भूमिका** में वे लिखते हैं— 'उपभोग और आनन्द में अन्तर है— जिन अभागों ने उपभोग को आनन्द समझ रक्खा है, जिनके सदाचार का स्वरूप सड़क पर दूसरे तरह का है और कमरे में दूसरे तरह का। यह नाटक मैंने उन्हीं के लिए-उन्हीं की मुक्ति के लिए लिखा है।'[1]

बुरे कृत्यों का स्पष्ट उल्लेख आज के समाज के सामने रखना आवश्यक है ताकि समाज अपनी त्रुटियों से अवगत हो, इस कारण मिश्रजी बर्नार्ड शा की तरह यथार्थवादी

१—राक्षस का मन्दिर—लेखक लक्ष्मीनारायण मिश्र (प्रथम संस्करण)
—'मेरा दृष्टिकोण'—पृष्ठ—६-७

शैली में पात्रों के चरित्र का उद्‌घाटन करते हैं किंतु बर्नार्ड शा की तरह तीक्ष्ण-व्यंग्यात्मक शैली के प्रयोग में वे असमर्थ रहे। 'राक्षस का मंदिर' नाटक में मुनिश्वर में छिपे हुए राक्षस का उद्‌घाटन करना लेखक का उद्देश्य है। वह अपनी पत्नि दुर्गा को त्याग रामलाल की वेश्या अश्गरी से अनुचित संबंध रखते हैं और अंत में मुनिश्वर जैसे सुधारकों के प्रयत्न से खोले गये मातृमन्दिर में अश्गरी को आश्रय लेना पड़ता है। हमारे समाज में मुनीश्वर जैसे लोगों की कमी नहीं है। मुनीश्वर के चरित्र चित्रण में लेखक ने उसके ही मुख से उसके चरित्र की व्याख्या की है। जब रामलाल करते हैं—"तुम क्या थे और क्या हो गये ?" तब मुनीश्वर जवाब देते हैं—"जैसे दुनिया बदलती गई—मैं भी वदलता गया। समझते हैं ? जिंदगी के लिए समझौता, यही तत्व है। जिंदगी के साथ समझौता करना—कौन नहीं करता—बुद्ध या ईसा, सुकरात या टालस्टाय—जो नहीं करता वह मूर्ख—"[1] मुनीश्वर अपने पाप को छिपाना नहीं चाहता वरन् अपने आचरण की व्याख्या करके वह अपने हृदय में छिपे देव और राक्षस के द्वन्द्व को व्यक्त करता है। यह स्पष्ट है कि देव उसमें मर चुका है पर देवासुर संग्राम में पीड़ित यह व्यक्ति हमारी सहानुभूनि का पात्र भी है क्योंकि वह भी मनुष्य है। जीने के लिए बुद्धिवादी दृष्टिकोण का वह सहारा लेता है।

बंगला नाट्य साहित्य में शचीन सेनगुप्त ने अनेक सामाजिक नाटकों की रचना की है। उनके एक नाटक **'तटिनीर विचार'** में इसी तरह देव और दानव का द्वन्द्व दिखाया गया है डाक्टर भौस के चरित्र में। डा. भौस समर से कहते हैं—'टाकार एतो अभाव केनो जानो ? काजेर एतो अभाव केनो जानो ? ढाका जायगाय जायगाय जोये रोयेछे बोले।—बले, बले, कौशले एई टाका आमि चारिदिके चारिये देबो—Gangater रा जेमन कोरे देय, Raeketeer जेमन कोरे देय, Blackmail रा जेमन कोरे देय। आमार मते ए पाप नय, अन्याय नय, अधर्म नय—ए होच्छे आमादेर बांचार प्रयास।"[2]

प्रत्येक सामाजिक व्यवस्था एवं सामाजिक समस्या के साथ आर्थिक व्यवस्था एवं आर्थिक समस्या का घनिष्ठ योग रहता है। ज्यों-ज्यों अर्थोपार्जन की विधि बदलती जाती है, त्यों-त्यों सामाजिक व्यवस्था में भी उलटफेर दिखाई देता है। अतः हमारी वर्तमान समस्या केवल सामाजिक नहीं, आर्थिक भी है।

१—राक्षस का मंदिर—पृष्ठ—३५

२—तटिनीर विचार—लेखक शचीन सेनगुप्त,—पृष्ठ—८३
(तृतीय संस्करण)

समस्यामूलक नाटकों की प्रेरक परिस्थितियाँ

समाज की ये ही दो समस्याएँ प्रमुख हैं—**जैविक** (बायोलाजिकल) और **आर्थिक** (इकोनामिकल) इन विषयों पर भारत में प्राचीनकाल में रचित 'वात्स्यायन कामसूत्र' एवं 'कौटिल्य अर्थशास्त्र' नामक दो प्रसिद्ध ग्रंथ हमें प्राप्त हैं। समाज-शास्त्र रचयिताओं में मनु ही प्रमुख हुए एवं उनके द्वारा प्रवर्तित वर्णाश्रम-व्यवस्था का भारतीय हिन्दू समाज पर यथेष्ट प्रभाव है। प्राचीन भारतीय समाजशास्त्रों में नारी के आदर्श, नारी का पूज्य स्थान एवं नारी की पराधीन अवस्था पर भी बहुत लिखा गया, जो संस्कार के रूप में हमारे जीवन एवं हमारी धारणाओं में व्याप्त है। '**मनुस्मृति**' में नारी की पराधीन दशा घोषित की गई है—

"बालया वा युवत्या वा वृद्धयावापि दोषिता,
न स्वातंत्र्येण कर्त्तव्यं चित्कार्यं गृहेष्वापि।
बाल्ये पितुर्वंशेतिष्ठेत्पाणिग्राहस्य यौवने,
पुत्राणं भर्तरि प्रैतने भवेत्स्त्रीस्वतंत्राम्।"

भारत के आधुनिक समाज में पश्चिम के सम्पर्क से परम्परा-बोध तिरोहित हो चला एवं शिक्षित समाज पर पाश्चात्य की वैज्ञानिक सभ्यता एवं विचार-धारा का अत्यंत प्रभाव पड़ा। प्रत्येक युग में विजेताओं की संस्कृति एवं सभ्यता का प्रभाव भारतीय समाज पर पड़ा। वैदिक युग में भारतीय महिलाओं का स्थान उच्च था, मध्यकाल में मुस्लिम संस्कृति के प्रभाव से नारी समाज केवल गृह-प्राचीरों में पर्दों के आवरण में सीमाबद्ध हो गया एवं आधुनिककाल में आर्थिक प्रयोजनवशतः नारी समाज की स्वतंत्रता अबाध हो गई। आज के समाज में शोषितों के समानाधिकार की मांग हो रही है। किसान, मजदूर तथा नारी शोषित समाज के अन्तर्गत हैं। सर्वप्रथम सामंतवाद के विरुद्ध स्वतंत्रता की घोषणा रूसो (सन् १७१२-१७७८) ने की जिसका परिणाम फ्रांसीसी विप्लव (सन् १७८९) था। जेम्स मिल ने मानवतावाद की प्रतिष्ठा की एवं उनके पुत्र स्टुअर्ट मिल (सन् १८०६-१८७३) ने भूमि, नारी तथा मजदूरों के विषय में वाणी का प्रचार किया। यूरोप में औद्योगिक सभ्यता का विकास तथा उपयोगितावाद की प्रतिष्ठा हुई। इसी समय चार्ल्स डार्विन के विकासवाद ने वंश परम्परा की धारणा को एकदम बदल डाला। यद्यपि डार्विन के पूर्व भी एमपेडोक्लस, लामार्क आदि विकासवादी हुए किंतु **डार्विन** ने सर्वप्रथम (सन् १८७८) इसके तीन कार्य-व्यापारों (प्रोसेसेस) को इस रूप में समझाया—योग्यतम का बचाव (**Survival of the Fittest**) यौन-चुनाव (**Sexual selection**) और नये परिवर्तन (**Variation**)। यूरोपीय समाज पर इस नवीन तथ्य के प्रतिपादन का अत्यन्त प्रभाव पड़ा। जार्ज बर्नार्ड शा ने इसे सृजनात्मक विकासवाद (**Creative Evolution**) के रूप में विशिष्टता प्रदान की।

शा ने अपने नाटकों में समाज के आदर्शों का मुखौटा खोल दिया। पुरुष तथा स्त्री के संबंध का, वैश्याओं के जीवन का, धर्म की व्याख्या का नवीन रूपान्तर उन्होंने नाटकों में रखा। मूल-भाव तथा लक्ष्य के परिवर्तन के कारण शैली भी परिवर्तित हो गई। नाटकों में कथावस्तु तथा पात्रों की अपेक्षा किसी नवीन सिद्धांत की प्रधानता हो गई, छोटे-छोटे मानसिक संघर्ष पूर्ण संलापों में अन्तर्जगत की अभिव्यक्ति होने लगी एवं समस्याओं के आरम्भ, स्पष्टीकरण तथा आलोचना द्वारा सिद्धांतों का प्रतिपादन हुआ।

कार्ल मार्क्स के दार्शनिक सिद्धांतों का भी राजनैतिक, आर्थिक तथा सामाजिक जीवन पर अत्यन्त प्रभाव पड़ा जिसका परिणाम सन् १९१७ का रूस का विप्लव है। **वर्ग संघर्ष एवं क्रांति** को उन्होंने प्रधानता दी एवं साहित्य को उसका साधन बनाया। पूंजीवाद के आर्थिक शोषण एवं उनकी समाज-व्यवस्था को उन्होंने जड़ से उखाड़ डाला, धार्मिक विचार, आध्यात्मिक प्रेम आदि का उनके लिए कोई महत्व नहीं, दुनिया में हमारी दो आवश्यकताएँ ही चरम सत्य हैं—काम और क्षुधा। मार्क्स ने द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद का प्रतिपादन किया। **दार्शनिक हीगेल** भी प्रकृति की द्वन्द्वात्मकता को स्वीकार करते थे किंतु उन्होंने विचार तत्व को अंतिम सत्य माना। मार्क्स ने भौतिक तत्व को अन्तिम सत्य माना। मनोविज्ञान के क्षेत्र में **सिगमंड फ्रायड** के स्वप्न सिद्धांत तथा मानसिक-ग्रंथियों के विश्लेषण का भी साहित्य जगत पर प्रभाव पड़ा। **एमिल जोला**(सन् १८४०-१९०२) ने प्रकृतवाद के अनुसार यह घोषित किया था कि मनुष्य भी पशु के समान काम एवं क्षुधा की तृप्ति चाहता है। जोला के बाद से स्वाभाविकता-वाद के अनुसार नाटकों तथा उपन्यासों में इन अभावों तथा सम्भोगों का अनावृत चित्रण होने लगा। कई आलोचकों का कहना था कि इस तरह के फोटोग्राफिक चित्रण से समाज एवं जीवन का कल्याण नहीं हो सकता तथा यह [illegible] की एकांगी दृष्टि है। समाज के गलित अंग के चित्रण ने विकसित अंग के चित्रण की उपेक्षा की। फ्रायड ने चेतन, उपचेतन तथा अवचेतन मन के विश्लेषण द्वारा यह प्रमाणित कर दिया कि सामाजिक संस्कार तथा नैतिक आदर्शों के कारण हमारी दमित वासनाएँ अवचेतन मन में गुप्त रहती है एवं स्वप्न में अपने को व्यक्त करती हैं। फ्रायड लिखते हैं—"मनोविश्लेषण इस सिलसिले में इतना ही तो करता है कि प्लेटो के इस पुराने कथन की पुष्टि कर दे कि अच्छे लोग उन कामों का स्वप्न देखकर ही सन्तुष्ट हो जाते हैं जिन्हें बुरे लोग सचमुच करते हैं। और अब व्यक्तियों को छोड़कर इस महायुद्ध को लीजिए, जो आज भी यूरोप का विध्वंस कर रहा है, सोचिए कि कितनी विराट क्रूरता, पाशविकता और मिथ्यावादिता सभ्य संसार के ऊपर फैलाई जा रही है। क्या आप सचमुच यह मानते हैं कि मुट्ठी भर सिद्धांतहीन पदलोलुप और लोगों को बिगाड़ने वाले आदमी इस तमाम छिपे हुए अमंगल को फैलाने में समर्थ हो सकते थे, यदि उनके लाखों अनुयायी भी दोषी न होते ? क्या इन परिस्थितियों में भी आप बुराई को मनुष्य जाति के मानसिक गठन से अलग रखने के पक्ष में खड़े होने का साहस करेंगे ?" बाद में एडलर तथा युंग

जैसे मनोवैज्ञानिकों ने काम को ही एकमात्र प्रेरक के रूप में स्वीकार नहीं किया। समाज के कर्णधार **फ्रायड के स्वप्न-सिद्धांत की व्याख्या** सुनकर स्तब्ध रह गये। उनका कहना था कि इस तरह के मनोविश्लेषण को प्रामाणिक स्वीकार कर लेने पर यह मानना पड़ेगा कि जीवन कुंठा, निराशा तथा अतृप्ति से परिपूर्ण है। किंतु समाज को सुदृढ़ बनाने के लिए आशा, संतोष तथा संयम की आवश्यकता है। आधुनिक विचारकों की मान्यता यह है कि जब तक समाज व्यक्तियों के अभावों को स्वीकार नहीं करता एवं उनके दूरीकरण की चेष्टा नहीं करता तब तक क्रांति एवं अतृप्ति की भावना अन्दर ही अन्दर घुटती रहेगी एवं एक न एक दिन विस्फोट के द्वारा वह प्राकृतिक-संतुलन की चेष्टा अवश्य करेगी। इसी कारण **आज का व्यक्ति अपने को समाज से अलग समझने लगा है क्योंकि व्यक्ति-स्वार्थ और सामाजिक-स्वार्थ में समझौता नहीं हो पाया। नाटकों में व्यक्ति के आत्म-बोध एवं समाज-बोध का संघर्ष दिखाया गया।**

हिन्दी तथा बंगला के समस्या-मूलक नाटकों के मूल-भाव

हिंदी तथा बंगला बीसवीं सदी में रचित सामाजिक समस्या-मूलक नाटकों का **आंगिक पूर्णतः पाश्चात्य ढंग का** है किंतु उनकी **विचारधारा में भारतीय दर्शन तथा पाश्चात्य दर्शन का समन्वित रूप** प्रतिफलित हुआ है। डाल्स हाउज, वाइल्ड डक, हेडा गेबलर, मिसेज वारेन्स प्रोफेशन आदि की सांकेतिक, तार्किक शैली से प्रभावित होते हुए भी हिंदी तथा बंगला नाटकों का समाज भारतीय समाज ही है। इसीलिए 'सिन्दूर की होली' की नायिका चंद्रकांता को यद्यपि लक्ष्मीनारायण मिश्र ने 'नोरा' के समान आत्म-बोध से जागृत दिखाना चाहा, किंतु वह सीता, सावित्री के आदर्शों को भी न भुला सकी। **मनोवैज्ञानिकता** एवं **बौद्धिकता** इन नाटकों के पात्र पात्रियों को अत्यन्त सूक्ष्म तथा उज्जवल रूप में अंकित करती हैं। किंतु जो यह सोचते हैं कि आधुनिक युग का यह बौद्धिक नवोन्मेष केवल पाश्चात्य की देन है वे भ्रान्त धारणाओं का पोषण करते हैं। उपनिषदों के वेदान्त दर्शन में उच्च कोटि की बौद्धिकता है एवं उस सम्पद को जन साधारण के लिए सुलभ बनाने के लिए राजा राममोहन राय तथा दयानन्द सरस्वती ने अथक परिश्रम किया। रवीन्द्रनाथ के तत्व-रूपकों में यही बौद्धिक-आवेदन है किंतु उनकी शैली यथार्थवादी न होकर, स्वच्छन्दतावादी है।

समस्या-मूलक नाटकों में **लेखक का उद्देश्य अत्यन्त स्पष्ट हो उठता** है। कथा-वस्तु व पात्र उसके लिए प्रधान नहीं होते, वह उनका प्रयोग अपने सिद्धान्तों के प्रतिपादन के लिए करता है। रूमानी कथावस्तुओं में लेखक दर्शकों को मद-विह्वल नही करना चाहता, वह उन्हें जीवन की वास्तविकताओं से परिचित कराना चाहता है एवं समाज के महीन, सुन्दर तथा मिथ्या आवरण को उठाकर समाज की यथार्थ उलझनों से उन्हें अवगत कराना चाहता है। एक नवीन दृष्टिकोण, एक नवीन धारणा (आइडिया) की वह प्रतिष्ठा करना चाहता है एवं इसके लिए वह **वक्तृता-मंच (प्लेटफार्म) न चुनकर नाट्य-मंच (स्टेज)** को चुनता है ताकि **रागात्मक-आन्दोलन एवं बौद्धिक-**

उन्मेष एक साथ हो सके। इसके लिए कभी-कभी वह **लम्बी भूमिकाओं (प्रीफेसेस)** को नाटकों के पूर्व जोड़ता है क्योंकि नाटक में वह अपनी ओर से कुछ कह नहीं सकता, केवल **निर्देशन** दे सकता है।

जार्ज बर्नार्ड शा के नाटकों के पूर्व जो भूमिकाएँ हैं वे उनके नाटकों से कम महत्व-पूर्ण नहीं हैं। हिंदी में शा के अनुयायी लक्ष्मीनारायण मिश्र हुए एवं उनके नाटकों की भूमिकाएँ भी दीप्त वाणी में प्रचारित हुई—**'संन्यासी' में 'अपने आलोचक मित्र से,' 'मुक्ति का रहस्य' में 'बुद्धिवादी क्यों हूँ,'** तथा **'राक्षस का मन्दिर' में 'मेरा दृष्टिकोण'** आदि शीर्षकों के अन्तर्गत मिश्रजी ने अपने सिद्धान्तों को स्पष्ट करने की चेष्टा की है। बंगला के लेखकों ने तथा हिंदी के अन्य लेखकों ने इस तरह की भूमिकाओं का प्रयोग नहीं किया। इसका यही कारण है **नाटक विषयगत कला (आब्जेक्टिव आर्ट) है, उसमें अपने सिद्धान्तों का स्पष्ट प्रचार करना उसकी कला को मलिन करना है।** शा केवल नाट्यकार ही नहीं सांवादिक, भविष्यवक्ता तथा दार्शनिक भी थे, उनकी भूमिकाओं का अपना अलग महत्व है। मिश्रजी ने शा के विचारों में कुछ भारतीय विचारों का मिश्रण कर पाठकों के सामने रखना चाहा। 'राक्षस का मन्दिर' नाटक की भूमिका 'मेरा दृष्टि-कोण' के अन्तर्गत मिश्रजी लिखते हैं—"आज दिन हम जिसे आधुनिक सभ्यता कहते हैं—जिसमें मशीन के पुर्जों की तरह मनुष्य का संचालन हो रहा है—जिसमें मनुष्य अपने ऊपरी आवरण को सजाने में अपने भीतरी उपकरणों की अवहेलना कर रहा है,—ठह-रने वाले पीछे पड़ जायेंगे। लेकिन मैं तो जरूर कहूंगा—'ठहरो, गलत रास्ते पर जा रहे हो ठहरो।"

इसी आधुनिक सभ्यता पर तीव्र व्यंग्य तथा देव और राक्षस का द्वन्द्व बंगला नाटक **'तटिनीर विचार'** में है। शचीन सेनगुप्त ने इस नाटक में प्रेम, विवाह वैज्ञानिक प्रयोग, अदालती कानून तथा न्याय पर पात्रों के संलापों के द्वारा व्यंग्य किया है, अपनी ओर से न तो भूमिका लिखी और न विस्तृत निर्देशन दिया।

पृथ्वीनाथ शर्मा रचित **"अपराधी"** नाटक में चोर ने चुपके से घड़ी अशोक की जेब में डाल दी एवं पीछा करते हुए घड़ी के मालिक ने आकर अशोक को ही पकड़ लिया। अदालत में सबूतों के आधार पर अशोक ही अपराधी प्रमाणित हुआ। फैसला सुनाने के पूर्व ही असली चोर ने आकर अपना अपराध स्वीकार कर लिया एवं प्रमाण स्वरूप घड़ी की चेन दिखाई।

लक्ष्मीनारायण मिश्र रचित **'सिन्दूर की होली'** में भी कानून और **न्याय का प्रश्न है**। डिप्टी कलेक्टर पचास हजार की रिश्वत स्वीकार कर लेते हैं ताकि रजनी-कांत की हत्या करवाने वालों के विषय में वे मौन रहें। अर्थ के द्वारा सत्य का गला घोंट दिया जाता है। इस रिश्वत का प्रायश्चित डिप्टी कलेक्टर मुरारीलाल की बेटी

चन्द्रकला करती है और कहती है —"मेरे सिर पर—यह सिन्दूर— उस पचास हजार का प्रायश्चित है।"[1]

कानून के नाम पर जनता की आंखों पर जो धूल झोंकी जा रही है उसके मूल में आर्थिक कारण है। अगर कानून न हो तो अराजकता फैला जाये। यही आज के समाज की समस्या है। 'तटिनीर विचार' में डा० घोष जब स्वयं विष खाकर प्रमाणित कर देते हैं कि वह उनकी प्रयोगशाला से लाया गया है तब जूरी लोगों की आँखें खुलती है, 'सिन्दूर की होली' में चन्द्रकला मृतप्राय रजनीकांत को मन ही मन स्वामी रूप में वरण कर मुरारीलाल की आंखें खोल देती है, किंतु ये समाधान नहीं हैं। कटु अनुभव तथा समस्या ऐसे हल न हो सकने वाली अनिश्चयता के झोंके में हमारा समाज किंकर्तव्य-विमूढ़ होकर खड़ा है। प्रश्न यह हो सकता है कि अगर लेखक समाधान का इंगित नहीं दे सकते तो समस्याओं से चित्रण की आवश्यकता ही क्या है ? समस्याओं के चित्रण का अलग महत्व है। लेखक समाज की दुर्बलताओं के प्रति हमें सचेत कर देते हैं। हमारा समाज-चैतन्य दीप्त हो उठता है। भविष्य ही हमें बता सकता है कि मानव समाज विज्ञान के विध्वंसी प्रभाव से एवं पूँजीवाद के शोषण से किस तरह अपने को मुक्त करेगा। मानव समाज की प्रगति में आस्था रखने वाले लेखक समाज की दुर्बलताओं को पहचान कर उन्हें सबके समक्ष रख देते हैं ताकि गुप्त रूप से वे अपने विषाक्त प्रभाव विस्तृत न कर सकें। हिंदी तथा बंगला लेखकों ने अपने समाज चैतन्य का यथोचित परिचय दिया।

यांत्रिक-सभ्यता के इस युग में कानून, राजनीति, शिक्षा, अन्तर्राष्ट्रीय नीति, युद्ध, विभिन्न पेशा आदि से संबंधित समस्याएँ हैं किंतु आर्थिक समस्या एवं यौन-समस्या ही प्रमुख हैं। यौन-समस्या पर हिंदी एवं बंगला में अनेक नाटक लिखे गये जब कि राजनीति, अन्तर्राष्ट्रीय नीति एवं युद्ध नीति संबंधी समस्याओं पर रचित नाटक नगन्य हैं। इसका यही कारण है कि यौन-समस्या पर रचित नाटकों में आदि रस के उद्रेक का अवसर मिलता है एवं हिन्दी तथा बंगला के नाट्यकारों पर पाश्चात्य-शैली का कितना भी प्रभाव पड़े, रस से वे अपने को तथा दर्शकों को वंचित नहीं रखना चहाते। **उनके समस्या-नाटकों में बौद्धिकता का प्रकाश कितना भी क्यों न हो, रागात्मक प्रकृति का प्रकाशन भी यथेष्ट हुआ है।**

बंगला नाट्य-साहित्य के अति-आधुनिक नाट्यकारों में श्री जलधर चट्टोपाध्याय रचित **'रीतिगत नाटक'** उल्लेखनीय सामाजिक नाटक है। इसका अभिनय सन् १९३६ में हुआ। **बंगला नाटकों को रंगमंच का सर्वदा सहयोग प्राप्त हुआ** एवं बंगला रंगमंच के क्षेत्र में संस्कृत कालेज के अध्यापक शिशिर कुमार भादुड़ी का आविर्भाव नाटकों के विकास में सहायक हुआ।'रीतिमत नाटक' में नाटक की विचार पद्धति तथा

१—सिन्दूर की होली—लेखक लक्ष्मीनारायण मिश्र, तीसरा अंक।

परिणति समस्या नाटकों के समान नहीं है किन्तु साधारण सामाजिक नाटकों से भी यह भिन्न है एवं कलात्मक दृष्टि से प्रौढ़ है। हिंदी में भी लक्ष्मीनारायण मिश्र के सिवा अन्य लेखकों ने समस्या-नाटकों की तार्किक पद्धति पूर्णतः नहीं अपनाई, यद्यपि सामाजिक समस्याओं का चित्रण करना उनका प्रधान उद्देश्य हो गया था। समस्याओं की अनिश्चयता ही में अन्त भी भारतीय लेखकों के लिए रुचिकर नहीं था।

हिंदी में उपेन्द्रनाथ अश्क रचित **"कैद और उड़ान"** यद्यपि दो नाटक हैं किंतु एक ही विषय के दो पहलू हैं। प्रथम में **समस्या** है, द्वितीय में **भविष्य का समाधान** है। 'कैद' की नायिका **अप्पी** का विवाह उसकी बहन की मृत्यु के उपरान्त उसके प्रौढ़ पति प्राणनाथ से होता है। अप्पी **दिलीप** से प्रेम करती हुई भी प्राणनाथ की गृहस्थी में उसी तरह कैद में है जैसी एक पिंजड़े की मैना। सन् १९५० में लेखक ने इस नाटक की रचना की एवं 'कैद' में वर्तमान समाज में जो जाति-भेद के अनुसार मां बाप शादी कर देते हैं उसके कारण कितने जीवन घुट घुटकर बर्बाद हो जाते हैं, उसका चित्र है। वर्तमान की नारी में वह शक्ति नहीं है कि वो समाज के विरुद्ध विरोध कर सके। जो विद्रोह करते हैं वे भी सुख से जीने नहीं पाते। किन्तु 'उड़ान' की नायिका माया भविष्य के समाज की नारी है। उसमें इतनी शक्ति आ गई है कि वह पुरुष के कामुक रूप, पुजारी रूप एवं अधिकारी के रूप को ठोकर मार कर अपना पथ स्वयं निर्मित कर सके। **कामुक शंकर, प्रेमिक रमेश एवं अनुदार पति मदन** तीनों को वंचित कर वह शक्तिमयी नारी पहाड़ी की पगडंडी पर एकाकिनी उसी तरह चल पड़ती है जिस तरह आत्म-बोध से जाग्रत इब्सन के नाटक 'डाल्स हाउज' की नायिका नोरा लगभग एक शताब्दी पूर्व अपने अनुदार पति को त्याग कर चल पड़ी थी। अखनूर की घाटी एवं नाहुंग की लहरों के वातावरण में सृजित ये नारियाँ भारतीय हैं— एक वर्तमान की विवश नारी, दूसरी भविष्य की मुक्त नारी। इस नाटक के प्रारम्भ में **धर्मवीर भारती** की व्याख्या बहुत उत्कृष्ट है। व्याख्या में विवाह द्वारा नारी को अपनी सम्पत्ति बना लेने की प्रथा के विषय में एंगेल्स की उक्ति अत्यन्त महत्वपूर्ण है—"जब इतिहास में पहले-पहल एक-विवाह प्रथा प्रकट हुई तो वह स्त्री और पुरुष के समझौते के रूप में नहीं आई—एक विवाह प्रथा का आरम्भ पुरुष द्वारा स्त्री को पराधीन बना लेने में हुआ। लेकिन इस प्रथा के प्रचलन से यौन संबंधों की पुरानी स्वाधीनता पूर्णतया लुप्त नहीं हो गयी। **इस सभ्यता ने जो कुछ उत्पन्न किया है, वह सब दो मुँहा है।**"[1]

विवाह कर स्त्री को अपनी संपत्ति समझना, वंश वृद्धि कर उनके लिए जायदाद रख जाना। इन सबके मूल में मानव सभ्यता की आर्थिक स्पृहा है। आर्थिक परवशता के

१—कैद और उड़ान—'व्याख्या' धर्मवीर भारती, पृष्ठ-१७
(द्वितीय संस्करण, सन् १९५५)

कारण स्त्री को अपनी स्वाधीनता खो देनी पड़ती है एवं स्त्री जाति की इस परवशता की स्थिति में उत्कृष्ट नवीन पीढ़ी जन्म नहीं ले सकती। समाज व्यवस्था के लिए संयम एवं नीति की आवश्यकता है किन्तु बर्नार्ड शा ने सृजनात्मक विकासवाद के संबंध में बताया है कि **जीवन-वेग** (Life fource) की शक्ति नीति की परवाह नहीं करती। समाधान ढूँढ़ निकालना अत्यंत कठिन है। समाज के कठिन नियम एवं व्यक्ति की स्वाधीनता में सामंजस्य उपस्थित करना है। आज के समाज का जो चित्र है उसमें **दुर्बल के लिए ही नीति-नियम हैं, सबल के लिए नहीं।** 'उड़ान' नाटक में मदन माया को शंकर तथा रमेश के बीच पाकर उसके प्रति विश्वास खो बैठता है। शंकर माया को केवल अपना शिकार समझता है एवं रमेश भावोच्छ्वासों द्वारा उसे स्वर्ग की देवी बना देना चाहता है। एक रक्त-मांस की नारी पुरुष से जिस सहयोग एवं समवेदना की अपेक्षा करती है वह किसी पुरुष में नहीं है। किंतु मदन, शंकर तथा रमेश के लिए कोई नैतिक बन्धन नहीं हैं क्योंकि वे सबल हैं, आर्थिक दृष्टि से भी स्वाधीन हैं। 'कैद और उड़ान' नाटक में समाज में नारी की दयनीय परिस्थिति एवं पुरुष की स्वार्थान्ध-अनुदारता का जो चित्र है वही चित्र शचीन सेनगुप्त के नाटक 'तटिनीर विचार' में भी है। उस नाटक में वसन्त न तो पत्नि ललिता के साथ न्याय करता है और न प्रेयसी तटिनी के साथ। हिन्दी तथा बंगला के नाटककारों ने आज के समाज के **पीड़ित नारी वर्ग** के प्रति संवेदना प्रगट करने में अत्यन्त सहृदयता का परिचय दिया है।

समाज व्यवस्था के कई पक्ष हैं—

१—समाज का व्यक्ति से सम्बन्ध,
२—पुरुष का स्त्री से सम्बन्ध,
३—एक वर्ग का दूसरे वर्ग से सम्बन्ध,

किसी भी समाज को सुव्यवस्थित रूप से संगठित करने के लिए विज्ञान, दर्शन, धर्म सभी की आवश्यकता है। **राजनीति तथा अर्थनीति समाज रूपी रथ के दो पहिये हैं।** प्रेम तथा काव्य समाज की आत्मा हैं। प्लेटो ने प्रेमी, पागल तथा कवियों की उपेक्षा की **किन्तु भारतीय दर्शन के अनुसार स्त्री पुरुष के संबंध का आधार एक मात्र प्रेम है।** प्रेम एवं सतीत्व के बिना भारतीय नारी अपना अस्तित्व ही खो बैठेगी। उसी तरह ईश्वर विश्वास के बिना, आध्यात्मिकता के बिना भारत अपना अस्तित्व खो बैठेगा।

बंगाल की प्रधान समस्या आर्थिक है इस कारण विवेकानन्द जैसे धर्मवीर ने भी घोषणा की—"मैं उस ईश्वर को नहीं मानता जो दरिद्र की भूख न मिटा सके।" किंतु इसके साथ ही लोक-प्रिय नेता सुभाषचन्द्र बोस ने जो समाजवादी आर्थिक-व्यवस्था के पक्षपाती थे, कहा—"भारत को अपनी परम्परा के अनुकूल समाजवाद की सृष्टि करना

होगी।" अतः जब भारतीय साहित्यिक यूरोप की नायिकाओं के अनुरूप भारतीय नायिकाओं की सृष्टि करते हैं तब उनके साथ हमारा बौद्धिक मेल भले ही स्थापित हो किंतु हृदय का तादात्म्य नहीं हो पाता। उसी तरह **जब वे मार्क्सवादी दर्शन से अत्यंत प्रभावित प्रतीत होते हैं तब वे भारतीय समाज का चित्र यथार्थ रूप में अंकित नहीं कर पाते हैं।**

लक्ष्मीनारायण मिश्र के नाटक 'सिन्दूर की होली' की दो पात्रियाँ चन्द्रकला एवं मनोरमा हिंदी के समस्या-नाटकों की अपूर्व दृष्टि हैं। दोनों ही शिक्षिता तथा बुद्धिवादिनी हैं। वे तर्क तथा युक्ति के द्वारा जीवन-पथ का निर्माण करना चाहती हैं। मनोरमा अपने प्रेमी मनोजशंकर से कहती है—"आवेश क्यों? शारीरिक व्यभिचार से कहीं भयंकर है मानसिक व्यभिचार। संसार की समस्याएँ--जिनके लिए आजकल इतना शोर मचा है तराजू के पलड़े पर नहीं सुलझाई जा सकती—वे पैदा हुई हैं बुद्धि से और उनका उत्तर भी बुद्धि से ही मिलेगा।"[१]

मनोरमा भारतीय समाज की बाल-विधवा है एवं वह समाज का अनुशासन मानकर पवित्र जीवन बिताना चाहती है एवं मानसिक व्यभिचार को भी प्रश्रय नहीं देना चाहती। इस परिस्थिति में वह एक आदर्श भारतीय महिला है। पहले पहल वह सोचती है कि मनोज से विवाह तो नहीं करेगी किंतु प्रेम का सम्पर्क रखेगी। किंतु अंत में बुद्धिवादिनी नारी की ही विजय होती है। वह मनोज के प्रेम को भी ठुकराती हुई कहती है—"वादे सभी सच्चे नहीं होते—इसीलिए सावधान रहना पड़ता है। मैंने जब विचार किया मुझे मालूम हो गया कि तुम मेरे मोह में इस तरह का संकल्प कर रहे हो। तुम्हारे मन में मेरे प्रति विकार बना रहेगा।"[२] मनोरमा का चरित्र-चित्रण बहुत सुन्दर एवं स्वाभाविक हुआ है किंतु नायिका चन्द्रकला का चरित्र अत्यंत अस्वाभाविक सा प्रतीत होता है। प्रथम दर्शन में ही वह रजनीकान्त से प्रेम करने लगती है—यह उसकी भावुकता का ही परिचायक है किन्तु अंत में विवाहित, मरणासन्न, अचेतन रजनीकांत के हाथों अपनी मांग में सिन्दूर भर लेना एवं उसकी बुद्धिवादी व्याख्या करना समीचीन नहीं लगता। वह कहती हैं—"शास्त्र और संस्कार मेरा मत है—मेरी आत्मा को जो स्वीकार—बस और कुछ नहीं—"[३]

निस्सन्देह मिश्रजी ने बुद्धिवादिनी भारतीय नारी का ही चित्र हमारे सामने रखने की चेष्टा की, यूरोपीय नारी का रूपान्तर प्रस्तुत करना उनका ध्येय नहीं था।

१- सिन्दूर की होली—लेखक लक्ष्मीनारायण मिश्र, दूसरा अंक

२—सिन्दूर की होली—दूसरा अंक

३—सिन्दूर की होली—तीसरा अंक

आधुनिक युग की ऐसी ही तेजस्विनी, बुद्धिवादिनी एवं भारतीय आदर्शों में पली नारी है जलधर चट्टोपाध्याय रचित नाटक **'सिंथिर सिन्दूर'** की नायिका मनीषा। इस नाटक में अशोक सेन जमींदार को षड़यंत्रों द्वारा फंसाना चाहते हैं, उनके पास धन-बल है अतः लोक-बल भी है। इस अत्याचारी दुर्घर्ष शक्ति के विरुद्ध मनीषा की मांग का सिन्दूर विजयी होता है।

मनीषा अशोक से प्रेम करती है एवं उसमें आत्म शक्ति के साथ कर्म-शक्ति भी है। **मनीषा समाज की परवश, पिछड़ी हुई नारी नहीं** है जब अशोक कहते हैं "Justice is sold and bought by the highest bidder एवं मनीषा उसे बचाने के लिए रुदन के सिवा और कुछ नहीं कर सकती तब मनीषा कहती है—**'मैयेदेर चोखे शुधू जल थाके ना अशोकदा, आगुन ओ थाके।** इच्छे कोरले जै-कोनो-मेये तार चोखेर आगुने विश्व-सृष्टि ज्वालिये पुड़िये छारखार कोरे दिते पारे।"[१] अन्त में रहस्य खुलता है कि अशोक माधव राय के नाति की वधु रानी के भाई हैं एवं मनीषा की मांग पर सिन्दूर देख कर माधव राय अशोक को क्षमा कर देते हैं। यह नाटक पश्चिम के समस्या-मूलक नाटकों के अनुकरण पर रचित हुआ है यह नहीं कहा जा सकता है। इस नाटक में दो ही अंक हैं, प्रथम अंक में चार एवं द्वितीय अंक में सात दृश्य हैं। वित्तशाली जमींदार के विरुद्ध जब कोई खड़ा होता है तब किस तरह अर्थ की शक्ति के द्वारा उस गरीब को फांसी के फंदे में भी लटकाया जा सकता है इसका सुन्दर उदाहरण इस नाटक में है। एक वेश्या का खून होता है एवं दरोगा तथा दो साक्षियों को धन देकर खून का अपराध अशोक पर लगाया जाता है। समाज में इस तरह कितने ही गरीब धनवानों के शिकार बन जाते हैं किन्तु समस्या का समाधान नहीं हो पाता। विरोध करने वालों की दशा अशोक के समान हो जाती है। इसमें अपराध की समस्या हिन्दी में पृथ्वीनाथ शर्मा रचित 'अपराधी' से मिलती जुलती है किन्तु आधुनिक शिक्षिता नारी का जो चित्र 'सिंथिर सिन्दूर' में है वह पृथ्वीनाथ शर्मा रचित 'दुविधा' से भिन्न है। 'सिंथिर सिन्दूर' की शिक्षिता नारी मनीषा प्रेममयी भी है, बुद्धि-दीप्त तथा आत्म-विश्वासी भी है।

मन्मथ राय रचित **'वन्दिता'** नाटक की नायिका स्वच्छन्द है। वह पुरुष की लालसा का शिकार बनती है किन्तु आधुनिक युग में वह गृह-कारा में बन्दिनी भी नहीं रह सकती। नारी की और एक समस्या **पतिताओं की है। पुरुषों की लालसा से एवं व्यवसाय के दृष्टिकोण से पतिताओं की सृष्टि होती है। वही आर्थिक कारण एवं काम-वासना** इसके भी मूल में है जिस कारण एक-विवाह का प्रारम्भ हुआ। समाज की दृष्टि में पतिताएँ नीच समझी जाती हैं एवं उन्हें नीच बनाने वालों की ओर कोई प्रतिकार

१—सिंथिर सिन्दूर—लेखक श्री जलधर चट्टोपाध्याय, द्वितीय अंक चतुर्थ दृश्य

की भावना से नहीं देखता। वेश्याओं में भी उच्च मानसिक गुण सम्पन्न स्त्रियां हो सकती हैं एवं तथाकथित सम्भ्रान्त एवं आभिजात्य परिवार में भी दुश्चरित्रा स्त्रियां हो सकती हैं। सामाजिक व आर्थिक परिस्थिति से किसी के चरित्र का मूल्यांकन नहीं हो सकता।

इस तरह के नारी चरित्र अंग्रेजी में आस्कर वाइल्ड रचित 'लेडी विंडरमियरस फैन' (सन् १८९२) में है। जार्ज बर्नार्ड शा रचित 'मिसेस वारेन्स प्रोफेशन' (सन् १९०२) में इस वेश्या व्यवसाय का बहुत ही सुन्दर विश्लेषण हुआ है। यह समाज का एक भीषण रोग है जिससे मुक्ति पाना पूँजीवाद के कायम रहते हुए असम्भव है। दुर्भाग्यवशत जिन स्त्रियों का हरण होता है, उनपर बलात्कार होता है व आर्थिक मजबूरी होती है। वे भी अनेक सम्भ्रांत स्त्रियों की बराबरी कर सकती हैं। दैहिक विकार से ही नारी जीवन को कलंकित कर हम बहुत बड़ा सामाजिक अन्याय करते हैं। जलधर चट्टोपाध्याय **'प्राणेर दाबी'** नाटक की भूमिका में लिखते हैं—"दैहिक प्रतिजोगिताय पुरुषेर काछे नारीर पराजय अनिवार्य होलेओ, तार 'प्राणेर दाबी' अग्राह्य हबे कनो ? नाविकेर दिउ-निर्णय यन्त्रेर मत नारीपन जतक्षण कोनो ध्रुव लक्ष्ये अविकम्पित थाकबे, ततक्षण तार शुचिताके अस्वीकार करबार अधिकार कोनो समाजेर नइ।" इस नाटक में पतिता अचला के प्रेम एवं माहात्म्य पर लेखक ने प्रकाश डाला। लक्ष्मीनारायण मिश्र की सृष्टि अश्गरी का चरित्र भी केवल नीचता से पूर्ण नहीं है। **'राक्षस का मंदिर' नाटक में वेश्या** अश्गरी को घेर कर जिनके मन में देव और राक्षस का द्वन्द्व चलता है उसी द्वन्द्व के विश्लेषण की अधिक आवश्यकता है। इसमें नारी की ही विजय एव पुरुषों की पराजय का चित्रण हुआ है। इस नाटक की भूमिका **'मेरा दृष्टिकोण'** में मिश्रजी लिखते हैं—'जरूरत है समझ जाने की, जिन चीजों को हम बुराई, भलाई, सुख, दुःख, पाप, पुण्य, स्वर्ग या नरक कहते हैं उनमें सामन्जस्य पैदा करने की—उनका भेद मिटा देने की, इन सही पैमानों के अभाव में मिश्रजी रचित "आधी रात" की नायिका माया अपने विभिन्न प्रणय-व्यापारों में उलझ कर आत्म-हत्या कर लेती है। "संन्यासी" की किरणमयी वृद्ध दीनानाथ से विवाह करती है एवं मुरलीधर से प्रेम करती हैं। मिश्रजी रचित 'मुक्ति का रहस्य' नाटक में उमाशंकर एक पत्नी के होते हुए भी आशादेवी के प्रति आकर्षित होते हैं किंतु जिस डाक्टर की सहायता से उनकी पत्नी को जहर देकर मारा जाता है अन्त में बाध्य होकर आशादेवी को उसी डाक्टर से विवाह करना पड़ता है।

इन सामाजिक मजबूरियों का चित्रण करना, अन्यायों का भंडाफोड़ करना एवं खोखले आदर्शों का विश्लेषण करना आज के **'तत्वदर्शी कलाकार'** का लक्ष्य होना चाहिये। साधारण कोटि के सामाजिक नाटक जिनमें कई सामान्य नर-नारियों के प्रेम, स्नेह, ममता, सुख, दुःख आदि का चित्रण रहता है उनके सिवा आज के नाटककार किसी विशिष्ट समस्या पर प्रकाश डालना अपना कर्त्तव्य समझते हैं। यौन-समस्याओं की ओर ही उसकी दृष्टि अधिक गई है किन्तु अन्य समस्याओं

के प्रति भी हिंदी तथा बंगला के नाटककार उदासीन न रहे। उदयशंकर भट्ट ने 'कमला' नाटक में नारी का बलिदान एवं सामन्तीय संस्कृति की निर्ममता का चित्र खीचा है। उपेन्द्रनाथ अश्क ने **'स्वर्ग की झलक'** में शिक्षिता नारी की उच्छृंखलता का दृश्य दिखाकर रघुनंदन के हृदय से स्वर्ग के मोह को मिटाकर उसे पुनः उसकी अर्धशिक्षिता पत्नि रक्षा के प्रति सदय होते दिखाया है। लेखक का उद्देश्य है आधुनिक उच्चशिक्षिता नारियों के स्वच्छन्द प्रेम एवं विवाहित जीवन की विषमता का चित्र खींचना है एवं उसकी यह धारणा है कि स्वच्छन्द प्रेम आधुनिक सहशिक्षा एवं पाश्चात्य सभ्यता का प्रभाव है जो भारतीय जीवन में भी प्रवेश कर उसे अशांतिपूर्ण बना रहा है। किन्तु महाभारत में अनेकों ऐसी स्वच्छन्द-प्रेमकथाओं का वर्णन है एवं शिक्षा के साथ स्वच्छंद प्रेम का संबंध दिखाना याने शिक्षा के महत्व को घटना है। इस स्वच्छंद प्रेम से भी बढ़ कर और एक संकट है वह है आर्थिक संकट। इस आर्थिक संकट से उलझने के लिए पुरुषों के साथ स्त्रियों को भी आगे बढ़ना होगा एवं शिक्षा उनके नैतिक पतन का कारण नहीं होगी वरन् आत्म-शक्ति को वह बढ़ायेगी। **बंगला नाटककारों ने शिक्षिता नारियों का अधिक सहानुभूतिपूर्ण एवं दीप्त चित्रण किया है**—इसका प्रथम कारण तो यह है कि बंगाल के जीवन एवं साहित्य में सर्वत्र **नारी-पूजा** के भाव हैं, द्वितीय कारण यह है कि आर्थिक संकट का सामना करने के लिए बंगाल का नारी समाज कटिबद्ध हो उठा है एवं साहित्यिकों के दृष्टिकोण से यह प्रगति का लक्षण है।

लक्ष्मीनारायण मिश्र रचित 'संन्यासी' नाटक में विश्वकांत तथा अफ़गानी अहमद एशियाई संघ की स्थापना की चेष्टा करते हैं—इस तरह के कई उदाहरणों से स्पष्ट होता है कि यौन-समस्या के बाद ही हिंदी नाट्यकारों की दृष्टि राजनैतिक समस्या की ओर गई एवं बंगला नाट्यकारों की दृष्टि आर्थिक एवं शरणार्थी-समस्या की ओर गई। हिन्दी साहित्य पर गांधीवाद का एवं बंगला साहित्य पर क्रांतिवाद का अधिक प्रभाव पड़ा। हिंदी नाट्य क्षेत्र में सेठ गोविंददास तथा हरिकृष्ण प्रेमी गांधीवाद से सबसे अधिक प्रभावित हुए। हरिकृष्ण प्रेमी रचित **'छाया'** एक प्रसिद्ध समस्या-नाटक है जिसमें कवि प्रकाश के **साहित्यिक जीवन की समस्या** का चित्र है। कवि की पत्नी छाया चाहती है कि कवि भाव एवं आदर्शों के साथ व्यवहारिक बुद्धि के उपयोग द्वारा जीवन की विषमता दूर करे, किंतु यह वैषम्य केवल व्यक्ति-जनित है।

सेठ गोविन्ददास रचित **'सेवापथ'** एवं **'प्रकाश'** में राजनैतिक समस्या के चित्र हैं। 'सेवापथ' में निम्न श्रेणी, मध्यम श्रेणी एवं अभिजात श्रेणी के संघर्ष में गांधीनीति की विजय दिखाई जाती है। 'प्रकाश' में भी वही **गांधीनीति है—एक ओर बाहरी चमक दमक एवं आन्तरिक दैन्य तथा दूसरी ओर आत्म-बलिदान** की महिमा का चित्र है। सेठजी के इन नाटकों में वैभव के वातावरण का चित्रण, व्यवहारिक आदर्शवाद की प्रतिष्ठा एवं व्याख्यात्मक बाह्य संघर्षों की प्रधानता है।

आर्थिक-समस्या पर रचित बंगला नाटक **'नवान्न'** अत्यन्त प्रसिद्ध हुआ। विजन भट्टाचार्य ने सन् १९४४ में इसकी रचना की। सन् १९४७ में इसका हिन्दी संस्करण भी प्रकाशित हुआ। श्रीरंगम् के मंच पर इस नाटक का अभिनय हुआ एवं **भारतीय-गणनाट्य संघ** के द्वारा भी अभिनीत होकर इस नाटक की लोकप्रियता बढ़ी। इस नाटक में वस्तुवादी समष्टि-चेतना से उद्बुद्ध होकर लेखक ने दुर्भिक्ष पीड़ित कृषक समाज का अत्यंत करुण एवं सहानुभूतिपूर्ण चित्रण किया है। इस कोटि का नाटक सामाजिक नाटकों का चरम उत्कृष्ट रूप कहा जा सकता है जिसमें समाज एवं व्यक्ति के विरोध से लेखक की दृष्टि उठकर और व्यापक एवं महान् हो जाती है। वह **बृहत्तर समाज-जीवन का चित्र** खींचता है एवं समाज-चेतना के आलोक में एक विराट् गण-समुदाय के अभ्युदय की वार्ता वहन कर लाता है।

हिन्दी तथा बंगला के समस्या-मूलक नाटकों का रचना-विधान

हिंदी तथा बंगला के समस्या-मूलक नाटकों ने रचना-विधान की दृष्टि से पाश्चात्य समस्या-मूलक नाटकों के रचना-विधान को अपना लिया। समस्या नाटकों में वस्तु एवं चरित्रों का अधिक महत्व नहीं होता, लेखक अपने सिद्धांत की प्रतिष्ठा के लिए वस्तु एवं चरित्रों को माध्यम बनाता है इस कारण समस्या-नाटकों के वस्तु का विन्यास भी अन्य नाटकों से भिन्न होता है। अन्य प्रकार के नाटकों में द्वन्द्वों का प्रारंभ विकास, चरम सीमा उतार, अन्त आदि होता है, किंतु समस्या नाटकों में समस्या का **प्रारम्भिक परिचय** (**एक्सपोजिशन**) उसकी **स्थिति** (**सिचुएशन**) एवं उस पर **वाद-विवाद** (डिसकशन) कथावस्तु के ये तीन अंग होते हैं। इन अंगों के अनुसार साधारण नाटक पंचांकी होते थे किन्तु समस्या-मूलक नाटक तीन अंकों में ही समाप्त हो जाते हैं। अन्त में साधारण नाटकों में संस्कृत नाट्यशास्त्र के अनुसार नायक को फल की प्राप्ति होती है एवं पाश्चात्य नाट्यशास्त्र के अनुसार सुखांत व दुःखांत परिणति दिखाई जाती है किन्तु समस्या-नाटकों में **समस्या की परिस्थिति को ही बौद्धिक ढंग से प्रकाशित करना** नाटककार की कुशलता का द्योतक है। अतः ऐसे नाटकों में समस्या का अंत नहीं होता, अनिश्चयता ही में नाटक का अन्त होता है। पात्रों के शील-वैचित्र्य का चित्रण करना भी नाटककार का उद्देश्य नहीं होता, वह **पात्रों को अपनी विचार-धाराओं का प्रतिनिधि बनाता है**। अतः ये किसी **वर्ग से चुने जाते** हैं। इसी तरह संवादों का उद्देश्य घटना व पात्र को विकसित करना नहीं होता, **संवादों की सार्थकता उनके आलोचनात्मक मूल्य में है।** स्वगत कथन, काव्यात्मक व दार्शनिकता पूर्ण अलंकृत व बोझिल कथन समस्या नाटकों के लिए अनुपयुक्त हैं। **बौद्धिक-तत्व-प्रधान इन नाटकों के लिए गीतों की भी कोई सार्थकता नहीं है।** समस्या-नाटकों की शैली तार्किक व **आलोचनात्मक** होती है अथवा **मनोविश्लेषणात्मक**। अपने प्रतिपाद्य-विषय के बारे में नाटककार जो कुछ कहना चाहता है उसे वह भूमिका (प्रीफेस) के अन्तर्गत व्यक्त करता है! इनके सिवा मनो-वस्तु एवं प्राणवस्तु के यथार्थ रूपायन के लिए अभिनय संबंधी प्रयोग-कौशल की भी आवश्यकता होती है जिनका **निर्देशन तथा दृश्य-वर्णन** नाटककार विशद् रूप से कोष्टकों

के अन्दर सूचित कर देता है। विषय-वस्तु की सांकेतिकता प्रयोग-कौशल से मार्मिक हो उठती है।

इब्सन का प्रसिद्ध यथार्थवादी शैली का समस्या-नाटक 'डाल्स हाउज' पांच अंकों का है किन्तु समस्या नाटकों में प्रारम्भ, परिस्थिति एवं वाद-विवाद के रूप में वस्तु विन्यास होने के कारण तीन अंकों में नाटक लिखने की परिपाटी चल पड़ी। इसका और एक कारण है कि ढाई, तीन घंटों से अधिक आज का कर्म व्यस्त समाज नाटक देखने में नहीं बिता सकता। संस्कृत नाटक तथा लोक-नाटक रस प्रधान होते हैं। अत: वे दीर्घ होते हैं किन्तु बौद्धिकता - प्रधान नाटक यदि अधिक लम्बे हों तो दर्शकों के ऊब जाने की भी सम्भावना रहती है। हिन्दी लेखकों ने विशेषकर लक्ष्मीनारायण मिश्र और पृथ्वीनाथ शर्मा ने तीन अंकों का ही प्रयोग किया। मिश्रजी का **'सिन्दूर की होली' तीन अंकों का है। पृथ्वीनाथ शर्मा के नाटक 'दुविधा'** तथा **'अपराधी' तीन अंकों के** हैं तथा उग्र का **'आवारा' तीन अंकों का है।** सुगठित समस्या-नाटकों में अंक ही होते हैं उसके अन्तर्गत दृश्य नहीं होते एवं संकलन-त्रय का निर्वाह होता है। किसी के वास-गृह के ड्राइंग-रूम में किसी प्रसंग की समस्यात्मक परिस्थिति का निरूपण होता है। बाह्य-घटनाएँ नहीं के बराबर होती हैं तथा पात्र विशिष्ट वर्ग व विशिष्ट मानसिक स्थिति के होते हैं। 'सिंदूर की होली' समस्या-नाटक की शैली की दृष्टि से हिंदी तथा बंगला नाट्य-साहित्य में एक सफल सृष्टि है। उग्र के 'आवारा' में प्रत्येक अंक में अनेक दृश्य हैं। स्थान एक्य का निर्वाह भी बहुत कम लेखकों ने किया है। बंगला नाटक 'तटिनीर विचार' में कोई अंक विभाजन नहीं, दृश्य-विभाजन है एवं वह भी प्रथम पर्व, तटिनीर घर, नारी प्रगति-संघ, ललितार घर, वसन्तर घर आदि शीर्षकों के रूप में हैं। बंगला के अधिकांश सामाजिक नाटक पंचांकी हैं एवं दृश्यों में भी विभाजित हैं। बंगला नाटकों ने विलायती मंच-कौशल को एवं यथार्थवादी शैली को तो झटपट अपना लिया किन्तु अपनी मौलिकता एवं रसात्मकता का परिचय देने से वे कभी न चूके। जिस प्रकार बंगला नाटकों का गैरिश-छन्द अपनी सृष्टि है उसी तरह मंच-कौशल की दृष्टि से गिरीशचन्द्र द्वारा प्रवर्तित कुछ लोक-नाटकों के प्रयोग भी उनकी अपनी सृष्टि है। लोक-नाट्यों की एक विशेषता यह है कि उसमें अभिनेता एवं दर्शकों का दूरीगत एवं हृद्गत व्यवधान बहुत कम रहता है। थियेटर के नाटकों की उस दूरी को मिटाने के लिए श्री जलधर चट्टोपाध्याय रचित **पी० डब्ल्यू० डी०** का **अन्तिम दृश्य** उल्लेखनीय है....

"(एइ समय एकटा भूल होइवा गेला, अभिनेता जो अभिनेतृगण मने कोरिलेन नाटक शेष होइया गियाछे—एकलेइ निजेर पोषाक खुलिया फेलिलेन। केहो बा गुनगुन कोरिया गान गाहिते छिलेन....केहो बा अभिनयेर समालोचना कोरितेछिलेन। एकटा विशृंखला आरम्भ होइलो। हठात् प्रमटार खाता, बांशी ओ टार्च लइया ढुकिलेन।)"

मनोवस्तु एवं विषय-वस्तु के समन्वय की दृष्टि से रचित समस्या-नाटकों में विजन भट्टाचार्य का 'नवान्न' एवं उपेन्द्रनाथ अश्क का 'कैद और उड़ान' महत्वपूर्ण

सृष्टि हैं। हिन्दी तथा बंगला नाटककारों के लिए यही उचित है कि वे अपनी एक **समन्वयात्मक भारतीय ढंग की शैली** खोज निकालें, पश्चिम का अंधानुकरण न करें। 'नवान्न' नाटक में चार अंक हैं एवं प्रत्येक अंक में कई दृश्य हैं। अन्धकार तथा आलोक की धूमिल पटभूमि में हृतश्री ग्राम की छवि, किसानों की टूटी फूटी झोपड़ियां, अस्त-व्यस्त गृहस्थाली, दुर्भिक्ष के बाद का दृश्य, सेवाश्रम आदि हतभाग्य बंगाल के किसानों का करुण चित्र हमारे सामने खींच देता है, लेखक की कुशलता इसी में है कि उसने किसानों की निर्धनता एवं महाजनों के शोषण पर आलोचना नहीं की, उस शोषण के करुण परिणामों को दृश्यों में विन्यस्त कर दिया है। **पश्चिम के समस्या नाटकों की प्रचारात्मक-आलोचनात्मक शैली** को ही लक्ष्य कर 'आवारा' नाटक की 'भूमिका आरु भपकी' में **उग्रजी** लिखते हैं...'मुझे प्रचार या सदाचार के ठोस या पोले विचारों से पर-हेज नहीं, अगर कोई उन्हें प्रचारक या पोलानन्द की हैसियत से पसरावे। मेरा दावा इतना ही है कि नाटक को आदि, मध्य और अन्त में—पहले नाटक होना चाहिए, फिर कुछ और।'

नाटक के इसी नाटकत्व के विषय में, जिसके अनुसार नाटक केवल समस्या की आलोचना नहीं, भाव क्रान्ति की अभिव्यक्ति भी है, श्री विजन भट्टाचार्य **'नवान्न' नाटक की भूमिका में लिखते हैं**—'वृहत्तर सामाजिक जीवनेर पटभूमिते सांस्कृतिक जीवनेर परिप्रेक्षिते वास्तव अवस्थार घात-प्रतिघाते निरन्तर जे नतून नतून समस्यार उद्भव होच्छे, **दिशि मते भावविप्लववादेर जारक रसे सेइ वास्तव सत्यगुलोके जारिये** साधकेर परिशुद्धि निये निर्दिष्ट शिल्पेर आंगिक संगत रूपरेखागुलोके टानते हबे सतर्क तूलिलि-खने।'

...इन भूमिकाओं के उद्धरण द्वारा प्रमाणित होता है कि हिन्दी तथा बंगला के अधिकांश नाट्यकारों का उद्देश्य पाश्चात्य एवं प्राच्य रचना-विधान का **समन्वय** था। भारतीय संस्कृति, भारतीय रस सिद्धान्त तथा भारतीय-नाट्य-कला के आंगिक को वे नवीन ढंग से ढालने की चेष्टा कर रहे थे। अश्क ने, जिन पर कि पाश्चात्य नाट्य-कला का यथेष्ट प्रभाव पड़ा, **'कैद और उड़ान' को क्रमशः तीन और चार दृश्यों में रखा है। इन दो नाटकों की शैली भी आलोचनात्मक नहीं रूमानी तथा बौद्धिक है।** विभिन्न लेखकों ने विभिन्न रूपों में वस्तु-विन्यास कर अपनी मौलिकता का परिचय दिया है।

चरित्र-चित्रण की दृष्टि से समस्या-नाटकों के पात्र अपने-अपने वर्ग के प्रति-निधि होते हैं एवं उनके कथन उनके वर्गगत अभिप्राय को ही व्यक्त करते हैं। हिन्दी तथा बंगला नाटकों ने इस दृष्टि से भी अपनी मौलिकता का परिचय दिया है। 'सिंदूर की होली' की चन्द्रकला **आधुनिक नारी की प्रतीक होकर भी भारतीय प्राचीन आदर्शों** से भी मनोबल ग्रहण करती है। **अचला, अशगरी, किरणमयी आदि के चरित्र भी पतित**

तथा उदात्त वृत्ति के समन्वय हैं । 'नवान्न' नाटक के पात्र कृषक वर्ग के प्रतिनिधि हैं किन्तु मनावोचित सुख, दुःख, आशा, निराशा, स्नेह, प्रेम तथा प्रतिशोध की भावना से जीवन्त हो उठे हैं । इस क्षेत्र में बंगला नाटकों के चरित्र-चित्रण में कई प्रतिभाशाली अभिनेताओं के अभिनय का भी योग रहा । 'रीतिमत नाटक' में प्रोफेसर दिगम्बर के रूप में शिशिर भादुड़ी, 'तटिनीर विचार' में डा० ब्वोस के रूप में अहीन्द्र चौधरी एवं 'पी० डब्ल्यू० डी० में पी० डब्ल्यू० डी० के रूप में दुर्गादास बन्दोपाध्याय ने चरित्रों को और भी उत्कर्ष प्रदान किया ।

समस्या-नाटकों में **वातावरण** निर्माण का बहुत महत्व है किन्तु इनका वातावरण-चित्रण पौराणिक व ऐतिहासिक नाटकों जैसा स्थूल न होकर सूक्ष्म होता है । जिस तरह की समस्या का उद्घाटन लेखक करना चाहता है उसी तरह की मानसिक स्थिति का निर्माण करने के लिए अत्यन्त सूक्ष्म रेखा से **स्थान, काल, पात्र का चित्रण करना** पड़ता है । वातावरण-निर्माण की कुशलता हिन्दी के नाट्यकार उपेन्द्रनाथ अश्क की रचना 'कैद और उड़ान' में **भौतिक तथा मानसिक रेखाओं से झलकती है ।** जैसे 'कैद' में पहला दृश्य—(अप्पी का घर अखनूर के प्राचीन काबे में, चनाब नदी के किनारे एक पहाड़ी पर बना हुआ है ।.... ('उड़ान' में पहला दृश्य....) (शंकर का कैम्प बर्मा की सीमा पर बांस के जंगलों में घिरी हुई एक छोटी पहाड़ी पर लगा है ।....)....ये संकेत न केवल रंगमंच निर्देशन की दृष्टि से लिखे गये हैं वरन् चरित्रों की मानसिक स्थिति, समस्या के देश काल की परिस्थिति अत्यन्त आकर्षक साहित्यिक भाषा में स्पष्ट हो उठी है । इनमें न तो नागरिक चित्रण है, न ग्रामीण, पहाड़ी और अरण्यों के सीमांत पर सभ्य और आदिम भावनाओं के निर्मम-करुण द्वन्द्व की ये **पृष्ठ-भूमियाँ है ।** 'नवान्न' नाटक के प्रारम्भ में जो निर्देशन सूचना है वह अधिक दीर्घ नहीं है किन्तु ग्रामीण वातावरण की रिक्तता एवं आसन्न हाहाकार की अभिव्यक्ति के लिए पर्याप्त है—(दिगावसाने चराचर आच्छन्न कोरे दुर्गत पल्लीर खूझे नेने आसछे रात्रि । मंच प्रायान्धकार । सुदूरेर पटभूमि रक्तिम ।....)

यह वातावरण चित्रण हिन्दी तथा बंगला नाटककारों की निजी सृष्टि है जो केवल मंच-कौशल (स्टेज क्राफ्ट) से ही अभिज्ञ नहीं भारत एवं भारतीय हृदय के कौने कौने से सुपरिचित है । इनके विपरीत **लक्ष्मीनारायण मिश्र पाश्चात्य ढंग पर वातावरण चित्रण करते हैं**....'सिन्दूर की होली' में तीसरा अंक....(रात, यों तो रात अंधेरी है ही आकाश में बादल होने के कारण भयंकर हो उठी है । बंगले के बरामदे में उसी तरह कुर्सिया पड़ी हैं । बाई ओर की कोठरी के दरवाजे के पास बरामदे में फर्श पर एक लालटेन जल रही है ।....) यहां लेखक का उद्देश्य बौद्धिक तथा मनोविश्लेषणात्मक है किन्तु वातावरण निर्माण के लिए उन्होंने **अंधेरी रात, लालटेन आदि का** मंच निर्देशन में प्रयोग किया है जो मनोवैज्ञानिक तथा प्रभावोत्पादक तो है किन्तु गंभीर एवं रहस्यात्मक नहीं है ।

यथार्थवादी शैली समस्या-नाटकों की प्रमुख देन है। उनकी समस्याएँ दैनन्दिन जीवन की समस्याएँ होती हैं, उनके पात्र दीन, हीन, रिक्त, जीवन की विषमताओं से पीड़ित, बौद्धिक आग्रह से पूर्ण साधारण मनुष्य होते हैं। यथार्थवादी शैली की सबसे प्रमुख पहचान उसकी भाषा है। उच्छ्वसित उद्गारों के वायु मंडल को त्यागकर समस्या-नाटकों की भाषा धरती की कंकरीली, पथरीली जमीन पर बलिष्ठ कदमों से आगे बढ़ती है। भाषा अगर रंगमंचीय तथा साहित्यिक होने के साथ-साथ व्यावहारिक भी हो तो वही श्रेष्ठ है। मिश्रजी के समस्या-नाटकों की **भाषा विचार प्रधान है** तथा कहीं-कहीं **दीर्घ वक्तृता** के रूप में अपनी सरलता खो बैठी है, उन्होंने अधिकतर शिक्षित समुदाय का ही चित्र खींचा है। अतः उनकी भाषा **मनन-योग्य** है। भाषा के क्षेत्र में बंगला नाट्यकार विजन भट्टाचार्य ने 'नवान्न' में नवीन प्रयोग किया है। किसानों की जिन्दगी की समस्या के चित्रण के लिए **किसानों की बोली का प्रयोग यथार्थवादी शैली का आधुनिकतम रूप है**। संवादों में पात्रों की सामाजिक तथा मानसिक स्थिति का यथार्थ निरूपण होना चाहिए, बनावटी नहीं।

समस्या-नाटकों के रचना-विधान में **सांकेतिक शैली** का भी सफल प्रयोग हो सकता है जैसा कि इब्सन के कई नाटकों में है—जैसे '**वाइल्ड डक**'। रूसी नाट्यकार चेखाँव का '**सी-गल,** भी सांकेतिकता से मंडित है। हिन्दी तथा बंगला नाट्यकार यथार्थ-वादी शैली के साथ सांकेतिक शैली का समन्वय न कर सके क्योंकि इस युग में उनके समस्या-नाटकों की शैली प्रयोगावस्था में है, अभी प्रौढ़ता को प्राप्त नहीं हुई है। इसी कारण संकलन-त्रय का भी सफल निर्वाह उनके नाटकों में नहीं हुआ है।

समस्या-नाटकों में पाठ्य-गुण अधिक होता है अथवा अभिनेय यह विवादास्पद है क्योंकि बर्नार्ड सा के **नाटकों की भूमिका** (प्रीफेस) निर्देशन-सूचना तथा **तर्क-वितर्कों की दीर्घाकृति** यह प्रमाणित करती है कि वे गहन चिन्तन तथा मनन की वस्तुएँ हैं। नाट्यकार तथा निर्देशक इनमें एक साथ अपने को व्यक्त करना चाहता है एवं मंच-निर्देशक के लिए थोड़ा ही कार्य शेष रहता है। बंगला समस्या-नाट्यकारों ने **अभिनेयता को लक्ष्य बनाकर यत्र-तत्र निर्देशन दिया है** एवं हिन्दी नाट्यकार भी स्थायी रंगमंचों का अभाव होते हुए भी इन नाटकों की रंगमंचीयता को दृष्टिकोण में रखते हुए यत्र-तत्र निर्देशन लिखने में नहीं चूके हैं। प्रेम तथा विवाह सबंधी समस्या को लेकर हिन्दी तथा बंगला में अधिकांश सामाजिक नाटकों की रचना हुई। किसी-किसी नाटककार ने पाश्चात्य की मनोविश्लेषणात्मक प्रणाली अपनाई है तथा किसी-किसी ने अन्तर्द्वन्द्व तथा परिस्थितियों का सुन्दर चित्रण किया है।

इस प्रसंग में रवीन्द्रनाथ रचित सामाजिक समस्या-नाटक '**बांशरी**' उल्लेखनीय है। यद्यपि रवीन्द्रनाथ रोमांटिक, नीति-प्राण कवि थे एवं उनके अधिकांश नाटक तत्व, गीतात्मकता आदि से पूर्ण हैं किन्तु 'बांशरी' यथार्थवादी शैली का उत्कृष्ट उदाहरण है।

बांशरी में कवि ने संस्कार जड़ित एवं प्रगतिशील समाज के द्वन्द्व का चित्र खींचा है, जिसमें बाह्य घटना कम है। बांशरी पाश्चात्य युनिवर्सिटी में शिक्षित आधुनिक विचार सम्पन्न नारी है। उसकी सहेली सुषमा अपने गुरु मुक्त प्रेम के प्रचारक एक सन्यासी पुरन्दर से प्रेम करती है एवं शम्भूगढ़ के राजाबहादुर सोमशंकर से विवाह करती है। बांशरी और सोमशंकर में प्रेम होते हुए भी सोमशंकर को अपने पिता की आज्ञानुसार सुषमा से विवाह करना पड़ता है। बांशरी के प्रति वस्तुतांत्रिक लेखक क्षितीश आकर्षित होते हैं किंतु सोमशंकर के प्रेम में गर्वित बांशरी प्रेम के आदर्श को निभाने के लिए क्षितीश को अस्वीकार करती है।

इस नाटक में बांशरी के चरित्र का अंतर्द्वन्द्व ही नाटक का प्राण है। रवीन्द्रनाथ ने प्रगतिशील विचारों को ही महत्व दिया है। बांशरी का चरित्र अत्यन्त विचार-पुष्ट तथा आदर्शमय है। वह अश्लील चित्रण को ही यथार्थवाद मानने वाले क्षितीश से कहती है—"सीता भावलेन देव-चरित्र रामचन्द्र ताके उद्धार कोरबेन रावणेर हाथ थेके, शेष-काले मानव-प्रकृति रामचन्द्र चाइलेन ताके आगुने पोड़ाते। एकेइ बले रियलिज्म, नोङ-रामीके नय।"[1]

'**दुविधा**' में पृथ्वीनाथ शर्मा ने आधुनिक उच्च शिक्षिता नारी के जीवन का दुविधा में ही अन्त किया है, किन्तु **रवीन्द्रनाथ ने उच्च शिक्षिता नारी को अपने आदर्शों के पथ पर चलने का अमिट विश्वास एवं अतुलनीय साहस प्रदान किया है। भारतीय समस्या-नाटकों की यही रूपरेखा होनी चाहिए**। अश्क रचित '**कैद और उड़ान**' में भी इस प्रगतिशीलता की ओर निर्देश है। तीक्ष्ण, विचार गर्भित, गीति-भाव वर्जित भाषा में आधुनिक-नारी-समस्या को आशावादी दृष्टिकोण से देखते हुए रवीन्द्रनाथ ने शिक्षित, आभिजात्य समाज का रूप हमारे सामने रखा है। '**बांशरी**' के समान प्रेम का आदर्श स्वरूप **प्रेमचंद रचित नाटक 'प्रेम की वेदी'** में है, यद्यपि उसका अंत अनिश्चित है।

ब—हिंदी तथा बंगला के रोमांटिक-शैली के समस्या नाटक

आदर्शवादी दृष्टिकोण से लिखे गये रोमांटिक शैली के भारतीय समस्या-नाटकों के उदाहरण संस्कृत साहित्य में मिलते हैं। कृष्ण मिश्र रचित '**प्रबोध चंद्रोदय**' नाटक एक ओर रूपक-शैली का उत्तम उदाहरण है, दूसरी ओर इसमें बौद्धिक द्वन्द्वों का चित्रण ही प्रमुख है। इसमें अन्तर्जगत के तत्वों का मानवीयकरण किया गया है अतः इसका रूप ठोस (कांक्रीट) न होकर भाषात्मक (ऐब्सट्रेक्ट) है। भारतीय नाट्य सिद्धांत में सर्वदा आदर्शवाद एवं रस-सिद्धांत को प्राधान्य मिला है। आदर्शवाद की दृष्टि से मानसिक जगत् के सत् तथा असत् ('वीइंग', 'नन्वीइंग' नहीं 'गुड' और 'इव्हिल') पक्ष का द्वन्द्व चित्रित करना ही भारतीय नाटकों का उद्देश्य रहा, रस-सिद्धांत मान्य होने के कारण बौद्धिक

१—बांशरी—लेखक रवीन्द्रनाथ।—द्वितीय अक, प्रथम दृश्य।

समस्या-मूलक नाटक रचना की ओर भारतीय नाट्यकार अधिक प्रवृत्त नहीं हुए। जो भी अल्प नाटक इस शैली में रचित हुए उनमें शैली की प्रधानता के प्रति लक्ष्य न रख कर नाटककारों का लक्ष्य असत् पर सत् की विजय का चित्रण करना रहा। अत: यथार्थवादी शैली के पाश्चात्य ढंग के समस्या-मूलक नाटकों का रचना-विधान जितना प्रमुख स्थान ग्रहण करता है रोमांटिक शैली के भारतीय ढंग के समस्या-मूलक नाटकों का आदर्शवादी दृष्टिकोण उतना ही प्रमुख स्थान ग्रहण करता है। इस आदर्शवादी दृष्टिकोण का स्वरूप भी भारतीय भावधारा के अनुकूल एवं भारतीय-संस्कृति का पृष्ठपोषक है। हिंदी तथा बंगला नाटककारों के सम्मुख 'प्रबोध-चन्द्रोदय' का उदाहरण था जिसका उन्होंने अनुवाद भी किया एवं अनुकरण भी किया। केशव रचित 'विशन गीता' तथा देव रचित 'देवमाया प्रपंच' नाटकीय दृष्टि से उत्तम नहीं हैं एवं आदर्श स्वरूप उनका अनुकरण नहीं हुआ। औपनिषदिक बौद्धिक दृष्टिकोण एवं भारतीय सांस्कृतिक दृष्टिकोण को लेकर रवीन्द्र तथा प्रसाद का आगमन हुआ एवं उन्होंने आधुनिक पाश्चात्य नाटकों की सुगठित प्रणाली के द्वारा भारतीय भाव-कुसुमों को गूँथ दिया। यद्यपि रोमांटिक शैली के होने के कारण इनकी छवि हमारे दैनन्दिन जीवन से दूर तथा विलग सी लगती है किन्तु इनकी गंभीरता तथा अन्तर्दृष्टि अपरिमेय हैं।

रवीन्द्रनाथ रचित **'रक्तकरवी'** तथा जयशंकर प्रसाद रचित **'ध्रुव-स्वामिनी'** रोमांटिक शैली के समस्या-नाटकों में परिगणित होते हैं। यों तो हिंदी तथा बंगला में चुस्त, शृंखलित, केवल बौद्धिकता समन्वित समस्या-नाटक लिखे ही नहीं गये क्योंकि बर्नार्ड शा सदृश्य आलोचक, दार्शनिक तथा कलाकार के गुणों का हिंदी तथा बंगला के किसी एक लेखक में समाहार न हो सका, फिर भी कुछ नाटक जीवन की कटु वास्त-विकताओं के समस्यात्मक रूप पर लिखे गये। किंतु 'रक्तकरवी' का स्थान, काल एकदम कपोल-कल्पित है तथा 'ध्रुवस्वामिनी' इतिहास के एककाल खंड पर रचित है। इसमें वर्तमान काल के पात्र अस्थि-मांस के रूप में चाहे न हों किन्तु जो समस्या, जो अव-मानना तथा अन्तर्ग्लानि वर्तमान समाज को पीड़ित कर रही है उसका आभास है एवं परोक्ष रूप से समस्याओं के प्रति सन्देश वहन करना ही इन नाटककारों का लक्ष्य है। समस्या-चित्रण ही इन नाटककारों का प्रधान उद्देश्य रहा है किन्तु पाश्चात्य नाटककारों के समान उन्होंने अनिश्चयता ही में अन्त नहीं किया।

'रक्तकरवी' नाटक का आधार संकीर्ण दृष्टि से कल्पित है किन्तु व्यापक दृष्टि से सत्य है। इसी कारण **'नाट्य परिचय'** के अन्तर्गत रवीन्द्रनाथ लिखते हैं—"एइ नाट-कटि सत्यमूलक, एर घटनाटि कोथाओ घटेछे कि ना ऐतिहासिकेर परे तार प्रमाण संग्रहेर भार दिले पाठकदेर वंचित होते हवे। एइटूकू बललेइ यथेष्ठ जे, **कविर ज्ञान-विश्वास मते एटि सम्पूर्ण सत्य।**"

'रक्तकरवी' नाटक का घटना स्थल यक्षपुरी है। भूमि के नीचे यक्ष का स्वर्ण-सम्पद गड़ा हुआ है, उसे यक्षपुरी के निवासी खोद-खोद कर निकालकर संग्रह करना

चाहते है। मकरराज यक्षपुरी के राजा हैं जो अपने प्रासाद में रहते हैं एवं एक जाल के आवरण द्वारा अन्य लोगों से अपने को पृथक रखते हैं। इसी जाल के बाहर इस नाटक की घटास्थली है एवं राजा जाल के अन्दर से अन्य लोगों से बातें करते हैं। श्रमिक खनन-कार्य करते हैं एवं राजा की ओर से श्रमिकों को काबू में रखने के लिए सदरि **हैं**, गुप्त-चर हैं तथा पुरोहित गोसाई जी हैं। यह आधुनिक औद्योगिक सभ्यता में पला हुआ एक पूँजीवादी समाज का चित्र है। इसका राजा शक्तिमान् है किन्तु उसकी शक्ति दानवीय है। यक्षपुरी की सभ्यता राक्षसी सभ्यता है।

जिस तरह राक्षसराज रावण ने सीता का हरण किया था उसी तरह यक्षपुरी के जाल में नन्दिनी नामक एक मानव कन्या फंस जाती है किन्तु उसकी प्राण-चंचलता के वेग में राजा, अध्यापक, किशोर, विशुपागल इत्यादि सभी बहते नजर आते हैं। किंतु सीता जैसी कृषि-सभ्यता की प्रतीक होती हुई भी साधारण सुख, दुःख से आन्दोलित एक मानवी है, नन्दिनी वैसी सृष्टि नहीं है। नन्दिनी को पाने के लिए हृदयहीन, कठोर राजा भी छटपटा उठते हैं, अध्यापक उसे आलोक-कण समझते हैं, नेपथ्य-बिहारी रंजन मृत्यु वरण करता है—यह सब रहस्यात्मक है क्योंकि **नन्दिनी प्राण, आनन्द, सौन्दर्य तथा प्रेम की प्रतीक है।** यथार्थवादी शैली के नाटकों से यह सम्पूर्ण पृथक है क्योंकि इसकी नायिका नारी नहीं, तत्वों की नारी-रूपिणी प्रतीक है। फिर भी इसमें निहित अन्तर्जगत एवं बाह्य जगत की समस्या का निरूपण अत्यन्त कलात्मकता के साथ हुआ है।

अन्तर्जगत का द्वन्द्व राजा और नन्दिनी में है। **राजा अवरुद्ध मानवात्मा है,** विगत यौवन है जो जीवन-लीला रूपिणी लास्यमयी, संगीतमयी नन्दिनी को पाना चाहता है। वह रावण सदृश्य अपराजेय है किन्तु सहोदर भ्राता विभीषण सदृश्य उसका मरण-वाण उसी में है। अन्त में वह अपने प्राचीरों को तोड़ कर स्वच्छ, सरल, नैसर्गिक, सुन्दर नन्दिनी के समीप पराजित होता है। **रंजन हृदय के यौवन का प्रतीक है** एवं वही नन्दिनी का प्रेमपत्र है। मृत्यु में उसका अन्त नहीं, मृत्यु के पार पुनः यौवन और प्राण की चिरंतन मिलन-लीला चल रही है। रंजन और नन्दिनी की मृत्यु मिलन का सिंहद्वार है। इस प्रसंग में राजा, नन्दिनी और रंजन का जो भाव-चित्रण हुआ है वह यथार्थवाद की मनोविश्लेषणात्मक प्रणाली नहीं है किन्तु वह दार्शनिक कोटि की बौद्धिकता है। इसी कारण इसके पात्र यद्यपि प्रतीक-प्रतीत होते हैं किन्तु कवि ने इन्हें अपने 'ज्ञान विश्वास' से समन्वित सत्य माना है। **यह सत्य केवल घटित होने वाला तथ्य (फैक्ट) नहीं, और भी व्यापक एवं विशद है,** इसकी कल्पना केवल कोरी कल्पना नहीं, जीवन की अनुभूति से परिपुष्ट है। इसका उद्देश्य केवल भाव-विलास नहीं, मानवात्मा एवं मानव-समाज के लिए बौद्धिक मुक्ति-पथ का सांकेतिक सुझाव है।

'ध्रुवस्वामिनी' नाटक की पृष्ठ-भूमि ठोस ऐतिहासिक तथ्यों पर आधारित है। ऐतिहासिक तथ्य भी सत्य के एक पक्ष का उद्घाटन करते हैं। अतीत नश्वरता एवं निस्सा-

रता की कहानी नहीं छोड़ जाता उसमें किसी भी समाज-व्यवस्था के प्रारम्भिक सौपान निर्मित रहते हैं जिन्हें देखकर वर्तमान समाज अपनी ऊंचाई तथा नीचाई का अनुमान लगा सकता है। अतः कथावस्तु ऐतिहासिक होती हुई भी, लेखक ने उसकी सामाजिक समस्या तथा व्यवस्था को प्रकाशित किया है। विशाखदत्त रचित **'देवी-चन्द्रगुप्तम्' के** कुछ अंश जर्नल एशियाटिक में प्रकाशित होने पर गुप्तकाल की एक प्रसिद्ध घटना से हम परिचित हुए। समुद्रगुप्त ने अपने कनिष्ठ पुत्र चन्द्रगुप्त की वीरता तथा योग्यना से प्रभावित हो उसे युवराज का पद दिया था एवं भेंट में प्राप्त सुन्दरी तथा तेजस्विनी ध्रुवदेवी का उससे विवाह भी स्थिर किया था, किंतु समुद्रगुप्त की मृत्यु के उपरान्त उनका ज्येष्ठ पुत्र रामगुप्त सिंहासन पर बैठा एवं चन्द्रगुप्त की वाग्दत्ता ध्रुवदेवी से उसने विवाह किया। शीलता के कारण चन्द्रगुप्त ने विरोध नहीं किया। जिस तरह 'रक्तकरवी' का राजा विगत-यौवन तथा हृदय-हीन था उसी तरह रामगुप्त क्लीव तथा कठोर था। पौरुष के अभाव में वह सन्धि के लिए शकराज को ध्रुवस्वामिनी की भेंट चढ़ाने के लिए तैयार था। 'रक्तकरवी' की कल्पनात्मक राक्षसी-सभ्यता एवं 'ध्रुवस्वा-मिनी' की ऐतिहासिक राक्षसी-सभ्यता में देश-काल का अन्तर हो सकता है किन्तु बौद्धिक भित्ति एक है। नन्दिनी एवं ध्रुवस्वामिनी की स्थिति एक सी है। **'रक्तकरवी' के राजा तथा ध्रुवस्वामिनी के रामगुप्त उसकी सुन्दरता पर लुब्ध हैं किन्तु वे उन्हें पाने के अयोग्य हैं।** रामगुप्त के लिए ध्रुवस्वामिनी की भेंट ही नहीं, शक-सामंतों के लिए अपने सामंतों की पत्नियों की भेंट चढ़ाने के लिए भी तैयार हैं। 'रक्तकरवी' में पूँजीवाद के शोषण का चित्र राजा के आचरण में है एवं 'ध्रुवस्वामिनी' के रामगुप्त भी शोषक हैं।

रोमांटिक तथा रहस्यवादी कवि होते हुए भी 'रक्तकरवी' तथा 'ध्रुवस्वामिनी' में रवीन्द्र तथा प्रसाद ने **समाज-शोषण का जो चित्र** खींचा है वह अतीत व भाव-लोक का नहीं, हमारे समाज का चित्र है। 'रक्तकरवी' की नन्दिनी की अपेक्षा ध्रुवस्वामिनी का नारी रूप अधिक निखर उठा है। वह अपने पति से अपनी रक्षा करने के लिए अनुनय विनय करती है किन्तु रामगुप्त क्लीव है, अपनी पत्नि तथा देशवासियों की रक्षा में असमर्थ है। ऐसी संकटजनक परिस्थिति में वीर चन्द्रगुप्त शकराज के शिविर में ध्रुवस्वामिनी का छद्मवेश धारण कर जाते हैं, ध्रुवस्वामिनी भी उनके साथ रहती हैं। द्वन्द्वयुद्ध में चन्द्रगुप्त शकराज का वध करते हैं। शकराज की प्रेमिका कोमा ध्रुवस्वामिनी से शकराज के शव की याचना करती हैं। शव ले जाते समय कोमा एवं मिहिरदेव का वध किया जाता है। राज्य की जब ऐसी अराजक परिस्थिति थी तब ध्रुवस्वामिनी की परिस्थिति और भी जटिल थी। वह अपनी रक्षा में असमर्थ क्लीव पति रामगुप्त को त्यागकर चंद्रगुप्त का वरण करना चाहती थी जिसे वह अनेक वर्ष पूर्व ही अपना स्वामी मान बैठी थी। आज के समाज के सम्मुख यह अत्यन्त गर्हित-प्रस्ताव है। किन्तु इतिहास में इसके प्रमाण मौजूद हैं कि उस परिस्थिति में गुप्त-साम्राज्य के पुरो-हितों ने शास्त्रों से उद्धरण देकर ध्रुवस्वामिनी द्वारा क्लीव पति रामगुप्त का त्याग (मोक्ष, तलाक) शास्त्र-सम्मत ठहराया, क्योंकि चन्द्रगुप्त ने अपनी वीरता, योग्यता तथा

देश की लाज रक्षा द्वारा सबको मुग्ध कर दिया। केवल मोक्ष ही नहीं, पुरोहितों ने चंद्रगुप्त से ध्रुवस्वामिनी के पुनर्विवाह को भी शास्त्र-सम्मत ठहराया। ऐसी परिस्थिति में रामगुप्त चन्द्रगुप्त का वध करना चाहता था किन्तु किसी सैनिक ने रामगुप्त का वध कर डाला।

पुरोहितों ने चंद्रगुप्त की विजय-ध्वजा फहराते देख चंद्रगुप्त को उनकी भातृ-जाया ध्रुवस्वामिनी से शास्त्र-सम्मत विवाह की अनुमति दी एवं 'रक्तकरवी' के गुसाईं जी श्रमिकों को सही राह पर लाने के लिए धर्म की दुहाई देते हैं। **इन दोनों नाटकों में यह स्पष्ट इंगित है कि धर्म की बागडोर राजसत्ता के हाथ में रहती है एवं पाप-पुण्य की व्याख्या उसके स्वार्थ के अनुकूल होता है।**

'रक्तकरवी' को यद्यपि रवीन्द्रनाथ ने रूपक-नाट्य नहीं माना है फिर भी रचना-विधान की दृष्टि से वह रूपक शैली का ही है क्योंकि उसमें राजा, नन्दिनी, रंजन आदि सांकेतिक चरित्र हैं, **रक्तकरवी का पुष्प उनके भाव-तत्व का प्रतीक है**। किन्तु उनके भाव-तत्व के साथ आख्यानवस्तु का वास्तविक आवेदन भी कम नहीं है। **यक्षपुरी** का चित्र किसी भी **औद्योगिक नगर** एवं मिलों की याद दिलाता है, ट,ठ मुहल्लों में रहने वाले ६९ ड व ४७ फ व्यक्ति मानव के चित्र नहीं, वर्गीय मानव के चित्र है। श्रमिक समस्या का आभास भी इस नाटक में विद्यमान है। इसी तरह 'ध्रुवस्वामिनी' नाटक की ऐतिहासिक-प्रधानता सर्वमान्य है किंतु इसमें निहित नारी-समस्या उसे एक उत्कृष्ट समस्या-मूलक नाटक में परिणत करती है। रचना-विधान की दृष्टि से 'रक्त-करवी' तथा 'ध्रुवस्वामिनी' में संकलन-त्रय का उत्तम निर्वाह हुआ है। 'रक्तकरवी' मे प्रासाद के जाल के बाहर कथावस्तु विन्यस्त है। **'ध्रुवस्वामिनी' में तीन अंक** तथा **तीन ही दृश्य हैं—रामगुप्त का शिविर**, शकराज **का शिविर** तथा **शक दुर्ग का भीतरी प्रकोष्ठ।** भाषा की दृष्टि से भी इन दोनों नाटकों की भाषा अत्यंत व्यावहारिक तथा संवाद सरल, सशक्त तथा छोटे-छोटे हैं। दोनों नाटकों के चरित्र-चित्रण की यह विशेष-ता है कि दोनों नारी चरित्र प्रधान हैं। नन्दिनी तथा ध्रुवस्वामिनी इन नाटकों की केंद्रबिंदुएँ हैं। नन्दिनी सौन्दर्य, आनन्द तथा प्रेम की मूर्ति एवं ध्रुवस्वामिनी आत्म सचेतत, तेज, प्रेम तथा विद्रोह की मूर्ति है। **नारी के ये ही दो चिरंतन रूप हैं—लक्ष्मी-रूपिणी एवं चंडी रूपिणी।** वन्दिनी का लक्ष्मी-स्वरूप धनतंत्र समाज के कुबेर की लुब्धता को पराजित करता है एवं ध्रुवस्वामिनी का चंडी-स्वरूप क्लीव, विलासी व्यक्ति का त्यागकर वीर प्रलयंकर चंद्रगुप्त का वरण करता है। नारी के व्यक्तित्व को प्रकाशित करने की प्रवृत्ति आधुनिक प्रवृत्ति है एवं रवीन्द्र तथा प्रसाद ने युग समस्या के बीच इन नारियों की सृष्टि कर समस्याओं को नूतन दृष्टि-भंगी तथा नूतन रचना-कौशल से आलौकित किया है।

'रक्तकरवी' नाटक की समस्या एवं समाधान के विषय में रवीन्द्रनाथ **'यात्री' ग्रन्थ में** लिखते हैं—"नारीर भीतर दिये विचित्र रसमय प्राणेर प्रवर्तना यदि पुरुषेर

उद्यमेर मध्ये संचारित हबार बाधा पाय ता होलेइ तार सृष्टिते यन्त्रेर प्राधान्य घटे। तखन मानूष आपनार सृष्टि यन्त्रेर आघाते केवलइ पीड़ा देय, पीड़ित हय।

एक भावटा आमार रक्तकरवी नाटकेर मध्ये प्रकाश पेयेछे। यक्षपुरे पुरुषेर प्रबल शक्ति माटिर तला थेके सोनार सम्पद छिन्न कोरे-कोरे आनछे। निष्ठुर संग्रहेर लुब्ध चेष्टार ताड़नाय प्राणेर माधुर्य सेखान थेके निर्वासित। सेखाने जटिलतार जाले आपनाके आपनि जड़ित कोरे मानूष विश्व थेके विच्छिन्न। ताई से भूलेछे, सोनार चेये आनन्देर दाम बेशी, भूलेछे प्रतापेर मध्ये पूर्णता नेइ, प्रेमेर मध्येइ पूर्णता, सेखाने मानूष के दास कोरे राखबार प्रकांड आयोजने मानूष निजेकेइ निजे बन्दी कोरेछे।

एमन समये सेखाने नारी एलो, नन्दिनी एलो, प्राणेर वेग एसे पड़लो यन्त्रेर ऊपर, प्रेमेर आवेग आघात को रते लागलो लुब्ध दुश्चेष्टार बन्धनजालके। तखन सेइ-नारी शक्तिर निगूढ़ प्रचर्तनाय की कोरे पुरुष निजेर रचित कारागाह के भेंगे फैल प्राणेर प्रवाहके बाधामुक्त करबार चेष्टाय प्रवृत्त होलो एइ नाटके ताइ वर्णित आछे।"

रवीन्द्रनाथ के इन शब्दों में व्यक्त हुआ है कि **यांत्रिक सभ्यता से मानव पीड़ित हो रहा है,** प्रेम और आनन्द की दुनिया से वह वहिष्कृत हो गया है किन्तु वह स्वयं इस प्राचीर को तोड़कर नैसर्गिक जीवन के सौन्दर्य, आनन्द तथा प्रेम की प्रतीक नन्दिनी से अपना मिलन साबित कर सकता है। इसी तरह 'ध्रुवस्वामिनी' नाटक में भी समस्या के साथ समाधान कवि का भावात्मक सुझाव है एवं '**ध्रुवस्वामिनी का समाधान इति-हासानुमोदित है।** चंद्रगुप्त के कुछ सिक्कों पर '**रूपकृति**' शब्द लिखा है इसके विषय में इस नाटक की भूमिका में प्रसाद लिखते हैं—"रूप और आकृति का जान् एलन् ने खींचतान कर जो शारीरिक और आध्यात्मिक अर्थ किया है वह व्यर्थ है। रूपकृति विरुद् का उल्लेख करके चन्द्रगुप्त अपने उस साहसिक कार्य की स्वीकृति देता है जो ध्रुव-स्वामिनी की रक्षा के लिए उसने रूप बदल कर किया है और जिसका पिछले काल के लेखकों ने भी समय-समय पर समर्थन किया है।" प्रसाद के इन कथनों से भी स्पष्ट है कि उन्होंने इतिहास के उस खंड को चुना जिसमें **नारी की समस्या ही नहीं है उसके उद्धार के लिए एवं उसे पुनः समाज के योग्य आसन पर बैठाने के लिए पुरुष का साहसिक प्रथम उद्यम भी है।** पाश्चात्य ढंग के समस्या-नाटकों तथा भारतीय ढंग के समस्या-नाटकों में यही अन्तर है कि जहां प्रथम कोटि के नाटकों में समस्या ही प्रमुख स्थान प्राप्त करता है वहां द्वितीय कोटि के नाटकों में समस्या एवं समाधान दोनों का समान महत्व है।

हिंदी तथा बंगला में इस कोटि की स्वच्छन्दतावादी-शैली के समस्या-नाटकों की रचना कम हुई क्योंकि जब उनका ध्यान वास्तविक सामाजिक समस्याओं के प्रति आकृष्ट हुआ तब वे इतने वास्तव-प्रेमी हुए कि वर्तमान समस्याओं को वर्तमान परिस्थिति में

चित्रित करना ही उन्हें उचित जंचा। राष्ट्रीयता के ज्वार के ढलने के साथ ही साथ भावोच्छ्वास तथा ऐतिहासिक-रोमांस के प्रति लेखकों का आकर्षण कम हो गया। 'रक्तकरवी' सन् १९२६ की रचना है, प्रसाद रचित 'ध्रुवस्वामिनी' तथा रवीन्द्रनाथ रचित 'ताशेर देश' सन् १९३३ की रचना है। **'ताशेर देश' में जड़-नियमों द्वारा परिचालित मानव-समाज का नाश को पत्तों के रूप** में चित्रण हुआ है। इसमें भी सांकेतिक शैली में वर्तमान समाज के जड़त्व का चित्रण हुआ है। उदयशंकर भट्ट रचित **'विद्रोहिनी अम्बा'** तथा मन्मथ राय रचित 'खना' नाटकों में पौराणिक कथा एवं किंवदन्ती के आधार पर समस्या का जो चित्रण हुआ है वह भी रोमांटिक शैली का है। **'खन्ना'** नाटक में विक्रमादित्य खना की ज्योतिष विद्या की ख्याति सुन कर उसे अपने नवरत्नों में स्थान देना चाहते हैं जो कि खना के श्वसुर ज्योतिषाचार्य बराह तथा पति मिहिर को अपमान-जनक प्रतीत होता है। जब पिता पुत्र दोनों खना से रुष्ट हो जाते हैं तब वह आत्म-हत्या करती है। **अत्याधिक विदुषी नारी की समस्या** की यह कल्पनापुष्ट कथा है। इस तरह पुराण, इतिहास, किंवदन्ती तथा काल्पनिक कथानकों की पृष्ठभूमि में हिंदी तथा बंगला में कई सामाजिक समस्याओं का नाटकों में चित्रण हुआ है।

हिन्दी तथा बंगला के सामाजिक नाटकों पर जार्ज बर्नार्ड शा का प्रभाव

यूरोप के यथार्थवादी जीवन-दृष्टि लेकर रचना करने वाले नाट्यकारों में इब्सन. शा, गाल्सवर्दी, चेखाव आदि प्रधान स्तम्भ माने जा सकते हैं। इब्सन ने अपने नाटकों में व्यक्ति तथा समाज के संघर्ष में आत्मबोध से जाग्रत व्यक्तित्व का उद्घाटन किया एवं समाज की परम्परागत मान्यताओं के मूल में कुठाराघात किया। समाज-जीवन की दैनिक समस्याएँ एवं मानव की दुर्बलता का नग्न रूप उन्होंने नाटकों में प्रदर्शित किया। बाह्य संघर्ष के स्थान पर मानसिक तथा बौद्धिक संघर्ष लक्ष्य बन जाने के कारण नाटकों के रचना-विधान में भी आमूल परिवर्तन हो गया। **बर्नार्ड शा ने भी नाटकों में समाज के यथार्थ स्वरूप का उद्घाटन किया ताकि बौद्धिक आलोक के प्रकाश में मानव जाति अपना विकास कर सके।** शा दार्शनिक, द्रष्टा, जीवविज्ञानी तथा फेबियन समाजवादी दल के सदस्य थे। समाज के मूल में है नर नारी का यौन-संबंध एवं उस यौन-सबंध को निर्धारित करने में जीव-विज्ञान का उतना ही योग है जितना अर्थनीति का। आर्थिक व्यवस्था के अनुसार समाज में नर-नारी का संबंध बदलता रहा है। आदिम समाज में यौन-संबध पर कोई प्रतिबन्ध नहीं था एवं वर्तमान काल में जब कि आर्थिक प्रयोजन के कारण नारी पुनः स्वतंत्र बन रही है, वैवाहिक जीवन में समस्या दिखाई देने लगी है। केवल काम और विवाह की समस्या ही नहीं **'जोन आफ आर्क'** के चरित्र में शा ने ऐसे नारी-चरित्र का उद्घाटन किया हैं जो पुरुष की प्रेमिका व पत्नि नहीं सैनिक तथा सन्त है। **नारी की बुद्धिमत्ता तथा वीरता** देखकर तत्कालीन समाज ने उसे जादूगरनी प्रमाणित कर जला डाला परन्तु आज वह **प्रोटेस्टेंट-सम्प्रदाय तथा राष्ट्रवाद की पथ-प्रदर्शिका** समझी जाती है। शा ने प्रधानतः यौन-समस्या, युद्ध-समस्या, विकासवाद की समस्या तथा धर्म एवं राजनीति की समस्याओं पर प्रकाश डाला। हिन्दी तथा बंगला

के सामाजिक नाट्यकारों में शा जैसी विराट् प्रतिभा नहीं है। उन्होंने शा की विचार-धारा में भारतीय विचारधारा का योग करके नर-नारी के यौन—संबंध की समस्या को सामने रखने का प्रयास किया। युद्ध, **राजनीति, धम, विकासवाद आदि की सम्यक् अभिव्यक्ति की क्षमता किसी नाटककार में नहीं है।** हिंदी तथा बंगला के समस्या-नाटक अभी शैशवावस्था में है।

हिन्दी नाट्य-क्षेत्र में **लक्ष्मीनारायण मिश्र शा के अनुयायी हैं।** उनके 'संन्यासी' नाटक में प्रेम, विवाह, राजनीति, शिक्षा, राष्ट्रीयता आदि की समस्याएँ हैं एवं उनपर बौद्धिक आलोकपात हुआ है। 'राक्षस का मन्दिर' में प्रवृति और विवेक का द्वन्द्व है, 'आधीरात' में पतिता नारी की समस्या है, 'मुक्ति का रहस्य' में उमाशंकर के प्रति आसक्त आशादेवी का डाक्टर से विवाह की मजबूरी का रहस्य है, 'राजयोग' में विवाह की विषमता के तथा आभिजात्य के खोखलेपन के चित्र हैं। 'सिन्दूर की होली' में नारी का सामाजिक रूढ़ि के प्रति विद्रोह एवं अपनी मानसिक मजबूरी के अनुसार स्वतंत्र होने की घोषणा है। **शा ने अपने नाटकों में कई विरोधी सत्य व कूटाभासों** (Paradoxes) की योजना की है। उन्होंने विवाह और वेश्यावृत्ति, धनी एवं चोर, धर्म एवं अन्धविश्वास के विभेद को अस्वीकार किया है। हिन्दी तथा बंगला नाटकों पर इन कूटाभासों का प्रभाव पड़ रहा है। यद्यपि लेखक भारतीय आदर्शवाद तथा अध्यात्म का पल्ला पूरी तरह छोड़ नहीं पा रहे हैं। हरिकृष्ण प्रेमी ने 'छाया' नाटक में वेश्या समझी जाने वाली रजनीकांत की पत्नि ज्योत्सना में छिपकर वेश्या-वृत्ति करने वाली माया व नसीम में मानवीय संवेदनाओं का सम्मिश्रण किया है एवं कवि प्रकाश की पत्नि छाया में आदर्श हिन्दू स्त्री के व्यक्तित्व का आरोप किया है। उपेन्द्रनाथ अश्क ने 'कैद और उड़ान' में बन्दिनी नारी की सिसक एवं विद्रोहिनी नारी के गर्व को व्यक्त किया है। पृथ्वीनाथ शर्मा के 'अपराधी' नाटक में अपराधी की समस्या तथा सेठ गोविंददास के 'सेवापथ' एवं 'प्रकाश' में राजनीति की समस्या है। ये समस्या-नाटक बौद्धिक रुक्षता के कारण अधिक मार्मिक नहीं बन पाये हैं।

बंगला के सामाजिक नाटको में समस्याओं का प्रवेश हुआ किन्तु **शा के विचारों का यथातथ्य चित्रण नहीं हुआ।** हिंदी तथा बंगला नाटककारों ने **नागरिक समाज जीवन पर ही अधिक प्रकाश डाला।** बंगला के नाट्यकार विधायक भट्टाचार्य, जलधर चट्टोपाध्याय, शंचीन सेनगुप्त तथा प्रमथनाथ बिशी के नाटकों में बंगाली समाज के पारिवारिक तथा सामाजिक चित्र हैं, उनकी समस्याएँ भी हैं किंतु शा के नाटकों में जिस जीवन-शक्ति (Life-force) पर बौद्धिक ढंग से आलोकपात किया गया है उसका अभाव हिंदी तथा बंगला नाटकों में है। इसका प्रथम कारण है शा जैसी उच्च कोटि की प्रतिभा का अभाव एवं द्वितीय कारण है **पाश्चात्य भौतिक-दृष्टिकोण एवं भारतीय-अध्यात्म को समन्वित रूप देने योग्य प्रेरणा का अभाव।**

शा की विचारधारा की हिंदी तथा बंगला नाटकों में बलिष्ट अभिव्यक्ति न

हुई किंतु उनकी **शैली का अधिक प्रभाव** पड़ा। हिंदी तथा बंगला के नाटक जो रोमांस-धर्मी थे, धीरे-धीरे उनमें **वास्तविकता** के प्रति आग्रह बढ़ने लगा। हिंदी में मिश्रजी के समस्या-मूलक नाटकों की शैली पाश्चात्य ढंग की है जिनमें तार्किक शैली में बौद्धिक धरातल पर सिद्धांत प्रतिपादन का ही लक्ष्य है। शा के मतानुसार वाद-विवादों पर केवल नाट्यकार की कुशलता की परख ही नहीं होती, **वाद विवाद ही नाटकों में आकर्षक अंश हैं।** प्रसाद रचित 'ध्रुवस्वामिनी' स्वच्छन्दवादी शैली में रचित होने पर भी तीन अंकों में कथावस्तु का गुम्फन तथा मोक्ष एवं पुनर्विवाह पर सिद्धांत प्रतिपादन की दृष्टि से प्रकाश डालना समस्या-नाटक शैली का सफल प्रयोग है। बंगला में केवल वाद-विवाद को ही लक्ष्य बनाकर शा की शैली में नाटक नही लिखे गये किंतु बंगला के नाटकों ने रामांटिक चित्रणों का बहिष्कार कर दिया।

सेठ गोविंददास रचित **'विकास'** की शैली में नवीनता है इसे नाटककार ने **'नाटकीय संवाद'** लिखा है एवं अंक तथा दृश्यों में विभाजन न कर इसे स्वप्न-नाट्य की शैली में लिखा है जिसमें निद्रामग्न युवक युवती स्वप्न में आकाश तथा पृथ्वी बन जाते हैं एवं गौतम, ईसा, गाधी आदि के इतिहास का स्वप्न-चित्र अंकित करते हुए यह प्रतिपादित करते हैं कि विकास ही पृथ्वी का लक्ष्य है। इसमे **शा तथा गांधी के विचारों का समन्वय हुआ** है तथा इसमें सवाद मे दीर्घ आलोचनाओं का अंश अधिक है। अश्क रचित सामाजिक नाटक **'छठा बेटा'** में भी स्वप्न-नाट्य-शैली का प्रयोग हुआ है। 'विकास' में अतीत-वर्णन-शैली (Retrospective Methob) है एवं 'छठा बेटा' में अन्तश्चेतना के विकारों का मूर्त्त रूप है। सामाजिक नाटकों के क्षेत्र में स्वप्न नाट्य-शैली का प्रयोग बंगला में नहीं हुआ क्योंकि बंगला नाटक अधिक वस्तु धर्मी बन गये।

शा के समान **कामेडी** लिखने में बंगला में **प्रमनाथ बिशी** थोड़ा बहुत सफल हुए। शेक्सपियर के ट्रेजेडियों ने जीवन की एक भूल पर अत्यन्त महत्व आरोपित किया एवं शा ने समाज की असंगतियों को हास्यास्पद् रूप देकर जीवन को एक मजाक बना दिया। उनके व्यंग्यों में जितनी तीक्ष्णता है, उनके हास्य-सृजन में उतनी ही गंभीरता है। वह मौलियर के हास्य से भिन्न कोटि का है। बिशी ने **'ऋणं कृत्वा', 'घृतम् पिबेत्', 'मौचाके ढील'** आदि नाटकों में शा एवं मौलियर का समन्वय करना चाहा किन्तु शा के कामेडियों की कोटि की उच्चता का निर्माण वे न कर सके। हिंदी नाटकों में जहां व्यंग्य, विनोद का मिश्रण हुआ है वे प्रहसन की कोटि में आ गये।

समस्या नाटकों के नायकों का व्यक्तित्व बलिष्ठ नहीं होता क्योंकि उनमें पात्रों का प्रयोग सिद्धांत के प्रतीक के रूप में होता है। शा के दृष्टिकोण से शेक्सपियर के भावुक पात्र भोगवादी (Hedonistic) हैं तथा नायिकाएँ प्रेमिका, परजीवी (Parasites) हैं। शा के आदर्श नायक नैतिकता की किसी रूढ़ी से बंधे नहीं होते, उनके अच्छे व बुरे स्तर के निर्माता वे स्वयं होते हैं। शा योद्धा-नायक के पक्ष में भी नहीं है क्योंकि युद्ध को वे

विकास के घातक समझते हैं। इस दृष्टिकोण से प्रभावित होकर हिन्दी तथा बंगला नाटकों में जीवन की साधारण बातों को असाधारण महत्व मिल रहा है किंतु कर्ण व स्कन्दगुप्त जैसे नायक-चरित्रों का निर्माण नहीं हो रहा है। **फ्रायड की मनोविश्लेषणात्मक पद्धति** अपनाई जाने लगी है। **शा के विचार में नारी-चरित्र अधिक सशक्त होता है** क्योंकि पुरुष का लक्ष्य है अर्थोपार्जन तथा नारी का लक्ष्य है सृजन। उन्होंने 'जोन आफ आर्क' जैसी व्यक्तित्व-सम्पन्न नारी का भी चित्रण किया है। व्यक्तित्व की दृष्टि से प्रसाद की ध्रुवस्वामिनी तथा मन्मथ राय की खना अत्यन्त बलिष्ठ चरित्र हैं जिनके सामने नूरजहां, चांदबीबी, रजिया आदि म्लान हैं। **यथार्थवादी शैली** के अनुसार हिन्दी तथा बंगला नाटकों की कथावस्तु **चुस्त हो गई,** कम पात्रों का प्रयोग हुआ, **गीत तथा स्वगत कथन का वर्जन** होने लगा, भाषा तार्किक, अवचेतन के विकारों को व्यक्त करनेवाली तथा व्यावहारिक उत्तर प्रत्युत्तर के अनुरूप हो गई। **भूमिका, दृश्य, वर्णन** तथा **रंगमंच निर्देशन** की ओर हिन्दी के नाट्यकारों का ध्यान अधिक गया। इनका सफल प्रयोग लक्ष्मीनारायण मिश्र के नाटकों में हुआ है।

हिन्दी तथा बंगला के सामाजिक नाटकों पर मार्क्सवादी प्रभाव

आर्थिक-समस्या की वृद्धि के कारण भारत में गण-आंदोलन का प्रारम्भ हुआ एवं भारतीय साहित्यिकों पर मार्क्सवाद का प्रभाव पड़ा। आर्थिक वैषम्य तथा शोषितों की दुर्दशा देख क्षुब्ध होकर जिन लेखकों ने लेखनी उठाई वे ही मार्क्सवाद के समर्थक, प्रगतिशील लेखक समझे जाने लगे। भारतीय लेखकों ने मिलकर प्रगतिशील लेखक-संघ की स्थापना की। मार्क्सवादी विचारों का अधिक प्रभाव हिंदी तथा बंगला के कथा साहित्य पर पड़ा। **नाटक में सामूहिक संवेदना के स्थान पर व्यक्ति-संवेदना का चित्रण ही अपेक्षणीय है** क्योंकि नाटक के पात्र जब समूह व भावादर्श व सिद्धांत के प्रतीक न बनकर शुद्ध मानवीय रूप में अपने को व्यक्त करते हैं तभी वह चरित्र रसोद्रेक करने में सफल होता है। सिद्धान्तों से प्रेरित होकर जब नाट्यकार रचना करता है तब पात्रों के स्थान पर नाटककार का व्यक्तित्व स्पष्ट हो उठता है एवं नाट्यकला को क्षति पहुंचती है। समाजवाद के प्रति आकृष्ट लेखकों पर सबसे अधिक प्रभाव रूस के महान् लेखक मैक्सिम गोर्की का पड़ा। इस प्रसंग में उनकी कहानी "सौंग आफ दी फैल्कन," "सौंग आफ दी स्टार्मी पेट्रेल," उनका उपन्यास "मदर" एवं उनका नाटक "लोअर देप्थ्स" उल्लेखनीय हैं।

द्विजेन्द्रलाल के नाटक 'चन्द्रगुप्त' में चन्द्रगुप्त की माता शूद्राणी मूरा को लेकर **वर्ण-वैषम्य** पर प्रकाश डाला गया है। गोर्की के 'मदर' उपन्यास में समाजवादी क्रान्तिकारी दल के नेता पाव्लेल व्लासोव्हे की माता नीलोव्हना इसी तरह **वर्ग संघर्ष** की **भावना को उद्दीप्त करती है।**

दुर्भिक्ष तथा देश-विभाजन के कारण समाज की जो दुर्गति हुई एवं जिस युग-चेतना ने गण-चेतना का रूप धारण किया उसका अधिक प्रभाव बंगला नाट्य-साहित्य पर परिलक्षित होता है क्योंकि बंगला नाट्य-साहित्य हिंदी की अपेक्षा अधिक युगाश्रयी रहा है। विधायक भट्टाचार्य रचित 'क्षुधा' नाटक में भाग्य-विडम्बना से ग्रस्त बेकार तथा निम्न मध्यवित परिवार के क्षुधा से पीड़ित जीवन के चित्र अंकित हुए। शशिभूषण दासगुप्त ने 'दिनान्तेर आगुन' में शरणार्थी-समस्या पर प्रकाश डाला। **बंगला साहित्य के 'कल्लोल युग' में यूरोपीय विचार-धाराओं का पोषण हुआ।** सन् १९४४ में बिजन भट्टाचार्य रचित नाटक **'नवान्न'** के अभिनय ने मार्क्सवादी प्रभाव स्पष्ट रूप से घोषित किया जिसमें कृषकों की दुर्दशा के बीच गण-चेतना का अभ्युदय दिखाया गया। हिंदी नाट्य-साहित्य में गण-चेतना की बलिष्ट अभिव्यक्ति सन् १९५१ में जगदीशचन्द्र माथुर द्वारा रचित **'कोणार्क'** नाटक में हुई है। ईसा की सातवीं शताब्दी से लेकर तेरहवीं शताब्दी तक के उत्कल के उस गौरवपूर्ण युग-चेतना की धड़कन 'कोणार्क' में है जिसकी प्रेरणा से शिल्पियों ने भुवनेश्वर, पुरी तथा कोणार्ण के मन्दिरों का निर्माण किया। लेखक ने कोणार्क मन्दिर के ध्वंसावशेष देखकर एक विराट् संघर्ष की कल्पना की है, जिसमें महामात्य चालुक्य की शक्ति के विरुद्ध शोषित शिल्पी तथा श्रमिक वर्ग की गण-चेतना आहत नागिनी सदृश्य फुफकार उठी हो। हरिकृष्ण प्रेमी ने **'छाया'** नाटक में उस समाज का चित्र खींचा है जिसमें प्रकाश जैसे प्रतिभाशाली कवि के चरित्र के सम्बन्ध में तो सभी उद्विग्न हैं क्योंकि वे राष्ट्र के सम्पद हैं किंतु उनकी आर्थिक दुरावस्था के प्रति किसी का लक्ष्य नही है। भगवतीचरण वर्मा रचित **'तुम्हें रुपया खा गया'** तथा रामनरेश त्रिपाठी रचित **'पैसा परमेश्वर'** में आर्थिक-विषमता के चित्र हैं। विनोद-रस्तोगी रचित **'नये हाथ'** में आभिजात्य को ठुकराया गया है। मन्मथ राय रचित **'सांओताल विद्रोह'** में भी गण-चेतना की हुंकार है। इस तरह आर्थिक-विषमता की इस परिस्थिति में मार्क्सवाद का प्रभाव लेखकों पर गंभीर रूप से पड़ने लगा। कला जीवन के लिए है एवं समाजवादी अर्थनैतिक-व्यवस्था ही शोषण को निर्मूल कर सकती है—इन विश्वासों की अभिव्यक्ति हिन्दी तथा बंगला नाटकों में होने लगी। किंतु मार्क्स-वाद के अन्तर्गत पुरुषों के कंधे से कंधा भिड़ाकर स्त्रियों का परजीवी (Parasite) न होकर श्रमजीवी होने का जो आदर्श है उसका बलिष्ठ चित्रण हिन्दी व बंगला नाटकों में नहीं हुआ। **'नवान्न'** जैसे बंगला नाटक में दुर्भिक्ष-पीड़ित कृषक बालाओं के संघर्षपूर्ण जीवन की झांकी है, किंतु शोषित-वर्ग के रूप में उनका स्वतंत्र चित्रण नहीं हुआ है। **'कोणार्क'** में तो एक ऐतिहासिक युग को वाणी मिली है किंतु अफसोस है कि उसमें नारी की वेदना को वाणी नहीं मिली। कोणार्क स्त्री-पात्र वर्जित नाटक है एवं इस दृष्टि से उसमें संस्कृत के 'मुद्राराक्षस' से साम्य है। चाणक्य की अर्थनीति में स्त्री के लिए कोई स्थान न था, किंतु मार्क्स की अर्थनीति में स्त्री तथा पुरुष सहकर्मी (Comrade) हैं। अश्क रचित नाटक **'कैद और उड़ान' नायिका-प्रधान नाटक है।** इनकी मजबूर नायिका अप्पी के परवर्ती रूप विद्रोहिनी नायिका माया में सामाजिक बन्धन के प्रति असन्तोष तथा एकाकी पथ चलने का संकल्प है, किंतु समाज-चैतन्य की दीप्ति नहीं हैं। इसी

तरह मन्मथ राय रचित **'वन्दिता'** नायिका-प्रधान नाटक है किंतु उसमें भी व्यक्तिगत जीवन की समस्या है, गण-चेतना नहीं है। उसमें नारी के शोषित जीवन की कथा है।

हिंदी तथा बंगला में केवल वर्ग-संघर्ष, आर्थिक शोषण तथा समाज-चेतना संबंधी नाटक अधिक नहीं हैं। उनमें दरिद्र मध्यवित्त परिवार की समस्या, देश से विताड़ित शरणार्थियों की समस्या, विवाह-वैषम्य की समस्या, शिक्षिता नारियों की समस्या आदि सम्मिलित हैं। समूह व सिद्धांत के बदले मानव के व्यक्ति-रूप ही हिंदी तथा बंगला के समस्या-नाटकों में हमारी संवेदना को आकर्षित करते हैं। **मार्क्सवाद वर्ग-संघर्ष तथा क्रांति में विश्वास रखता है किन्तु समस्या-नाटकों में अधिक स्थलों पर अन्त में समाधान का अभाव है।** बंगला में गोर्की के नाटक "लोअर डेप्थ्स" का अनुवाद **"नीचेर महल"** कई बार अभिनीत हुआ जिसके प्रभाव स्वरूप निम्न श्रेणी के प्रति लेखक सचेतन हो उठे।

हिन्दी तथा बंगला के समस्या-मूलक नाटकों की रंगमंचीयता

समस्या-मूलक नाटकों के दो पक्ष हैं:—अवचेतन मन की सुप्त वासनाओं तथा ग्रंथियों की अभिव्यक्ति तथा सामुहिक संवेदनाओं की अभिव्यक्ति। इन विशिष्टताओं के कारण साधारण नाटकों की रचना-शैली तथा रंगमंचीयता से समस्या-नाटकों की रचना-शैली तथा रंगमंचीयता में अन्तर है। **बाह्य-घटनाएँ इनमें बहुत कम रहती हैं एवं संकलन-त्रय का इनमें निर्वाह होता** है। इस कारण अनेक दृश्य परिवर्तनों की आवश्यकता नहीं होती जो इनकी रंगमंचीयता को सरल बना देती है। इसके विपरीत मनोविश्लेषण तथा **वाद-विवादों** से पूर्ण कुछ समस्या-नाटक स्थिर-नाटक (Static-Drama) कहे जा सकते हैं जिनकी अभिनय-कला साधारण नाटकों से भिन्न होती है। स्तानिस्लाह्वस्की ने यूरोप के मंच पर यथार्थवादी-शैली का प्रवर्तन किया एवं भारतीय रंगमंच पर विशेषकर कलकत्ते के रंगमंच पर इसका प्रभाव पड़ा। कई समस्या-नाटकों में सांकेतिकता भी रहती है अतः **प्रतीकात्मक मंच-शैली** का प्रयोग भी यूरोप में हुआ। हिन्दी क्षेत्र में स्थायी-रंगमंच का अभाव रहा अतः किसी मंच-शैली के व्यापक रूप से प्रयोग के रचयिताओं ने अपने नाटकों को रंगमंचीय बनाने के उद्देश्य से ही लिखा। बंगला नाटककारों के सामने प्रतिष्ठित रंगमंच की अभिज्ञता थी एवं यूरोप के रंगमंचीय प्रयोगों का अनुशीलन कर उन्होंने नवीन-टेकनीक का प्रयोग किया, उनके प्रयोगों में नवीनता है। हिन्दी नाटककारों के सामने प्रतिष्ठित रंगमंच की अभिज्ञता न होते हुए भी उन्होंने नाटक रचनाओं में रंगमंच संबंधी जिस टेकनीक का परिचय दिया उसमें कृतित्व है।

नाटक की रंगमंचीयता का संबंध उसकी **रचना-विधि** तथा नाटककार द्वारा लिखे गये मंच एवं **अभिनय सबंधी निर्देशन से** है। प्रसाद के अधिकांश नाटकों की कथावस्तु इतनी उलझी हुई है एवं इतनी शीघ्रता से उनमें दृश्य-परिवर्तन हुआ है कि

वे रंगमंच पर अभिनय करने के योग्य नहीं समझे जाते। "ध्रुवस्वामिनी" नाटक की रचना उन्होंने समस्या-नाटकों की विधि (तन्त्र) के अनुसार किया, अतः वह रंगमंचीय भी है एवं अभिनेय भी। उसमें तीन अंक हैं एवं प्रत्येक अंक में एक एक दृश्य है—रामगुप्त का शिविर, शकराज का शिविर एवं शक दुर्ग का भीतरी प्रकोष्ठ। इन तीन दृश्यों के लिए दो पटों से ही काम निभाया जा सकता है। शृंखलित कथावस्तु, थोड़े पात्र, अभिनय के योग्य संवाद, गीतों का ह्रास तथा अतिप्राकृत व अतिनाटकीय घटनाओं के वर्जन द्वारा प्रसाद ने ही हिन्दी नाटकों की रंगमंचीयता का मार्ग प्रशस्त कर दिया। हरिकृष्ण प्रेमी के ऐतिहासिक नाटकों में रंगमंचीयता के गुण तो हैं ही एवं उनके समस्या-नाटक "छाया" में यह गुण है। यह नहीं, यह विशेष रूप से दृष्टव्य है। 'छाया' में तीन अंक हैं एवं प्रत्येक अंक में पांच दृश्य हैं। अंक तथा दृश्य विभाजन की दृष्टि से **"ध्रुवस्वामिनी" के ग्रंथन की कसावट** तो इसमें नहीं है क्योंकि इसमें कुल मिलाकर पन्द्रह दृश्य रखे गये हैं। रंगमंचीयता की दृष्टि से हिन्दी में प्रेमी के नाटकों के व्यावहारिक संवाद आदर्श माने जा सकते हैं। **'छाया" में प्रेमी ने रंगमंचीयता के खातिर गीतों का बहिष्कार नहीं किया है।**

जगदीशचन्द्र माथुर रचित '**कोणार्क**' रंगमंचीयता की दृष्टि से अत्यन्त सफल है। **संकलन त्रय के निर्वाह के लिए लेखक ने उपक्रम और उपसंहार** का प्रयोग किया है। इनमें तीन अंक हैं तथा प्रत्येक अंक में एक एक दृश्य है। दृश्य इस प्रकार है—महाशिल्पी विशु का कक्ष, पन्द्रह दिवस बाद वही स्थान एवं मन्दिर के गर्भगृह से सटा हुआ अन्तराल। परिशिष्ट (१) में लेखक ने 'निर्देशक और अभिनेताओं के लिए संकेत लिखा है। समस्या-नाटकों की रंगमंचीयता 'कोणार्क' में अत्यंत प्रौढ़ रूप में व्यक्त हुई है जिसका प्रारम्भिक प्रयोग लक्ष्मीनारायण मिश्र के समस्या-नाटकों में देखने को मिलता है। उदाहरणार्थ '**सिंदूर की होली**' में तीन अंक हैं एवं प्रत्येक अंक में एक-एक दृश्य है। दृश्य इस प्रकार हैं—मुरारीलाल के बंगले में सामने की ओर का कमरा, बंगले का बरामदा, अंधेरी रात में वही बरामदा। रंगमंच निर्देशन के संबंध में मिश्रजी ने शा के ढंग को ही अपनाया है। **शा भूमिका तथा सूच्य अंश में निर्देशन के सम्बन्ध में इतनी बातें लिख देते** हैं **कि निर्देशक के लिए अधिक काम शेष नहीं रह जाता।** मिश्रजी ने भी **सूच्य** अंश में मंच सज्जा, पात्रों के हाव-भाव आदि के संबंध में अत्यंत सूक्ष्म-निर्देशन दिया है। हिन्दी के समस्या-नाटकों में रंगमंचीयता का पूर्ण विकास उपेन्द्रनाथ अश्क के नाटकों में हुआ है। 'स्वर्ग की झलक' की अपेक्षा '**छठा बेटा**' नामक स्वप्न-नाट्य का टेकनीक अधिक सफल है। इसमें अंक तथा दृश्य में वस्तु-विभाजन नहीं हुआ है। इस नाटक का दृश्य है डा० हंसराज के मकान का बरामदा। इसी बरामदे के दृश्य का ही पर्दा उठता है, गिरता है, फिर उठता है। इसमें शराबी पिता तथा उनके पुत्रों की स्वार्थपरता की समस्या है। वसन्तलाल के पाँच पुत्र उनके साथ दुर्व्यवहार करते हैं। इससे व्यथित होकर बसन्तलाल की सुप्त वासना स्वप्न में छाया बनकर आती है एवं उन्हें दिखाई देता है कि उनका छठा बेटा दयालचन्द आया है एवं वह अपने भाइयों जैसा स्वार्थी नहीं है। स्वप्न में छाया-रूप में पात्रों का प्रवेश होता है क्योंकि स्वप्न सदा

धुंधला तथा खंड-खंड होकर दिखाई देता है। इस नाटक में गति, संघर्ष तथा आकस्मिक अन्त ही नहीं, उसके व्यंग्यपूर्ण संवाद, सूच्य अंश में लेखक का निर्देशन, हास्य तथा गाम्भीर्य का मिश्रण आदि रंगमंचीयता के आवश्यक तत्व हैं। हिन्दी में 'छठा बेटा' के टेकनीक से साम्य रखता हुआ बंगला में परशे धर रचित नाटक 'शुधु छाया' है जिसमें लेखक सुमंगल, उसकी पत्नि माला, फिल्म के कहानी-लेखक समीर सेन आदि यथार्थ मानव-पात्र हैं तथा फिल्म-नाटक के नायक, नायिका आदि भाव-पात्र हैं जो छाया-रूप में मंच पर आते हैं। **'छठा बेटा'** तथा **'शुधु छाया'** के टेकनीक पर इतालीय नाट्यकार पिरान्देलो रचित **'सिक्स केरेक्टर्स इन सर्च आफ एन आथर' का प्रभाव है।** हिन्दी में लक्ष्मीनारायण लाल ने अपने नाटक **'मादा कैक्टस्'** में प्रतीकात्मक-मंच-सज्जा का भी सुझाव दिया है।

इस तरह समस्या-मूलक नाटकों के विकास के साथ हिंदी नाटकों की रंगमंचीयता का यथेष्ट विकास हुआ एवं **हिन्दी के एकांकी विशेषकर अश्क के एकांकियों की रंगमंचीयता ने भी इस विकास में योग दिया।** समस्या-मूलक नाटकों के विकास के पूर्व ही बंगला नाटकों की रंगमंचीयता पुष्ट हो चुकी थी। गिरीशचन्द्र तथा द्विजेन्द्रलाल जैसे नाटककारों का एवं गिरीशचन्द्र, शिशर भादुड़ी जैसे अभिनेताओं का योग बंगला नाटकों की रंगमंचीयता के विकास में अत्यन्त सहायक बना। बंगला के सामाजिक नाटककारों ने इस विकास की गति को एक कदम आगे बढ़ा दिया। बंगला नाट्य-साहित्य एवं रंग-मंच वस्तुधर्मी बन गये। इस रंगमंचीय अग्रगति की दृष्टि से 'नवान्न' नाटक उल्लेखनीय है। इसमें चार अंक हैं तथा प्रथम अंक में पांच दृश्य, द्वितीय अंक में पांच दृश्य, तृतीय अंक में दो दृश्य एवं चतुर्थ अंक में तीन दृश्य है। संकलन-त्रय का निर्वाह नहीं हुआ है क्योंकि इसमें दुर्भिक्ष पीड़ित कृषक समाज की दुर्गति के दृश्यों की पृष्ठभूमि ग्राम एवं नगर दो स्थलों पर है तथा दुर्भिक्ष के समय से लेकर जब पुनः खेतों की गोद फसल से भर जाती है उस समय तक का कथानक है। इस नाटक की प्रयोजना **भारतीय गणनाट्य संघ** द्वारा हुई। इस नाटक में जिस रंगमंचीय **टेकनीक का प्रयोग हुआ वह बंगला नाट्यक्षेत्र में युगान्तरकारी सिद्ध हुआ।** किसान, श्रमिक आदि के जीवन के मार्मिक उद्‌घाटन के लिए रंगीन दृश्यपट, साजसज्जा, आलोक की बहुरंगी झलक की आवश्यकता नहीं होती, मंच पर प्रतीक रूप में फूस के छप्पर की टूटी कुटिया के अंश को सजाकर ही काम चल सकता है। यथाथवादी अभिनय-शैली को अत्यन्त महत्वपूर्ण समझा गया। किसानों की बोली में किसानों के आंसुओं की माला पिरोते हुए उनकी नव-जाग्रत चेतना को 'नवान्न' नाटक ने जन-साधारण के अन्तस्तल तक पहुंचा दिया।

व्यवसायिक, साधारण रंगमंच पर भी समस्या-मूलक नाटकों को रंगमंचीयता तथा लोकप्रियता सिद्ध हो गई। तुलसी लाहिड़ी रचित 'दु:खीर इमान' व्यावसायिक रंग-मंच पर अभिनीत प्रथम समस्या-नाटक है। इसमें भी दुर्भिक्ष पीड़ित कृषक समाज के संघर्ष पूर्ण जीवन का चित्र है। केवल समाज चेतना की ही अभिव्यक्ति नहीं, मनस्तत्व

मूलक नाटकों की अभिनेयता भी बंगीय रंगमंच पर सिद्ध हो गई। **एकांकी नाटकों** ने भी बंगला नाटकों की रंगमंचीयता के विकास में योग दिया। इस क्षेत्र में **दिगिन्द्रचंद्र रचित 'पूर्णग्रास', 'गोलटेबिल',' काठालेर आमसत्व,' 'बेवारिस,' 'आपेक्षिक' 'पुनर्जीवन'** आदि विप्लवकारी उत्तेजना की दृष्टि से उल्लेखनीय हैं।

इस प्रकार केवल विषय-वस्तु की दृष्टि से ही नही, रचना-विधान तथा रंगमंचीय-शिल्प के प्रयोग की दृष्टि से हिंदी तथा बंगला के सामाजिक समस्या-मूलक नाटक वर्तमान नाट्य-साहित्य की प्रमुख धारा है जो जन-जीवन के पुनर्निर्माण का दावा पेश करती है।

हिन्दी तथा बंगला के समस्या-मूलक नाटकों की मूल समस्याएँ

हमारे त्रिकोणात्मक जीवन की तीन शाखाएँ हैं—भौतिक, मानसिक तथा आध्यात्मिक। अतः हमारे जीवन की समस्याएँ भी मुख्यतः त्रिधा-विभक्त हैं। इनमें हिंदी तथा बंगला के भौतिक तथा मानसिक समस्या-मूलक नाटकों पर शा, मार्क्स तथा फ्रायड के विचारों का प्रभाव पड़ा किन्तु आध्यात्मिक अथवा सांस्कृतिक कोटि के समस्या नाटकों पर भारतीय मनीषियों के विचारों का गहरा प्रभाव है। इन समस्याओं को हम **राजनैतिक, आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक एवं धार्मिक व साम्प्रदायिक** रूप में विभक्त कर सकते हैं। **स्वतंत्रता-प्राप्ति तथा देश-विभाजन** के पूर्व एवं उसके अनन्तर भारतीय जीवन की समस्याओं में अनेक अन्तर हो गया। जमींदारी प्रथा का उन्मूलन हो गया, नारी की स्वतंत्रता मान्य हो गयी, अस्पृश्य समस्या तथा प्राचीन पीढ़ी एवं नवीन पीढ़ी के विचारों की भिन्नता की समस्या नगण्य हो गई। इनके स्थान पर आर्थिक समस्या, कृषक, मजदूर तथा शरणार्थी समस्या, नारी के विवाह एवं मोक्ष की समस्या, काम समस्या एवं सांस्कृतिक समस्याएँ प्रबल हो उठीं। हिन्दी तथा बंगला नाटकों में इन समस्याओं की अभिव्यक्ति प्रमुख रूप से होने लगी। रवीन्द्रनाथ ठाकुर की जीवन-दृष्टि अत्यन्त व्यापक थी। उन्होंने धनतंत्र तथा यान्त्रिक सभ्यता के पीड़न के बीच बिलखती **मानवता तथा** संस्कृति की समस्याओं को 'रक्तकरवी' तथा 'मुक्तधारा' में व्यक्त किया। प्रसाद की दृष्टि भी आध्यात्मिक तथा सांस्कृतिक पक्ष की ओर अधिक थी। **'कामना' में मानव सभ्यता की समस्या** के प्रति उन्होंने इंगित किया है। **नारी समस्या** के प्रति प्रसाद की दृष्टि अत्यंत सूक्ष्म एवं जीवनोपयोगी है। 'ध्रुवस्वामिनी' में उन्होंने आत्म-सचेतन नारी के विवाह, मोक्ष एवं पुनर्विवाह की समस्या का समाधान प्रस्तुत किया। नारी-समस्या का जो सूक्ष्म, मनस्तात्विक पक्ष है वह नर नारी के यौन संबंध से जड़ित है। इस **काम-समस्या** को ही लक्ष्य बनाकर नाटक रचना करने वालों में शा के विचारों के अनुयायी लक्ष्मीनारायण मिश्र को अत्यंत सफलता मिली है। हिंदी तथा बंगला के अन्य नाटककारों ने भी व्यक्ति तथा समाज, नर तथा नारी के संघर्ष की समस्याओं पर प्रकाश डाला है जिनमें मन्मथ राय, शचीन सेनगुप्त, उपेन्द्रनाथ अश्क, हरिकृष्ण प्रेमी आदि विशिष्ट लेखक हैं। वर्तमान **आर्थिक-समस्या** के युग में अन्न एवं वस्त्र की समस्या,

किसान तथा महाजन, श्रमिक एवं मालिक की समस्या, शरणार्थी तथा निम्न मध्यवर्ती परिवार की समस्या तथा वर्ग-संघर्ष की समस्या दहकते अंगारों की भांति हमारे सामने है। इस क्षेत्र में 'नवान्न' में कृषक जीवन, **'कोणार्क' में ऐतिहासिक काल के शिल्पियों, 'गोत्रान्तर' में शरणार्थियों का** जीवन, **'अंगार' में कोयले को खदान के श्रमिकों का** जीवन समस्या के रूप में मेघाम्बर की तरह चित्रित हुआ है जिसमें पानी भी है और वज्र भी। इस तरह परिवर्तित समस्याओं की अभिव्यक्ति के माध्यम से हिंदी तथा बंगला के नाटककार जीवन के गम्भीर एवं व्यापक सत्य के उद्घाटन की चेष्टा कर रहे हैं।

२. साधारण सामाजिक नाटक

अ—पारिवारिक तथा सामाजिक गम्भीर प्रकृति के नाटक

हिंदी तथा बंगला नाट्य साहित्य में उन्नीसवीं सदी के जो सामाजिक नाटकों की धारा चली आ रही थी उसकी प्रकृति भिन्न प्रकार की थी, उनमें न तो घटना-विहीन रस वर्जित आलोचनाओं का प्राधान्य होता था और न उनके रचना विधान में यथार्थवादी शैली ही अपनाई जाती थी। भारतीय नाट्य-सिद्धांत के अनुसार भारत के यशस्वी नाट्यकारों ने रस को प्रधानता दी एवं रचना विधान में उन्होंने वस्तु का अनिश्चयता में अंत नहीं किया। संस्कृत नाटक सुखान्त होने के कारण उनमें नायक को फल की प्राप्ति होती है, पाश्चात्य नाटकों के सम्पर्क में आने के पश्चात् ट्रेजेडी रचनाओं से परिचय हुआ एवं जिनमें नायकों को फल की प्राप्ति नहीं होती है, उसकी करुण पराजय दिखाई जाती है—ऐसे नाटकों की भी रचना होने लगी। पाश्चात्य ढंग के समस्या–नाटकों का प्रभाव तो सन् १९२१ के बाद ही पड़ा, किंतु उसके पूर्व तथा उसके बाद भी ऐसे **कई सामाजिक नाटकों की रचना हुई जिनका उद्देश्य समस्या का चित्रण नहीं, नर नारियों के, किसी परिवार के व किसी सामाजिक अंग के जीवन का गम्भीर चित्रण करना है।** कभी कभी समाज ही व्यक्तिगत सुख के बाधा-स्वरूप खड़ा होता है एवं अकेला मानव उसके विरुद्ध संग्राम करते हुए शोचनीय परिणाम तक पहुंचता है। इस कोटि के नाटकों की समता **ट्रेजेडी** से की जा सकती है जिसमें नायक दैव से संग्राम करता हुआ पतन की ओर अग्रसर होता है, यद्यपि ट्रेजेडी के नायक की महानता एवं दैव के रूप में गम्भीर जीवन-सत्य के रहस्य की उपलब्धि इन नाटकों में नहीं होती फिर भी ट्रेजेडी के समान गम्भीर वातावरण की सृष्टि होती है एवं करुणा का संचार होता है। बंगला में गिरीशचन्द्र घोष रचित 'प्रफुल्ल' इस कोटि का नाटक है जिसमें एक के बाद एक दुःखदायी परिणति दिखाई गई है किंतु ट्रेजेडी की कसौटी पर कसने पर आकस्मिक परिणति तथा अधिक उच्छ्‌वास के कारण यह ट्रेजेडी की उच्च कलात्मकता को लक्ष्य न कर सका।

विशुद्ध ट्रेजेडी में नायक अपने किसी चरित्र दोष के ही कारण ऐसी घटनाओं की सृष्टि करता है जो उसे नाश व पतन की ओर ले जाते हैं। साधारण कोटि के

हिन्दी तथा बंगला के सामाजिक नाटकों में इस कौशल का प्रयोग नहीं हुआ है। समस्या-नाटकों में समाज की समस्याओं पर बौद्धिक प्रकाश डालना लक्ष्य होता है, पात्र तथा घटना केवल साधन-मात्र हैं। साधारण कोटि के हिन्दी तथा बंगला नाटकों के सामाजिक नाटकों में पात्र तथा घटनाएँ प्रमुख हैं तथा समस्या गौण है। अतः **हिन्दी तथा बंगला में कई सामाजिक नाटक ऐसे हैं जिनमें व्यक्तिगत, पारिवारिक व सामाजिक समस्या होते हुए भी वे समस्या-नाटक नहीं हैं एवं करुण तथा गम्भीर प्रकृति के होते हुए भी वे ट्रेजेडी नहीं कहे जा सकते हैं।**

कभी-कभी व्यक्ति अपने ही विरोधी भावों के कारण अपने जीवन में द्वन्द्व उपस्थित करता है। कभी-कभी परिस्थितिवश व दुर्दैव के कारण किसी परिवार का सर्वनाश हो जाता है तथा कभी-कभी किसी सामाजिक प्रथा व व्यवस्था के कारण व्यक्ति सत्ता पर घोर अत्याचार होता है। इन सभी विषयों की पृष्ठभूमि समाज ही है अतः इनसे संबंधित नाटक सामाजिक नाटक कहलाते हैं। सामाजिक नाटकों का यही यथार्थ स्वरूप है। कई आकस्मिक घटनाओं के योग द्वारा इसके यथार्थवादी स्वरूप को हानि पहुंचती है। पात्रों के ही चरित्र द्वारा घटनाओं की सृष्टि हो एवं घटनाओं के घात-प्रतिघात में व्यक्ति एवं समाज का पारस्परिक संबंध परिस्फुट होकर रसोद्रेक कर सके यही सामाजिक नाटकों का आदर्श होना चाहिए।

उन्नीसवीं सदी के सामाजिक नाटकों का दृष्टिकोण सुधारवादी था अतएव अधिकांशतः प्रहसनों की सृष्टि हुई। कुछ नाट्यकारों ने गम्भीर प्रकृति के सामाजिक नाटकों की भी रचना की। दीनबन्धु का 'नीलदर्पण' नीलहे साहबों के अत्याचार के साथ कृषक जीवन की दयनीयता का चित्र है। भारतेन्दु के 'प्रेमयोगिनी' में समाज के पाखंड की सच्ची झांकी है। कुछ व्यक्ति तथा समाज संबंधो नाटकों में प्रेम की प्रधानता के कारण वे प्रेमलीलापूर्ण रोमांटिक नाटक बन गये। वह युग प्रहसन तथा पौराणिक नाटकों का युग था जिसमें उत्कृष्ट कोटि के सामाजिक नाटकों का प्रायः अभाव था।

बीसवीं सदी में समस्या-मूलक नाटकों के सिवा भी समाज का गम्भीर चित्रण कुछ नाटकों में हुआ है यद्यपि उनकी शक्ति क्षीण एवं लुप्तप्राय है। **बंगाली समाज जीवन का सुन्दर चित्रण गिरीशचन्द्र के कुछ नाटकों में हुआ है। "शास्ति कि शान्ति"** नाटक में गिरीशचन्द्र ने तीन काल-विधवाओं के जीवन का चित्र खींचा है। उनका उद्देश्य यह प्रमाणित करना है कि हिंदू नारियों का वैधव्य एक समस्या है जिसका समाधान पुनर्विवाह में प्राप्त नहीं हो सकता। हिंदी नाटक 'सिंदूर की होली' की मनोरमा भी बाल विधवा है, लेखक ने बौद्धिक ढंग से मनोरमा के शब्दों में ही वैधव्य के आदर्श का चित्रण किया है—अतः वह समस्या-मूलक नाटक की शैली में डाला गया है, किन्तु 'शास्ति कि शान्ति' में तीन प्रकार के जीवन के दृष्टिकोण से परिचालित चरित्रों की समस्थिति, पतन तथा उत्थान दिखाया गया है। प्रसन्नकुमार की पुत्रवधु निर्मला विधवा

होती है एवं वैधव्य के आदर्श को वह स्वीकार कर लेती है। उसका चरित्र स्थिर है, वह अपने आदर्श-पक्ष में अवचलित है यद्यपि उसके लिए वह कोई बौद्धिक दृष्टिकोण का प्रचार नहीं करती। प्रसन्नकुमार की कन्या भुवन विधवा होती है एवं अपने बाल सखा प्रकाश के प्रति आकृष्ट होकर चरम पतन की ओर बढ़ती है। भुवन का यह पतन देख प्रसन्नकुमार कनिष्ठ पुत्री विधवा प्रमदा का पुनर्विवाह करते हैं किंतु उसका पति उसे केवल अपने स्वार्थों का साधन बना कर घर से निकाल देता है। लेखक ने समाज की बाल-विधवाओं का अत्यंत करुण चित्र खींचा है। इस देव के अभिशाप का कोई बुद्धि जनोचित प्रतिकार है या नहीं—यही लेखक का प्रतिपाद्य विषय है। न तो आदर्श पथ पर निर्मला सुखी है, न तो पतित भुवन सुखी है और न पुनर्विवाह प्रमदा सुखी है। यद्यपि एक ही परिवार में तीन नारियों को विधवा बनाकर लेखक ने आकस्मिकता की सृष्टि की है जिसका कोई नाटकीय कारण नहीं है फिर भी बगाली मध्यवित्त परिवार, उसके नर नारियों का सुख दुःख, कलकत्ता नगरी के भद्र एवं दुःशील वर्ग के लोगों का व्यवहार, उत्थान एवं पतन के दृश्य उनकी लेखनी में जीवन्त हो उठे हैं। अगर इसमें अनेक मृत्यु एवं प्रकाश के असत् व्यवहार का नाटकीय कारण उपस्थित होता तो अनेक मनस्तत्व-विश्लेषणात्मक तत्वों से पूर्ण यह नाटक आधुनिक शैली का न होते हुए भी भारतीय मध्यवित्त समाज का अनुपम चित्र होता।

द्विजेन्द्रलाल राय ने गिरीशचन्द्र की शैली पर "**परपारे**" नामक सामाजिक नाटक की रचना की है। इसमें एक धनी जमींदार पुत्र के उच्छृंखल जीवन की कथा है। यह भी समाज का समग्र रूप नहीं एक परिवार का चित्र है। लेखक का उद्देश्य यह दिखाना है कि यदि पुत्र विवाह के बाद माता की उपेक्षा करता है तो वह और भी पतन की ओर बढ़ने के ही पूर्वाभास हैं। महिम सरयू से विवाह कर कलकत्ते में रहता है एवं अपनी माता की उपेक्षा करता है। इसी दुःख में उसकी माता की मृत्यु हो जाती है। अब जिस दाम्पत्य जीवन में इतनी आसक्ति थी उसका अवसान अवश्यम्भावी है। महिम शान्ता नामक एक गणिका के प्रति आसक्त होता है। इसके बाद महिम और सरयू के जीवन की अशांति, महिम का सरयू को खून करने के लिए उद्यत होना, बीच में शान्ता का आगमन इत्यादि बाह्य घटनाओं से नाटक पूर्ण है। शांता के चरित्र का माहात्म्य दिखाकर लेखक ने यह प्रतिपादित किया है कि गणिका मात्र ही नीच नहीं होतीं। पतिताओं का चरित्र-चित्रण समस्या-नाटकों का भी एक विषय रहा है जैसे 'राक्षस का मंदिर' की अशगरी वेश्या। किंतु अनेक रोमांचकारी घटनाओं से पूर्ण किसी परिवार का चित्रण साधारण कोटि का सामाजिक नाटक है। लेखक का अभिप्राय समाज की पतिताओं की समस्या पर बौद्धिक आलोकपात करना नहीं है। इसी तरह गोविंदवल्लभ पन्त ने हिंदी नाटक 'अंगूर की बेटी' में मद्यपान के दुष्परिणामों का चित्रण किया किन्तु उसका भी दृष्टिकोण बौद्धिक नहीं तथा बाह्य घटनाओं से परिपूर्ण है। मोहनदास शराबी है एवं उसकी पत्नि कामिनी इस कारण अत्यन्त दुःखी है। सिनेमा के डायरेक्टर माधव मोहनदास के मद्यपान को और भी उत्साहित करते हैं एवं जब

मोहनदास नशे में झूम उठते हैं तब उनकी जेब से वे उसकी पत्नी की हार एवं चूड़ियां चुरा लेते हैं। माधव की अंगूठी मोहनदास की जेब में गिर जाती है। माधव जेवर चुरा-कर एक्ट्रेस मिस प्रतिभा के साथ भाग जाना चाहते हैं। मोटर चलाते हुए दुर्घटना (एक्सिडेंट) होती है। मोहनदास शराब पीना छोड़ देते हैं। शराब की देवी का आवि-र्भाव होता है किंतु अन्त तक माधव की मृत्यु तथा अन्य दुष्परिणामों को देख मोहन दास शराब का सदा के लिए त्याग करते हैं।

इस नाटक में भी लेखक ने मद्यपान की समस्या को **अतिरंजित** कर दिखाने के लिए अनेक रोमांचकारी घटनाओं का समावेश किया है, **बौद्धिकता तथा मनस्तत्व-विश्लेषण का अभाव है** अतः तीन अंकों के होते हुए भी वह साधारण कोटि का, वही पुरानी शैली का सामाजिक नाटक है।

इस प्रसंग में पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' रचित नाटक **'आवारा'** उल्लेख योग्य है। इस नाटक के नीचे लिखा गया है—"(अद्‌भुत आधुनिक सामाजिक नाटक)"। यह नाटक भी तीन अंकों का होते हुए भी समस्या-मूलक नाटक नहीं है। इसमें समाज के उस वर्ग का चित्रण है जो गृहहीन है एवं जो आवारा वर्ग कहलाता है। बंगला सामा-जिक नाटकों में जिस वास्तुहारा शरणार्थी वर्ग का चित्रण हुआ है यह उससे भिन्न है। **ये आवारा कहलाने वाले व्यक्ति निर्धन हैं किंतु हृदय से निर्धन नहीं**—यही लेखक का प्रतिपाद्य विषय है। आवारा टोली के नेता बुद्धू भिखारी तथा उसकी पालिता कन्या लाली के भावों का चित्रण कर लेखक ने इस सृष्टि की चेष्टा की है। इस नाटक में सर्वहारा वर्ग का चित्र है किन्तु न तो यह श्रमिक वर्ग है और न कृषक वर्ग अतः इसमें मार्क्सवादी जीवन-दर्शन की झलक ढूंढ़ना व्यर्थ है। श्रीपुर के जमींदार के छोटे भाई दयाराम इस आवारा टोली के प्रति करुणार्द्र होते हैं। लाली दयाराम से प्रेम करती है यद्यपि वह पहले पहल इस विषय में अधिक सचेतन नहीं है। बुद्धूराम उसे समझाते हैं—"प्रेम या चाहना क्या है इसकी तारीफ कोई नहीं कर सकता। प्रेम समझने या सिखाने-पढ़ने की चीज नहीं—अनुभव करने—महसूस करने—भोगने की चीज है।

—'प्रेम न बाड़ी ऊपजै, प्रेम न हाट बिकाय,

(लाली को हृदय से सटाकर)

राजा परजा जेहि रुचे सीस देई लेई जाय।'[1]

१—आवारा—लेखक पंडित बेचन शर्मा, 'उग्र,' (प्रथम प्रकाशन)
दूसरा अंक, चौथा दृश्य।

लाली और दयाराम के प्रेम चित्रण में न तो उच्च कोटि की भावुकता है और न मनोविश्लेषणात्मक पद्धति । लेखक घटनाओं द्वारा यही प्रतिपादित करना चाहते हैं कि उच्च श्रेणी एवं निम्न श्रेणी के बीच प्रेम के अंकुरित होने पर समाज उसे सहन नहीं कर सकता किंतु इसी सभ्य समाज के उच्च तथा शिक्षित परिवार के लोग समाज सुधार तथा सामाजिक साम्य के नाम पर भाषण देते हैं तथा अपने नाम के प्रचार के लिए सार्वजनिक कार्यों का डंका पीटते हैं । इसीलिए भिखारी बुद्धू आवारा ही रहना अधिक पसन्द करता है, वह जानता है कि समाज के उच्च वर्ग के लोग उनके लिए जो कुछ भी करते हैं, वह ऊपरी दिखावा मात्र है उसमें हृदय का योग नहीं है ।

—सामाजिक ढोंग का यह सुन्दर चित्र है जिस ओर प्रकाश डालकर उग्रजी ने समाज के प्रति एक नवीन दृष्टिकोण से विचार करने की मौलिकता का परिचय दिया है । **इसी तरह हरिजन समाज, वेश्या समाज आदि के सुधार पर नित्य बड़े-बड़े लेख प्रकाशित होते हैं तथा सभाएं होती हैं किन्तु उन्हें सौहार्दपूर्ण भाव से अपने गृह में अपनाने की उदारता सभ्य समाज में नहीं है** । निम्न श्रेणी के समाज का चित्र बंगला नाटक 'नवान्न' में है किंतु उसका दृष्टिकोण आर्थिक है एवं उसमें प्रगतिशील साहित्य के लक्षण हैं । निम्न श्रेणी की जैसी झांकी 'आवारा' में लेखक ने प्रस्तुत की है, वह किसी विशिष्ट दार्शनिक सिद्धान्त व विशिष्ट टेकनीक से प्रेरित होकर नहीं की । समाज का एक अद्भुत चित्र उसमें है ।

बंगाली समाज में सबसे जागरूक एवं क्रियाशील अंश उच्च मध्यवित्त परिवार है जो कि अधिक से अधिक संख्या में शिक्षित है । बंगला के अधिकांश सामाजिक नाटकों में इसी **नागरिक सभ्यता** में पले हुए शिक्षित मध्यवित्त परिवार का चित्र मिलेगा । पहले पहल बंगला कथासाहित्य में गांव के **जमींदारों के प्रताप एवं विलासिता के चित्रों की** भरमार रहती थी, जमींदारी प्रथा के उन्मूलन के साथ-साथ इस आभिजात्य श्रेणी का भी नाश हुआ । फिर भी बीसवीं सदी के साहित्य में इस आभिजात्य श्रेणी के पतनोन्मुख जीवन के चित्र भी पाये जाते हैं ।

हिन्दी में जमनादास मेहरा रचित **'जवानी की भूल'** साधारण सामाजिक नाटक है । मानिकलाल अपनी साध्वी पत्नी रमा को भूल वेश्या फूलमनि से प्रेम करने लगता है । फूलमनि षड़यंत्रों में मानिकलाल को फंसाना चाहती है, अन्त में मानिकलाल अपनी भूल पर पछताते हैं । इस तरह साधारण सामाजिक नाटकों में आभिजात्य व मध्यम श्रेणी के लोगों का चित्रण वर्गीय दृष्टिकोण से नहीं, साधारण मानवता के ही दृष्टिकोण से हुआ है । बंगला में वर्तमान काल के प्रसिद्ध नाट्यकार एवं निर्देशक महेंद्र गुप्त रचित **"कंकावतीर घाट"** ऐसा ही एक सामाजिक नाटक है जिसके विषय में नाटककार की उक्ति है—"आमार लेखा प्रथम सामाजिक नाटक—कंकावतीर घाट । समाज समस्या विचार ए नाटके नेइ, पायेर तलाय आदिमकालेर पृथिवीर माटी - आर तार ओपरे

सध्यतार आलोते ओ अन्तराले गड़े-ओटा कटी बांगाली नरनारी–कंकावतीर घाट तादेरइ सुख-दुःखेर कथा, 'सामाजिक नाटक' एके बला चले व्यापक संज्ञाय।" (षष्ठ संस्करण) —लेखक की इस उक्ति स्पष्ट है कि लेखक का उद्देश्य साधारण मानवों का चित्रण है। व्यक्ति समाज का ही अंग है अतः उसका चित्रण समाज-निरपेक्ष नहीं हो सकता। हमारे तथाकथित सभ्य समाज में सभ्य और असभ्य दोनों नकली भद्रता का मुखौटा पहने वास करते हैं। इन्हें पहचानना कठिन होता है एवं कभी-कभी पहचानते हुए भी हम न तो देव-चरित्रों को उनका योग्य पुरस्कार दे सकते हैं और न पशु-चरित्रों का दमन ही कर सकते हैं। मानवीयता की दृष्टि से दोनों तरह के चरित्र साहित्यिक की समवेदना के पात्र होते हैं। समस्या-नाटकों में इन देव तथा दानव चरित्रों का निरूपण नहीं होता, समाज पर उनके प्रभुत्व एवं परिणामों का बौद्धिक निरूपण होता है। इब्सन ने अपने नाटक 'पिलर्स आफ दी सोसाइटी' में समाज के बड़े लोगों के आवरण को हटा कर दिखा दिया है। जार्ज बर्नार्ड शा ने समाज के इस दोरंगे स्वरूप का उद्‌घाटन करने के लिए कामेडी का सहारा लिया है। साधारण शैली में भी समाज के आलोक तथा अंधकार में पले हुए नर-नारियों का मर्मस्पर्शी चित्रण हो सकता है जैसा कि 'कंकावतीर घाट' में किया गया है। **यह गिरीशचन्द्र के सामाजिक नाटकों का आधुनिक रूपांतर है।** इस धारा में नाटक लिखने की प्रेरणा हिन्दी तथा बगला नाटककारों में कम होती जा रही है क्योंकि पाश्चात्य विचार-धारा से हम अधिकाधिक प्रभावित होते जा रहे हैं।

'कंकावतीर घाट' नाटक में मि० मुखर्जी का अत्यन्त मार्मिक चरित्र-चित्रण हुआ है। मि० मुखर्जी की पत्नी कंकावती पति की मरणासन्न अवस्था में स्वयं गंगा में डूब कर अपना प्राण देती है ताकि मि० मुखर्जी स्वस्थ हो जायें। गांव की स्त्रियां गंगा के उस घाट को सती कंकावती का घाट कहती हैं एवं अपने सोहाग की रक्षा के लिए गंगा जल में पूजा अर्पण करती हैं। मि० मुखर्जी असत्-चरित्रा चमेली बीबी से संपर्क रखते हैं। चमेली बीबी कंकावती की कन्या को अपनी कन्या कहकर, प्रसव की रात्रि में अपने सद्यजात पुत्र को दूसरों को दे देती है ताकि उस कन्या के यौवन आने पर वह व्यवसाय चला सके। यही शीला नामक कन्या जो कंकावती की कन्या उमा है अपने पति की जान बचाने के लिए उसी कंकावती के घाट में डूब जाती है। इस नाटक में प्रौढ़, आर्टिस्ट ईषन् विकृत-मस्तिष्क मि० मुखर्जी के करुण पितृत्व एवं उमा के पति अखसी ग्राम के तरुण जमींदार-पुत्र प्रवीर की स्वार्थान्धता का सहानुभूति पूर्ण चित्रण हुआ है। चमेली बीबी जो पहले रूपजीवा थी एवं मिसेस मुखर्जी के रूप में समाज में प्रतिष्ठित है उसके जीवन के छिपे पाप कृत्यों का उद्‌घाटन भी नाटकीय हुआ है। महेन्द्रगुप्त द्वारा समाज के इस रूप का चित्रण अनुरूप हुआ है, जिसमें भले-बुरे, सत्-असत् एक आवरण के पीछे छिपे रहते हैं एवं कई निष्पाप चरित्रों का बलिदान हो जाता है। **इस नाटक की पृष्ठभूमि नागरिक तथा ग्रामीण** वातावरण है यद्यपि पात्र-पात्रियाँ नागरिक तथा ग्रामीण समाज के प्रतिनिधि स्वरूप नहीं हैं। इसी तरह वृन्दावनलाल वर्मा ने **'खिलौने की**

एवं नायिका रमा, नायक रमेश तथा ज्याठाइया के अन्तर्द्वन्द्व-चित्रण का रूप अधिक स्पष्ट हो उठा। अतः उपन्यास में जिस ग्रामीण समाज जीवन की अभिज्ञताएँ हैं नाटक में उनका अभाव है। हिंदी में नागरिक तथा ग्रामीण जीवन की पृष्ठभूमि पर रचित प्रेमचन्द के '**गोदान**'का भी नाटकीय- रूपान्तर हुआ एवं चित्रपट पर उसे दिखाया गया। 'गोदान' उपन्यास में नागरिक तथा ग्रामीण कथावस्तु का संबंध अत्यंत शिथिल है अतः **उसके फिल्मी-रूपान्तर में ग्रामीण कथावस्तु को ही प्रधानता दी गई**। आजीवन कर्ज में डूबे हुए कृषक होरी के सरल, आदर्शमय जीवन का करुण अवसान ग्राम्य-जीवन के प्रति हमारी सहानुभूति आकर्षित करता है। ग्राम्य-जीवन के प्रति सहानुभूतिपूर्ण दृष्टिकोण से लिखे गये नाटकों की रचना हिंदी तथा बंगला में अधिक नहीं हुई क्योंकि बीसवीं सदी के नाटककारों के ध्यान को नागरिक समाज की यौन-संबंधी जटिलताओं एवं आर्थिक विषमताओं ने आकर्षित किया।

उपन्यासों के नाट्य-रूपान्तर के क्षेत्र में ताराशंकर बन्दोपाध्याय के उपन्यास '**कालिन्दी**' का नाट्य रूप प्रशंसनीय है। इसमें रायहाट के जमींदार रामेश्वर चक्रवर्ती के परिवार की कहानी है किंतु उनकी **जमींदारी** की कृषक प्रजा, **आदिवासी संथाल,** शक्कर के कारखाने के मालिक एवं रामेश्वर के दो पुत्र महीन्द्र एवं अहीन्द्र के नवीन विचार सामाजिक नाटकों में नव-जाग्रत समाज-चेतना का आभास देते हैं। अहीन्द्र की उक्ति इसी समाज-चेतना की दूती है—

"रायहाटेर जमींदार बशेर संगे चरेर चीनीर कलेर मालिकेर युद्ध, आभाके मोगलेर संगे इंग्रेजेर युद्धेर कथा मने कोरिये दिच्छे, मुखार्जी सायेब।—ए काले जारा आमादेर छिड़े फेलबे-तारा आपनाकेओ बाद देबे ना। तारा एइ माटीर मानुषेर दल! तारा ओइ बोध हय आसछे।"[1]

कृषक प्रजा पर जमींदारों के अत्याचारों के जो करुण-चित्र बंगला उपन्यासों तथा नाटकों में हैं, हिन्दी में उनका अभाव है। इसका कारण बंगला के लेखकों की आत्म-सचेतनता है।

ब—कामेडी तथा प्रहसन जैसे प्रफुल्ल प्रकृति के नाटक

जीवन प्रफुल्ल-पक्ष उतना ही महत्वपूर्ण है जितना कि जीवन का गम्भीर-पक्ष। अगर ट्रेजेडी में जीवन के गंभीर-सत्य के रहस्य का आभास मिलता है तो कामेडी में

१—कालिन्दि—लेखक ताराशंकर बन्दोपाध्याय, चतुर्थ अंक,
द्वितीय दृश्य—
(चतुर्थ संस्करण)

साधारण जीवन के आनन्द, उल्लास, हंसी, खुशी की उज्ज्वल प्रफुल्लता प्राप्त होती है। **'हास' का अर्थ ही है विकास।** मानव-जीवन में प्रफुल्लता उसके विकास को परिपूर्ण करती है। कला में जीवन का प्रतिन्यास होता है, कलाकार कल्पना द्वारा, अपनी प्रतिभा द्वारा जीवन के रूप को अंकित करता है। नाटक में अभिनयात्मकता-प्रणाली द्वारा जीवन का सजीव रूप मंच पर अवतरित होता है। जीवन की सजीवता की दृष्टि से ट्रेजेडी की अपेक्षा कामेडी की रचना में अधिक दक्षता की आवश्यकता होती है। कमेडी की घटनाओं तथा पात्र-पात्रियों का अवस्थान देश-काल की सीमा में आबद्ध होता है। उसमें पुराण तथा इतिहास का महत्व नहीं है, उसमें सामयिक समाज की हंसी-खुशी, सबलता-दुर्बलता, आदर्श-ढोंग आदि के चित्र रहते हैं। **प्रत्येक देश के कामेडी अपने समाज के नर-नारियों के जीवन का हर्षोज्जवल-चित्र प्रस्तुत करते हैं।**

कामेडी के शास्त्रीय रूप का विकास पाश्चात्य में बसंत-कालीन उत्सव से हुआ जिसमें ग्रामीण जनता के हास्य-मुखर, नृत्य-गीत एवं अश्लील प्रदर्शनों की प्रचुरता रहती थी। शास्त्रीय मर्यादा प्राप्त होने पर कई उत्कृष्ट कोटि की कामेडियों की रचना हुई। अरस्तू ने 'काव्य-शास्त्र' में कामेडी पर अधिक विवेचन नहीं किया किन्तु ग्रीक-नाट्यकार एरिस्टोफेंस के कामेडियों से प्रमाणित होता है कि कलात्मक तथा जीवन-दर्शन के दृष्टिकोण से वे ट्रेजेडी की अपेक्षा कम महत्वपूर्ण नहीं हैं। **एरिस्टोफेंस के कामेडियों** में सामाजिक नियम तथा आदर्शों के विरोध करने वाले लोगों का हास्योत्पादक चित्रण किया गया है। रोमन सभ्यता का प्रारम्भ ही **प्लाटस एवं टेरेंस** के प्रसिद्ध कामेडियों से हुआ। रोमन कलाकारों का आदर्श ग्रीक कला के आदर्श पर अवलंबित था किन्तु रोमन गणराज्य में पदाधिकारियों तथा कानून की खिल्ली उड़ाना खतरनाक था। अतः रोमन कामेडियों के पात्र-पात्रियों की प्रकृति रोमन होती हुई भी उनका वातावरण ग्रीक देश का था। पाश्चात्य देशों में कामेडी के रूप का विकास हमें मोलियर बेन जान्सन एवं शेक्सपियर के कामेडियों में देखने को मिलता है। **मोलियर तथा बेन जान्सन के कामेडियों में यथार्थवादी पुट अधिक है** किन्तु शेक्सपियर के कामेडी में रोमांस एवं हास का मिश्रण है। **रोमन कामेडियों में यौन-जटिलताएं हास्य की सृष्टि करती** थी, उदात्त भाव के रूप में यदा-कदा आदर्श प्रेम का चित्र होता था। एलिजाबेथ युग की जनता प्रेम-चित्रण एवं हास्य दोनों चाहती थी। अतः **शेक्सपियर के कामेडियों में मानव-सुलभ प्रेम एवं विनोद की मात्रा अधिक है।** कल्पना का यथेच्छ प्रयोग हुआ है फिर भी उनके पात्र पात्री मानवोचित दोष-गुणों से भूषित हैं। **कामेडी का चरम विकास जार्ज बर्नार्ड शा के नाटकों** में हुआ है। **तीक्ष्ण व्यंग्य तथा वाग्वैदग्ध** के द्वारा समाज के असली रूप का हास्यास्पद चित्रण उनमें हुआ है।

उच्च कोटि के कामेडियों में पात्रों का चरित्र-चित्रण प्रमुख होता है यद्यपि चरित्र-चित्रण व्यक्तिगत नहीं, श्रेणीगत ही होता है। **पात्रों के व्यवहारों की असंगति एवं असम्भव्यता ही हास्य की सृष्टि करती है।** घटनाओं की असंगति दिखाकर हास्य की सृष्टि करने में अधिक कलात्मकता नहीं रहती। जीवन के उज्ज्वल पक्ष का जब उच्च,

कलात्मक चित्रण होता है तब वह कामेडी कहलाता है एवं जब साधारण, हल्के ढंग का चित्रण होता है तब वह फार्स कहलाता है। **संस्कृत साहित्य में हास्य रस प्रधान** रूपक **प्रहसन** कहलाते हैं एवं उनके शास्त्र वर्णित शुद्ध, विकृत तथा संकीर्ण रूप हैं। हिंदी तथा बंगला नाट्य-साहित्य में कामेडी तथा प्रहसनों की रचना पाश्चात्य ढंग पर होने लगी। उनमें मोलियर, शेक्सपियर तथा शा जैसे उच्च कोटि के कामेडी लेखक नहीं हुए किंतु प्रारम्भिक काल में अंग्रेजी '**फार्स**'सदृश्य प्रहसनों की रचना अधिक संख्या में हुई जिनका उद्देश्य सुधारवादी था एवं जिनका कलात्मक स्वरूप उच्च-कोटि का न था। उन्नीसवीं सदी के भारतीय प्रहसनों में समाज-व्यवस्था तथा उसके पाखंडों की हंसी उड़ाई जाती थी एवं वे पंचांकी नाटकों से आकार में लघु होते थे।

हिन्दी तथा बंगला नाट्य-साहित्य में बीसवीं सदी में जिन एकांकी नाटकों का उद्भव हुआ, १९ वीं सदी के प्रहसन उनके प्रारम्भिक रूप माने जाते हैं जो अधिक कलात्मक न थे।

बीसवीं सदी में हिन्दी तथा बंगला नाटक साहित्य में प्रहसनों तथा कामेडियों का स्वरूप अधिक परिष्कृत हुआ यद्यपि ऐतिहासिक-राष्ट्रवादी तथा सामाजिक समस्या-मूलक यथार्थवादी नाटकों की प्रेरणा ने प्रहसनों के स्त्रोत को पूर्णरूप से विकसित होने का अवकाश नहीं दिया।

पाश्चात्य के ट्रेजेडी एवं कामेडी का भावानुवाद क्रमानुसार दुःखात्मक नाटक तथा सुखात्मक नाटक हुआ, कभी-कभी दुःखान्त तथा **सुखांत** शब्द भी व्यवहृत होते हैं एवं साधारणतः सुखान्त नाटकों को कामेडी कहा जाता है। **इस दृष्टि से संस्कृत नाटक तो सभी सुखान्त हैं किन्तु वे कामेडी नहीं हैं। कामेडी का मूल स्वर हर्ष है एवं करुण रस की व्यंजना उसके मूल-स्वर के लिए बाधक है।** कामेडी में साधारणतः **जीवन के प्रफुल्लित पक्ष** का चित्रण होता है एवं चूँकि जीवन की चरम खुशी नर-नारी के मिलन में है अतः अन्त में विवाह की शहनाई **मिलनात्मक**-रागिनी के द्वारा कथा समाप्त करती है।

किसी व्यक्ति या सामाजिक आदर्श के प्रति तीव्र व्यंग्य कटु-आक्षेप की अपेक्षा विनोद ही कामेडी का प्रकृत वातावरण सृजन कर सकता है। शेक्सपियर के कामेडियों में **विनोद (ह्यूमर)** अधिक है, जान्सन के कामेडियों मे **(व्यंग्य सैटायर)** अधिक है एवं शा के कामेडियों में **वाग्विदग्धता (विट)** अधिक है। हास्य रस के अन्तर्गत 'हास' नामक स्थायी भाव की अनेक कोटियां हैं। **आधुनिक हिन्दी तथा बंगला के कामेडी तथा प्रहसनों की अपनी अलग विशिष्टता है।** नवीन समाज-जीवन में पदार्पण कर नवीन साहित्य का सृजन करना ही स्वाभाविक है। हिन्दी तथा बंगला नाट्य-साहित्य में जीवन के प्रफुल्ल-पक्ष का चित्रण किस भांति हुआ यह विवेचन अत्यंत महत्वपूर्ण है, क्योंकि जीवन का हास्यमुखरित पक्ष भी उसकी पूर्णता में योगदान करता है। सुखात्मक

तथा दु:खात्मक सभी भाव रस की कोटि में पहुंचकर आनन्दात्मक हो जाते हैं। किन्तु **'हास' सुखात्मक होने के कारण जीवन के उज्ज्वल पक्ष का द्योतक है।**

संस्कृत रूपकों के भेद **प्रहसन** में हास्य रस का उद्रेक होता है। पाश्चात्य नाट्यशास्त्र के अनुसार जैसे ट्रेजेडी का हल्का रूप "मेलोड्रामा" कहलाता है वैसे कामेडी का हल्का रूप "**फार्स**" कहलाता है। इसमें उद्भट कल्पना, घटना एवं चरित्र की अतिशयोक्ति, स्थूलता तथा विशुद्ध कौतुक का मिश्रण हो जाता है। विदूषक (Buffoon) की सी उक्तियों एवं चेष्टाओं द्वारा दर्शकों को हँसाना ही इनका उद्देश्य होता है। 'बर्लेस्क' में किसी भी चरित्र की नकल (Caricature) की जाती है किन्तु 'फार्स' का उद्देश्य केवल मात्र हँसना, हँसाना होता है। हिन्दी तथा बंगला के प्रहसन संस्कृत के प्रहसन तथा पाश्चात्य 'फार्स' के मिश्रित रूप हैं। इसके साथ ही उनमें व्यंग्य द्वारा समाज-सुधार करने का उद्देश्य भी है।

भारतीय दर्शन अत्यन्त गम्भीर, व्यापक तथा बहुमुखी है। उसमें रहस्यपूर्ण, ज्ञानातीत, असीम ब्रह्म की ओर दृष्टि है एवं जगत में अवतीर्ण होकर अधर्म का नाश करने वाले भगवान के प्रति भक्ति भी है। हिन्दी तथा बंगला के पौराणिक नाटकों में भारतीय दर्शन का महिमामय रूप व्यक्त हुआ है। किन्तु भारतीय समाज संस्कारों से जड़ित तथा अकर्मण्य हो गया है। नवीन परिस्थितियों के अनुकूल सामाजिक व्यवस्थाओं में परिवर्तन तथा संशोधन आवश्यक है। मनु के समय से हिन्दू समाज के लिए जो नियम बन गये वे शास्त्र बनकर युगों से हमारा शासन करते रहे। मध्ययुग में मुसलमानी प्रभाव से हमारा समाज और भी पिछड़ गया क्योंकि स्त्रियाँ पर्दे में रहने लगीं। औद्योगिक सभ्यता के युग में आर्थिक शोषण ने समाज को गंभीरतर गर्त्त में ढकेल दिया। इस समाज के यथार्थ चित्रण के लिए समस्या-नाटकों का प्रादुर्भाव हुआ किन्तु उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध के [illegible] उद्देश्य लेकर हास्य-रस प्रधान नाटकों की भी सृष्टि होने लगी जो प्रहसन कहलाये जैसे-हिदी में भारतेन्दु रचित 'वैदिकी हिंसा-हिंसा न भवति', राधाचरण गोस्वामी रचित 'बूढ़े मुंह मुहासे', प्रतापनारायण मिश्र रचित 'कलिकौतुक' रूपक आदि तथा बंगला में माइकेल मधुसूदन दत्त रचित 'एकेइ की बले सभ्यता,' 'बूड़ो शालिकेर घाड़े रों' आदि। समाज-व्यवस्था पर व्यंग्य करना, उनकी समस्याओं पर प्रकाश डालना आदि समस्या-नाटकों के विषय हो गये। अतः हास्य-रसात्मक नाटकों पर सामाजिक सुधार का दायित्व अधिक नहीं रह गया। ऐसी परिस्थितियों में हिन्दी तथा बंगला में सामाजिक विषयों को लेकर जिन कामेडियों तथा प्रहसनों की रचना हुई वे जीवन के प्रफुल्ल अंश का चित्रण तो करते हैं किंतु उस चित्रण में न तो जीवन के उल्लास का बहुरंगी रूपायन हुआ और न हास्य-रस में सघनता आने पाई। समाज चित्रण का यह पक्ष अत्यन्त निर्बल रहा एवं पाश्चात्य कामेडी की कोटि के एक भी नाटक की रचना नही हो पाई। **कुछ साधारण कोटि के प्रहसनों की रचना हुई एवं धीरे-धीरे इसकी संख्या अत्यन्त कम होती जा रही है।**

रवीन्द्रनाथ ने तीन प्रहसनों की रचना की जिनका अभिनय सफलतापूर्वक किया गया। **'गोड़ाय गलद', 'बैकुंठेर खाता'** एवं **'चिरकुमार सभा'** उनके तीन प्रहसन हैं। इन्हें हम पाश्चात्य नाटकों के कामेडी के समकक्ष नहीं मान सकते क्योंकि इनकी चरित्र-सृष्टि में अधिक कलात्मकता का परिचय नहीं मिलता, घटना-विन्यास द्वारा हास्य उत्पन्न करने की चेष्टा की गई है। 'गोड़ाय गलद' में विनोद (ह्यूमर) अधिक है एवं घटनाओं के विन्यास द्वारा भ्रान्ति की सृष्टि कर अन्त में उस भ्रान्ति का निराकरण हुआ है। 'बैकुंठेर खाता' भी प्रहसन है किंतु इस नाटक में बैकुंठ की विधवा कन्या नीरू का चरित्र-नेपथ्य में होते हुए भी वह प्रच्छन्न करुण रस की सृष्टि कर हास्य की उज्वलता को म्लान कर देश और समाज की सेवा के लिए कटिबद्ध लोगों का हास्यास्पद चित्र है। लोगों का कहना था कि इस नाटक में रवीन्द्रनाथ ने विवेकानन्द द्वारा प्रवर्तित संन्यास-जीवन के आदर्श की हंसी उड़ाई है। यह धारण भ्रान्त है। इन तीनों प्रहसनों की रचना के मूल में रवीन्द्रनाथ का सामाजिक उद्देश्य कुछ भी नहीं है। उन्होंने अपने ही परिवार के कुछ चरित्रों को लेकर कल्पना द्वारा नाना घटनाओं की सृष्टि करके उन घटनाओं की असंगति दिखाकर हास्य-रस का उद्रेक किया है। 'चिरकुमार सभा' में वाग्विदग्धता (विट) की मात्रा अत्यधिक है।

'चिरकुमार सभा' में चिर कौमार्य व्रत ग्रहण करने वाले श्रीश, विपिन और पूर्ण आखिर में विवाह करना ही उचित समझते हैं। पूर्ण अध्यापक चन्द्रमाधव बाबू की भांजी निर्मला से प्रेम करने लगते हैं, श्रीश और विपिन अक्षयकुमार की दो सालियों से प्रेम करने लगते हैं। इस सभा के सभापति चन्द्रमाधव बाबू थे एवं बाद में इस सभा का अधिवेशन अक्षयकुमार के गृह में होने लगा। अक्षयकुमार की एक विधवा साली शैल पुरुष वेश धारण कर अबलाकान्त के रूप में इस सभा का सदस्य बनी क्योंकि सभा में स्त्रियों का प्रवेश निषिद्ध था। निर्मला से पूर्ण का, नृप से श्रीश का एवं नीर से विपिन का प्रेम हो जाने पर सभा में स्त्रियों की सदस्यता मान्य हो गई एवं शैल ने पुरुष वेश उतारकर स्त्रीय परिचय दिया। अन्त में तीन जोड़ों का मिलन हुआ किंतु विधवा शैल के एकाकीत्व ने इस मिलन-छबि को म्लान कर दिया, लेखक की दृष्टि इस त्रुटि की ओर नहीं गई।

रवीन्द्रनाथ के ये तीनों प्रहसन अत्यन्त लोकप्रिय हुए। इस तरह के प्रहसनों की रचना बंगला के अन्य लेखक व हिंदी लेखक न कर सके क्योंकि प्रहसन में अन्य लेखकों ने व्यंग्य का अधिक सहारा लिया है। रवीन्द्रनाथ के प्रहसनों को डा० आशुतोष भट्टाचार्य ने 'बांगला-नाट्य साहित्येर इतिहास' (द्वितीय खंड) में **'रंगनाटक'** कहा है। **'रंग' से तात्पर्य व्यंग्य, विनोद हास्य, कौतुक, वाग्विदग्धता आदि से है।** रवीन्द्रनाथ के इन प्रहसनों में केवल विवाह की समस्या को ही लेकर हास्य की सृष्टि की गई है फिर भी 'चिरकुमार सभा' की तीक्ष्ण भाषा अनेक स्थलों पर समाज के मिथ्या आवरण को भेद कर कौतुल के हल्के वातावरण को हास्य-रस की सघनता में परिणित करती है।

इसमें पुरुष-वेशी अबलाकांत बाबू (शैल) से चन्द्रबाबू कहते हैं....'केवल पुरुष निये जारा समाजेर मालो कारते चाय तारा एक-पाये चलते चाय। सेइ जन्येइ खानिक दूर गियेइ तादेर बसे पड़ते हय। —आमादेर देशे बाइरे लज्जा आछे, किन्तु घरेर मध्ये सेइ लज्जाटि नेइ, सेइ जन्येइ आमादेर समस्त उन्नति केवल बाह्याड़म्बरे परिणत हय।"[1]

इन प्रहसनों में एकाधिक अक तथा दृश्य हैं। आकार की दृष्टि से बड़े नाटकों के ही समतुल्य हैं किंतु लेखकों ने प्रहसन के इस रूप के कलात्मक तथा भावात्मक विकास के प्रति अपनी जागरूकता नहीं दिखाई। उच्च कोटि के हास्य-रस सृजन करने वाली प्रतिभा के अभाव में इन रचनाओं का स्वरूप निकृष्ट ही रहा।

हिंदी प्रहसन लेखकों में श्री **जी० पी० श्रीवास्तव** अत्यंत प्रसिद्ध हुए। उनके प्रहसनों का अभिनय कई शोकीया मंडलियों ने किया। 'दुमदार आदमी' उनके एकांकी प्रहसनों का संग्रह है जिसमें **'दुमदार आदमी,' 'गड़बड़झाला,' 'कुरसी-मैन,' 'पत्र-पत्रिका-सम्मेलन,' 'न घर का न घाट का'—ये पांच एकांकी हैं**। इनमें समाज के कई वर्ग के लोगों की खिल्ली उड़ाई गई है एवं कला की दृष्टि से अत्यंत साधारण कोटि के हैं। 'दुमदार आदमी' में निपोड़शंख नामक एक वकील एवं उसकी पत्नी नटखट का हास्योत्पादक चित्रण हुआ है। 'गड़बड़झाला' में मनहूसलाल नामक एक बूढ़े का एवं कमबख्त-लाल नामक उसके आवारा बेटे का चित्रण हुआ है। 'कुरसी-मैन' में म्युनिसिपल मेम्बरी की दौड़-धूप का खाका है। पत्र-पत्रिका-सम्मेलन' में हास्य, प्रकृति, शिक्षा, समाज, साहित्य आदि के प्रतीकात्मक चित्रण द्वारा व्यंग्य किया गया है। 'न घर का न घाट का' नामक प्रहसन में स्त्रियों की चारित्रिक पवित्रता पर प्रकाश डाला गया है। इसमें चांद कहते हैं। (समाजराय, जनता राय से)—'यदि आपको यह विश्वास होता कि हमारे यहां की स्त्रियों का सतीत्व केवल ऊपरी पर्दा, डर या पहरे पर निर्भर नहीं है, बल्कि उनकी भीतरी नीयत और उनके कर्तव्यों पर अटल है तो आज आप मुझ से ऐसा भोंडा सवाल न करते। आप स्त्रियों के आंख कान पर पर्दा डालकर जब तक उन्हें मूर्खा बनाये रहेंगे, तब तक आपको ऐसे ही उनकी रखवारी करते दिन कटेगा।'[2] —सन् १९२५ में 'चांद' के शिशु अंक में स्त्रियों के गर्भ संबंधी लेख प्रकाशित होने के

१—चिरकुमार सभा—लेखक रवीन्द्रनाथ ठाकुर—पृष्ठ—८९, ९०
(विश्वभारती, सन् १९६०)
द्वितीय अंक, चतुर्थ दृश्य —'अक्षयेर वासा,'।

२—दुमदार आदमी (एकांकी प्रहसनों का संग्रह)
न घर का न घाट का—लेखक जी० पी० श्रीवास्तव।
दूसरा दृश्य—चांद का दफ्तर।

कारण लोग असन्तुष्ट थे । उनकी धारणा थी कि स्त्रियां ऐसी बातें पढ़कर और बिगड़ सकती हैं । यह प्रहसन समाज की उक्त धारणा का उत्तर है जिसका बाह्य रूप मीठा, हास्य-तरल है किंतु अंदर कटु व्यंग्य रूपी औषधि है ।

सुदर्शन रचित हिंदी प्रहसन **'आनरेरी मजिस्ट्रेट'** बहुत ही लोकप्रिय हुआ । इसमें न्याय संबंधी धांधलियों को लेकर हास्य की सृष्टि हुई है । बंगला नाटककारों की दृष्टि सामाजिक प्रथाओं की ओर झुकी ।

हिंदी नाट्य-क्षेत्र में जयशंकर प्रसाद के आगमन के पूर्व सन्धिकाल के नाटककारों में बद्रीनाथ भट्ट अधिक प्रसिद्ध हुए । उन्होंने पौराणिक तथा ऐतिहासिक नाटकों के सिवा कई प्रहसनों की रचना की । उदाहरणार्थ**—मिस अमेरिकन, विवाह विज्ञापन, लबड़ घों-घों** तथा **चुंगी की उम्मेदवारी** । इन प्रहसनों में भी समाज के कई वर्गीय चरित्रों पर व्यंग्य हैं किंतु इनमें उस तीव्र व्यंग्य व तीक्ष्ण भाषा-शैली का अभाव है जो एकांकी नाट्य-कला के विकसित होने पर भगवतीचरण वर्मा आदि के प्रहसनों में प्राप्त होता है । उसी तरह बंगला में प्रहसन के क्षेत्र में अमृतलाल बसु प्रसिद्ध हुए । सन् १९२६ में रचित उनके नाटक **'ब्यापिका विदाय'** तथा **'द्वन्द्वेमातरम्'** हास्य रस से परिपूर्ण हैं, साथ ही वे समाज के यथार्थ चित्र हैं । बाद में उन प्रहसनों का विकास हुआ जो एकांकी कला-विधान के अनुसार लिखे गये । उनमें सामाजिक पक्ष का चित्रण तो है किंतु उनका उद्देश्य एकांकी का परिष्कृत तथा विकसित रूप प्रस्तुत करना है । एकांकियों में किसी प्रभावशाली क्षण का सशक्त, श्रृंखलित तथा सांकेतिक शैली में त्वरित गति के साथ चित्रण होता है अतः समाज का विशद् तथा मार्मिक-चित्रण एकांकी में सम्भव नहीं । **केवल मनोरंजन के तौर पर लिखे गये हास्य-रसात्मक नाटक जिनमें हास्य, रोमानी प्रेम लीला, मधुर गीत आदि की प्रचुरता रहती है, वर्तमान नाटककार को अधिक प्रेरित करने में असमर्थ हैं ।**

बंगला नाट्य-क्षत्र में अति-आधुनिक नाट्यकारों में, जिन्होंने कामेडी रचना के लिए जार्ज बर्नार्ड शा की शैली का अनुसरण किया, **प्रमथनाथ बिशी** के नाटक उल्लेखनीय हैं । **'परिहास विजल्पितम्', 'भूतपूर्व स्वामी', 'ऋणंकृत्वा', 'पारमिट', 'मोचाके ढोले', 'घृतं पिवेत्'** आदि उनके नाटक अत्यन्त लोकप्रिय हुए । इनमें सामाजिक-समस्याओं का सूक्ष्म-विश्लेषण नहीं हुआ किन्तु समाज की त्रुटियों एवं असंगतियों को **तीक्ष्ण व्यंग्य-बाणों** से विद्ध किया गया । लेखक हास्य-रस की सृष्टि करना चाहते थे किन्तु उनके व्यंग्य अत्यन्त कटु प्रतीत होते हैं, जो हास्य-पूर्ण और सुखांत नाटकों के माधुर्य की सृष्टि नहीं कर पाते । उनके नाटकों में **आधुनिक नागरिक-समाज** के लोगों की असंगतियों के व्यंग्यपूर्ण चित्र हैं ।

निष्कर्ष

राष्ट्रीय उत्तेजना के ढल जाने के उपरांत हिन्दी तथा बंगला के नाट्यकारों का ध्यान सामाजिक विषयों के प्रति सबसे अधिक आकृष्ट हुआ। एक ओर पाश्चात्य सभ्यता का अन्धानुकरण होने लगा था, दूसरी ओर आर्थिक संकट के कारण समाज की शृंखलाएं टूट रही थीं। जो केवल भोग, विलास एवं उच्छृंखलता को ही पाश्चात्य सभ्यता का सारतत्व समझ रहे थे उस नागरिक समाज के आचार व्यवहारों को तीक्ष्ण व्यंग्य के द्वारा आघात करना आवश्यक था। नर-नारी के अबाध-मिलन के कारण जो चारित्रिक स्खलन हो रहा था, मानसिक जीवन कुंठा, निराशा तथा अवसाद से परिपूर्ण हो रहा था। उनका मनोवैज्ञानिक विश्लेषण आवश्यक था। पूँजीपतियों के प्रभुत्व के कारण समाज का अधिक संख्यक किसान तथा मजदूर वर्ग निष्पेषित हो रहा था, उसके विरोध के लिए नाट्य-साहित्य का अग्रसर होना वांछनीय था। इनके सिवा समाज-दर्शन की गूढ़ता को व्यंजित करने के लिए यथार्थवादी वास्तविक चित्रणों की अपेक्षा विचारात्मक तथा भावात्मक चित्रण का भी अत्यन्त महत्व है। यह सामाजिक जीवन का वह पक्ष था जिस पर लेखकों ने गम्भीरता पूर्ण विवेचन कर उसे विश्लेषणात्मक, व्यंग्यात्मक आक्षेप तथा रोष से परिपूर्ण रूप दिया। कहीं-कहीं यह चित्रण देख हम उसके बौद्धिक दृष्टिकोण पर मुग्ध हो उठते हैं, वह व्यंग्यपूर्ण तथा कटु भी हो गया है।

समाज के उस पक्ष की ओर लेखक कम आकृष्ट हुए जहां समाज व्यक्ति का आश्रय-स्थल है, उसकी कामेच्छा तथा क्षुधा की तृप्ति करने वाला व्यक्ति-निर्मित संस्था है। नवीन समस्याओं के सम्मुखीन होकर इस युग के व्यक्तियों ने पुरातन तथा जीर्ण समाज को बाधा स्वरूप ही पाया। यद्यपि समाज के अन्तर्गत रहकर नर-नारी के मधुर मिलन के द्वारा गृहस्थाश्रम में प्रवेश करना ही भारतीय समाज का आदर्श रहा किन्तु परिस्थितियों की जटिलताओं ने विवाह, राजनीति, कानून, शिक्षा आदि सभी क्षेत्रों में समस्याओं की सृष्टि की। समाज के नियमों में व्यक्ति की आस्था नहीं रही क्योंकि व्यक्तियों के विकास के पथ को परिष्कृत करने के स्थान पर समाज बाधक बन गया। यथार्थ में व्यक्तियों के सुख के लिए समाज की सृष्टि हुई है किन्तु समाज जहां कहीं किसी व्यक्ति को एकाकी व निर्बल पाता है वह एक तानाशाह के रूप में शासन करता है। हिन्दी तथा बंगला के अधिकांश नाटकों में समाज के अनुकूल स्वरूप की अपेक्षा उसके प्रतिकूल स्वरूप का चित्रण अधिक हुआ है क्योंकि बीसवीं सदी का भारतीय समाज मध्ययुगीन संस्कारों का वर्जन नहीं कर पाया है किन्तु नवीन वातावरण में वर्द्धित, नवीन विचारों के परिपोषक वर्तमान तरुण तरुणी अधिक स्वतंत्रता चाहते हैं। समाज के विभिन्न पक्षों पर लेखकों ने विभिन्न दृष्टिकोण तथा प्रणालियों से प्रकाश डाला है।

बर्नार्ड शा ने यूरोपीय समाज के झूठे आदर्शों पर नाटकों में व्यंग्यात्मक प्रहार किया। हिन्दी तथा बंगला के नाटककार शा की शैली से अत्यन्त प्रभावित हुए किन्तु

उन्होंने जिस समाज का चित्रण किया वह **भारतीय समाज** ही है । **लक्ष्मीनारायण मिश्र ने समस्या-मूलक नाटकों की शैली को पूर्णत: अपनाया एवं उनके नाटकों में बौद्धिक दृष्टिकोण** से समस्याओं पर वाद-विवाद पूर्ण दृश्य हैं । उनके नाटक 'सिन्दूर की होली' में विवाह, वैधव्य, कानून आदि समस्याओं पर तर्कपूर्ण आलोचना है । **प्रमथनाथ बिशी ने व्यंग्यात्मक प्रणाली** अपनाई एवं नाटकों के अन्त को कामेडी का रूप दिया । उनके 'परिहास विजल्पितम्' नाटक में मिनि के जन्मदिन के उपलक्ष में नाटक का आयोजन किया गया । नाटक पार्टी उक्त समय पर न आ सकी । मिनि के प्रणयी ने निमंत्रित अतिथियों में से सम्पादक, डाक्टर, साहित्यिक, अध्यापक, आधुनिका, राजनीतिक, फिल्म डिरेक्टर आदि को बुलाकर बंगाली जाति की समस्याओं पर आलोचना करने के लिए अनुरोध किया । अन्त में सबको ज्ञात हुआ कि यही नाटक था । मिनि भी अत्यंत खुश हुई एवं अपने प्रणयी को उसने प्रेम निवेदन किया । इस प्रणाली के द्वारा समाज के विभिन्न पक्षों पर प्रकाश डाला गया, किंतु यह समस्या-मूलक नाटक नहीं कहला सकता । इस प्रकार हिन्दी में मिश्रजी ने तथा बंगला में प्रमथनाथ बिशी ने शा के नाटकों से प्रभावित होकर फिर अपने लिए नवीन मार्ग निर्मित किया । उनमें कलाकार तथा आलोचक के मिश्रित रूप हैं ।

रवीन्द्रनाथ तथा प्रसाद भी युग की समस्याओं के प्रति उदासीन न थे किन्तु कवि तथा दार्शनिक होने के कारण उन्होंने यथार्थवादी शैली न अपनाकर स्वच्छन्दता-वादी शैली अपनाई । 'रक्तकरबी' में प्रतीक के द्वारा एवं ध्रुवस्वामिनी में इतिहास **के द्वारा सामाजिक समस्याओं** का भावपूर्ण चित्रण हुआ । उन्होंने समस्याओं के साथ समा-धान भी प्रस्तुत किया ।

रवीन्द्रनाथ ने प्रहसनों में विवाह की समस्या को ही रखा है एवं उनमें समाज व्यक्ति सुख के अनुकूल रूप में चित्रित हुआ है। अन्त में **नर-नारियों** का मिलन सुखान्त **द्वारा अपने को चरितार्थ करता है।** यह आज के समाज का यथार्थ चित्र नहीं है । आज नर-नारी के जीवन की सबसे बड़ी समस्या विवाह है क्योंकि प्रेम और विवाह यौन-जीवन के दो पक्ष परस्पर-विरोधी जान पड़ने लगे हैं । अत: आज के समस्या-नाटकों का प्रधान विषय यौन-समस्या है जिसका मनस्तात्विक विश्लेषण तो हुआ है किन्तु समा-धान की प्राप्ति नहीं हुई ।

हिन्दी तथा बंगला में प्रहसन लिखने की प्रवृत्ति अत्यन्त कम हो गई क्योंकि सामाजिक समस्याएँ गुरुत्व पूर्ण थीं एवं हास्य-रस प्रधान नाटकों में उनकी पूर्ण अभि-व्यक्ति सम्भव न थी । उच्च कोटि के कामेडियों की रचना न हो सकी एवं साधारण गम्भीर प्रकृति के नाटकों में उच्च कोटि के ट्रेजडियों की रचना भी न हो सकी । सामा-जिक नाटककारों की बहुलता देखने को मिलती है किंतु **बंगला में रवीन्द्रनाथ के बाद एवं हिन्दी में प्रसाद के बाद कोई ऐसे नाटककार नहीं हुए जो नायकत्व कर सकें ।** नाटकीय प्रतिभा सृजन में यह काल असमर्थ रहा ।

हिंदी में जी० पी० श्रीवास्तव, बद्रीनाथ भट्ट तथा भगवतीचरण वर्मा आदि परवर्ती नाटककारों ने प्रहसनों की रचना की, बंगला में द्विजेन्द्रलाल राय, रवीन्द्रनाथ, अमृतलाल बसु आदि ने प्रहसनों की रचना की किंतु यह युग प्रहसनों के लिए उपयुक्त नहीं हुआ। डा० रामकुमार वर्मा के 'हास्य-एकांकी' हिन्दी के विद्यार्थी-रंगमंचों पर अत्यन्त सफल हुए।

वर्तमान काल में जितने हिन्दी के सामाजिक नाट्यकार हैं उनमें समाज के प्रति सबसे अधिक पैनी दृष्टि रखने वाले उपेन्द्रनाथ अश्क हैं। बंगला में विजन भट्टाचार्य ने आर्थिक समस्या, समाज-चैतन्य तथा क्षुधा के चित्रण को लक्ष्य बनाकर प्रगतिशीलता का परिचय दिया। अश्क के **'कैद और उड़ान'** में तथा विजन भट्टाचार्य के **'नवान्न'** में वर्तमान **शोषित वर्ग के स्वर्णिम भविष्य के लिए पथ निर्मित किया गया है।** इन लेखकों की सशक्त वाणी भविष्य को कुहराच्छन्न नहीं रहने देती। भारतीय **नारी-समाज** तथा **गण-समाज के अभ्युत्थान की वार्त्ता** हिंदी तथा बंगला के कई नाटकों में प्राप्त है।

इस विवेचन के आधार पर हिंदी तथा बंगला के सामाजिक नाटकों में अनेक साम्य तथा वैषम्य दृष्टिगोचर होते हैं—

हिन्दी तथा बंगला सामाजिक नाटकों में साम्य

१. हिंदी तथा बंगला नाटकों में जिस समाज का चित्रण हुआ है वह भारतीय समाज है। अनेक भाषागत विभिन्नता होते हुए भी युगों से **भारतीय समाज** का **स्वरूप, संस्कार तथा आदर्श एक रहा।** यही कारण है कि जहां ऐसी समस्याओं का चित्रण हुआ है जो पाश्चात्य ढंग की होती हैं वे अस्वाभाविक प्रतीत होती हैं।

२. सामाजिक समस्या-नाटकों में **यौन-समस्या को प्रधानता** मिली है। यौन-समस्या के चित्रण में विश्लेषणात्मक पद्धति का अनुसरण तो हुआ है किन्तु भारतीय नारी के संस्कार एवं आदर्श की अभिव्यक्ति भी हुई है,—इसके उदाहरण—मिश्रजी रचित 'सिंदूर की होली', वृन्दावनलाल वर्मा रचित 'खिलौने की खोज', 'शचीन सेनगुप्त रचित 'तटिनीर विचार' आदि।

३. अधिकांश नाटकों में **नागरिक समाज** का ही चित्रण हुआ है इसका यही कारण है कि लेखकों की ग्रामीण-जीवन संबंधी अभिज्ञता अत्यल्प है। 'कंकावतीर घाट' तथा 'सींथीर सिंदूर' में भी यद्यपि घटना-स्थल कहीं-कहीं ग्राम है किन्तु वातावरण नागरिक है।

४. नागरिक समाज के चित्रण में भी **आभिजात्य शिक्षित वर्ग** पर अधिक प्रकाश डाला गया है। जहां साधारण, मध्यवित्त परिवार का चित्रण हुआ है वहां स्वाभाविकता का अभाव है। लेखकों ने परिस्थिति को जटिल बनाने के लिए अनेक दु:खपूर्ण घटनाओं की सृष्टि की है—इसके उदाहरण हैं गिरीशचन्द्र घोष रचित 'शास्ति कि शान्ति', विधायक भट्टाचार्य रचित 'भाटीर घर', गोविन्द वल्लभ पन्त रजित 'अंगूर की बेटी' आदि।

५. नाटककारों ने आधुनिक **उच्च शिक्षिता नारियों के विवाह के** प्रश्न को समस्या-पूर्ण रूप में चित्रित किया उदाहरणार्थ रवीन्द्रनाथ रचित 'बांशरी' एवं पृथ्वीनाथ शर्मा रचित 'दुविधा'। **इन नाटककारों की दृष्टि उन हजारों नारियों के विवाह की समस्या पर नहीं गई जो अशिक्षिता होने के कारण लांछिता हैं, जिनके पिता अर्थाभाव के कारण दहेज नहीं दे सकते, जो स्त्रियां रूप हीना होने के कारण प्रत्याख्यात हैं।** इनकी सख्या हमारे वर्तमान समाज में अधिक है।

६. राजा राममोहन राय, विवेकानन्द, विद्यासागर, रवीन्द्रनाथ आदि शिक्षाव्रतियों के अथक प्रयत्न से स्त्री-शिक्षा का प्रसार हुआ एवं हमारा समाज आलोक की ओर बढ़ने लगा, किन्तु आर्थिक-संकट तथा युवकों की चारित्रिक दृढ़ता के अभाव में शिक्षिता स्वच्छन्द विचरण करने वाली नारियों की जो दुर्गति हुई लेखकों ने दुर्भाग्यवशत: उनके लिए शिक्षा एवं स्त्री स्वाधीनता को ही दोषी ठहराया। हिन्दी तथा बंगला नाटककारों ने इस महत्वपूर्ण प्रश्न पर जोर नहीं दिया कि **जहां नारी पिंजड़े में आबद्ध है वहां स्वस्थ, सबल समाज की रचना असंभव है।** उन्होंने पाश्चात्य सभ्यता की कुछ त्रुटियों को हमारे समाज-चित्रण में घुसेड़ने का प्रयत्न किया, किन्तु पाश्चात्य समाज में स्त्रियों को स्वतंत्र रूप से जो सम्मान प्राप्त है उस ओर भारतीय समाज को ले जाने का प्रयत्न नहीं किया। **स्त्री स्वाधीनता तथा उनके आचार विचार के संबंध में भारतीय साहित्यिकों की दृष्टि संस्काराच्छन्न रही।** अश्क ने 'उड़ान' में स्त्री स्वाधीनता का जो स्वप्न रचा वह व्यक्तिगत रूप में दिखाया गया हैं, सामाजिक रूप में स्त्री स्वाधीनता का चित्र नहीं हो पाया।

७. रवीन्द्रनाथ के 'रक्तकरवी' की नायिका नन्दिनी तथा प्रसाद में 'ध्रुवस्वामिनी' में नायिका ध्रुवस्वामिनी का चित्रण यद्यपि **स्वच्छन्दतावादी ढंग से** हुआ है किंतु उनमें जिस **अपराजेय प्रेम का चित्रण** हुआ है वह साहसपूर्ण तथा अभिनन्दनीय है। समाज में अवैध प्रणय सदा तिरस्कृत रहा किंतु नन्दिनी उस प्राणोच्छल प्रेम की प्रतीत बनाई गई एवं ध्रुवस्वामिनी के प्रेम को इतिहास के आधार पर सफल होते दिखाकर प्रसाद ने प्रमाणित किया है कि **जिनमें आत्म-बल है उनका प्रेम समाज में तिरस्कृत नहीं वरन् वह इतिहास का महान् निर्माता है।**

कि **रंगमंचों** की अधिकता के कारण नाटकों की मांग बढ़ी अतः। उत्कृष्ट उपन्यासों के नाट्यरूपों का भी मंच पर स्वागत हुआ। हिन्दी में मंचों की इस मांग का अभाव था।

४. हिन्दी में प्रसादरचित समस्या नाटक' **ध्रुवस्वामिनी इतिहास की पृष्ठभूमि पर** लिखा गया। बंगला में इस कोटि का नाटक नहीं है क्योंकि प्रसाद जैसे ऐतिहासिक नाट्य-प्रतिभा ने राष्ट्रवादी स्वर के साथ सामाजिक प्रगति के स्वर को अत्यन्त महत्व प्रदान किया। द्विजेन्द्रलाल के 'पाषाणी' नामक पौराणिक नाटक में अहल्या के चरित्र को लेकर सामाजिक प्रश्न उठाया गया किन्तु वह समस्या नाटकों की शैली के अनुरूप न होने के कारण प्रभावहीन है। दूसरी ओर रवीन्द्रनाथ ने **'रक्तकरवी' में प्रतीक शैली** द्वारा सामाजिक समस्या की जो गूढ़ व्यंजना की है उसका हिन्दी में अभाव है। इस तरह नाटक के पात्र-पात्रियों को भावादर्श का वाहन बनाने में वस्तुतथ्यता के अभाव में रस की हानि पहुंचती है। इस प्रकार के तत्व रूपक में ठोस समस्या को व्यंजित कर रस की सृष्टि करना केवल रवीन्द्रनाथ जैसी श्रेष्ठ प्रतिभा के लिए ही सम्भव था।

५. हिन्दी समस्या-मूलक नाटकों के क्षेत्र में लक्ष्मीनारायण मिश्र बहुत प्रसिद्ध हैं। उनके नाटकों में कहीं-कहीं **पाश्चात्य ढंग की समस्याओं** का **पाश्चात्य ढंग की शैली** में चित्रित करने का प्रयास अत्यन्त स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होता है। बंगला सामाजिक नाटकों के क्षेत्र में विधायक भट्टाचार्य, जलधर चट्टोपाध्याय, शचीन सेनगुप्त आदि के नाटकों में पाश्चात्य छाप अधिक नहीं है। 'माटीर घर' 'सीथीर सिंदूर' आदि नाटकों का वातावरण तथा शैली भारतीय है।

६. **बंगला के कई सामाजिक नाटक मार्मिक पारिवारिक** चित्रण करने में सफल हुए हैं। परिवार समाज का ही एक अंग है इस दृष्टि से वे सामाजिक हैं किन्तु उनका लक्ष्य किसी परिवार के विभिन्न व्यक्तियों का नाना रूप चित्रण है। मार्मिक नाटककारों की **आत्म-सचेतनता** का प्रभाव है।

७. हास्य-रस की दृष्टि से **रवीन्द्रनाथ के प्रहसनों** की कुछ अलग ही विशिष्टता है। उन्होंने अपने **परिवार के कई चरित्रों** को प्रहसन में चित्रित किया है। हिन्दी में **बद्रीनाथ भट्ट, जी० पी० श्रीवास्तव** आदि के प्रहसनों में **सामाजिक पक्ष** पर अधिक प्रकाश डाला गया है क्योंकि उनकी दृष्टि समाज के विभिन्न पक्षों के प्रति अधिक थी। किन्तु हास्यरसात्मक नाटकों में बंगला नाट्यकारों के जिस उच्चकोटि के विनोद, वाग्विदग्धता, तीक्ष्ण व्यंग्य आदि का परिचय दिया हैं, हिन्दी नाट्य-साहित्य में उसका अभाव है।

८. आर्थिक संकटों का अधिक सामना करने के कारण **बंगला का गण समाज बहुत शीघ्र जाग्रत तथा सचेतन हुआ।** बंगला साहित्य में गण समाज के उत्थान के लक्षण परिस्फुट हुए। विजन भट्टाचार्य ने **'नवान्न'** नाटक में दुर्भिक्ष के दृश्यों का जैसा चित्रण एवं गण समाज की भावनाओं का जैसा उद्‌बोधन किया है वह बंगला नाटककारों के समाज-चैतन्य का उत्कृष्ट उदाहरण है।

इन सभी विभिन्नताओं के होते हुए भी हिन्दी तथा बंगला **नाटककारों ने समाज का जो बहुरूपी चित्र खींचा हैं वह पुरातन-संस्कार तथा नवीन-चेतन्य के संगम पर स्थिर भारतीय समाज ही हैं।**



अध्याय ६

रोमांटिक नाटक

स्वरूप की व्याख्या—

रोमांटिक नाटकों के मूल में मानव की स्वच्छन्दतावादी प्रवृति है। स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्ति के कारण मानवात्मा समस्त **शास्त्रीय रूढ़ियों से विद्रोह करके** अनुभूतियों की अभिव्यक्ति के लिए छटपटा उठती है उसमें भावों का नियन्त्रण नहीं, नियमों का बन्धन नहीं, कल्पना का मुक्त विहार होता है। उसमें सौन्दर्य केवल आकृति पर निर्भर नहीं वह भावनाओं की सूक्ष्म व्यंजना पर आधारित होता है। **अद्‌भुत सौन्दर्य की अनुभूति** के साथ प्रेम तथा आनन्द के संगम पर मानव अपने कल्पना-राज्य का निर्माण करता है। रहस्य के मधुर आवरण में, अतीन्द्रिय अवास्तव वातावरण में वह उस सत्य की खोज करता है जो बुद्धि के भी परे है।

कोई भी परम्परावादी रचना इस प्रवृत्ति से मुक्त नहीं है। होमर के 'ओडेशी' महाकाव्य के भ्रमण के वर्णन में मानव के हृदय की उद्दाम प्रवृति, जो उसे अनजाने पथ की ओर आकर्षित करती है, व्यक्त हुई है। कोई भी यथार्थवादी रचना इस प्रवृत्ति से मुक्त नहीं है। इब्सन के यथार्थवादी नाटक भी इस प्रवृत्ति से मुक्त नहीं हैं। साहित्य के अन्य अंगों की भांति नाटक में भी जीवन का रूप झलक उठता है एवं जीवन केवल अस्थि-मांस की भूख-प्यास नहीं वह अव्यक्त को पाने के लिए वेदना की कसक है। इसलिए रोमांटिक प्रवृत्ति का नाट्यकार अपनी रचना में असम्भव घटनाओं का सृजन कर सौन्दर्य, शौर्य, प्रेम, वेदना तथा आनन्द की अभिव्यक्ति के द्वारा जीवन के रहस्यमय रूप का अंकन करना चाहता है। इसका वातावरण भी स्वप्निल, वायवी, सांकेतिक तथा मधुर होता है। जीवन की वास्तविकताओं से दूर होने के कारण उन्हें पलायनवादी साहित्य कहकर इनकी उपेक्षा नहीं की जा सकती, क्योंकि अगर रोमांटिक साहित्य **जीवन की कटु वास्तविकताओं से मुँह मोड़ता है** तो यथार्थवादी साहित्य जीवन के मधुर पक्ष एवं सूक्ष्म संवेदनाओं से मुँह मोड़ता है। उच्चकोटि के साहित्य में परम्परावाद एव स्वच्छन्दतावाद, आदर्श एवं यथार्थ, रोमांस एवं जीवन-समस्या का समन्वय होना चाहिए। फिर भी साहित्य के क्षेत्र में हम इनके बीच में ऊंची दीवालें खड़ी होती हुई देख पाते हैं एवं यथार्थवादी साहित्य जैसे 'अति' के शिकार बनते हैं, वैसे स्वच्छन्दतावादी साहित्य भी 'अति' के शिकार बनते हैं। 'स्वच्छन्दतावाद' शब्द का व्युत्पत्यार्थ, स्वच्छन्दतावाद (रोमांटिसिज्म) एवं साहित्य में स्वच्छन्दतावाद पर प्रकाश डालना पहले आवश्यक है।

रोमा (Roma)—यह रोम नगरी की देवी प्रतिमूर्ति थी। रोमन-साम्राज्य में इनकी पूजा युद्ध, विजय तथा समृद्धि के प्रतीक के रूप में की जाती थी।

रोमांस (Romance) यह रोमांस भाषाओं की रचनाओं से संबंधित था। एन्‌साइक्लोपीडिया ब्रिटानिका (व्हाल्यूम-१९, संस्करण, सन् १९६२) में लिखा है—'रोमांस—औरिजिनली ए कम्पोजिशन रिटेन इन' रोमांस लैंग्वेज, देट इज इन वन आफ दी फेजेस आन विच दी लैटिन टंग एल्टर्ड आफ्टर आन ड्यूरिंग दी डार्क एजेस।' पुरातन साहित्य के रोमांस' का अर्थ है कथा के विकास के बदले उसकी **दीर्घ विवृति, अति-प्राकृत तत्वों का मिश्रण, प्रेम व्यापारों की प्रधानता, साहसिक यात्राओं का वर्णन** आदि। ग्रीक महाकाव्य 'ओदिसी' में रोमांटिक तत्वों का मिश्रण है। सी० ई० बागन लिखते हैं—'इट इच टू देट क्लासिकल ट्रेजेडी हैड अंडरगान मैनी माडिफिकशन्स सिस इट लेफ्ट दी हेंड्स आफ एसकिलस एण्ड शोफोक्लस। इट इज टू देट मैनी आफ व्हाट में फेयरली बी काल्ड रोमांटिक एलिमेंट्स हैड बीन इन्ट्रोडयूस्ट बाइ यूरिपीदीज एण्ड सेनेका।"

रोमांटिसिज्म 'डिक्शनरी आफ वर्ल्ड लिटरेरी टर्म्स' (एडिटेड बाइ जोसेफ टी. शिप्ले, एडिशन १९५५) में लिखा है—'दी वर्ड। दी एडजेक्टिव 'रोमांटिक', फ्राम विच दी नाउन 'रोमांटिसिज्म, इज डिराइव्ड, कम्स फ्राम ओ फ्रेंच 'रोमांज, **ए रोमांस, आर नाव्हेल**, बट इट्स फर्स्ट एटेस्टेड यूजेज आर इन इंग्लिश के० १६५४। दी मीनिंग इज **'लाइक ए रोमांस,'** युजुअली विथ दी डिरोगेटरी कोनोटेशन आफ **फेंसिफुल, शिमरास।**' शेली के शब्दों में "वी लुक बिफोर एन्ड आफ्टर एण्ड पाइन फॉर व्हाट इज नॉट।"

रोमांटिसिज्म एक **साहित्यिक धारा के रूप में** रोमांटिसिज्म व स्वच्छन्दतावाद का प्रबल-स्त्रोत प्राचीन-परिपाटी की प्रतिक्रिया के रूप में उमड़ पड़ा अतः। भावना के संयम एवं नियमों की मान्यता के स्थान पर वह **आवेग** (Emotion), **आत्मोद्घाटन, अबाध कल्पना, स्वतंत्रता, विद्रोह** आदि का प्रतीक बना। यूरोप में रोमन-साम्राज्य के पतन के पश्चात् ११ वीं शताब्दी तक जन-भावनाएँ सशक्त हो उठीं। प्राचीन-रूढ़ियों के विरुद्ध स्वच्छन्दतावादी आन्दोलन का सबल रूप सर्वप्रथम फ्रांस में मोन्टेस्क्यू, रूसो तथा दिदेरो की लेखनी द्वारा व्यक्त हुआ। साहित्य में 'रोमांटिसिज्म' शब्द का प्रथम प्रयोग 'क्लासिसिज्म' के विरोध में **फ्रीडरिश श्लेगेल ने जर्मन ग्रंथ** 'आथेनेउम' (सन् १७९८-१८००) में किया। अट्ठारहवीं सदी के अंतिम तथा उन्नीसवीं सदी के प्रारम्भिक काल में युरोपीय साहित्य में, विशेषकर इतालियन, फ्रेंच, स्पेनिश, जर्मन तथा अंग्रेजी साहित्य में प्राचीन रुढ़ियों के विरुद्ध जिस आन्दोलन का प्रारम्भ हुआ वह स्वच्छन्दतावादी-आन्दोलन के रूप में साहित्य में प्रवेश कर गया। स्वच्छन्दतावादी विषय-वस्तु, जीवन-दृष्टि तथा शैली के कुछ विशेष लक्षण हैं जो स्थान, काल तथा लेखक के अनुसार परिवर्तित होते हैं। साधारण स्थानों के **प्राकृतिक दृश्य, देश की अतीत गाथाएं**

विदेशीपन व नूतनत्व का आभास, लोकवार्ता की **प्रेमकथाएं** व कल्पित प्रेमकथाएँ आदि **रोमांटिक विषय वस्तु** के लक्षण हैं। कई ऐतिहासिक नाटकों में कुछ रोमांटिक तत्व भी पाये जाते हैं किन्तु उन्हें हम स्वच्छन्दतावादी नाटक नहीं कह सकते। हिन्दी तथा बंगला के अधिकांश ऐतिहासिक नाटक रोमांटिक भी हैं किन्तु वे स्वच्छन्दतावादी रचनाएं नहीं हैं। किन्तु जब केवल इतिहास की पृष्ठभूमि लेकर अथवा किसी काल्पनिक कथावस्तु का सृजन होता है जिनमें रोमांटिक तत्व अधिक होते हैं, तब उन्हें हम ऐतिहासिक **रोमांटिक नाटक** कह सकते हैं। बंगला में क्षीरोदप्रसाद रचित 'आलमगीर' तथा हिन्दी में मिलिन्द रचित 'गौतम नन्द' इस कोटि के नाटक हैं। रोमांटिक तत्वों में रहस्य-भावना, स्वप्न एवं अवचेतन से युक्त भावनाओं का सन्निवेश होता है। 'आलमगीर' में अवचेतन के विकारों का चित्रण हुआ है एवं उसकी शैली मनोविश्लेषणात्मक व पूर्णतः रोमांटिक है। सेठ गोविन्ददास रचित 'विकास' एक स्वप्न-नाटक है किन्तु मेटरलिंक के 'ब्लू बर्ड' नामक स्वप्न-नाट्य में जिस रहस्य कोटि के अलौकिक-तत्वों का आभास है वह 'विकास' में नहीं है। शेक्सपियर भी रोमांटिक रहा है। शेक्सपियर के 'रोमियो जूलियट' में एक दूसरे के रूप दर्शन की अनुभूति में सांकेतिकता है—

"ह्वाट लाइट फ्राम योंडर विन्डो ब्रेक्स ?
इट इज दी ईस्ट, एंड जूलियेट इज दी सन।"

रवीन्द्रनाथ के नाटक 'राजा,' 'डाकघर' आदि में सांकेतिकता है। स्कैंडिनेविया के प्रसिद्ध नाटककार इब्सन के कई नाटकों में सांकेतिकता है जैसे 'ए डाल्स हाउस' नाटक में पति-पत्नि के दाम्पत्य-जीवन में जो विच्छेद का चिन्ह रहता है उसका संकेत है। इस तरह स्वच्छन्दतावादी विषय-वस्तु में विविधता है। वाल्टर स्काट के ऐतिहासिक-रोमांटिक उपन्यास, मेटरलिंक के सांकेतिक-नाटक वर्ड्सवर्थ, शैली, कीट्स तथा बाइरन की विभिन्न भाव-युक्त कविताएं सभी स्वच्छन्दतावादी साहित्य के अन्तर्गत हैं। **डा० श्रीकुमार बैनर्जी लिखते हैं**— "इट इज दी नथिंग देट बाइन्ड्स इनटू यूनिटी दी डाइवर्स प्राडक्ट्स आफ ए मोस्ट काम्प्लेक्स मूवमेंट। वर्ड्सवर्थ्स ग्लोरिफिकेशन आफ दी कामनप्लेस, कोलरिजेस साइकोलाजिकल स्पिरिचुअलाइजेशन आफ सुपरनेचरल मशीनरी, दी अनअर्थली विजन्स आफ शैली, दी रेस्टलेसनेस आफ एन इटर्नल रिवोल्ट इन बाइरन, कीट्स सेंसेट, दो पायनेन्ट एप्रिशियेशन आफ दी ब्यूटी आफ नेचर एंड आर्ट—आल हैव दी कामन मीटिंग पाइन्ट इन दी इम्प्रेशन आफ स्ट्रेंजनेस इन दी मिड्स्ट आफ फैमि-लियारिटी दैट दे आल सजेस्ट इन क्रीएटिंग।"

रोमांटिक जीवन दृष्टि की प्रधानता है व्यक्तिवाद का समर्थन। **रोमांटिक नायक अहंवादी, विवादग्रस्त अथवा विद्रोही-प्रकृति** का होता है। स्वच्छन्दतावादी लेखक युक्ति के स्थान पर **आवेश**, यथार्थ के स्थान पर **आदर्श** एवं समझौते के स्थान पर **आकांक्षाओं** को प्रधानता देता है। अश्क रचित 'कैद और उड़ान' की व्याख्या में दिलीप और रमेश की प्रेमभावना के संबंध में **धर्मवीर भारतीय** लिखते हैं— "किन्तु यदि हम ध्यान से देखें

तो इस आलौकिक, अतीन्द्रिय' प्रेम की जड़ें भी हमें अपनी समाज-व्यवस्था में मिल जायगी। इस रूमानी-प्रेम के बीज भी हमें उस **व्यक्तिवादी आन्दोलन** में मिलेंगे, जिसका सूत्रपात औद्योगिक-क्रान्ति और पूँजीवाद के आगमन के साथ हुआ था। 'रुमानी-प्रेम में भावुकता तथा अलभ्य के प्रति आकर्षण तीव्र होता है। **रोमांटिक शैली** की विशेषता यह है कि उसमें कला की किसी रूढ़ि व नियमों का पालन नही होता। रोमांटिक प्रवृत्ति की अभिव्यक्ति गीतिकाव्य में उत्तम रूप से हुई है क्योंकि गीतिकाव्य में **आत्मानुभूति की विवृत्ति** का अच्छा अवकाश मिलता है। रोमांटिक शैली का यह रूप नाटकों के क्षेत्र में गीति-नाट्य, नृत्यनाट्य भावनाट्य, तथा काव्यरूपकों में व्यक्त होता है।

रोमांटिक व स्वच्छन्दतावादी नाटक कल्पना, भावावेग, **रूमानी-प्रेम, दार्शनिकता, काव्यात्मकता सांकेतिकता** आदि रोमांटिक तत्वों द्वारा जिन नाटकों की रचना होती है वे रोमांटिक नाटक कहलाते हैं। जिस प्रकार रोमांटिक तत्वों में इतनी विविधता है कि उन्हें परिभाषाओं में बांध सकना असम्भव लगता है, उसी प्रकार रोमांटिक नाटकों के स्वरूप में भी विभिन्नता होती है। अंग्रेजी नाट्य साहित्य में मार्लो तथा विलियम शेक्सपियर स्वच्छन्दतावादी नाट्य-परम्परा के प्रधान लेखक हैं। **शेक्सपियर** के सभी नाटक स्वच्छन्दतावादी शैली पर रचित हुए हैं—ग्रीक तथा रोमन त्रासदियों के संकलन-त्रय का उन्होंने निर्वाह नहीं किया, ट्रेजेडी तथा कामेडी के तत्वों का उन्होंने मिश्रण कर **'ट्रेजि-कामेडी'** की सृष्टि की, नायकों के **रूमानी-प्रेम** का भावना-प्रधान चित्रण किया, **अति-प्राकृत तत्वों** को नाटकों में स्थान दिया इत्यादि। शेक्सपियर के 'रोमांटिक कामेडी' तथा **'ड्रामाटिक रोमांस'** अमिश्रित रूप से स्वच्छन्दतावादी नाटक कहे जा सकते हैं, उनके ऐतिहासिक नाटक तथा ओथेलो, मेकबेथ एवं हैमलेट जैसे त्रासदियों की विवेचना स्वच्छन्दतावादी दृष्टिकोण से न होकर ऐतिहासिक नाटक तथा त्रासदियों के दृष्टिकोण से होती है। **मार्लो ने 'डाक्टर फौस्टस'** में नायक संबंधी उस रूढ़ि को तोड़ डाला जिसके अनुसार नायक देवता व राजवंश के होते थे। उन्होंने त्रासदी में देव के साथ द्वन्द्व न दिखाकर मानव के मन में निहित शैतान एवं नैतिकता का द्वन्द्व प्रदर्शित किया।

डाक्टर फौस्टस की कथा के प्रसंग में प्रसिद्ध जर्मन नाटककार गेटे रचित 'फाउस्ट' उल्लेखनीय है। जर्मनी के रोमांटिक नाटक लेखकों में लेसिंग सिलर तथा गेटे प्रसिद्ध हैं। **गेटे ने** डा० फास्टस संबंधी किम्वदन्ती (Saga or legend) को नाटक का विषय बनाया एवं गीतात्मक तथा नाटकीय शैली में मनोवैज्ञानिक तथा दार्शनिक तत्वों को चित्रित किया। **'फाउस्ट' नाटक में मानव की अनुसन्धान की प्रवृत्ति को चित्रित किया** गया एवं यह दिखाया गया कि इस खोज में पहले वह इन्द्रिय-सुख में लिप्त होता है फिर आदर्श सौन्दर्यरूपिणी हेलेन को वह प्राप्त करता है। इस चित्रण द्वारा मनोविज्ञान पर प्रकाश डाला गया है एवं जिस रोमांटिसिज्म को पेटर ने कहा है—'दी थ्रिल आफ स्ट्रेंजनेस, उसे लूई **कजामियां** ने मनोवैज्ञानिक-पक्ष कहा है—

रोमांटिसिज्म कैन बी डिफाइन्ड ओन्ली इन टर्म्स आफ प्योर साइकोलाजी। एनी अदर फार्मूला आल्टस् आर लिमिट्स आरबिट्रेरिली इट्स व्हेरी इसेंस।" शेक्सपियर के नायकों में अन्तर्द्वन्द्व है किन्तु उसके चित्रण में कोई दार्शनिकता नहीं है। इसके विपरीत **रवीन्द्रनाथ तथा प्रसाद के नाटकों की दार्शनिकता** उनके नाटकों को स्वच्छन्दतावादी-स्वरूप प्रदान करती है। शेक्सपियर के रोमांटिक ट्रेजेडी 'रोमिओ जूलियेट' में रूमानी प्रेम का चित्र है। शेक्सपियर के नाटकों की शैली का प्रभाव द्विजेन्द्रलाल पर एवं द्विजेन्द्रलाल के माध्यम से हिन्दी नाटकों पर पड़ा। इस क्षेत्र में उनके 'रोमांटिक कामेडी' तथा 'ड्रामाटिक रोमांस' उल्लेखयोग्य हैं। उनके रोमांटिक कामेडी हैं— लव्स लेबर लास्ट,' 'दी टेमिंग आफ दी श्रू,' 'दी कामेडी आफ एरर्स,' 'दी मर्चेन्ट आफ व्हेनिस,' 'एज यू लाइक इट' इत्यादि। **रोमांटिक कामेडी में अवास्तव दृश्यों का सृजन, भावावेगों की जटिलता, प्रेम-व्यापार एवं मिलन** में अन्त होता है। शेक्सपियर ने अपने अन्तिमकाल में चार 'ड्रामाटिक रोमांसों' की रचना की—'पेरिक्लस', 'सीम्बेलिन', 'दी विंटर्स टेल, और 'दी टेम्पेस्ट'। इन नाटकों में केवल अवास्तव दृश्यों का नहीं, अतिप्राकृत तत्वों का स्वच्छन्द प्रयोग हुआ।

प्रकृति-प्रेम एवं प्रतीकात्मक-प्रयोग रोमांटिक तत्व हैं। **'दी टेम्पेस्ट'** में प्रतीक-शैली नहीं है किन्तु शांतिपूर्ण द्वीप का संकेत है जहां समस्त कुकर्मों का अवसान होता है, यथार्थ दुनिया में उसका कोई अस्तित्व नही। रवीन्द्रनाथ के 'ताशेर देश', प्रसाद के **'कामना'** तथा सुमित्रानंदन पन्त के **'ज्योत्स्ना'** में ऋतुनाट्य प्रकृति-चित्रण एवं प्रकृति दर्शन के नवीन प्रयोग हैं। भावनाट्य, जिनमें घटनाओं के बदले भावों का द्वन्द्व प्रमुख होता है, स्वच्छन्दतावादी-नाटक के उत्कृष्ट उदाहरण हैं।

संस्कृत नाटकों में रोमाँटिक तत्व

संस्कृत नाटक यद्यपि अधिकांशतः प्रख्यात कथावस्तुओं पर आधारित होते थे फिर भी उनमें कल्पना का यथेष्ट प्रयोग होता था। शेक्सपियर के नाटकों के समान संस्कृत नाटकों में प्रणय-व्यापारों का भी भावनापूर्ण चित्रण होता था। इसके सिवा उपरूपकों में नृत्य-गीत का बाहुल्य होता था। भास के नाटक' स्वप्नवासवदत्ता,' 'प्रतिज्ञायौगंधरायण', 'अविमारक' एवं 'चारुदत्त' में प्राचीन कहानी के आधार पर कल्पना का यथेष्ट प्रयोग हुआ है। **'स्वप्नवासवदत्ता'** में उदयन एवं पद्मावती का मिलन दिखाया गया है किंतु वासवदत्ता के प्रति उदयन के गंभीर प्रेम को व्यक्त करना ही नाटककार का उद्देश्य है। **'प्रतिज्ञायौगंधरायण'** में उदयन, सागरिका, वासवदत्ता की प्रेम-कथा, **'चारुदत्त'** में चारुदत्त एवं उज्जयिनी की प्रसिद्ध गणिका बसन्तसेना की प्रेम-कथा तथा **'अविमारक'** में सोवीरराज विष्णुसेन तथा कुन्तीभोज की कन्या कुरंगी की प्रेम-कथा है। कालिदास के नाटक 'मालविकाग्निमित्र', 'विक्रमोर्वशी' तथा 'अभिज्ञानशाकुन्तलम्' में भी मानव को तीव्रतम कामना प्रेम का ही चित्रण हुआ है। **'मालविकाग्निमित्र'** में विदिशा-राज अग्निमित्र एवं राज-अन्तःपुर की परिचारिका अपूर्व सुन्दरी मालविका की प्रेमकथा है। इसमें प्रेम की गहराई कम है एवं राज अन्तःपुर के षड़यंत्र तथा राजाओं की प्रेम

तो इस 'आलौकिक, अतीन्द्रिय' प्रेम की जड़ें भी हमें अपनी समाज-व्यवस्था में मिल जायगी। इस रूमानी-प्रेम के बीज भी हमें उस **व्यक्तिवादी आन्दोलन** में मिलेंगे, जिसका सूत्रपात औद्योगिक-क्रान्ति और पूँजीवाद के आगमन के साथ हुआ था। 'रुमानी-प्रेम में भावुक्ता तथा अलभ्य के प्रति आकर्षण तीव्र होता है। **रोमांटिक शैली** की विशेषता यह है कि उसमें कला की किसी रूढ़ि व नियमों का पालन नही होता। रोमांटिक प्रवृत्ति की अभिव्यक्ति गीतिकाव्य में उत्तम रूप से हुई है क्योंकि गीतिकाव्य में **आत्मानुभूति की विवृत्ति** का अच्छा अवकाश मिलता है। रोमांटिक शैली का यह रूप नाटकों के क्षेत्र में गीति-नाट्य, नृत्यनाट्य भावनाट्य, तथा काव्यरूपकों में व्यक्त होता है।

रोमांटिक व स्वच्छन्दतावादी नाटक कल्पना, भावावेग, **रूमानी-प्रेम, दार्शनिकता, काव्यात्मकता सांकेतिकता** आदि रोमांटिक तत्वों द्वारा जिन नाटकों की रचना होती है वे रोमांटिक नाटक कहलाते हैं। जिस प्रकार रोमांटिक तत्वों में इतनी विविधता है कि उन्हें परिभाषाओं में बांध सकना असम्भव लगता है, उसी प्रकार रोमांटिक नाटकों के स्वरूप में भी विभिन्नता होती है। अंग्रेजी नाट्य साहित्य में मार्लो तथा विलियम शेक्सपियर स्वच्छन्दतावादी नाट्य-परम्परा के प्रधान लेखक हैं। **शेक्सपियर** के सभी नाटक स्वच्छन्दतावादी शैली पर रचित हुए हैं—ग्रीक तथा रोमन त्रासदियों के संकलन-त्रय का उन्होंने निर्वाह नहीं किया, ट्रेजेडी तथा कामेडी के तत्वों का उन्होंने मिश्रण कर **'ट्रेजि-कामेडी'** की सृष्टि की, नायकों के **रूमानी-प्रेम** का भावना-प्रधान चित्रण किया, **अति-प्राकृत तत्वों** को नाटकों में स्थान दिया इत्यादि। शेक्सपियर के 'रोमांटिक कामेडी' तथा **'ड्रामाटिक रोमांस'** अमिश्रित रूप से स्वच्छन्दतावादी नाटक कहे जा सकते हैं, उनके ऐतिहासिक नाटक तथा ओथेलो, मेकबेथ एवं हैमलेट जैसे त्रासदियों की विवेचना स्वच्छन्दतावादी दृष्टिकोण से न होकर ऐतिहासिक नाटक तथा त्रासदियों के दृष्टिकोण से होती है। **मार्लो ने 'डाक्टर फौस्टस'** में नायक संबंधी उस रूढ़ि को तोड़ डाला जिसके अनुसार नायक देवता व राजवंश के होते थे। उन्होंने त्रासदी में देव के साथ द्वन्द्व न दिखाकर मानव के मन में निहित शैतान एवं नैतिकता का द्वन्द्व प्रदर्शित किया।

डाक्टर फौस्टस की कथा के प्रसंग में प्रसिद्ध जर्मन नाटककार गेटे रचित 'फाउस्ट' उल्लेखनीय है। जर्मनी के रोमांटिक नाटक लेखकों में लेसिंग सिलर तथा गेटे प्रसिद्ध हैं। **गेटे ने** डा० फास्टस संबंधी किम्वदन्ती (Saga or legend) को नाटक का विषय बनाया एवं गीतात्मक तथा नाटकीय शैली में मनोवैज्ञानिक तथा दार्शनिक तत्वों को चित्रित किया। **'फाउस्ट' नाटक में मानव की अनुसन्धान की प्रवृत्ति को चित्रित किया** गया एवं यह दिखाया गया कि इस खोज में पहले वह इन्द्रिय-सुख में लिप्त होता है फिर आदर्श सौन्दर्यरूपिणी हेलेन को वह प्राप्त करता है। इस चित्रण द्वारा मनोविज्ञान पर प्रकाश डाला गया है एवं जिस रोमांटिसिज्म को पेटर ने कहा है—'दी थ्रिल आफ स्ट्रेंजनेस, उसे **लूई कजामियां** ने मनोवैज्ञानिक-पक्ष कहा है—

रोमांटिसिज्म कैन बी डिफाइन्ड ओन्ली इन टर्म्स आफ प्योर साइकोलाजी । एनी अदर फार्मूला आल्टर्स आर लिमिट्स आरबिट्रेरिली इट्स व्हेरी इसेंस ।" शेक्सपियर के नायकों में अन्तर्द्वन्द्व है किन्तु उसके चित्रण में कोई दार्शनिकता नहीं है। इसके विपरीत **रवीन्द्रनाथ तथा प्रसाद के नाटकों की दार्शनिकता** उनके नाटकों को स्वच्छन्दतावादी-स्वरूप प्रदान करती है। शेक्सपियर के रोमांटिक ट्रेजेडी 'रोमिओ जूलियेट' में रूमानी प्रेम का चित्र है। शेक्सपियर के नाटकों की शैली का प्रभाव द्विजेन्द्रलाल पर एवं द्विजेन्द्रलाल के माध्यम से हिन्दी नाटकों पर पड़ा। इस क्षेत्र में उनके 'रोमांटिक कामेडी' तथा 'ड्रामाटिक रोमांस' उल्लेखयोग्य हैं। उनके रोमाँटिक कामेडी हैं— लव्स लेबर लास्ट,' 'दी टेमिग आफ दी श्रू,' 'दी कामेडी आफ एरर्स,' 'दी मर्चेन्ट आफ व्हेनिस,' 'एज यू लाइक इट' इत्यादि। **रोमांटिक कामेडी में अवास्तव दृश्यों का सृजन, भावावेगों की जटिलता, प्रेम-व्यापार एवं मिलन** में अन्त होता है। शेक्सपियर ने अपने अन्तिमकाल में चार 'ड्रामाटिक रोमांसों' की रचना की—'पेरिक्लस', 'सीम्बेलिन', 'दी विंटर्स टेल, और 'दी टेम्पेस्ट'। इन नाटकों में केवल अवास्तव दृश्यों का नहीं, अतिप्राकृत तत्वों का स्वच्छन्द प्रयोग हुआ।

प्रकृति-प्रेम एवं प्रतीकात्मक-प्रयोग रोमांटिक तत्व हैं। **'दी टेम्पेस्ट'** में प्रतीक-शैली नहीं है किन्तु शांतिपूर्ण द्वीप का संकेत है जहां समस्त कुकर्मों का अवसान होता है, यथार्थ दुनिया में उसका कोई अस्तित्व नही। रवीन्द्रनाथ के 'ताशेर देश', प्रसाद के **'कामना'** तथा सुमित्रानन्दन पन्त के **'ज्योत्स्ना'** में ऋतुनाट्य प्रकृति-चित्रण एवं प्रकृति दर्शन के नवीन प्रयोग हैं। भावनाट्य, जिनमें घटनाओं के बदले भावों का द्वन्द्व प्रमुख होता है, स्वच्छन्दतावादी-नाटक के उत्कृष्ट उदाहरण हैं।

संस्कृत नाटकों में रोमाँटिक तत्व

संस्कृत नाटक यद्यपि अधिकांशतः प्रख्यात कथावस्तुओं पर आधारित होते थे फिर भी उनमें कल्पना का यथेष्ट प्रयोग होता था। शेक्सपियर के नाटकों के समान संस्कृत नाटकों में प्रणय-व्यापारों का भी भावनापूर्ण चित्रण होता था। इसके सिवा उपरूपकों में नृत्य-गीत का बाहुल्य होता था। भास के नाटक' स्वप्नवासवदत्ता,' 'प्रतिज्ञायौगंधरायण', 'अविमारक' एवं 'चारुदत्त' में प्राचीन कहानी के आधार पर कल्पना का यथेष्ट प्रयोग हुआ है। **'स्वप्नवासवदत्ता'** में उदयन एवं पद्मावती का मिलन दिखाया गया है किंतु वासवदत्ता के प्रति उदयन के गंभीर प्रेम को व्यक्त करना ही नाटककार का उद्देश्य है। **'प्रतिज्ञायौगंधरायण'** में उदयन, सागरिका, वासवदत्ता की प्रेम-कथा, **'चारुदत्त'** में चारुदत्त एवं उज्जयिनी की प्रसिद्ध गणिका बसन्तसेना की प्रेम-कथा तथा **'अविमारक'** में सोवीरराज विष्णुसेन तथा कुन्तीभोज की कन्या कुरंगी की प्रेम-कथा है। कालिदास के नाटक 'मालविकाग्निमित्र', 'विक्रमोर्वशी' तथा 'अभिज्ञानशाकुन्तलम्' में भी मानव को तीव्रतम कामना प्रेम का ही चित्रण हुआ है। **'मालविकाग्निमित्र'** में विदिशा-राज अग्निमित्र एवं राज-अन्तःपुर की परिचारिका अपूर्व सुन्दरी मालविका की प्रेमकथा है। इसमें प्रेम की गहराई कम है एवं राज अन्तःपुर के षड़यंत्र तथा राजाओं की प्रेम

विलासिता का चित्र है। '**विक्रमोर्वशी**' में पुरुरवा तथा उर्वशी की प्रेम-कथा है। उर्वशी के विरह में पुरुरवा के विलाप का काव्यात्मक एवं मर्मस्पर्शी चित्रण हुआ है। प्रेम के पार्थिव एवं स्वर्गीय-स्वरूप की श्रेष्ठ अभिव्यक्ति '**अभिज्ञान-शाकुन्तलम्**' नाटक में हुई है। दैहिकप्रेम की छलना, कटु वास्तविकता का अनुभव, विषयी-नायक की उच्छृंखलता अन्तर्द्वन्द्व तथा अनुताप एवं नायिका के प्रणय का आवेग एवं तपस्या का मार्मिक चित्रण 'अभिज्ञान-शाकुन्तलम्' में हुआ है। रोमांटिक तत्व की श्रेष्ठ अभिव्यक्ति इस नाटक के चतुर्थ अंक में हुई है जिसमें पुत्री को पतिगृह में भेजते समय पिता की अन्तर्व्यथा का ही चित्रण नही, प्रकृति का एक अंतरंग सहचरी के रूप में भी चित्रण हुआ है। नाटकीय दृष्टि से पंचम अंक में चरममुहूर्त की योजना हुई किंतु काव्यात्मक दृष्टि से एवं वेदना की अभिव्यक्ति की दृष्टि से चतुर्थ अंक अतुलनीय है। प्रणय के चित्रण में ह्लास, विलास, चापल्य, मद आदि के साथ **संस्कृत नाटकों में विरह, विषाद**, अनुताप, निष्ठा आदि का भी योग रहता है किंतु अन्त में नायक नायिका के मिलन के द्वारा नाटक को **सुखांत परिणति** देना ही नाटककार का उद्देश्य होता है।

शूद्रक के '**मृच्छकटिक**' में चारुदत्त तथा वसन्तसेना की प्रेम-कथा का चित्रण हुआ है। इस नाटक में प्रेम-व्यापार राज-अन्तःपुर में सीमित न रहकर साधारण मनुष्यों के जीवन को मधुरता प्रदान करते हैं। इस तरह शूद्रक ने नायक के उच्च-कुल संभूत होने की रूढ़ी को तोड़ा। हर्ष रचित नाटक 'रत्नावली' एवं 'प्रियदर्शिका' में राज-अन्तःपुर की प्रणय कथा है। राजा उदयन की पुरातन प्रेम-कथाओं पर आधारित होते हुए भी लेखक की नाट्य-कुशलता एवं काव्य शक्ति का परिचय मिलता है। '**रत्नावली**' में सिंहल-राजकुमारी रत्नावली के जहाज डूबने के कारण वह सागरिका के रूप में उदयन की राजसभा में आती है। सागरिका के प्रति [illegible], प्रेम में बाधाएँ एवं अन्त में मिलन इस नाटक के विषय हैं। '**प्रियदर्शिका**' में अंगराजकन्या प्रियदर्शिका का उदयन के राज-अन्तःपुर में आरण्यका के रूप में प्रवेश, रानी वासवदत्ता की ईर्ष्या एवं अन्त में उदयन तथा प्रियदर्शिका का मिलन इस नाटक के विषय हैं। इस तरह संस्कृत नाट्य-साहित्य में वत्सराज उदयन की प्रेम-कथाओं को अधिक प्रधानता मिली है।

प्रेम कथाओं पर आधारित नाटकों के क्षेत्र में भवभूति रचित '**मालती-माधव**' उल्लेखनीय है। इसमें मालती और माधव की प्रणयकथा के साथ मकरन्द और मदयन्तिका की प्रेम कथा समानान्तर रूप में चित्रित हुई है। नाटक के नायक माधव जो कि किसी राज्य के मंत्रीपुत्र हैं उज्जयिनी में शिक्षार्थी बनकर रहते हैं। उज्जयिनी की मंत्रीकन्या मालती माधव के प्रति प्रणयासक्त होती है किन्तु राजा मालती का विवाह अन्यत्र करना चाहते हैं। माधवके मित्र मकरन्द एवं बौद्ध भिक्षुणियों की सहायता से अंत में मालती तथा माधव का मिलन होता है। यद्यपि अन्य नाटकों में भी शृंगार रस का चित्रण हुआ है किन्तु संस्कृत नाट्य साहित्य में 'मालती-माधव' प्रेम-प्रधान धारा का

प्रतिनिधि नाटक माना जाता है एवं सुखान्त होते हुए भी इसे हम शेक्सपियर के प्रसिद्ध प्रेम-प्रधान नाटक 'रोमिओ-जूलियेट' की कोटि में रख सकते हैं।

प्राकृत के सट्टक में प्रणय-व्यापार, नृत्य-गीत आदि की प्रधानता पाई जाती हैं। राजशेखर रचित 'कर्पूरमंजरी' में राजा चन्द्रपाल एवं राजकुमारी कर्पूरमंजरी की प्रणय-कथा, रानी की ईर्ष्या, उनका छिपकर मिलना एवं अन्त में मिलन दिखाया गया है। सट्टक में अद्भुत रस भी होता है एवं 'कर्पूरमंजरी' में एक तांत्रिक सिद्ध के चमत्कार द्वारा अद्भुत रस की पुष्टि हुई है। सट्टकों में रोमांटिक-वातावरण की प्रधानता उसमें वर्णित प्रेम की गहराई मे नहीं, चमत्कार पर आधारित प्रेम-व्यापार में होती है। **प्राकृत में कर्पूरमंजरी, रम्भामंजरी, चन्द्रलेखा, विलासवती, श्रृंगारमंजरी**, आनन्दसुन्दरी **इन ६ सट्टकों के नाम मिले हैं।** संस्कृत के उपरूपक **रासक** तथा **नाट्यरासक** नृत्य-नाट्य के सदृश्य होते थे। रासक का उदाहरण 'मैनकाहितम्' एवं नाट्यरासक के उदाहरण 'वीणवती,' विलासवती' आदि हैं। इनमें भी नृत्य-गीत, कल्पना, प्रणय-व्यापार आदि रोमांटिक तत्वों की प्रधानता होती है। रोमांटिक-शैली की दृष्टि से कृष्णमिश्र रचित '**प्रबोध-चन्द्रोदय**' **नामक रूपक-शैली** का नाटक उल्लेख-योग्य है। इसमें भ्रम, पाप, व्यसन धर्म, युक्ति आदि नाटकीय-चरित्र हैं।

हिन्दी तथा बंगला रोमांटिक नाटकों की पृष्ठभूमि

भारतेन्दु काल से ही हिन्दी नाट्य-साहित्य में रोमांटिक व प्रेम-प्रधान नाटकों की धारा चल पड़ी जिसमें भारतेंदु रचित '**विद्या-सुन्दर**' श्रीनिवासदास कृत '**रणधीर प्रेममोहिनी**' और '**तप्तासंवरण**' अधिक प्रसिद्ध हुए। इनमें 'रणधीर प्रेममोहिनी' नामक दुःखान्त रोमांटिक नाटक शेक्सपियर के रोमांटिक ट्रेजेडी '**रोमियो जूलियेट**' से स्पष्टतः प्रभावित है। इसी तरह बंगला रोमांटिक नाटकों पर विहगम दृष्टि डालने पर प्रमाणित होगा कि उन पर भी जात्रा-शैली तथा शेक्सपियर के रोमांटिक नाटकों का प्रभाव है। माइकेल मधुसूदन दत्त के नाटक '**शर्मिष्ठा**' तथा **पद्मावती** के रोमांटिक तत्व अंग्रेजी रोमांटिक नाट्य-शैली को अपनाने के प्रयास है। किन्तु मनोमोहन वसु के गीताभिनय तथा '**प्रणय परीक्षा**' जैसे रोमांटिक पारिवारिक नाटक पर जात्रा-शैली की छाप है। इनके सिवा कालिदास के नाटक तथा भवभूति रचित संस्कृत नाटक '**मालती-माधव**' प्रेम कथाओं के सुन्दर निदर्शन है जो परोक्ष रूप से हिन्दी तथा बंगला के रोमांटिक नाटकों को अनुप्राणित करते रहे। वैष्णव तथा सूफी प्रेम तत्व की धारा जिस देश पर युगों तक प्रवाहित रही उसके लिए नर नारी की प्रेम-व्यंजना से पूर्ण रोमांटिक भाव-धारा कोई नवीन वस्तु नहीं थी। हिन्दी के स्वच्छन्दतावादी नाटकों के विषय में **डा० दशरथ सिंह** लिखते हैं—

"ऊपर हम कह आए हैं कि नाट्य-रचना की हमारी प्राचीन-धारा स्वच्छन्दतावादी तत्वों और विशेषताओं से समृद्ध बनी थी। वह धारा अविच्छिन्न रूप में प्रवाहित

होती आई है। काल-क्रम में अन्य स्रोतों से स्वच्छन्दतावादी तत्व उसमें आकर मिलने लगे, फलतः वह अधिक विस्तृत और गहन बन गई। हिंदी स्वच्छन्दतावादी नाट्य-परम्परा का सबसे बड़ा वैशिष्ट्य यह है कि वह अत्यन्त सजीव है। हमारा जातीय जीवन उसमें प्रतिफलित हुआ और हो रहा है। प्राचीन संस्कृति और इतिहास, नवीन आकांक्षाएँ और उद्देश्य उसमें निबद्ध हैं और उनकी कलापूर्ण अभिव्यक्ति उसमें मिलती है।"

पहले पहल हिंदी में जिन रोमांटिक शैली के नाटकों की सृष्टि हुई उनमें बंगला का प्रभाव था, निजी मौलिकता कम थी, अतः वे उच्च कोटि के नहीं थे। धीरे-धीरे उनमें अपनी विशिष्टता का विकास हुआ। हिंदी नाट्य साहित्य में संधिकाल में प्रेम-प्रधान धारा के कुछ नाटक रचित हुए जैसे हरनारायण चतुर्वेदी रचित 'कामिनी कुसुम,' हरिहर प्रसाद जिजल का 'कामिनी मदन,' कहैयालाल का 'रत्न-सरोज' आदि। प्रसाद के समकालीन नाट्यकार दुर्गादत्त पांडे रचित 'चंद्रानन्नी,' ब्रजनंदन सहाय रचित 'उषांगिनी' आदि भी प्रेम-प्रधान नाटक हैं। हिंदी रोमांटिक नाटकों के क्षेत्र में ये नाटक अधिक प्रसिद्ध न हो सके। हिंदी के रोमांटिक नाटकों के कुशल नाट्यकार **पारसी रंगमंच** के नाट्यकार थे जिन्होंने अरब, ईरान की प्रेम-कथा **'लैला मजनू', शीरी फरहाद'** आदि को विलायती ढंग के थियेटरों पर सजीव तथा लोकप्रिय बनाया। इसी तरह हिंदी लोक नाटकों के क्षेत्र में **'हीर-राँझा', 'सोहनी-महीवाल'** आदि प्रेम-प्रधान धारा के मर्मस्पर्शी उदाहरण हैं।

बंगला नाट्य साहित्य में उपेन्द्रनाथ दास रचित नाटक **'शरत् सरोजिनी'** तथा **सुरेन्द्र-विनोदिनी'** रोमांटिक नाटक हैं। किन्तु इनमें नायक नायिका के प्रेम के सिवा राष्ट्रीय भावना भी व्यक्त हुई जिसके फलस्वरूप **सन् १८७६ के अन्त में 'ड्रामाटिक परफार्मेंन्सेस कन्ट्रोल एक्ट'** निकला। इसके फलस्वरूप नाट्यशालाओं तथा नाट्यशालाओं में अभिनीत नाटकों का सरकार द्वारा नियंत्रण कानून-सिद्ध अधिकार हो गया। १४ दिसम्बर, सन् १८७६, अमृत बाजार पत्रिका में इसका उल्लेख हुआ।[1] नाटकों में जब प्रेम, सौंदर्य, आनन्द के सिवा कोई उद्देश्य मुखर हो उठता है तब वह रोमांटिक नाटक न रहकर **रोमांस-धर्मी** बन जाता है। बंगला नाट्य साहित्य के अधिकांशतः पौराणिक तथा ऐतिहासिक नाटक भक्ति तथा राष्ट्रप्रेम के उच्छ्वास के कारण रोमांस-धर्मी हैं। शुद्ध रोमांटिक नाटकों के रचयिताओं में क्षीरोदप्रसाद विद्याविनोद प्रसिद्ध हैं। उनके पौराणिक तथा ऐतिहासिक नाटक सभी रोमांस-धर्मी हैं एवं रोमांटिक नाटक अपने क्षेत्र में उत्कृष्ट हैं। रोमांटिक प्रवृत्ति से प्रेरित होकर केवल प्रेम कथाओं की ही रचना

१—बंगीय नाट्यशालार इतिहास—लेखक श्री ब्रजेन्द्रनाथ बन्दोपाध्याय—
द्वितीय खंड, साधारण रंगालय, पृष्ठ २०२
(सं० १३४६ साल)

नाटकों में नहीं हुई वरन् भाव-प्रधान, प्रकृति-चित्रण-प्रधान, नृत्य प्रधान, गीत प्रधान तथा काव्यात्मक एवं प्रतीकात्मक विभिन्न प्रयोग हिन्दी तथा बंगला नाट्यक्षेत्र में हुए। इन सभी नाटकों की यही विशेषता है कि इनका वातावरण वास्तविक दुनिया से दूर भावपूर्ण काल्पनिक, रहस्यात्मक, स्वप्निल तथा मधुर है। इस रोमांटिक नाट्य-क्षेत्र में रवीन्द्रनाथ तथा प्रसाद जैसे गीति-कवियों का अवदान सबसे अधिक महत्वपूर्ण है। **उन्होंने** अत्यन्त भाव-समृद्ध तथा कलात्मक रोमांटिक नाटकों का सृजन किया।

हिन्दी तथा बंगला नाट्य-साहित्य में प्रारम्भ ही से रोमांटिक प्रवृत्ति अत्यन्त प्रबल रही जिसके कारण उनके पौराणिक तथा ऐतिहासिक नाटक अधिकांशतः वस्तु तथ्यवादी न होकर रोमांस-धर्मी हैं। बंगला नाटककारों में यह प्रवृत्ति और भी अधिक थी। द्विजेन्द्रलाल, गिरीशचन्द्र, रवीन्द्रनाथ तथा क्षीरोदप्रसाद सभी ने थोड़ा बहुत शेक्सपियर की शैली का अनुसरण किया एवं इस शैली का प्रभाव हिन्दी नाटकों पर बंगला के माध्यम से पड़ा। यों तो **लोक-नाटक** के रूप में इन दोनों नाट्य-साहित्य में रोमांटिक प्रवृत्ति के बीज वर्तमान थे जो **राधाकृष्ण की अलौकिक प्रेम लीला** तथा **ढोला-मारू, हीर-रांझा जैसे प्रेमियों की लौकिक प्रेम लीला** में अभिव्यक्त होते थे। नवीन परिस्थिति मे इनमें एक ओर आध्यात्मिकता, देशप्रेम, कल्पना तथा कलात्मकता का स्फुरण हुआ, दूसरी ओर यथार्थवाद की **समस्या-मूलक** प्रवृत्ति का भी इनमें समावेश हुआ। अतः गिरीशचन्द्र तथा उदयशंकर भट्ट के पौराणिक नाटक, द्विजेन्द्रलाल, प्रसाद, प्रेमी, वृन्दावनलाल वर्मा, मन्मथ राय, शचीन सेनगुप्त, महेंद्र गुप्त आदि के ऐतिहासिक नाटक, रवीन्द्रनाथ के गीति नाट्य, नृत्य नाट्य, तत्व रूपक आदि स्वच्छन्दतावादी शैली के ही उदाहरण हैं। ध्रुवस्वामिनी तथा रक्तकरवी जैसे नाटक क्रमानुसार ऐतिहासिक तथा तत्व रूपक होते हुए भी समस्या-मूलक रोमांटिक नाटक हैं। हिंदी तथा बंगला नाटकों पर रोमांटिक शैली के प्रभुत्व के कई कारण हैं। उनपर रस-सिद्धान्त का प्रभाव तो था ही उस पर शेक्सपियर के रोमांटिक नाटकों का भी प्रभाव पड़ा। वैष्णव भक्ति ने उनके भाव-मूलक स्वरूप की भित्ति का निर्माण किया था फिर उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध के सांस्कृतिक नवजागरण ने भक्ति का स्त्रोत बहाया एवं बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में राष्ट्रीय भावना का ज्वार आया जिनका नाट्य-साहित्य के निर्माण में योग रहा। लोक नाटक तथा पारसी नाटक कम्पनियों ने **श्रृंगार रस** के उथले स्वरूप को उकसाया एवं कालिदास तथा भवभूति के नाटकों के अनुवाद ने श्रृंगार रस के अतल गंभीर स्वरूप का उद्घाटन किया। ऐसी परिस्थितियों में पुष्ट होकर हिंदी तथा बंगला की रोमांटिक शैली के नाटकों की भाव-धारा तथा रूप-विधान मे बहुमुखीनता का प्रसार हुआ।

विषम परिस्थिति के प्रति प्रतिक्रियाएँ

राजनीति के क्षेत्र में निराशा, सामाजिक क्षेत्र में अशांति तथा अव्यवस्था, आर्थिक क्षेत्र में दुर्भिक्ष तथा बेकारी के भारतवासियों ने मानसिक जगत में उथल-पुथल

मचा दी। बीसवी सदी के प्रारम्भ में अनेक रोमांटिक नाटकों को रचना हुई एवं अधिकांश ऐतिहासिक नाटक रोमांटिक प्रवृत्ति की प्रेरणा से ही रचित हुए। नाट्यजगत में रवीन्द्रनाथ के 'राजा' नाटक का आविर्भाव हुआ। **रोमांटिक** साहित्य के इतिहास में इनका उदय अविस्मरणीय तथा महत्वपूर्ण है। हिंदी काव्य-क्षेत्र में प्रसाद, पंत, निराला तथा महादेवी वर्मा जैसे **रोमांटिसिज्म से प्रेरित कवियों का उदय हुआ**। जैसे बंगला म गीताभिनयों की रचना हुई वैसे हिंदी में करुणालय, अनघ, स्वर्णविहान आदि गीतिनाट्यों की रचना हुई क्योंकि इस समय साहित्य-क्षेत्र में गीति-काव्यों की धूम थी। किंतु धीरे-धीरे परिस्थिति बदलती गई। सामाजिक समस्याओं से आक्रांत होने के कारण रोमांटिक प्रवृत्ति सिमट गई एवं कटु वास्तविकताओं से परिचित होने के लिए [illegible] नाटकों की रचना होने लगी। रोमांटिक नाटकों में प्रेम के मधुर पक्ष का ही चित्रण होता था किंतु मनोविज्ञान के क्षेत्र में नवीन उपलब्धियों को प्राप्त करने पर प्रेम जैसे मनोविकार का विश्लेषण होने लगा। इस वैज्ञानिक प्रकाश में रोमांटिक नाटक अत्यंत हल्के प्रतीत होने लगे। रोमांटिक नाटकों की रचना का ह्रास हिंदी तथा बंगला नाट्य-साहित्य में दिखाई देने लगा।

इस ह्रास को देखकर यह धारण हो सकती है कि रोमांटिक रचना का युग समाप्त हो गया है किंतु यह धारण भ्रांत है। **यूरोप में सन् १९३० के बाद से यथार्थवाद की प्रतिक्रिया भी शुरू हो गई एवं काव्यरूपक की रचना** की ओर नाट्यकारों की दृष्टि आकर्षित हो रही है। हिंदी तथा बंगला नाटकों पर भारतीय-रस-सिद्धांत का जो गहरा प्रभाव है वह समस्याओं की क्षणिक जटिलताओं में विलीन नहीं हो सकता। विषम परिस्थिति में भी भाव-नाट्य, गीति-नाट्य, नृत्य-नाट्य तथा काव्य-रूपक आदि की रचनाएँ हुई और उनमें युग-चेतना का प्रभाव भी स्पष्ट है।

रोमांटिक नाटकों का वर्गीकरण

रोमांटिक प्रवृत्ति से प्रेरित होकर हिंदी तथा बंगला में जिन नाटकों की रचना हुई उनके **रूप-विधान में अनेक विभिन्नताएं** हैं। रोमांटिक नाटकों का सबसे प्रचलित तथा सरल रूप प्रेमलीलापूर्ण नाटकों का है। इनमें प्रेमियों के **प्रथम प्रणय, विरह एवं मिलन के** दृश्य रहते हैं। प्रेमी अनेक बाधाओं का अतिक्रमण कर एक दूसरे को प्राप्त करते हैं। कहीं-कहीं ये नाटक सुखांत न होकर दुःखांत भी होते हैं। अलौकिक प्रेम की व्यंजना के लिए सूफी कवियों ने हिंदू किंवदन्तियों का आश्रय लिया था जिनमें लौकिक तथा अलौकिक प्रेम व्यंजना अत्यंत मार्मिक रूप में हुई। इन्हीं लोक कथाओं के आधार पर अनेक प्रेम लीलापूर्ण नाटक भी रचित हुए जो अधिकांशतः दुखान्त हैं। बंगला में क्षीरोदप्रसाद जैसे प्रसिद्ध रोमाँटिक लेखक ने उपकथाओं का प्रयोग किया। हिन्दी में पारसी नाटक कम्पनियों के नाट्यकारों ने भी कई प्रचलित तथा विदेशी लोक कथाओं का प्रयोग किया। यद्यपि कल्पित कथाओं का भी सृजन हुआ है किंतु लोक कथाओं में मानव की इस आदिम प्रवृत्ति से सम्भूत प्रेम भावना का आधिक्य है।

प्रतीक शैली में कई प्रेम-कथाओं का सृजन हुआ है जिनमें प्रेम कथा के अतिरिक्त उस कथा का अन्य अर्थ भी भासित होता है। अतः वे रूपक-नाटक भी कहलाते हैं जिन नाटकों में भावों की प्रबलता है, बाह्य द्वन्द्व अत्यन्त कम तथा **नृत्य, गीत, प्रकृति आदि तत्वों की विशिष्टता है** वे गीति नाट्य, नृत्य-नाट्य, भाव नाट्य, ऋतु नाट्य आदि के रूप में रचित हुए हैं। जहाँ नाटकों के **संवाद गद्य में न होकर पद्य में** लिखे गये हैं वे अपनी काव्यात्मकता की विशिष्टता के कारण काव्य रूपक कहलाते हैं। अतः हिंदी एवं बंगला के रोमांटिक नाटकों का तुलनात्मक विवेचन निम्नलिखित वर्गीकरण के अनुकूल करना समीचीन होगा—

१—प्रेमलीलापूर्ण नाटक,
२—प्रतीक शैली के नाटक,
३—गीति-नाट्य, नृत्य-नाट्य, भाव-नाट्य तथा ऋतु नाट्य,
४—काव्य-रूपक,
५—रोमाँस-धर्मी पौराणिक, ऐतिहासिक तथा समस्या-मूलक नाटक (इनका विवेचन पूर्व के अध्यायों में हो चुका है)।

१—प्रेम लीलापूर्ण नाटक

शृंगार रस के प्रति हृदय सबसे अधिक आकर्षित होता है। अतः प्रेमलील पूर्ण नाटकों द्वारा दर्शकों का मनोरंजन करना आसान है। संस्कृत साहित्य शास्त्र में शृंगार रसराज माना जाता है। विभिन्न रूपकों में विभिन्न रसों का स्थान नाट्याचार्यों ने निर्धारित किया था तथा जिन रूपक व उपरूपकों में कैशिकी वृत्ति की प्रधानता रहती थी उनमें शृंगार तथा नृत्य गीत की भी बहुलता रहती थी। ग्रीक तथा रोमन नाटकों में प्रेम तत्व का प्रायः अभाव है। **प्रेम तत्व का पूर्ण परिपाक हमें अंग्रेजी में शेक्सपियर के नाटकों में प्राप्त होता है**। एक ओर हिंदी तथा बंगला नाटकों पर शेक्सपियर के रोमांटिक नाटकों का प्रभाव पड़ा दूसरी ओर अरब तथा ईरान की प्रेम कहानियों का प्रभाव पड़ा। आध्यात्मिक क्षेत्र में, वैदिक साहित्य में कर्म तथा ज्ञान का प्राधान्य रहा। सूफियों के प्रेम तत्व का प्रभाव भारतीय संस्कृति पर पड़ा। इसके बाद मध्ययुग में वैष्णव प्रेम ने हमारे जातीय जीवन को सगठित किया। भारतीय लोक नाटकों में अलौकिक कृष्ण प्रेम तथा लौकिक प्रेम की सबसे सुन्दर अभिव्यक्ति हुई है क्योंकि प्रेम सहज हृदय की मधुर अभिव्यक्ति है। इसमें बौद्धिक मनोविश्लेषण का कोई स्थान नहीं है। जिन नाटकों में रति भाव का पूर्ण परिपाक शृंगार रस के रूप में दिखाया जाता है उनमें मनस्तात्विक विवेचन का प्रायः अभाव रहता है। अतः प्रेमलीलापूर्ण नाटकों का विवेचन बाह्यद्वन्द्व, अन्तर्द्वन्द्व, सम्भाव्यता, मनोविज्ञान आदि की दृष्टि से न कर रस की ही दृष्टि से करना समीचीन होगा। हिंदी तथा बंगला के प्रेमलीला पूर्ण नाटकों ने भारतीय रस-सिद्धांत को ही अपनाया है।

बंगला नाटकों में श्रृंगार रस की अभिव्यक्ति संयत, सुरुचिपूर्ण तथा कलात्मक हुई किन्तु हिन्दी नाटकों में पारसी नाटक कम्पनियों के व्यवसायिक उद्देश्य के कारण श्रृंगार का अत्यन्त कुरुचिपूर्ण तथा भद्दा प्रदर्शन हुआ। दोनों नाट्य साहित्य ने अरब, ईरान की उपकथा, रूपकथा आदि का प्रयोग किया किन्तु पारसी रंगमंच के नाटकों में **उर्दू शैली के बजारू प्रेम की अभिव्यक्ति** हुई। उर्दू काव्य के हुस्न, इश्क पर रचित शेर और शायरी का प्रभाव हिन्दी के प्रायः सभी प्रेमलीला पूर्ण नाटकों पर पड़ा।

बंगला नाटकों के रोमांटिक क्षेत्र में क्षीरोदप्रसाद विद्याविनोद के नाटक अत्यन्त लोकप्रिय भी हुए एवं साहित्यिक दृष्टि से भी उच्च कोटि के हैं। उनका प्रसिद्ध रोमांटिक नाटक '**अलीबाबा**' है जो इस्लामी रूपकथा है, इसके स्थान काल तथा पात्र सभी कल्पना जगत के हैं किन्तु लेखक के चित्रण के जादू ने उन्हें सजीव तथा सुपरिचित बना दिया है। यह नाटक नृत्य गीतों से पूर्ण है। नाटक के प्रारम्भ ही में अलीबाबा की क्रीतदासी मर्जिना प्रवेश कर गाती हैं—

"छि छि एता जजाल,
एता बड़ा बाड़ी इसमें एता जंजाल।
हरदम लगता झाड़ू तब भी ऐसा हाल॥" [1]

इस प्रसंग में यह दृष्टव्य है कि बंगला के नाट्यकार ने रोमांटिक नाटकों में मुसलमान पात्र पात्रियों के कई गीतों की जो भाषा रखी है वह हिन्दी से मिलती जुलती है। बंगला, उर्दू तथा हिन्दी के मेल से बने मर्जिना के गीत अत्यंत लोकप्रिय बन गये थे। ऐसे गीतों के साथ ही बंगला के गीत भी हैं। सकीना गाती है—

"आशे रेखेछि प्राण से कि रे आसिबे फिरे।
सुख-साथ अवसाद भासितेछि आंखिनीरे।" [2]

यह गीत भाव-गाम्भीर्य से पूर्ण है एवं **द्विजेन्द्रलाल रचित "शाहजहाँ" नाटक में पियारा के गीतों के सदृश्य है**। भावोच्छ्वास एवं गीत प्रयोग की दृष्टि से द्विजेन्द्र-लाल श्रेष्ठ कोटि के रोमांटिक नाटककार हैं एव हिन्दी में प्रसाद उनके समतुल्य हैं किन्तु ये दोनों नाटककार ऐतिहासिक-राष्ट्रवादी नाटकों के क्षेत्र में अधिक प्रसिद्ध हैं। क्षिरोद-प्रसाद के अलीबाबा में रोमांटिक तत्वों का प्रयोग केवल रोमांटिक वातावरण सृष्टि करने के लिए ही हुआ है, किसी सिद्धान्त व राष्ट्रीय उद्देश्य की प्रेरणा नहीं है। इस नाटक में उनकी रोमांटिक कलात्मकता का पूर्ण विकास हुआ है।

इस विदेशी रूपकथा को भी लेखक ने कुशलता से भारतीय सांचे में ढाल लिया है।

१—अलीबाबा—लेखक श्री क्षीरोदप्रसाद विद्याविनोद—प्रथम अंक, प्रथम दृश्य।
२—अलीबाबा—प्रथम अंक, चतुर्थ दृश्य।

अलीबाबा' नाटक की कथावस्तु में अलीबाबा का डाकुओं के रत्नागार की खोज पाना अलीक कल्पना है किन्तु उसमें अलीबाबा, मर्जिना, हुसेन आदि का जो चरित्र-चित्रण हुआ है वह नाटककार की कुशलता का परिचायक है । एक दीन लकड़हारे के रूप में अलीबाबा का चरित्र-चित्रण उपयुक्त हुआ है । मर्जिना एवं हुसेन का प्रेम-चित्रण भी मर्यादित एवं मधुर हुआ । मर्जिना दासी है किन्तु उसके हृदय में बांदी से वेगम बनने की वासना निहित है। वह हुसेन से प्रेम करती है एव हुसेन भी उसके प्रति अनुरक्त है किन्तु उसका प्रेम प्रगल्भ नहीं, मौन है जो एक लकड़हारे के पुत्र की अक्षमता का द्योतक है । जब कासिम मर्जिना को अलीबाबा के हाथों बेच देते हैं तब हुसेन की खुशी केवल छोटे छोटे वाक्यों में व्यक्त होती है--

हुसेन--हाँ मर्जिना ? ताहले तुमि आमादेर हले !
मर्जिना—सेटा ताड़ाताड़ि बोलते पारबो ना । कतौटा सेखाने
छिलाम, तार कतटा खरच होइछे, हिसेब कौरे बोलते
हबे ।
हुसेन— देख मर्जिना, आज आमार जै आनन्द—
मर्जिना—तबे एसो, तोमाय एक्टू शरबत खाइये दिइ ।
हुसैन--देख मर्जिना—
मर्जिना—ताहले शीराजी ।
हुसैन--अल्लार कि रे, आमि आह्लादे चौखे किछू देखते पाच्छि
ना ।' १

बंगला के रोमांटिक प्रेमलीला पूर्ण नाटकों में प्रेम का मधुर तथा मार्जित चित्रण हुआ है किन्तु हिन्दी के रंगमंचीय नाटक जो अधिकांशतः पारसी नाटक कम्पनियों द्वारा पेश किये गये, उर्दू से प्रभावित प्रेमलीलापूर्ण नाटक हैं। उनमें प्रेम का रंगीन तथा रुचि-हीन चित्रण हुआ है । इनके लेखक तालिब, जरीफ, रौनक तथा बेताब आदि उर्दू लेखक थे एवं इनके नाटक 'शीरी-फरहाद', 'लैला मजनू', 'गुल-बकावली', 'दिलेर-दिल-शेर', 'निगाहें-गफलत' आदि थे। इनकी कथावस्तु तथा भाषा दोनों ही भारतीय संस्कृति के अनुरूप प्रेम के चित्र अंकित करने में असमर्थ थीं।

शेक्सपियर के 'ड्रामाटिक रोमांस' की शैली पर क्षीरोदप्रसाद ने **'बरुणा'** नाटक की रचना की। यह किसी रूपकथा पर आश्रित नहीं, लेखक द्वारा रचित **कल्पित-कथा है** । अतः इसकी कथा कल्पना से अनुरंजित होती हुई भी अत्यधिक असम्भव नही प्रतीत होती । प्रेम, सौन्दर्य, विरह मिलन संगीतात्मक तथा रम्य प्राकृतिक वातावरण में

१—अलीबाबा—द्वितीय अंक, प्रथम दृश्य ।

रोमांस-नाटक की मधुरता की सृष्टि करते हैं। इसमें भी घटनाओं की परख सम्भाव्य तथा असम्भाव्य की कसौटी पर नहीं होती किन्तु कौतूहल की सृष्टि एवं चमत्कार के द्वारा दर्शकों के हृदय को ऐसे रोमांस-नाटक मुग्ध कर देते हैं। शेक्सपियर के ड्रामाटिक-रोमांसों की तरह 'वरुणा' नाटक की नायिका किरात-कन्या वरुणा युवती होने पर यह ज्ञात करती है कि वह राजकन्या है एवं अन्त में सबको ज्ञात होता है कि वही केरल की खोई हुई राजकन्या है। इस **कथा में संघर्ष, द्रुत गति, नाट्योत्कंठा, नाटकीय वक्रता** आदि सभी शेक्सपियर की रीतियों का प्रयोग हुआ है एवं साथ ही साथ संगीत की मूर्च्छना तथा **प्रेम की व्यंजना नाटकीस रस को सघन बना देती है।** हिन्दी रोमांस-नाटकों में इस तरह का सामंजस्य स्थापित नहीं हो पाया। क्योंकि हिन्दी के रंगमंचीय नाटककारों ने बाह्य चमत्कार को ही अपना लक्ष्य बनाया। उन्होंने प्रेम के अत्यन्त स्थूल रूप का चित्रण किया तथा संगीत उर्दू गजलों के ढंग पर पेश किया। रोमांस-नाटकों में यद्यपि देश, काल, पात्र तथा घटनाएं सभी **रंगीनी कल्पना** की तूलिका से अंकित होते हैं किन्तु दर्शकों के शिशु मनको तृप्त करने के लिए नाटककारों को बारीकियों तथा **शिल्प-चातुर्य का** ध्यान रखना पड़ता है। मानव का प्रौढ़-मन अधिक तार्किक होता है किन्तु शिशु-मन अत्यन्त संवेदनशील होता है। कोमल भावों की सूक्ष्म-अभिव्यंजना द्वारा जिस मधुर भाव-लोक की सृष्टि होती है उसमें हृदय कुछ क्षण के लिए निमज्जित हो जाता है। रोमांस-नाटकों की यही सार्थकता है कि हृदय कुछ क्षण के लिए **वास्तव तथा कठोर दुनिया से दूर एक स्वप्नराज्य में** खो जाता है। बाह्य-चमत्कार देखकर बुद्धि विमूढ़ हो सकती है किन्तु हृदय अभिभूत नही होता।

बंगला रोमांटिक नाटकों के क्षेत्र में 'वरुणा' एक उत्कृष्ट नाटक है। इसकी कथावस्तु में संघर्ष है तथा इसके चरित्रों में द्वन्द्व एवं विकास की मात्रा यद्यपि अल्प है किन्तु उनके **भावावेग का सुन्दर चित्रण** हुआ है। राजकुमार पुंडरीक किरात-पत्नी में प्रवेश कर दूर से वरुणा का संगीत सुनकर मुग्ध होते हैं। जब उन्हें ज्ञात होता है कि गायिका किरात-कन्या है एवं उसे यह गाना सिखाने वाली एक राजकन्या है तब वे उस राजकन्या को प्राप्त करने के लिए आकुल हो उठते हैं। रोमांस नाटकों में प्रेमी की उत्कंठा एवं मिलन के प्रयास में बाधाओं की सृष्टि ही नाटकीय कला के परिचायक हैं। 'वरुणा' नाटक में राजकुमार पुंडरीक देश त्यागकर राजकन्या की खोज में पागल की तरह भटकते हैं। किसी राजकन्या का रूप देखकर, किसी का संगीत सुनकर उन्हें भ्रम होता है कि यही उनकी मानस-प्रिया है। जब भ्रम दूर होता जाता है तब वे उसे त्यागकर चले जाते हैं। जब वे इस तरह कांची-राजकुमारी को भी त्याग कर पलायन करते हैं तब काँचीराज अपमानित होकर पुंडरीक को बन्दी करने के लिए उसका ससैन्य पीछा करते हैं। वरुणा अपने प्रियतम पुंडरीक की खोज में सदा व्यस्त है। उसके पालक-पिता व्याध सदरि पुंडरीक की रक्षा करने व्याध-बाहिनी लेकर पहुंचते हैं। नदी वक्ष में मरण के क्रोड़ पर पुंडरीक किरात-कन्या का आह्वान करते हैं क्योंकि उन्होंने उसे वचन दिया था कि राजकन्या को अगर वे खोज न पायें तो मृत्यु

के पूर्व उसे ही ग्रहण करेंगे। ऐसी अवस्था में नदी की उत्ताल लहरों पर, जीवन मृत्यु के संधि-क्षण में नायक नायिका का मिलन होता है।

इसके बाद शेष दृश्य में भी नाट्योत्कंठा है। केरल राजा के छद्मवेशी भ्रातृ-ष्पुत्र माधवेन्द्र (अभिराम) का वध होने वाला है क्योंकि उन्होंने महाराज शिवसिंह को वचन दिया था कि यदि वे उनके पुत्र पुंडरीक को एक वर्ष के अन्दर न लौटा सके तो उनका प्राण उत्तरदायी होगा। एक वर्ष के समाप्त होने में कुछ ही क्षण बाकी हैं—रुद्ध निश्वास से सब प्रतीक्षा कर रहे हैं। केवल और एक पल बाकी है—राजकुमार पुंडरीक किरात-कन्या को साथ लेकर आते हैं। आनन्दगिरि वरुणा का यथार्थ परिचय देते हैं। पुंडरीक और वरुणा का मिलन विवाह-बन्धन द्वारा अविच्छेद्य होता है।

कल्पित कथा के आधार पर हिन्दी में जो प्रेम-लीलापूर्ण नाटक लिखे गये वे अधिकांशतः **"विद्या-सुन्दर"** नामक लोक-कथा के प्रेम-व्यापार के आरम्भ, चरम सीमा तथा अन्त में मिलन से सादृश्य रखते हैं। सन्धि काल के प्रेम-प्रधान धारा के नाटकों में हरनारायण चतुर्वेदी रचित **"कामिनी कुसुम"** नाटक उल्लेख योग्य है। इस नाटक की कथा का आधार विद्या-सुन्दर की कथा है जिस पर भारतेन्दु ने बंगला में भारत-चन्द्र रचित काव्य "विद्या-सुन्दर" से प्रभावित होकर "विद्या सुन्दर" नाटक (सन् १८६७) की रचना की थी। "कामिनी कुसुम" नाटक (सन् १९०७) की रचना तीन अंकों में हुई है। कथा का विद्या-सुन्दर की कथा से साम्य है। वर्द्धमान देश की राज-कुमारी कामिनी प्रतिज्ञा करती है कि जो उसे विद्या में पराजित कर सकेगा उसका वह पति रूप में वरण करेगी। मधुपुरी के राजकुमार कुसुमसेन कामिनी के रूप की प्रशंसा सुन वर्द्धमान में छद्मवेश में आते हैं। लीला मालिन से उनका परिचय होता है एवं केवल उसे वे अपना उद्देश्य व्यक्त करते हैं। **क्षीरोदप्रसाद जैसे बंगला नाटककार के रोमांटिक नाटकों में भावनाओं की जो मधुरता, आवेग तथा आकुलता काव्यात्मक भाषा में व्यक्त हुई हैं उसका हिन्दी के प्रेम-प्रधान नाटकों में अभाव है।** कुसुमसेन लीला मालिन से कहते हैं—

कुसुमसेन—भला मामी वह राजकन्या कैसी है।

लीला—बेटा उसकी सुन्दरता को सहस्त्र मुख शेषनाग भी वर्णन नहीं कर सकते (गाती है)
(राग सौरठ तिताला)
कहो वह कैसे वरनै रूप ॥ टेक ॥
नख शिख सौं सबही विधि सुंदर शोभा अतिहि अनूप।[1]

१—कामिनी कुसुम नाटक—लेखक हरनारायण चतुर्वेदी—दूसरा अंक, प्रथम गर्भांक। (सं० सन् १९०७)

कुसुमसेन कामिनी का रूप वर्णन सुनकर उससे मिलने के लिए आकुल होते हैं एवं चोर की तरह कामिनी के महल में प्रवेश कर उसका हृदय-हरण करते हैं । एक दिन कोतवाल द्वारा वे पकड़े जाते हैं एवं उन्हें कारागार में भेज दिया जाता है । कामिनी विरह दुःख से मूर्च्छित हो जाती है । मधुपुरी से जमुना भाट आकर यह खबर देते हैं कि बन्दी परदेसी ही मधुपुरी का विद्वान राजकुमार है । इस कथा में "विद्या-सुन्दर" के स्थान पर कामिनी-कुसुम की जोड़ी है, गंगा भाट के स्थान पर जमुना भाट एवं हीरा मालिन के स्थान पर लीला मालिन । इस नाटक के अन्त में राजा सहर्ष कामिनी तथा कुसुमसेन के विवाह की अनुमति देते हैं । नाटक के अन्त में भरतवाक्य के समान ईश्वर-स्तुति है ।

अन्त में नायक नायिका का **मिलन** ही रोमांस–नाटकों में अभिप्रेत होता है ताकि दर्शक प्रसन्न चित्त होकर गृह लौटें । हिन्दी की कई लौकिक प्रेम कथाएँ दुःखान्त भी हैं । हरिकृष्ण प्रेमी रचित संगीत रूपक **सोहनी-महिवाल, हीर-रांझा आदि में विरह पक्ष का अत्यन्त मार्मिक चित्रण** हुआ है । लोक-प्रचलित प्रेम कथाओं को हिन्दी नाटककारों ने रोमांस-नाटकों का रूप न देकर गीति-नाट्य के ही रूप में लिखा है । बंगला नाटकों को सुप्रतिष्ठित रंगमंचों का सहारा मिला था जिनमें इनका नियमित रूप से अभिनय होता था । हिन्दी नाटकों को रेडियो का सहारा मिला । अतः **हिन्दी नाटककारों ने संगीत-रूपक** लिखने की ओर अधिक ध्यान दिया ताकि वे रेडियो द्वारा प्रसारित हो सकें । इन संगीत रूपकों में मिलन तथा विरह के रमणीय उद्गार हैं किन्तु बंगला के रोमांस-नाटकों की भाँति घटनाओं की द्रुत गति, संघर्ष तथा उत्कंठा नहीं है। प्रेम के नाटकीय रूप की मार्मिक व्यंजना हिन्दी के रंगमंचीय नाटक तथा संगीत रूपकों में नहीं हो पाई ।

नर नारी की प्रेम लीला का दिग्दर्शन पौराणिक, ऐतिहासिक तथा सामाजिक सभी कथावस्तुओं में कराया जा सकता है । हिन्दी तथा बंगला पौराणिक नाटकों में प्रधानतः भक्ति का ही प्रतिपादन हुआ है किन्तु कई ऐसे नाटक भी हैं जिनमें हिन्दू नारी के सतीत्व की महिमा का भी प्रतिपादन हुआ है । सतीत्व का प्रथम सौपान है प्रेम । हृदय की प्रेरणा से चारित्रिक निष्ठा उत्पन्न होकर विश्व की प्रबल से प्रबल शक्तियों से भी लोहा ले सकती है—प्रेम की विजयिनी शक्ति का स्वरूप कई पौराणिक नाटकों में है जो रोमांटिक नाटक कहलाने के योग्य हैं । इनमें अवास्तव घटनाओं का भी प्रचुर प्रयोग होता है । "**सावित्री सत्यवान**", ,'**बेहुला लखिन्दर**" आदि इसी कोटि की रचनाएं हैं । कई प्रख्यात तथा साधारण लेखकों ने इन कथाओं को लेकर नाट्य-रचनाएं की । "सावित्री सत्यवान" नाटक की कथावस्तु के अनुसार महाराज अश्वपति सावित्री देवी के वरदान से एक कन्या रत्न प्राप्त करते हैं । यही कन्या सावित्री है जो अपनी प्रेम-निष्ठा द्वारा मृतक पति के प्राण को यम के पास से लौटा लाती है ।

बम्बई के रंगमंचों के लिए इस कोटि के जिन नाटकों की रचना हुई उनका

साहित्यिक महत्व अधिक नहीं है किन्तु जीवन के राग रंग, विनोद आदि का सहज सरल रूप चित्रित करने में वे सफल रहे। साधारण रोमांटिक नाटकों में एक विनोदी पात्र भी कभी-कभी रहता है एवं हिन्दी के इन नाटकों में नारद का चरित्र विनोद की सृष्टि करता है। आर० एल० गुप्ता "मायल" रचित "**सावित्री सत्यवान**" में जीवन के रागरंग का सुन्दर चित्रण है—बगीचे में सावित्री का अन्य सहेलियों के साथ गाते हुए प्रवेश—

"खिली है रंग बिरंगी क्यारी प्यारी
कोयल कू कू शब्द करत हैं
भौंरा गूँजत है फुलवारी खिली है
आओ सजनी हिल मिल गायें
नाचे नाच मुरारी संग राधा प्यारी"[1]

गीत तथा परिहास के बीच इस नाटक का प्रारम्भ तथा मृत्यु से संघर्ष में इसका विकास हुआ है। सावित्री के प्रेम की अविचलता एवं यम का कठोर मृत्यु नियम—इनके द्वंद्व में नाट्योत्कंठा अधिक नहीं है, मनोविश्लेषण भी नहीं है, केवल प्रेम का प्रचार है। तारा मंडल में यमराज के पीछे सावित्री का आना—

सावित्री—"पतंग छोड़कर दीप को हरगिज जा नहीं सकता
किरन को सूर्य से कोई अलग पा नहीं सकता
जहां पर चन्द्रमा होगा वहीं पर चांदनी होगी
जहां होंगे पति अपने वहीं पर कामनी होगी।"[2]

पौराणिक प्रेम कथाओं में प्रेम के द्वन्द्व की अपेक्षा आदर्श का अधिक प्रचार होता है। सुबोध घोष रचित "**भारत प्रेम कथा**" में महाभारत के प्रेमाख्यानों को नवीन भावना तथा विचार का जो आलोक प्राप्त हुआ है। नाट्य साहित्य के क्षेत्र में प्रेम के उस नानारूप द्वंद्वात्मक स्वरूप का अभाव है। बंगला में मन्मथ राय ने पौराणिक नाटकों को नवीन चिन्तन का वाहन बनाया है किन्तु उनका लक्ष्य भी रोमांटिक प्रेम तत्व का मार्मिक निरूपण नहीं है।

बंगला मंगल काव्य के मनसा-मंगल में चाँद सौदागर की कथा है। इस कथा में देवी-देवताओं की पूजा पाने की आकांक्षा एवं उनकी प्रतिहिंसा के विरुद्ध मानव का द्वंद्व मन्मथ राय के पौराणिक नाटक "चांद सौदागर" में व्यक्त हुआ है। इस कथा का

१—सावित्री सत्यवान—लेखक आर० एल० गुप्ता "मायल" (सप्तम संस्करण) अंक पहला, सीन सातवां।

२—अंक तीसरा, सीन पहला।

और एक महत्वपूर्ण पक्ष है सती बेहुला की प्रेम निष्ठा। बेहुला और लखिंदर के अगाध प्रेम को व्यक्त करने के लिए रोमाँटिक दृष्टिकोण से कई नाटकों की रचना हुई। श्री विनय कृष्ण मुखोपाध्याय प्रणीत **"बेहुला लखिन्दर"** नाटक का लक्ष्य बेहुला के सतीत्व की महानता दिखलाना है। छोटी नौका में पति के मृतदेह को लेकर सती बेहुला दिग-दिगन्त पार करती है। नौका पर कंकाल माला भूषिता बेहुला प्रेम की प्रतिमूर्ति है जो मृत्यु को भी चुनौती देती है।

समुद्रतीर में नौका पर बैठी हुई बेहुला की करुण पुकार अत्यन्त मर्मभेदी है—

"स्वामी ! स्वामी !
हे मोर अभीष्ट देवता !
कत दिन—कत दिन मोरे
रहेछो भूलिया !
कथा कओ—कथा कओ—के प्राणेश !
तव आशा पथ चेये
ए दासी एखनो जीविता।[1]

अन्त में देवी महामाया की शक्ति से लखिन्दर पुनरुज्जीवित हो उठते हैं।

पाश्चात्य रोमांस-नाटकों में इस प्रकार की प्रेम-कथाओं का सर्वथा अभाव है। भारतीय पौराणिक साहित्य में इस प्रकार की अनेक प्रेम-कथाएं हैं जिनका प्रयोग हिन्दी तथा बंगला के नाटकों में इस प्रकार हुआ है। केवल अतिप्राकृत तत्वों के कारण इनकी उपेक्षा नहीं की जा सकती, अतीत काल से इन प्रेमादर्शों का जन-मानस पर जो अमिट प्रभाव पड़ा है उनका नाट्य-रूप अपने क्षेत्र में महत्वपूर्ण है।

काल्पनिक-ऐतिहासिक कथा पर रचित रवीन्द्रनाथ के दो **रोमांटिकट्रेजेडी, राजा ओ रानी** एवं **विसर्जन** प्रसिद्ध हैं जिनकी रचना बीसवीं शताब्दी के पूर्व हुई। इनमें प्रेम और कर्तव्य, प्रेम और गुरु भक्ति आदि का संघर्ष है। विशुद्ध-ऐतिहासिक कथा पर प्रेम लीला पूर्ण नाटक हिन्दी तथा बगला में रचित नहीं हुए। कल्पना के सहारे प्रेम तत्व की योजना के लिए कई पात्रियों की सृष्टि हुई है किन्तु प्रेम तत्व की व्यंजना व प्रेम कथा की मार्मिकता दिखाना उनका लक्ष्य नहीं है क्योंकि ऐतिहासिक कथावस्तुओं का प्रयोग हिन्दी तथा बंगला नाटककारों ने राष्ट्रीय भावों की अभिव्यक्ति के लिए किया है। उदाहरणार्थ प्रसाद के चन्द्रगुप्त, स्कन्दगुप्त, अजातशत्रु आदि में तथा द्विजेन्द्रलाल के चन्द्रगुप्त, मेवाड़ पतन आदि में प्रेमी प्रेमिकाओं की सुन्दर उक्तियां हैं किन्तु वे नाटक

---

१ – बेहुला लखिन्दर—लेखक श्री विनयकृष्ण मुखोपाध्याय।
तृतीय अंक, तृतीय दृश्य (सप्तम मुद्रण)

श्रृंगार रस प्रधान नहीं है, वीर रस प्रधान हैं। शैक्सपियर के ऐतिहासिक-रोमांस उदाहरणार्थ एटोंनी क्लियोपाट्रा की कोटी के नाटकों की रचना हिन्दी बंगला तथा नाट्य-साहित्य में नहीं हुई। **प्रेम लीला की प्रधानता न होते हुए भी हिन्दी तथा बंगला के प्रायः सभी ऐतिहासिक तथा पौराणिक नाटक स्वच्छन्दतावादी शैली में लिखे गये हैं।** एवं कई ऐतिहासिक तथा पौराणिक नाटक रोमांटिक शैली के उत्कृष्ट उदाहरण है। बीसवीं सदी में नवीन चेतना से अनुप्राणित होकर इन नाटकों में ईश्वर भक्ति, देशभक्ति, शौर्य तथा प्रेम के साथ साथ बौद्धिक उन्मेष भी दिखाई देता है जो उन नाटकों को और भी उच्च-स्तर पर पहुंचा देते है। क्षीरोद प्रसाद के बंगला नाटक नर नारायण में अंतर्द्वन्द्व के साथ कर्ण के वीरत्व, औदार्य, कृष्णभक्ति, मातृभक्ति का जो स्फुरण हुआ है वे रोमांटिक तत्व हैं। जयशंकर प्रसाद के ऐतिहासिक नाटक स्कन्दगुप्त में कल्पित पात्री देवसेना के आदर्श प्रेम का जो चित्र है वह भाव लोक की अमर सृष्टि है। द्विजेन्द्रलाल राय के चन्द्रगुप्त नाटक में कूटनीतिज्ञ चाणक्य का भी अत्यंत भाव-विगलित स्वरूप अंकित किया गया है। बंगला साहित्य के अधिकांश नाटक रोमांस-धर्मी हैं एवं उनसे प्रभावित होकर हिन्दी के नाटककार प्रसाद, प्रेमी, गोविंदवल्लभ पन्त, उदयशंकर भट्ट आदि के नाटकों में भी रोमांस-धर्मी स्वरूप व्यक्त हुआ है। यद्यपि मूल में भी दोनों नाट्य साहित्य की प्रवृत्ति स्वच्छंदतावादी रही। हिन्दी तथा **बंगला** नाट्य साहित्य में जो रोमाँस-धर्मी ऐतिहासिक नाटक लिखे गये उनका उद्देश्य इतिहास की पृष्ठभूमि पर राष्ट्रीय आदर्श को व्यक्त करना था। किन्तु इतिहास की पृष्ठभूमि पर कुछ ऐसे भी नाटक लिखे गये जिनमें स्वच्छन्दतावादी तत्वों की इतनी प्रचुरता है कि उन्हें ऐतिहासिक रोमांटिक नाटक कहना ही उचित होगा। ऐसे नाटकों में ऐतिहासिक वातावरण तथा कुछ प्रमुख पात्रों के सिवा बाकी सब कुछ काल्पनिक होता है, घटनाओं के सृजन में लेखक ऐतिहासिकता की परवाह न कर रोमांटिक तत्वों से काम लेता है। इनमें कहीं कहीं शौर्य एवं प्रेम का ग्रंथन होता है, कहीं एतिहासिक पात्रों के चारित्र पर लेखक अपनी काल्पनिक दृष्टि से नवीन प्रकाश डालता है एवं कही काल्पनिकता के सहारे वह सांस्कृतिक चित्रण करना चाहता है। इनमें ऐतिहासिक तथ्यों का बन्धन न होने के कारण लेखक भावनाओं का मनमाना चित्रण करता है। ऐतिहासिक-रोमांटिक नाटक का उत्कृष्ट उदाहरण क्षीरोदप्रसाद रचित **बंगला** नाटक "आलमगीर" है। आलमगीर ऐतिहासिक पात्र है, इसके सिवा इस नाटक में और कुछ भी ऐतिहासिक नहीं है। कुत्सित औरंगजेब काश्मीर की एक सुन्दरी कन्या को बन्दी बनाते है एवं उस सुन्दरी के व्यक्तित्व से प्रभावित होकर उसे वे अपनी बेगम बनाते है। उसके हृदय को वशीभूत करने में असमर्थ औरंगजेब उसका नाम रखते है **"उदीपुरी"** क्योंकि वह उदयपुर सदृश्य अपराजेय थी। उदीपुरी मानसिक अशांति से पीड़ित औरंगजेब के प्रति जो ममत्व दिखाती है उसमें प्रेम नही करुणा है। औरंगजेब तथा उदीपुरी के चरित्र का जो भावनाप्रधान, अन्तर्द्वन्द्व प्रधान चित्रण लेखक ने किया उसमें लेखक की रोमांटिक प्रवृत्ति का उत्कर्ष दिखाई देता है। हिन्दी में जगन्नाथ प्रसाद "मिलिन्द" ने **"गौतम नन्द"** (सन् १९५२) नामक ऐतिहासिक-रोमांटिक नाटक की

रचना की। इसका ऐतिहासिक अंश केवल पात्र का परिचय है। महाराज शुद्धोदन के कनिष्ठ पुत्र गौतम नन्द हैं। लेखक ने यह कल्पना की है कि ज्येष्ठ भ्राता गौतम बुद्ध के समान गौतम नन्द बुद्ध के ही आदेश से भिक्षु धर्म ग्रहण करते है। "आलमगीर" में औरंगजेब के कोमल एवं दुर्बल अंश पर **मानवीय दृष्टिकोण से सहानुभूतिपूर्ण** प्रकाश डाला गया है एवं "गौतम नन्द" में **सांस्कृतिक उद्देश्य प्रधान** है, उसी उद्देश्य के प्रकाश में गौतम नन्द के त्यागपूर्ण जीवन का चित्रण हुआ है। अंक, दृश्य तथा पात्रों की संख्या अत्यंत सीमित है। **मुगल-कालीन ऐतिहासिक कथाओं में शौर्य तथा प्रेम की अपेक्षा षड़यंत्रों की प्रधानता है।** यह नाटकीयता के लिए अधिक उपयुक्त है किन्तु रसात्मकता की दृष्टि से अधिक उपयुक्त नहीं है। मुगल-महलों के रोमांटिक वातावरण चित्रण में हिन्दी तथा बंगला के नाटककार असमर्थ रहे।

राजस्थान की ऐतिहासिक कथाएँ तथा किंवदन्तियां रोमांटिक नाटक रचना के लिए अत्यन्त उपयुक्त हैं एवं टाड के "राजस्थान" की कथाओं का हिन्दी तथा बंगला के प्रसिद्ध तथा साधारण कोटि के नाटककारों ने प्रयोग किया। चित्तौड़ की महारानी पद्मिनी का पतिप्रेम व अलाउद्दीन खिलजी से अपने सतीत्व की रक्षा के लिए उनका जौहर भारतीय रमणियों के साहस तथा प्रेम का उज्ज्वल दृष्टांत हैं। न्यादर सिंह बेचैन रचित रंगमंचीय नाटक **"महारानी पद्मिनी"** में अन्त में वजीर कहते हैं—

"जवानी क्या है ये बहता हुआ दरिया का पानी है।
मुहब्बत करना ही बेकार है हर चीज़ फानी है।"

इस पर अलाउद्दीन कहते हैं—

"क्या खबर थी औरतें भी खेलनी हैं जान पर।
जिन्दा जल जाती हैं हंसकर, अपनी लाज और आन पर।"[१]

बंगला नाटक साहित्य में राजपूतों के शौर्य तथा प्रेम की कथाओं से द्विजेन्द्रलाल अधिक प्रभावित हुए। उन्होंने दुर्गादास जैसे राजपूत आदर्श पुरुषों का तथा ताराबाई जैसी राजपूत वीरांगनाओं का चित्रण किया है। जयशंकर प्रसाद ने जहां कल्पना द्वारा कोमल तथा वीर बालाओं का चित्रण किया है वहां कोमलता की रेखाएं ही अधिक उभर पाई हैं क्योंकि उनकी रहस्यवादी भावनाओं का उनमें योग हो गया है। **"स्कन्दगुप्त" नाटक में प्रेम** की प्रतिमूर्ति **देवसेना** गाती है—

"शून्य गगन में खोजता जैसे चन्द्र निराश,
राका में रमणीय यह किसका मधुर प्रकाश।"

उपेन्द्रनाथ अश्क रचित **"जय-पराजय"** नाटक की नायिका **भारमली** के चरित्र में कुसुम की कोमलता एवं वज्र की कठोरता मणिकांचन योग हुआ है। हिन्दी नाट्य-

---

१—महारानी पद्मिनी—लेखक न्यादर सिंह बेचैन—अंक तीसरा, दृश्य तीसरा।

कारों में हरिकृष्ण प्रेमी के नाटक अधिक उद्देश्यपूर्ण तथा गोविन्ददास के नाटक अधिक वस्तुवादी हैं।

साधारणतः राजस्थान की ऐतिहासिक कथाओं से हिन्दी तथा बंगला के नाटककार अधिक अनुप्राणित हुए तथा **देशप्रेम एवं प्रेम का उन्होंने इस सुन्दर रीति से ग्रंथन किया** कि एक ओर उनमें राष्ट्रवादी नाटकों का दीप्त रूप है, दूसरी ओर उनमें प्रेमलीला पूर्ण नाटकों की मनोहारिणी कान्ति है।

२– प्रतीक-शैली के नाटक

प्रतीक नाटकों का स्वरूप—नाटककार केवल जीवन की प्रतिच्छवि ही अंकित करना नहीं चाहता, वह जीवन के रहस्य का भी उद्घाटन करना चाहता है। इस स्थूल, कर्म-मुखर जगत पर झीना आवरण है, जब कवि की दृष्टि इस आवरण को भेद कर एक **अतीन्द्रिय-जगत का आभास** पाती है तब कवि मन उसे व्यक्त करने के लिए आकुल हो उठता है। कवि यह अनुभव करता है कि साधारण जीवन में जो वास्तविक द्वन्द्व हैं वे यथार्थ सत्य नही हैं, सत्य की छाया मात्र हैं। इससे भी गहन, गम्भीर तथा अर्थपूर्ण द्वन्द्व हमारे अन्तर्जगत में हो रहा है जो अभिव्यक्ति के लिए उद्ग्रीव है। मनोजगत में स्वप्न के रूप में, किसी अस्पष्ट आभास व इंगित के रूप में अज्ञात सत्य का स्वरूप झलक उठता है, **कवि साधारण शिल्परीति द्वारा उसे व्यक्त नहीं कर पाता है**। इस अद्भुत भाव-वस्तु तथा उसकी अभिव्यक्ति के लिए उपयुक्त शिल्प रीति का जिन नाटकों में प्रयोग होता है वे साधारण नाटकों से भिन्न होते हैं। साधारण नाटकों में जिस द्वन्द्व का चित्रण होता है एवं जिन पात्र-पात्रियों का समावेश होता है वे वस्तु-तात्विक होते हैं किन्तु प्रतीक नाटकों में भावों का द्वन्द्व होता है एवं **पात्र पात्रियां किसी भाव-तत्व के वाहक** बन कर आते हैं। पात्र पात्रियों के मानवीय रूप का आवेदन कम होता है, **वे सूक्ष्म जगत के रहस्य को संकेत द्वारा व्यक्त करते हैं।**

साधारण दृष्टि-सम्पन्न नाटककार मानव जीवन में नियति की प्रभुता देख वेदना का अनुभव करते हैं एवं साधारण मनोविकार प्रेम, हिंसा, ईर्ष्या, अनुताप, महत्वाकांक्षा आदि के चित्रण द्वारा करुण रस की सृष्टि करते हैं। पाश्चात्य त्रासदियों में इसी प्रकार करुणा तथा त्रास के संचार द्वारा वेदनामय-आनन्द (ट्रेजिक-प्लेजर) की अनुभूति कराना नाटककार का उद्देश्य होता है। किन्तु अतीन्द्रिय जगत के साक्षात्कार से जो एक अद्भुत प्रकार की **अनिर्दिष्ट, वायवी अनुभूति** होती है उसकी वेदन-मधुरता की झलक दिखाना असाधारण दृष्टि सम्पन्न नाटककार का लक्ष्य होता है। जिस **अलौकिक दृश्य** (vision) का वे साक्षात्कार करते हैं उसे मानवीय चरित्रों के द्वारा रूपायित करना चाहते हैं। कभी-कभी इन्द्रियग्राह्य व प्रत्यक्ष वस्तु (percept) के आंख से ओझल हो जाने पर हम उसकी छवि को मन में आंकने की चेष्टा करते हैं, इस छवि को बिम्ब (Image) कहते हैं। किन्तु यदि हम उसके आंखों से ओझल होने पर

व्यक्तीकरण के द्वारा उसे दूसरों के लिए भाव-गम्य बनाना चाहें तो प्रतीकों (symbols) का सहारा लेना पड़ता है। अर्थात् केवल अतीन्द्रिय अनुभवों को व्यक्त करने के लिए ही नहीं, इन्द्रिय-ग्राह्य वस्तुओं को किसी विशिष्ट भावना वश तत्व का आधार बनाने के लिए भी प्रतीकों का प्रयोग होता है। सुमित्रानन्दन पन्त ने **ज्योत्सना के व्यक्तीकरण के द्वारा अपने आदर्श को व्यक्त** किया एवं रवीन्द्रनाथ ने रक्तकरवी के पुष्प पर गूढ़ तत्व का आरोप किया। 'राजा' तथा 'डाकघर' में रवीन्द्रनाथ ने अतीन्द्रिय जगत के तत्वों का संकेत किया। **'कामना' में प्रसाद ने भावों तथा प्रवृत्तियों के व्यक्तीकरण** द्वारा एक प्रान्त सभ्यता का चित्रण किया। इस तरह प्रतीकों का दर्शन काव्य तथा नाटक में कई रूपों में प्रयोग होता है। प्रतीकों के दार्शनिक-प्रयोग के संबंध में **डा० हीरालाल जैन** लिखते हैं—इन प्रतीकों को **जैन दर्शन में निक्षेप** कहा है। जब हम बोलकर कुछ कहना चाहते हैं तब वस्तुओं के जो ध्वन्यात्मक नाम लेते हैं वह **नाम-निक्षेप** है। जब चित्र खींचकर या मूर्ति बनाकर उसे प्रकट करते हैं तब हम **स्थापना-निक्षेप** की सहायता ले रहे हैं। जब हम उसके बाह्य मूर्त स्वरूप को सम्मुख रखते हैं तब वह **द्रव्य-निक्षेप** कहलाता है और जब उसके आभ्यन्तर स्वरूप को व्यक्त करने लगते हैं तब वह **भाव-निक्षेप** कहलाता है। इस प्रकार निक्षेपो द्वारा हम प्रकृति के तथ्यों को उनकी अनुपस्थिति में दूसरों को उनका अनुभवन कराने का प्रयत्न करते हैं।[१] प्रतीक नाटकों में दार्शनिकता का प्रयोग होता है एवं प्रतीकात्मक पात्र तथ्यों की अभिव्यक्ति करते हैं। जहां व्यक्तीकरण नहीं होता वहां **दर्शन की अभिव्यक्ति के लिए सांकेतिकता का भी प्रयोग होता है जैसे रवीन्द्रनाथ के 'डाकघर'** नाटक के डाक-घर में अथवा **मुक्तधारा** में यन्त्र एवं भैरव मन्दिर की चूड़ा के त्रिशूल में सांकेतिकता का प्रयोग हुआ है। प्रतीक नाटकों में भावों की क्रियाशीलता स्थूल प्रतीकों के सहारे व्यक्त की जाती है। उसकी शैली की यह प्रतीकात्मकता साधारण नाटकों जैसी रस-सृष्टि में उतनी समर्थ नहीं होती किन्तु उनके संकेत, इंगित तथा आभास जो खोई खोई मनोवृत्तियाँ तथा टूटी फूटी रहस्यात्मक वाणी में प्राप्त होते हैं वे हमारी चेतना को विद्युत् की चमक की तरह आलोकित तथा उद्भासित कर देते हैं।

विभिन्नताएं:—भाव-वस्तु तथा शिल्प-रीति की दृष्टि से प्रतीक-नाटकों के स्वरूप विभिन्न प्रकार के होते हैं।

१—कभी-कभी **भावों को ही मानवीय पात्र-पात्रियों का रूप देकर** नाटककार भावनाओं का द्वन्द्व दिखाते हैं। इनकी **शैली रूपक-शैली** होती है क्योंकि मानवीय पात्र-पात्रियों की एक कथा के समान्तराल में भाव-जगत की अन्य कथा भी चलती रहती है,

---

१—मयणपराजय चरिउ—सम्पादक डा० हीरालाल जैन,
प्रतीकात्मक नाटक-परम्परा, पृष्ठ–३८ (सं० अप्रैल, १९६२)
(प्रकाशक—भारतीय ज्ञानपीठ काशी)

दोनों कथाएं समान रूप से रस की सृष्टि करती हैं। संस्कृत का 'प्रबोधचन्द्रोदय' नाटक एवं जयशंकर प्रसाद रचित हिन्दी का 'कामना' नाटक इस कोटि के **भावों के प्रतीक नाटक** हैं। 'कामना' में सन्तोष, कामना, लीला, विलास आदि चरित्र हैं।

२—रोमांटिक प्रवृत्ति के लेखक जिस तरह भाव-विलासी होते हैं उसी तरह प्रकृति प्रेमी तथा कल्पना-विलासी भी होते हैं। मानव जीवन की लीला एवं प्रकृति की लीला इस विश्व-मंच पर हो रही है। दोनों में एक ही रहस्य है। कभी-कभी लेखक प्रकृति को ही मानवीय रूप देकर नाटक की रचना करते हैं, इनमें प्रकृति के मानवीय रूप तथा यथार्थ मानव चरित्र में अबाध सम्पर्क स्थापित हो जाता है। इस कोटि के **प्रकृति के प्रतीक नाटकों** का उत्कृष्ट उदाहरण हिन्दी के प्रसिद्ध कवि सुमित्रानन्दन पन्त का 'ज्योत्स्ना' नाटक है। रवीन्द्रनाथ ने प्रकृति लीला पर ऋतु-नाट्यों की रचना की है किन्तु **प्रकृति के प्रतीक नाटक ऋतु-नाटक नहीं हैं।** ऋतु नाटकों में प्रकृति ही प्रधान चरित्र है एवं मानव चरित्र उसके दृष्टा हैं किन्तु प्रकृति के प्रतीक नाटकों में प्रकृति मानवीय रूप धारण कर मानवीय आदर्श, सिद्धान्त व भावों को अभिव्यक्त करती है। ऐसे नाटकों का लक्ष्य प्रकृति की लीला का रहस्योद्घाटन करना नहीं होता वरन् **प्रकृति के प्रतीक द्वारा वे मानव जीवन की सूक्ष्म अनुभूतियों का दिग्दर्शन कराना चाहते हैं।**

३—**सांकेतिक प्रतीक नाटकों में** नाटककार **अतीन्द्रिय रहस्य का उद्घाटन** करता है। इनमें कभी-कभी साधारण कथा में रक्त-मांस के मानव चरित्र की वेदना, तृष्णा, आकांक्षा का परिचय मिलता है एवं उसके साथ ही **अन्तर्जगत में घटित आत्मा तथा अव्यक्त के विरह, मिलन का संकेत मिलता है।** रवीन्द्रनाथ रचित 'राजा' तथा डाकघर' इस कोटि के उत्कृष्ट उदाहरण हैं। बंगला में रवीन्द्रनाथ के प्रतीक नाटकों को रूपक सांकेतिक नाटक व तत्त्व रूपक कहा गया है। उनके 'राजा' तथा 'डाकघर' में अव्यक्त से मिलन की उत्कंठा है, 'फाल्गुनी' में जीवन, यौवन, जरा एवं मृत्यु के रहस्य का उद्घाटन हुआ है, 'अचलायतन' तथा 'ताशेर देश' में जड़-नियमों की असार्थकता की व्यंजना हुई है एवं 'रक्तकरवी' तथा 'मुक्तधारा' में युग-समस्या पर काल्पनिक कथा के संकेत द्वारा प्रकाश डाला गया है। इन सबमें किसी न किसी भावादर्श व तत्व की अभिव्यक्ति के लिए अन्तर्दृष्टि सम्पन्न कवि ने प्रतीक शैली का सहारा लिया है। ऐसे नाटकों में **संकेतों के द्वारा अद्भुत रहस्यमय वातावरण की सृष्टि** होती है।

४—**खंड-रूपक**—जब रूपक शैली का आद्योपान्त निर्वाह न होकर किसी खंड रूप में प्रयोग होता है तब वह नाटक तत्वों का वाहक होते हुए भी खंड-रूपकों में कुछ ऐसे प्रतीकों की योजना होती है जो सम्पूर्ण नाटक को एक नवीन अर्थ प्रदान करते हैं। रवीन्द्रनाथ के **'रक्तकरवी' नाटक में रक्तकरवी का पुष्प** नन्दिनी केश पर धारण करती है, वह ऐसा ही एक प्रतीक है जो प्राण के उल्लास, विकास एवं रागा-

त्मकता का रूप है। पृथ्वी के नीचे यक्षपुरी में यह रक्तकरवी पृथ्वी के ऊपर की प्राण-लीला का प्रतीक है।

५—**यथार्थवादी सांकेतिक नाटक:**—जब रोमांटिक प्रवृत्ति के साथ यथार्थवादी प्रवृत्ति का गठबन्धन होता है तब यथार्थवादी नाटकों में प्रतीक शैली की भी योजना होती है। **कठिन वास्तविकता के बीच में उनकी सूक्ष्मता दर्शाने के लिए संकेतों का प्रयोग होता है**। इब्सन का नाटक 'वाइल्ड डक' इसका उत्कृष्ट उदाहरण है। हिन्दी तथा बंगला के कुछ नाटकों में इनका प्रयोग हो रहा है।

संस्कृत तथा अपभ्रंश के प्रतीक नाटक

वैदिक काल से ही प्रकृति की शक्तियों की पूजा देवता के रूप में की जाती थी एवं प्रकृति के इस मानवीकरण में प्रतीक शैली का बीज विद्यमान था। प्रतीक-शैली के नाटकों का प्रथम उदाहरण जो हमें प्राप्त है वह भी अपूर्ण है। नाटकों के क्षेत्र में **अश्वघोष** के तीन नाटकों के जो खंडित अंश मिले हैं उनमें एक नाटक के **पात्र बुद्धि, कीर्ति, धृति** आदि हैं एवं इन प्रतीकात्मक पात्रों में **बुद्ध** मानव पात्र हैं। इस नाटक का अन्तिम अंश काल के गर्भ में छिप गया है किन्तु यह नाटक इस तथ्य की साक्षी देता है कि भावों के मानवीकरण के द्वारा नाट्यकार गहन सिद्धान्तों को व्यक्त करते थे। ग्यारहवीं सदी में कृष्णमिश्र रचित छह अंकों का **'प्रबोध चन्द्रोदय'** नाटक प्राप्त है। इस नाटक का हिन्दी एवं बंगला में अनुवाद भी हुआ एवं इसकी अन्योक्ति-शैली ने इस कोटि की नाट्य-रचना के लिए प्रेरणा दी। इस नाटक में महेश्वर तथा माया के पुत्र मन की दो पत्नियां हैं। निवृत्ति नामक पत्नि से मन को विवेक नामक पुत्र एवं प्रवृत्ति नामक पत्नि से मोह नामक पुत्र होता है। विवेक से उसकी पत्नि उपनिषद का विछोह हो जाता है एवं यद्यपि विवेक की अन्य पत्नि मति उपनिषद से विवेक का संयोग कराना चाहती है किन्तु मोह उसका विरोधी है। अन्त में विवेक एवं उपनिषद् का मिलन होता है एवं प्रबोधोदय को जन्म देकर उपनिषद् उसे विवेक को सौंप देती है। इस तरह पुरुष एवं प्रबोध का सम्मिलन होता है एवं विश्व-शांति के लिए प्रार्थना की जाती है। इस नाटक में मन के भाव व विकारों को मानव पात्र के रूप में रखकर उनमें नाटकीय संघर्ष की उत्पत्ति कर गहन दार्शनिक विचारों को व्यक्त किया गया है। इसके बाद उभयदेव के राज्य काल में (सन् १२२९-३२ ई.) यशःपाल रचित प्रतीक शैली का जैन-नाटक **'मोहराज पराजय'** प्राप्त है जिसमें पांच अंक हैं। इसमें नायक कुमारपाल, उनके गुरु हेमचन्द्र तथा विदूषक मानव पात्र हैं एवं ज्ञानदर्पण, विवेकचन्द्र कृपयासुन्दरी, सम्यक्चारित्र, नीति, कीर्तिमंजरी आदि प्रतीक पात्र हैं। इस नाटक में कुमारपाल की पत्नि कीर्तिमंजरी एक जैन मुनि के प्रभाव से अपने पति को मुक्त करने के लिए मोहराज से सहायता मांगती है। मोहराज मनोनगर पर आक्रमण करते हैं किन्तु अन्त तक पराजित होते हैं एवं मनोनगर का राज्य विवेकचन्द्र को पुनः लौटा दिया जाता है। अन्त में कुमारपाल जिनभगवान् व

हेमचन्द्राचार्य की स्तुति करते हैं ताकि उनकी पत्नि धवलकीर्ति पर से मोह का अंधकार दूर हो जाये।

इस शैली पर १४ वीं सदी में वेंकटनाथ ने **'संकल्पसूर्योदय'**, कवि-कर्णपूर ने **'चैतन्यचन्द्राय'** रूपक-नाटक की रचना की। १७वीं सदी में **'विद्यापरिणयन'** एवं १८वीं सदी में **'जीवानन्दन'** रूपक-नाट्य रचित हुए। नाटक की दृष्टि से ये नाटक उच्च कोटि के नहीं हैं क्योंकि भावों के मानवीयकरण के कारण इनका सीधा, सरल प्रभाव हृदय पर नहीं पड़ता एवं रस-सृष्टि में बाधा पहुंचती है। प्रतीक शैली के संस्कृत एवं अपभ्रंश के नाट्यकारों का उद्देश्य अपने दार्शनिक विचारों को व्यक्त करना था। इनका बौद्धिक आवेदन अधिक है एवं कलात्मक रूप में अधिक विकास नहीं हो पाया। वादिचन्द्रसूरि कृत प्रतीक नाटक संस्कृत का **'ज्ञान-सूर्योदय'** है। इस नाटक में चैतन्य स्वभावी आत्मा के सुमति तथा कुमति पत्नियों से विवेक, प्रबोध, संतोष, शील एवं मोह, मार, कोप आदि पुत्र उत्पन्न होते हैं। आत्मा कुमति के पुत्र मोह और काम को राज्य देते हैं। अन्त में पुरुष सुमति भार्या पर प्रीत होते हैं एवं चार प्रकार के धर्म ध्यान द्वारा मोह को विनष्ट कर ज्ञान का प्रकाश प्राप्त करते हैं। इसमें भी अत्यंत जटिल दार्शनिक-सिद्धान्त है। जैन परम्परा में भी ऐसी अनेक कथाएं हैं जिनमें भावों के मानवीकरण के द्वारा दार्शनिक सिद्धान्तों को रूप दिया गया है। काम संबन्धी परम्परा भी काव्यों में प्राप्त है। **सर्व प्रथम शिवपुराण में काम का देवता के रूप में उल्लेख है।** जिस तरह महायोगी शिव ने काम को भस्म किया उसी तरह बुद्ध एवं जैन मुनियों ने मार (कामदेव) को पराजित किया। तपस्वी एवं काम के बीच में भावात्मक-युद्ध प्रतीक-शैली के नाटकों का एक परिचित उपकरण रहा एवं मुनियों के मार-विजय पर कई नाटक रचित हुए। कवि **हरिदेव रचित 'मयण पराजय चरिउ'** अपभ्रंश के प्रतीक नाटकों का एक उत्कृष्ट उदाहरण है। सम्पादक डा. हीरालाल जैन ने भारतीय ज्ञानपीठ, काशी से इसे अप्रैल, १९६२ में प्रकाशित कराया। इस नाटक में जिनेन्द्र सिद्धि नामक श्रेष्ठ नारी से विवाह करना चाहते हैं एवं मदन उसका विरोध करते हैं। अन्त तक मदनराज पराजित होते हैं एवं सिद्धि से विवाह कर मोक्ष को गमनोद्यत जिनेन्द्र ने तपश्री तथा चारित्रनगर की रक्षा के लिए वृषभसेन को दूत लेख देकर भेजा। **इसी अपभ्रंश नाटक की कथा के आधार पर नागदेव ने 'मदन पराजय' नामक संस्कृत नाटक की रचना की।**

संस्कृत तथा अपभ्रंश के प्रतीक नाटकों की रचना शैव, बौद्ध तथा जैन दर्शन की अभिव्यक्ति के लिए हुई एवं कथा के लिए उन्होंने पुराण, पालि त्रिपिटक एवं जैन आगमों का आधार ग्रहण किया। इन नाटकों में सांकेतिकता का अभाव है अतः इन्हें रूपक-नाटक कहना समीचीन होगा।

हिन्दी तथा बंगला के प्रतीक नाटकों की पृष्ठभूमि

संस्कृत में 'रूपक' शब्द आज के 'नाटक' शब्द का पर्यायवाची था। रूपक के

दस भेदों में नाटक एक भेद था। **रूपक तथा उपरूपकों के अन्तर्गत 'प्रतीक नाटक' नामक कोई भेद न था क्योंकि संस्कृत नाटकों का विभाजन वस्तु, नेता तथा रस के आधार पर हो ताथा, शैली के आधार पर नहीं।** अतः संस्कृत नाट्य-साहित्य में एकमात्र उल्लेख-योग्य प्रतीक-शैली का नाटक कृष्ण मिश्र रचित 'प्रबोध-चन्द्रोदय' प्राप्त होता है। हिंदी साहित्य क्षेत्र में जोधपुर नरेश जसवन्तसिंह ने 'प्रबोध-चन्द्रोदय' का अनुवाद किया। इसकी भाषा व्रज भाषा है एवं डा. सोमनाथ गुप्त के मतानुसार सांकेतिक तथा अन्योक्ति शैली में रचित 'कलात्मक दृष्टि से हिन्दी साहित्य का सर्वप्रथम नाटक **प्रबोध -चन्द्रोदय नाटक** (र. का. लगभग १६४३ ई.) है। इस कथन से यह प्रमाणित होता है कि इसकी **अन्योक्ति शैली में जो कलात्मकता है उसके प्रति हिन्दी के प्रारम्भिक नाट्यकार आकर्षित हुए,** उसका सुन्दर भावानुवाद किया एवं हिन्दी नाटकों के लिए एक नमूना रख गये। प्रतीक शैली का यही रूप हिन्दी नाटककारों के सम्मुख था जिस परम्परा में **'देवमाया-प्रपंच'** रचित हुए एवं भारतेन्दु ने **'पाखण्ड विडंबन'** (प्रबोधचन्द्रोदय का तीसरा अक) एवं 'भारत-दुर्दशा' की रचना की। फिर **'भारत दुर्दशा'** के अनुकरण पर कई नाटकों की रचना हुई जो विशेष उल्लेखनीय नहीं हैं। बंगला नाट्यकारों की दृष्टि प्रारम्भ से ही संस्कृत नाटकों के प्रति अधिक न होकर शेक्सपियर के नाटकों के प्रति अधिक थी। यों तो संस्कृत नाट्य-साहित्य एवं शेक्सपियर के नाट्य-साहित्य के तत्वों में अनेक साम्य है फिर भी 'प्रबोध-चन्द्रोदय' की शैली का नाटक शेक्सपियर साहित्य में नहीं है। बंगला के प्रतीक नाटकों के क्षेत्र में संस्कृत के 'प्रबोध-चन्द्रोदय' नाटक का अवदान विशेष नहीं है। ईश्वरचन्द्र गुप्त ने **'बोधेन्दु विकास'** नामक नाटक की रचना इस शैली में की थी किन्तु उसका प्रभाव अधिक नहीं पड़ा। इस रूपक-शैली (Allegorical) पर रचित नाटक की अपेक्षा रवीन्द्रनाथ के सांकेतिक-रूपक 'राजा' एवं 'डाकघर' की रचना से हिन्दी तथा बंगला नाट्य-जगत मुग्ध तथा विस्मित अधिक हुआ। **रवीन्द्रनाथ के सांकेतिक-रूपकों में भारतीय अध्यात्मवाद के साथ योरोपीय प्रतीक नाट्य-शैली का मिश्रण हुआ।** इस नवीन प्रतीक शैली का प्रभाव प्रसाद तथा पन्त पर भी पड़ा। इसके पूर्व जो नाटक प्रतीक शैली की धारा में रचित हुए उनमें एवं नवीन प्रतीकात्मक नाटकों में भाव वस्तु, शिल्परीति तथा अभिनयात्मक एवं रंगमंचीय पद्धति में भी भिन्नता है।

'प्रबोध-चन्द्रोदय' तथा भारत-दुर्दशा की शैली पर अनेक नाटक हिन्दी में लिखे गये जिनमें प्रतापनारायण मिश्र का **'भारत-दुर्दशा'** (सन् १९०२) तथा किशोरीलाल का **'नाट्यसम्भव'** (सन् १९०४) बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में लिखे गये। बंगला में इसी रूपक-शैली पर अमरेन्द्रनाथ दत्त ने **'एसो युवराज'** एवं **'बंगेर अंगच्छेद'** (सन् १९०५) नाटकों की रचना की। इनमें भाव एवं निर्जीव पदार्थों का मानवीयकरण हुआ है तथा रचना का उद्देश्य अधिक कलात्मक न होकर नैतिक तथा राष्ट्रवादी है। यह प्रतीक-शैली के नाटकों का अत्यन्त साधारण रूप है जिसमें दो कथाए समानान्तर रूप से चलती हैं एवं दोनों का ही समान महत्व होता है। बीसवीं शताब्दी में जिन उल्लेख-

योग्य प्रतीक नाटकों की रचना नवीन ढंग पर हुई उन पर यूरोप की प्रतीक नाट्य-शली का प्रभाव स्पष्ट है। हिन्दी तथा बंगला के प्रतीक नाटकों ने इस नवीन शैली को किस रूप में अपनाया इसका यूरोपीय प्रतीक-नाटकों के तत्वों के स्पष्टीकरण से विवेचन होगा।

हिन्दी तथा बंगला नाट्यक्षेत्र में रवीन्द्रनाथ की श्रेष्ठ रचनाएं उनके तत्व रूपक व सांकेतिक नाटक हैं। रवीन्द्रनाथ की प्रतीक नाट्य-शैली में उनकी मौलिकता के साथ-साथ मेटरलिंक की नाट्य-शैली का भी योग हुआ है। **मेटरलिंक के 'दी इन्ट्रूडर'** के प्रधान पात्र मृत्यु सदृश्य रवीन्द्रनाथ के 'राजा' नाटक के नायक राजा नेपथ्य में रहते हैं। मेटरलिंक का **'ब्लू बर्ड'** सांकेतिक शैली का स्वप्न-नाट्य है। इसमें निद्रित मिटिल तथा टिलटिल स्वप्न में नीले पंछी की खोज में निकल पड़ते हैं। यह नीला पंछी आनन्द का प्रतीक है। इसी तरह 'रक्तकरवी' नाटक में रक्तकरवी का पुष्प मानव-कन्या नन्दिनी के सौन्दर्य, प्रेम एवं आनन्द-उद्वेल प्राण का प्रतीक है। हिन्दी में प्रसाद रचित 'कामना' की शैली रूपक-शैली है, उसमें सांकेतिक अर्थ का अभाव है। 'कामना' के पात्र संतोष, कामना, विलास, लालसा आदि हैं एवं उनके कथोपकथन 'प्रबोध-चन्द्रोदय' कथोपकथन के समान सिद्धान्तों की अभिव्यक्ति करते हैं। **'कामना' एवं रक्त-करवी' में पाश्चात्य की विषाक्त, श्वास रोधकारी सभ्यता का चित्रण हुआ है**। रक्तकरवी को अगर रूपक न भी मानें तो भी उसमें मनुष्य के सुख, दुःख, प्रेम, त्याग, कामना, अतृप्ति आदि के चित्र हैं। 'कामना' में भावों का मानवीयकरण तो हुआ है किन्तु उन पात्रों में मानवीय चरित्र उभरने नहीं पाया, प्रतीक चरित्र की ही प्रधानता रही। इस दृष्टि से हम यह स्वीकार करते हैं कि **प्रसाद ने यूरोपीय शैली की सांकेतिकता से अपने को अछूता रखा** एवं इसी कारण उनका जो वक्तव्य है वह शीघ्र बोधगम्य होता है जबकि रवीन्द्रनाथ के सांकेतिक नाटक अत्यंत गूढ़ एवं जटिल प्रतीत होते है। रवीन्द्र-नाथ के चरित्र इसी गूढ़ता के कारण उत्कृष्ट लगते हैं, विशेषकर उनके **नेपथ्य के राजा चरित्र** रहस्य के आवरण में अनुपम लगते हैं। प्रसाद रचित **'एक घूंट'** में उनकी रूपक-शैली विकसित हुई है। इसके पात्र वनलता, रसाल, आनन्द, प्रेमलता आदि हैं। इसमें रसाल प्रकृति की हरियाली का बन्धन में उपयुक्त विकास व्यक्त करते है एवं आनन्द प्रेम में स्वच्छन्द उपभोग की स्पृहा व्यक्त करता है। यह रूपक-शैली ही है किन्तु 'प्रबोधचन्द्रोदय' व 'मदन पराजय' सदृश्य दार्शनिकता से बोझिल नहीं है, इसमें हृदय की वृत्तियों का अनुभूतिपूर्ण चित्रण हुआ है। सुमित्रा-नन्दन पन्त रचित **'ज्योत्सना'** प्रतीक-शैली के विकास की ओर एक कड़ी है। 'ज्योत्सना' में इन्दु, ज्योत्सना, सन्ध्या आदि प्रकृति के प्रतीक-पात्र मानव पात्रों के साथ एवं स्वप्न, कल्पना आदि अमूर्त मानसिक तत्वों के साथ घुल मिल गये हैं। रवीन्द्रनाथ की प्रतीक-शैली के नाटकों में विकास के सोपान नहीं हैं, उनमें प्रारम्भ से ही प्रौढ़ सांकेतिकता का पुट मिलता है जो उनके औपनिषदिक ज्ञान के फल हैं।

यूरोप की नवीन शैली के प्रतीक नाटक

यूरोप में उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध तथा बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में कुछ ऐसे नाटकों की रचना हुई जिनमें क्रिया के संघर्ष के स्थान पर **अतीन्द्रिय जगत के अनुभवों का संघर्ष** चित्रित हुआ। इस तरह के नाटकों के रचयिताओं में बेलजियम के मारिस **मेटरलिंक** आयर्लैंड के कवि-नाट्यकार **इयेट्स**, जर्मनी के **हाउप्टमैन** एवं नाट्यकार **आन्द्रिव्ह** प्रसिद्ध हैं। इनके नाटकों में अतीन्द्रिय जगत के रहस्य का उद्‌घाटन हुआ है। इनका विषय रवीन्द्रनाथ के 'राजा' नाटक की तरह आध्यात्मिक नहीं है किन्तु वह **स्थूल जगत से दूर तक एक स्वप्नमय, रहस्याच्छन्न, स्वज्ञा (Intuition) द्वारा अनुभूत जगत को मूर्त रूप प्रदान करता है** जिसमें मानव-जीवन का गूढ रहस्य व्यक्त तथा अव्यक्त भाषा में अपना स्वरूप दिखलाता है। इनमें कभी कोई चरित्र नीरव रहता है, कोई चरित्र बीच-बीच में कुछ सांकेतिक बातें करता है तथा कोई चरित्र नेपथ्य ही में रह जाता है। मेटरलिंक ने ऐसे नाटकों के रंगमंच को '**स्थितिशील रंगमंच**' (Static Theatre) कहा है क्योंकि इनमें घटनाएं व दृश्य परिवर्तन अधिक नही होते किन्तु एक रहस्यात्मक वातावरण की छाया सर्वत्र व्याप्त रहती है। इन नाटकों में संस्कृत के 'प्रबोध-चन्द्रोदय' की रूपक-शैली के स्थान पर सांकेतिकता है, कहीं कोई शब्द, बत्ती का बुझना, आलोक की एक किरण का प्रवेश, पक्षी के झुंड का उड़ना इत्यादि संकेतों के द्वारा गूढ़ अर्थो की व्यंजना होती है जिन्हें स्पष्ट भाषा में सरल रूप में व्यक्त करना सम्भव नहीं है। इस शैली के दो, चार नाटकों के विश्लेषण से इनकी विशेषता स्पष्ट हो जायेगी। **इनमें मनोजगत के अति सूक्ष्म चित्र हैं** जो यथार्थवादी ढंग के मनोविश्लेषणात्मक नहीं, रोमांटिक ढंग के **इंगितात्मक हैं**। इन नाटककारों का यह दावा है कि यथार्थवादी शैली के नाटकों की अपेक्षा उनके नाटक **सत्य की खोज** करने में अधिक सफल हैं। इसी कारण आन्द्रिव्ह ने ऐसे नाटकों को **सर्वचिन्तामय** (Pan-psyche) कहा हैं जिनमें कर्ममुखरता नगण्य है किन्तु अन्तरात्मा का स्वरूप अधिक प्रस्फुटित है। हत्याकांड, विश्वासघातकता, युद्ध आदि ऐसे नाटकों के लिए अवान्तर विषय हैं। **उनकी भाववस्तु जीवन की महत्तर अनुभूतियों के क्षणों से सम्बन्ध रखती है।**

मेटरलिंक रचित '**दी इन्ट्रूडर**' सांकेतिक एकांकी नाटक है। इसमें मृत्यु ही प्रधान पात्र है जिसका रहस्यात्मक आविर्भाव नाटक का विषय है, किन्तु यह सांकेतिक पात्र नेपथ्य ही में रहता है, किसी के आने की अस्पष्ट ध्वनि, नीरवता के बीच पवन निःस्वन, पक्षियों की स्तब्धता, सीढ़ियों पर किसी की पदध्वनि तथा बत्ती की स्तिमित लौ आदि संकेतों द्वारा वातावरण की सृष्टि करने के उपरान्त प्रतीक्षारत तथा उत्कंठित अन्ध पितामह, पिता, चाचा तथा तीन कन्याओं को नेपथ्य से आकर एक नारी त्रास चिन्ह द्वारा प्रसूति-गृह में माता की मृत्यु सूचना ज्ञापन करती है। इस नाटक में मृत्यु के रहस्य पर सांकेतिक शैली में आलोकपात किया गया है। इस प्रकार हाउप्टमैन रचित 'हानेले' में तथा आन्द्रिव्ह रचित 'दी लाइफ आफ मैन' में नियति तथा मृत्यु की रहस्यात्मकता के सांकेतिक आभास हैं। आन्द्रिव्ह रचित '**दी ब्लेक**

मास्कर्स' में मनुष्य के अन्तर्जीवन पर प्रकाश डाला गया है। लौरेंजो द्वारा आमन्त्रित मुखौटेउत्सव में सम्मिलित अभिनेतागण जो भाव तथा प्रवृत्ति-आवेग व्यक्त करते हैं वे लौरेंजो के असली स्वरूप हैं एवं मुखौटे के सकेत द्वारा यह व्यक्त होता है कि लौरेंजो का जो बाहरी सभ्य रूप है वह मुखौटे जैसा ही नकली रूप है। इब्सन के यथार्थवादी-सांकेतिक नाटकों का रूप कुछ भिन्न है। '**डाल्स हाउस**' नाटक के टारंटेला नृत्य तथा अन्त में द्वार खोलने की ध्वनि में सांकेतिकता है। टारंटेला नृत्य में नौरा के जीवन में आगत अनिश्चयता एवं संघर्ष का संकेत है तथा द्वार खोलने की ध्वनि में नौरा द्वारा आत्म-निर्भर, स्वतंत्र पथ निर्वाचन की अभिव्यक्ति है।

हिन्दी तथा बंगला के प्रतीकात्मक नाटकों पर पाश्चात्य रीति का प्रभाव पड़ा। सांकेतिक नाटकों की रहस्यात्मक भावना से भारतीय लेखक अपरिचित नहीं थे, **उपनिषद्, सन्तों तथा सूफियों के रहस्यवाद** से परिचित थे। भारतीय अध्यात्म-चिन्तन तथा रस-सिद्धान्त के साथ पाश्चात्य प्रतीक नाटकों की स्वप्निल तथा **गूढ़ सांकेतिक शैली** का योग करके हिन्दी तथा बंगला के नाटककारों ने ऐसे प्रतीक नाटकों की रचना की जो संख्या में कम किन्तु वैशिष्टय की दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं।

हिन्दी तथा बंगला के प्रतीक नाटकों का तुलनात्मक विवेचन

हिन्दी तथा बंगला के प्रतीक नाटकों की एक क्षीण-धारा चली आ रही थी जो 'प्रबोध-चन्द्रोदय' की रूपक-शैली से अधिक साम्य रखती थी। बीसवीं शताब्दी में रवीन्द्रनाथ रचित सांकेतिक नाटकों ने एक अभिनव शिल्प-रीति का दर्शन कराया। उन्होंने अपने गूढ़ जीवन-दर्शन को सांकेतिक रूप में व्यक्त करने की चेष्टा की। सांकेतिक तथा रूपक-शैली के प्रभेद के संबंध में **डब्ल्यू० बी० इयेट्स लिखते हैः—**

"ए सिम्बाल इज़ इनडीड दी पासीबल **एक्सप्रेशन आफ सम इनविज़िबल इसेंस**, ए टान्सपेरेन्ट लेम्प एबाउट ए स्पिरिचुअल फ्लेन, व्हाइल एलेगौरी इज़ वन आफ मैनी पासिबल, रिप्रेसेन्टेशन्स आफ एन एम्बाडीड थिंग, आर फैमिलियर प्रिंसिपल, एंड बिलांग्स टू फैन्सी, एन्ड नाट टू इमेजिनेशन, दी वन इज़ रैवेलैशन, दी अदर एन एम्यूसमेन्ट।"

'**सिम्बोलिक**' नाटकों को डा० आशुतोष भट्टाचार्य आदि बंगला नाट्या-लोचकों ने 'सांकेतिक' एवं '**एलेगोरिकल' नाटकों को रूपक-नाट्य** कहा है। हिन्दी में डा० दशरथ ओझा, डा० सोमनाथ गुप्त आदि ने इन विभिन्न शिल्प-रीतियों को प्रतीक-नाट्यशली के अन्तर्गत रखा है। रवीन्द्रनाथ के प्रतीक नाटकों को तत्व-रूपक एवं सांकेतिक-रूपक कहा गया है।

भारतीय भाव-धारा तथा दर्शन की विशिष्टता उसकी आध्यात्मिकता में निहित है। हिन्दी एवं बंगला के **प्रतीक नाटकों की शिल्प-रीति में** जो भी भेद हो उनकी

भाव-वस्तु में आध्यात्मिकता की स्पष्ट झलक है। रवीन्द्रनाथ रचित 'राजा' नाटक में राजा एव रानी के चरित्र-रूपायण में परमात्मा एवं आत्मा का संकेत है जिसका विवेचन पौराणिक एवं अध्यात्म प्रधान नाटकों के अन्तर्गत हुआ है। प्रसाद रचित 'कामना' नाटक रूपक-शैली में रचित है फिर भी कामना, सन्तोष के बीच विलास के आगमन से जिस द्वन्द्व की सृष्टि हुई है उसका आभास हमें रवीन्द्रनाथ के 'रक्तकरवी' नाटक में यक्षपुरी के वातावरण में मिलता है। प्रसाद ने 'एक घू ट' में आनन्द तथा प्रेमलता के प्रतीक चरित्र द्वारा स्वच्छन्द प्रेम को वैवाहिक प्रेम में आबद्ध करने की चेष्टा की है। इन सभी नाटकों में भारतीय वातावरण तथा भारतीय आदर्श व्यक्त हुए हैं। प्रकृति-प्रेम रोमांटिक कवियों का प्रधान लक्षण है। हिन्दी तथा बगला के प्रतीक-शैली के कुछ नाटकों में प्रकृति का गौण रूप से प्रयोग हुआ है।

रवीन्द्रनाथ, प्रसाद तथा पन्त उच्च कोटि के कवि थे। उनके **प्रतीक नाटकों पर उनके जीवन दर्शन का बहुत प्रभाव पड़ा।** '**गीतांजलि**' रचना के युग में 'राजा' नाटक की एवं 'बलाका' काव्य रचना के युग में रवीन्द्रनाथ ने '**फाल्गुनी**' की रचना की। अत: जगत एवं जीवन संबंधी जिन दार्शनिक विचारों की अभिव्यक्ति 'बलाका' में हुई है, उन्हीं के विचारों की अभिव्यक्ति 'फाल्गुनी' में हुई है। 'फाल्गुनी' की प्रतीक शैली की यह विशेषता है कि इस नाटक में तीन धाराएं समान रूप से रस सिंचित करती हैं। इक्ष्वाकु वंश के राजा के कान के पास कुछ बाल शुभ्र हो गये, यह देख जरा एवं मृत्यु-भय से आक्रांत हो राजा ने **वैराग्य** ग्रहण करने का संकल्प किया। परन्तु कवि शेखर रचित 'फाल्गुनी' नाटक देखकर राजा का संकल्प परिवर्तित हो गया। 'फाल्गुनी' नाटक मे **प्रकृति की गति की लीला** को चित्रित करके कवि शेखर ने राजा को समझाया कि जिस तरह प्रकृति मे शीत के वस्त्रहरण के उपरांत वसन्तोत्सव होता है उसी तरह व्यक्तिगत जीवन में देह के यौवन के विदा लेने पर प्रौढ़ के निरासक्त यौवन का आगमन होता है तथा विश्व मानव की अन्तरात्मा की जो प्राण शक्ति है वह भी मृत्यु के द्वारा बारम्बार अपने को नूतन रूप में प्राप्त करती है। इस नाटक में **युवक दल एक वृद्ध की खोज में** दौड़ रहे हैं। चन्द्रहास गुफा में प्रवेश कर उस वृद्ध को जब निकालते हैं तब यह दिखाई देता है कि पीछे से जो वृद्ध प्रतीत हो रहे थे सामने से वे ही तरुण सदरि हैं। विश्वास और प्रेम की जो प्रबल प्राण शक्ति है, चन्द्रहास की सफलता के कारण हैं। इस नाटक के पथ, घाट, माठ (मैदान), गुफा, अन्ध बाउल सभी प्रतीक हैं। जिनके द्वारा व्यंजित किया गया है कि प्रकृति एवं मानव जीवन में एक ही लीला चल रही है। रवीन्द्रनाथ की प्रतीक शैली के नाटकों में **दादा ठाकुर व अंध बाउल** एक विशिष्ट प्रकार के चरित्र हैं। 'राजा' नाटक के दादा ठाकुर, 'मुक्तधारा' के धनन्जय वैरागी, 'फाल्गुनी' के अंधे बाउल मुक्त आत्मा के प्रतीक हैं। ये पात्र ही विश्वात्मा एवं सृष्टि के यथार्थ तत्व का संदेश वहन करते हैं।

'फाल्गुनी' नाटक में शीत के कुहराच्छन्न वातावरण को भेद कर **वसन्त का आगमन** दिखाया गया है। यह गौण तत्व है। इसका सांकेतिक अर्थ यह है कि मानव

जीवन में भी गति का होना आवश्यक है एवं मृत्यु के द्वारा ही यौवन नूतन रूप में प्रकाशित हो उठता है। यह यौवन के संबंध में कवि का जीवन-दर्शन है। जरा तथा मृत्यु उसे ग्रास नहीं करते वरन् पुनः उसे प्राप्त करने के लिए सिंहद्वार पर आमंत्रित करते हैं। इसमें जरा तथा मृत्यु को मंगलमय रूप मे चित्रित किया गया है। इस प्रसंग मे मेटरलिंक के मृत्यु संबंधी नाटक 'दी इन्ट्रूडर' एवं हाउप्टमैन के मृत्यु संबंधी स्वप्न नाटक **'हानेले'** उल्लेखनीय हैं। इन दोनों पाश्चात्य देश के नाटकों में मृत्यु के भयावह एवं तमिस्राच्छन्न रूप की व्यंजना हुई है। रवीन्द्रनाथ पर मृत्यु संबंधी इन नाटकों का प्रभाव पड़ा किन्तु भारतीय दर्शन के आनन्दमय स्वरूप के पुजारी इस दृष्टा कवि ने मृत्यु का उज्ज्वल पक्ष हमारे लिए अंकित किया। उनके सबसे प्रसिद्ध नाटक 'राजा' में अन्त में मृत्यु के द्वार खोलने पर राजा रानी का मिलन होता है।

'डाकघर' में भी मृत्यु की छाया का दिग्दर्शन कराया गया है किन्तु मृत्यु एक भयावह आगन्तुक के रूप में नहीं आती, अमल की आत्मा के लिए मृत्यु मुक्ति के रूप में आती है क्योंकि मानवता सुदूर की प्यासी है, वह राजा के पत्र की प्रतीक्षा में जीवन व्यतीत करती है। डाकघर इन आध्यात्मिक संकेतों से परिपूर्ण है। इस नाटक की सुधा प्रेम की सुधा है।

'डाकघर' नाटक का अनेक भाषाओं में अनुवाद हुआ। हिन्दी नाट्य क्षेत्र भी इस नाटक से प्रभावित हुआ किन्तु इस तरह के गंभीर, आध्यात्मिक, भावपूर्ण नाटक की रचना हिन्दी में नही हुई। इस तरह उच्च कोटि की दार्शनिकता एवं कवित्व-प्रतिभा हिन्दी में केवल प्रसाद में थी किन्तु उनका लक्ष्य ऐतिहासिक-राष्ट्रवादी नाटक की रचना करना था। यही कारण है कि उनके प्रतीक नाटक 'कामना' तथा 'एक घूंट' में सांकेतिकता तथा गहनता कम है। सुमित्रानंदन पन्त का प्रकृति प्रेम रवीन्द्रनाथ के प्रकृति-प्रेम से साम्य रखता है। **पन्त के जीवन-दर्शन का प्रारम्भ ही प्रकृति प्रेम से हुआ**। अतः 'पल्लव' के कवि ने 'ज्योत्स्ना' प्रतीक नाटक की रचना की। **'ज्योत्स्ना'** तथा **'फाल्गुनी'** दोनों **प्रकृति संबंधी प्रतीक नाटक हैं किन्तु दोनों की शिल्परीति में अन्तर है** एवं दोनों के **सांकेतिक अर्थ में भी बहुत अन्तर है**। 'ज्योत्स्ना' नाटक में इन्दु अपनी पत्नी ज्योत्स्ना को पृथ्वी पर प्रेम का साम्राज्य फैलाने के लिए भेजते हैं। इसमें कोई गूढ़ जीवन-दर्शन नहीं है। 'फाल्गुनी' में प्रकृति के द्वारा मानव जीवन के गूढ़ रहस्य का उद्घाटन हुआ है। फाल्गुनी के अन्ध बाउल को गूढ़ तत्व का ज्ञान है अतः उनके गीतों में अपूर्व सांकेतिकता है। उनके अन्तिम गीत में सम्पूर्ण नाटक का रहस्य ध्वनित हो उठा है—

'तोमाय नतून कोरे पावो बोले
हाराइ क्षणे क्षण
ओ मोर भालोबासार धन।
देखा देवे बोले तुमि

हओ जे अदर्शन
ओ मोर भालोबासार धन ।' १

विश्व प्रकृति की गति एवं जागृति की जो चेतना रवीन्द्रनाथ में है वही सुमित्रानंदन पन्त में भी है किन्तु पन्त केवल छायावादी एवं प्रगतिवादी कवि होने के कारण विश्वात्मा एवं मानवात्मा के संपर्क की **रहस्यात्मक व्यंजना जो 'राजा', 'डाकघर' आदि में है, 'ज्योत्सना' में नहीं है।** 'गुन्जन' काव्य में जगत एवं जीवन के प्रति कवि का जो दार्शनिक दृष्टिकोण है, वही 'ज्योत्स्ना' में व्यक्त हुआ है। जीर्ण, पुरातन को त्याग कर नवयुग का आमंत्रण, साम्य का विस्तार इन चेतनाओं से कवि मानस झंकृत हो उठा है। रवीन्द्रनाथ ने कहीं-कहीं युगधारा से अपने को विच्छिन्न करके अतीन्द्रिय सत्य का आभास दिया है किन्तु 'ज्योत्स्ना' और 'कामना' में उस युग की विचारधाराओं का ही प्रभाव है। **पन्त का जीवन दर्शन युग के अनुसार क्रम-विकासशील** है तथा प्रसाद के ऐतिहासिक नाटकों से यही प्रमाणित होता है कि वर्तमान को देखते हुए अतीत के चित्र खींचकर उन्होंने भविष्य के प्रति इंगित किया है एवं 'कामना' में भी यही इंगित है। शैली की दृष्टि से **'फाल्गुनी' में सांकेतिकता है, ज्योत्स्ना में प्रकृति का मानवीय रूप में एवं कामना में भावों का मानवीय रूप** में चित्रण हुआ है। अतः 'फाल्गुनी' की शैली रूपक-सांकेतिक है तथा ज्योत्स्ना एवं कामना की शैली रूपक-शैली है।

'ज्योत्स्ना' में सन्ध्या, छाया, इन्दु, ज्योत्स्ना, पवन, सुरभि, उषा, वरुण, विहग, कुसुम, किरण, तितलियां, ताराएँ आदि प्रकृति के अंग पात्र-पात्रियां हैं। इनके साथ ही स्वप्न तथा कल्पना है एवं यमुना, जार्ज रोज़, मुहम्मद तथा देवव्रत, राबर्ट, हेनरी, सुलेमान, मि. मेरिस, मि. माथुर, मि. नीलखन, मि. खेर, सुश्री कमला, मि. रहमान आदि मानव पात्र-पात्रियां भी हैं। रवीन्द्रनाथ कृत 'ताशेर देश' में इसी तरह ताश के पात्र-पात्रियों के साथ मानव पात्र राजपुत्र एवं सौदागर पुत्र घुल-मिल जाते हैं। इसी तरह बेलजियम के नाटककार मेटरलिंक के प्रतीक नाटक 'नीला पंछी' में मानव बच्चे टिलटिल और मिटिल अमानवीय पात्रों के साथ घुल-मिल जाते हैं। किन्तु 'प्रबोधचन्द्रोदय' की शैली में इस तरह मानवीय एवं अमानवीय पात्रों का मिश्रण नहीं हुआ है।

'ज्योत्स्ना' में सम्राट इन्दु सम्राज्ञी ज्योत्स्ना से कहते हैं—'आज पृथ्वी पर सम्राज्ञी ज्योत्स्ना का साम्राज्य रहेगा, यह बात स्वर्ग में प्रसिद्ध हो चुकी है। तुम संसार में नए युग की विभा बनकर अवतीर्ण होओ। नव जीवन की संदेश-वाहक बन कर प्राणियों को प्रेम का नवीन स्वर्ग, सौंदर्य का नवीन आलोक, जीवन का नवीन

१—फाल्गुनी—— लेखक रवीन्द्रनाथ ठाकुर—चतुर्थ दृश्य—प्रकाश।

आदर्श दिखाओ। तुम्हारे हृदय को मैं समझता हूं, वह जीव मात्र के सुख एवं कल्याण की कामना से ओत-प्रोत है।'[1] यान-वाहक किरणें ज्योत्स्ना को मर्त्य पर उतारती हैं। बुद्धिवाद से प्रभावित होकर मानव समाज भौतिकता की ओर बढ़ रहा है एव पाशविक शक्ति का पुजारी बन गया है। यह देख ज्योत्स्ना कहती हैं—'मनुष्य को इस अपूर्ण एकांकी बुद्धिवाद से ऊपर उठना पड़ेगा।'[2] कहीं प्राचीन आचारों को ही धर्म समझकर, कहीं विज्ञान को लक्ष्य मानकर, अंधा मानव आनन्द, सौंदर्य, प्रेम और साम्य से दूर भटक रहा है—अंधकार में भटकते हुए बीसवीं सदी के मानव की परिस्थिति का चित्रण इन कवियों ने प्रतीक शैली के द्वारा किया क्योंकि हिंसा, लोभ के अंधकार में अंधी जनता दौड़ लगा रही है। इसे व्यक्त करने के लिए सूक्ष्म, प्रतीक योजना ही सफल हो सकती है। यथार्थ पात्रों की अपेक्षा प्रतीक अधिक अर्थ सबल होते हैं। रूसी नाट्यकार आन्द्रिव्ह रचित 'दी ब्लेक मास्कर्स' में मुखौटों का प्रयोग हुआ है जिसमें मनुष्य के असली तथा नकली रूप के प्रति संकेत है। रवीन्द्रनाथ के 'ताशेर देश' में मुखौटों का प्रयोग होता है। मुखौटे पहने हुए ताश के पत्ते जड़ता तथा आडम्बर के प्रतीक हैं।

'ताशेर देश' में ताश के पत्तों के प्रतीक रूप में युगों से संचित अंध-विश्वास तथा **निरर्थक नियमों के बन्धन से ग्रस्त भारतवासी** चित्रित हुए हैं। बीसवीं सदी के पूर्वार्द्ध में दासता से जकड़े हुए तथा रूढ़ियों के दलदल में फंसे हुए देशवासियों को जाग्रत करने, उनमें प्राण संचार करने देश के नेता, कर्मी, कवि सभी उत्साहित हो उठे थे। रवीन्द्रनाथ ने 'ताशेर देश' नाटक लोकप्रिय नेता सुभाषचन्द्र को उत्सर्ग किया। जिस तरह राजकुमार ने ताश के देश में जागृति ला दी। उसी तरह नेताजी ने भारतीयों के शृंखलित भग्न हृदयों में विप्लव की शक्ति जाग्रत की। सौदागर पुत्र कहते हैं—'देखलुम औरा चौको चौको कैठो चाल चोलेछे, बूके पीठे चैपटा। पा फैलेछे पाये, तेरी सेटा तेतुल-काटे। एइ मरा देशके की बले नतून देश।' यह सुनकर राजपुत्र कहते हैं—'एर थेकेइ बूझबे, जिनिसटा सत्यि नय, एटा बानानो, एटा उपर थेके चापानो, एदेर देशेर पंडितदेर हातेगड़ा खोलोस। आमरा एसेछि की कोरते—खसिये देबो। भीतर थेके प्राणेर कांचा रूप जखन बेरिये पोड़बे, आश्चर्य कोरे देबे।'[3] मनुष्यों के आगमन एवं उनके संस्पर्श से ताश के देश में चंचलता दिखाई देती है। प्राण के आवेग से धीरे-धीरे सब थिरक उठते हैं। जीर्ण नियमों के प्रति विद्रोह करते हैं। सबसे पहले जागृति पुकार सुन दौड़ पड़ती है। ताश के देश की नारियां हरतनी कहती हैं—'कौन युगे आमरा चोले-छिलुम सेइ दुर्गमे। रात्रे धोरेछि मशाल तोमार सामने, दिने बोयेछि

१—ज्योत्स्ना—लेखक सुमित्रानन्दन पंत (द्वितीय संस्करण सं. २००८) पृष्ठ–२०।

२—ज्योत्स्ना—पृष्ठ–४३।

३—ताशेर देश—लेखक रवीन्द्रनाथ ठाकुर—द्वितीय दृश्य।

जयध्वजा तोमार आगे आगे। आज आर एकबार उठे दांड़ाओ, भांगते हवे एखाने एइ अलसेर बेड़ा, एइ निर्जीवेर गंडि, ठेले फलते हवे एइसब निरर्थकेर आवर्जना।' रूइतन (ईंट का बादशाह)—'छींड़े फेलो आवरण, टुकड़ो टुकड़ो कोरे छिड़े फेलो। मुक्त हओ, शुद्ध हओ, पूर्ण हओ।'[1]

बीसवीं सदी के आरम्भ में राष्ट्र व भारतीय संस्कृति के पुनर्भ्युदय के हेतु रवीन्द्रनाथ ने 'ताशेर देश' में पुरातन नियमों एवं गतानुगतिकता की जड़ों पर कुठाराघात किया एवं जयशंकर प्रसाद ने 'कामना' में विलासिता, धनलोलुपता, कामुकता जो आधुनिक सभ्यता के दुष्परिणाम के कारण हैं, उनकी जड़ों पर कुठाराघात किया। बंगला एवं हिन्दी के इन दोनों महाकवियों ने इसके लिए प्रतीक शैली अपनाई। एक में ताश के पत्ते तो दूसरे में कामना, लीला, लालसा, करुणा, संतोष, विनोद, विलास, विवेक आदि भाव मुख्य पात्र पात्रियों के रूप में चित्रित किये हैं। नागरिक, सैनिक, शांतिदेव मानव पात्र हैं। 'ताशेर देश' में आगन्तुक राजपुत्र प्राणों की चंचल धारा में जीर्ण नियमों को बहा देते हैं। इसके विपरीत 'कामना' में आगन्तुक विलास उस रमणीय, शान्तिपूर्ण फूलों के द्वीप में कांचन-लिप्सा, मदिराशक्ति, स्त्रैणता, हिंसा कठोर नियम, कारागार, न्यायालय, कर की व्यवस्था आदि बाढ़ एवं महामारी की तरह ले आते हैं। दोनों कवियों ने देश की तत्कालीन परिस्थिति को देखते हुए दो दृष्टिकोणों से चित्रण किया है।

'कामना' में प्रसाद ने जिस अकृत्रिम, सरल तथा सादे जीवन के आदर्श को रखा है वह **महात्माजी का आदर्श** है। फूलों के द्वीप में सर्वत्र शान्ति, प्रेम एवं सौन्दर्य का साम्राज्य है। रानी कामना पर शासन का भार है। एक दिन शान्ति के उस वातावरण को चीरते हुए झंझा की भांति विलास का आगमन होता है। विलास को देखकर कामना का हृदय चंचल हो उठता है। स्वर्ण मदिरा एव व्यभिचार के चंगुल में फंस कर मानवता कराह उठती है। परिस्थिति **'रक्तकरवी'** नाटक की यक्षपुरी के सदृश्य है जहां स्वर्ण-राशि एकत्रित करते करते मानवता अपनी हरियाली खो चुकी है। इस कारण धरती के नीचे यक्षपुरी के निवासी नन्दिनी के प्राण चंचलता से मुग्ध हो उठते हैं। कामना विलास के जाल में फंस कर जलहीन मछली की भांति छटपटा उठती है किन्तु नन्दिनी को जाल के अन्तराल में रहने वाले राजा कभी अपनी मुट्ठी में नहीं पा सकते। नन्दिनी यौवन के प्रतीक रंजन की अनुरागिनी है। कामना जब तक विलास के मोहजाल में फंसी रहेगी तब तक फूलों के द्वीप का नैसर्गिक जीवन आडम्बर, हिंसा तथा मिथ्याचार से ग्रस्त रहेगा। सरल जीवन यापन करने पर ही सन्तोष की प्राप्ति होती है। 'रक्तकरवी' की नंदिनी प्रेममयी मानव कन्या है किन्तु इस नाटक में यह संकेत है कि **प्राण के आवेग का अबाध, निश्छल यौवन ही पा सकता है।** दोनों प्रतीक नाटकों में

१—ताशेर देश—चतुर्थ दृश्य।

यह व्यक्त हुआ है कि **जो सभ्यता मानवता को पददलित करती हुई उच्च सौध निर्माण करती है, एक न एक दिन प्रकृति के प्रबल वेग के सम्मुख वह सौध ढह जाता है।**

उदयशंकर भट्ट के भाव-नाट्यों में पौराणिक आख्यान हैं किन्तु लेखक ने घटनाओं के आरोह-अवरोह को गौण बनाकर भाव-साम्राज्य के उत्थान-पतन का चित्र खींचा है। अतः **चरित्रों में सांकेतिक भावों का आरोप** स्वाभाविक रूप से हो गया है। उनके भावनाट्यों के पात्रों में **मत्स्यगन्धा** चिर-यौवन की ज्वाला की प्रतीक, **विश्वामित्र** पुरुष के अहंभाव के प्रतीक एवं **राधा** प्रेमास्पद के चरणों में अपने को विलीन कर देने वाली प्रेम-भावना की प्रतीक हैं। रवीन्द्रनाथ तथा प्रसाद ने एक विशिष्ट युग की सभ्यता को प्रतीक शैली में व्यस्त किया है एवं **भट्टजी ने हृदय के सूक्ष्म भावों को पौराणिक प्रतीक-चरित्रों में खोज निकाला है।** 'ताशेर देश' में विदेशी राजकुमार तथा 'कामना' में विलास का आगमन होता है। इन दोनों नाटकों में प्रतीक के द्वारा नवीन सभ्यता के संघर्ष संस्पर्श में आकर कैसे हमारी संस्कृति की जीर्णता भी चूर्ण हुई तथा विलासिता बढ़ी —— इन प्रभावों का चित्र खींचा गया है।

'कामना' में विलास के आगमन के पश्चात् द्वीपवासियों की बढ़ती हुई स्वर्ण लोलुपता में तथा **'रक्तकरवी'** में धरती के अन्दर से स्वर्ण खोद निकालनेवालों की आकांक्षा में आधुनिक धनतांत्रिक सभ्यता की ओर संकेत है। 'कामना' में विलास के द्वारा दूसरे देश पर आक्रमण करने की योजना में तथा **'मुक्तधारा'** में उत्तरकूट के राजा द्वारा शिव तराई की प्रजा पर अत्याचार करने में आधुनिक साम्राज्यवादी लिप्सा की ओर संकेत है। दूसरों पर अत्याचार के द्वारा स्वयं पतन की ओर बढ़ते हुए मानव समाज का चित्रण यदि स्पष्ट एवं सीधे रूप में होता तो इतना प्रभावशाली न होता जिनका प्रतीक शैली के द्वारा हुआ है। 'मुक्तधारा' में यह संकेत निहित है कि **जब यन्त्र-दानव मानव जीवन की प्राकृतिक गति को रोककर, मानव की धार्मिक भावनाओं को साधन बनाकर दुर्जय हो उठता है तब मानवता की रक्षा के लिए प्राण भी देकर मूल्य चुकाना पड़ता है।** इस नाटक में बांध का लौहयंत्र, पथ एवं दूसरी और भैरव मंदिर की चूड़ा पर स्थित शंकर का त्रिशूल ये सब प्रतीक हैं। बीच-बीच में भैरव की स्तुति भावी संकट के वातावरण की सृष्टि करती है। अभिजित एवं धनन्जय सांकेतिक चरित्र है तथा विभूति और रणजीत रूपक चरित्र हैं। **धनन्जय के चरित्र में महात्मा गान्धी** के प्रति संकेत है।

रवीन्द्रनाथ के प्रतीक नाटकों में **विश्वात्मा, मानवात्मा, विश्वप्रकृति, विश्व-मानव आदि के प्रति गूढ़, रहस्यात्मक दृष्टि है।** परन्तु हिन्दी प्रतीक नाटकों की दृष्टि अधिक वस्तुवादी है। श्री भगवतीप्रसाद वाजपेयी के नाटक '**छलना**" में आधुनिक जीवन की आदर्शहीनता, विलासिता की ओर झुकाव, **स्त्री पुरुष के संबंध की समस्या** आदि के प्रति संकेत है। विलासचन्द्र कल्पना से कहते हैं...."देखता हूं, तुम्हारा पागल-पन बढ़ रहा है। तुम अन्धकार में हो।—तुम नियंत्रण नही चाहती, बन्धन नहीं चाहती

—वरदान होकर तुम अभिशाप बन रही हो ।"[१] दूसरी ओर लेखक ने यही संकेत किया है कि कोरा आदर्श भी छलना से पूर्ण है, इसी कारण अभिनेता बनने पर ऐश्वर्य, समृद्धि को प्राप्त कर अतृप्त बलराज कहते हैं—"आज मेरा कलेजा फटा जा रहा है। सारे विश्व को मैं आज महाशून्य के रूप में देख रहा हूं—"[२]

संगीतात्मक एवं काव्यात्मक नाटक

भरतमुनि ने नाट्य-भेद के अन्तर्गत अभिनय को प्रधानता दी एवं नृत्य भेद **के अन्तर्गत नृत्य तथा गीत को** प्रधानता दी। विश्वनाथ के साहित्य-दर्पण में जो **अट्ठारह उपरूपकों** के नाम हैं उनमें नृत्य-गीतों की प्रधानता है। संस्कृत नाट्य-शास्त्रों में कहीं इन्हें **गेय-उपरूपक** एवं कहीं **राग-काव्य** भी कहा गया है। हिन्दू दर्शन के अनुसार नटराज के नृत्य में एवं कृष्ण की गोपियों के सहित रासलीला में सृष्टितत्व का रहस्य छिपा हुआ है। नटराज का नृत्य सृष्टि, स्थिति तथा प्रलय का सूचक है एवं रासलीला चन्द्र, अनुराधा तथा अन्य ताराओं का सूचक है । **नटराज के नृत्य में ज्ञान** तथा **कृष्ण-गोपियों के नृत्य में भक्ति** का महात्म्य भी व्यक्त हुआ है। अतः हिन्दू धर्म, दर्शन तथा नाट्यशास्त्र में **नृत्य ही वह बीज है जिसकी अभिव्यक्ति यह विश्व-चराचर है।**

संस्कृत नाट्यशास्त्र के अनुसार नटी व **नाटिका** नृत्य-गीत बहुल तथा श्रृंगार रस पर आधारित होती हैं । प्राकृत भाषा में रचित सट्टक भी नृत्य पर आधारित होते हैं। साहित्य-दर्पण तथा नाट्य-दर्पण में **उपरूपक**-एकांकी **रासक** के लक्षण दिये गये हैं जिनमें विभिन्न भाषा का प्रयोग होता है। केशिकी तथा भारती वृत्ति एवं वीथ्यंगों का प्रयोग होता है। केशिकी वृत्ति नृत्य गीत बहुल होती है एवं मधु केटम दैत्यों से युद्ध करने के लिए शिखा बांधने के समय विष्णु द्वारा प्रयुक्त अंगहारों से संबंधित है। भरत नाट्यशास्त्र तथा अभिनय-दर्पण में विभिन्न चारी, करण, अंगहार, तथा नृत्य हस्तों की विभिन्न मुद्राओं का वर्णन है । उपरूपक **नाट्य-रासक** में नृत्य गीतों का प्राधान्य रहता है। इसमें चारों वृत्तियों का प्रयोग होता है, मुख आदि संधियां होती हैं, विप्रलम्भ श्रृंगार की प्रधानता होती है एवं नारी पात्र राजा के कृत्यों को नृत्य तथा गीत द्वारा प्रदर्शित करती है । **"मेनकाहितम् रासक"** इसका उदाहरण है एवं **"वीणावती"** तथा **"विलासवती"** नाट्यरासक के उदाहरण हैं। मिथिला के कवि उमापति ने **"पारिजातमंगल" नामक गीत-नाट्य संस्कृत में एवं उसके गीत ब्रजबोली** में लिखे । अर्थात् उनके समय में गीत-नाट्य-शैली आद्योपान्त छन्दोबद्ध अथवा गेय नहीं होती थी, वरन् उनमें **गद्य संलाप के बीच बीच में गीतों**

१—छलना—लेखक श्री भगवतीप्रसाद बाजपेयी – द्वितीय अंक, षष्ठ दृश्य ।

२—छलना—तृतीय अंक, प्रथम दृश्य ।

की प्रचुरता होती थी। बंगला में जो गीताभिनय रचित हुए उनकी यही शैली थी। हिन्दी गीति-नाट्य की शैली इससे भिन्न रूप में विकसित हुई।

नृत्य-गीत की बहुलता भारतीय लोक नाटकों की विशेषता है। उत्तर भारत की **रास-लीला** एवं बंगाल के **जात्रा-नाटकों** में कथा रसिक-शिरोमणि कृष्ण की प्रेम-लीलाओं से संबंधित होने के कारण संस्कृत में बंगाल के कवि जयदेव रचित **"गीतगोविन्द"** नाटक एवं गीतिकाव्य के मिश्रण का अनुपम उदाहरण है। सन् १४७७ में जगन्नाथपुरी में प्रताप रुद्रदेव की प्रेरणा से नृत्य-नाट्य के रूप में इसका अभिनय हुआ था। "गीत गोविन्द" की शैली का सबसे अधिक प्रभाव लोक-नाटकों पर पड़ा क्योंकि वैष्णव-आन्दोलन जन-आन्दोलन था एवं वैष्णव भक्ति सर्वजन सुलभ, रूढ़िमुक्त, सौन्दर्य, प्रेम, आनन्द की खान है।

लोक-नाटकों की आलोचना में यह स्वीकृत हो चुका है कि रास एवं जात्रा-नाटकों का इतिहास अत्यन्त प्राचीन है एवं उत्तर से दक्षिण तक तथा पूर्व से पश्चिम तक समस्त भारत की जनता इन लोक-नाटकों द्वारा अपना मन बहलाती थी। मध्ययुग में जब संस्कृत नाटकों का ह्रास हो चला था, रंगमंच निश्चिन्ह हो चुके थे, तब भी लोक-नाटकों की यह सरस स्रोतस्विनी प्रवाहित थी। अगर हिन्दी का व्यापक अर्थ ग्रहण किया जाय तो हिन्दी नाटकों का आरम्भ रास से मानना चाहिए। इसी तरह बंगाल में प्राचीन शिव-जात्रा, शाक्त-जात्रा आदि के भी उदाहरण हैं। **हरिवंशपुराण तथा विष्णुपुराण में "रास"** का उल्लेख है एवं श्रीमद्-भागवत के दशम स्कन्ध के तीसवें अध्याय में रास के **नृत्याभिनय एवं गेयता के प्रमाण हैं। धीरे-धीरे इनमें कथातत्व एवं नाटकीय संलापों का विकास हुआ।**

आधुनिक हिन्दी तथा बंगला नाटकों का उद्भव इन लोक-नाटकों से नहीं हुआ जिसका विवेचन प्रथम अध्याय में हो चुका है। पाश्चात्य ढग के थियेटर, शेक्सपियर के नाटक, पाश्चात्य की आपेरा शैली आदि से बंगाल की नाट्य-प्रवृत्ति को प्रेरणा मिली थी जिसे भारतीय शैली में ढाल कर उन्होंने प्रस्तुत किया, हिन्दी में **ऑपेरा शैली** का उल्लेखयोग्य उदाहरण अमानत खां रचित **"इन्दर सभा"** है। बंगला नाटकों से भारतेन्दु प्रभावित हुए एवं उन्होने बंगला के माध्यम से पाश्चात्य तत्व ग्रहण कर उसे संस्कृत तथा देशीय ढंग में ढालने का प्रयास किया। जब ये नाटककार पाश्चात्य तत्वों के साथ प्राच्य तत्वों के समन्वय का प्रयत्न पर रहे थे तब अनायास ही लोक-समाज में प्रचलित लोक नाटकों के तत्व उनमें प्रवेश कर गये। गिरीशचन्द्र घोष तथा उनकी शैली के अनुसरणकारी बंगला नाटककारों की कृतियों में जात्रा का प्रभाव पड़ा एवं भारतेन्दु रचित **"चन्द्रावली"** नाटिका में रास-शैली का स्पष्ट प्रभाव है। बीसवीं सदी में नाटककारों ने जो प्रयोग किये उनमें इन प्रारम्भिक लेखकों के प्रयोगों का अवदान यथेष्ट है जैसे बंगला के अमित्राक्षर छन्द का आदि रूप ब्रजमोहन राय रचित जात्राओं में है।

संगीतात्मक तथा काव्यात्मक नाटकों पर बाह्य-प्रभाव

भारतीय संस्कृति एवं समाज पर मुसलमानी प्रभाव यथेष्ट पड़ा। गीत, नृत्य, काव्य तथा चित्रकला के क्षेत्र में इस्लाम धर्म के अच्छे और बुरे प्रभाव समान रूप से पड़े। नाटक तथा रंगमंच तो इस्लाम के प्रभाव से अत्यन्त क्षतिग्रस्त हुए क्योंकि इस्लाम धर्म के अनुसार नाटक निन्दनीय है। स्थापत्य, चित्रकला तथा शास्त्रीय संगीत पर मुसलमानी शासन का उत्साहवर्द्धक प्रभाव पड़ा। मुगल-सम्राटों के दरबारों में संगीत को बहुत सम्मान मिला किन्तु नर्तकियों के अश्लील नृत्यों के कारण साधारण समाज में नृत्य अत्यन्त हेय समझा जाने लगा। मुगल दरबारों में अधिकतर कत्थक नृत्य का ही प्रचलन था जिसमें रस-सृष्टि की अपेक्षा इन्द्रियों को आकर्षित करने वाली भाव-भंगिमाएँ अधिक प्रयुक्त होती हैं। यह मुसलमानी प्रभाव आज भी हमारे समाज में वर्तमान है जिसके कारण नृत्य एक कला नहीं वरन् भोग की वस्तु समझी जाती है। अतः भद्र समाज की नारियां मंच पर नृत्य करने में झिझकती हैं। नृत्य को कला के मर्यादित आसन पर बिठाने में **रवीन्द्रनाथ** की प्रचेष्टाएं स्तुत्य हैं। **उन्होंने मणिपुरी, कथाकली, लोक नृत्य, विदेशी नृत्य इत्यादि का मिश्रण करके गीतों के आधार पर नृत्य-नाटकों की रचना की** एवं शान्तिनिकेतन की छात्राओं द्वारा नृत्याभिनय कराया। नृत्य-नाटकों की रचना में **जावा, बाली आदि द्वीपों** में कविगुरू की यात्रा विशेष महत्वपूर्ण है क्योंकि उन द्वीपों में उन्होंने रामायण तथा महाभारत की कथाओं को वाद्य-संगीत के आधार पर नृत्य द्वारा अभिनीत होते देखा एवं उन्हें नृत्य-नाटक रचना करने की प्रेरणा मिली। उन्होंने उनका शिल्प-विधान ग्रहण नहीं किया। जापान के **"काबुकी" नाटक में गीत, नृत्य तथा अभिनय तीनों तत्व रहते हैं**। रवीन्द्रनाथ पर पाश्चात्य के '**बेले**" नृत्य का भी प्रभाव पड़ा। उन्होंने सभी प्रभावों को ग्रहण कर, निजी प्रतिभा के सहारे जिन नृत्यनाट्यों की रचना की उनका आन्तरिक आवेदन भारतीय विधि के अनुसार इन्द्रियाकर्षक ही नही, हृदय-द्रावक भी है। **शास्त्रीय संगीत पर मुसलमानी प्रभाव** स्पष्ट है। रवीन्द्रनाथ ने "वाल्मीकि प्रतिभा" नामक **गीतिनाट्य में देशी तथा पाश्चात्य संगीत का मेल कराया**। उनके नृत्य-नाट्यों में शास्त्रीय संगीत, लोक संगीत तथा पाश्चात्य संगीत का समन्वय हुआ है। रवीन्द्रनाथ की शैली के अनुसार गीति नाट्य तथा नृत्यनाट्यों की रचना हिन्दी तथा बंगला के किसी भी नाटककार ने नहीं की। उनके सामने अपने देश की लोक-नाट्य शैली थी तथा थियेटरों में पाश्चात्य "आपेरा" की शैली थी। **गीतिनाट्य** तथा आपेरा की शैली एक नहीं होती। **आपेरा में अनेक गीत नाटक के आकार में गूंथ दिये जाते हैं,** उनमें नाटकीय-आवेदन अत्यल्प होता है।

"आपेरा" को नाट्य-गीति कहना ही उपयुक्त प्रतीत होता है। लोक-नाट्यों **की नृत्य-गीत बहुलता के साथ पाश्चात्य की आपेरा शैली का मिश्रण हुआ एवं बंगला में गीताभिनय की सृष्टि हुई। हिन्दी क्षेत्र में थियेटरों का अभाव था** अतः आपेरा के

प्रभाव का प्रश्न ही नहीं था। हिन्दी के प्रतिभाशाली लेखकों ने जिन गीतिनाट्यों की रचना की उन पर पाश्चात्य कवियों के **काव्य-रूपक (लीरिक ड्रामा)** का अधिक प्रभाव पड़ा। **बंगला के गीताभिनयों** में गीतों की बहुलता है किन्तु हिन्दी के गीति-नाट्य छन्दोबद्ध हैं। कहीं-कहीं वे गेय भी हैं। काव्य-रूपकों की सृष्टि में भी लेखकों ने अंग्रेजी काव्य साहित्य (verse drama) से प्रेरणा ग्रहण की। माइकेल मधुसूदन दत्त ने मिल्टन के **अमित्राक्षर छन्द** का प्रयोग नाटकों में करना चाहा किन्तु वे सफल नहीं हुए। बाद में बंगला नाटकों में **गैरिश छन्द** की उपयुक्तता सिद्ध हुई। पाश्चात्य देशों में समस्या-नाटकों की प्रतिक्रियाएं शुरू हो गई हैं एवं काव्य-रूपकों की रचना की ओर लेखक आकर्षित हो रहे हैं। टी० एस० **इलियट** रचित "Cocktail party" नामक काव्य रूपक अयंत्त लोकप्रिय हुआ। बंगला साहित्य में गिरीशचन्द्र, द्विजेन्द्रलाल, क्षीरोदप्रसाद तथा अपरेश मुखोपाध्याय आदि ने काव्य शैली में अनेक उत्कृष्ट नाटकों की रचना की। रवीन्द्रनाथ रचित **"राजा ओ रानी" नाटक काव्य-शैली में है** किन्तु यथार्थ में काव्य-रूपक वही है जिसमें बाह्य-द्वन्द्व की नाटकीयता कम किन्तु अतर्मुखी भाव द्वन्द्वों का काव्यात्मक चित्रण अधिक हो। इस दृष्टि से रवीन्द्रनाथ रचित छोटा काव्यनाट्य "चित्रांगदा" एक उत्कृष्ट सृष्टि है। "विदाय अभिशाप" "कर्णकुन्ती संवाद" आदि भी काव्यनाट्य हैं। प्रसाद ने हिन्दी छन्दों में "सज्जन" तथा "करुणालय" की सृष्टि कर नाटकों में पद्यशैली का प्रयोग किया। **सुमित्रानन्दन पन्त, दिनकर, बच्चन आदि के काव्यरूपकों में प्रसाद की गीतिनाट्य-शैली का विकास** एवं टी० एस० इलियट के काव्य-रूपक का आदर्श निहित है। हिन्दी में **उदयशंकर भट्ट के भाव-नाट्य भी काव्य शैली** में रचित हुए हैं।

अत: हिन्दी तथा बंगला के इन स्वच्छन्दतावादी शैली के प्रयोगों में पाश्चात्य 'आपेरा', 'बैले', 'व्हर्स-ड्रामा' आदि के तत्वों का भी मिश्रण हुआ है किन्तु रस-सृष्टि ही लक्ष्य होने के कारण उनका आभ्यन्तरीन रूप भारतीय है, उनमें आंगिक की अपेक्षा हृदय को आनन्द-लोक के इन्द्रियातीत परिवेश में ले जाने की शक्ति अधिक है।

गीतिनाटय

गीतिनाट्य में **नाटक का अभिनय सुर के माध्यम से** व्यक्त होता है एवं यह सुर राग-रागिनियों पर आश्रित न होकर हृदय के भावावेश पर आश्रित होता है अत: उसका रूप कवित्वपूर्ण होता है। गीतिनाट्य का जो आदर्श स्वरूप है वह एकमात्र रवीन्द्रनाथ रचित **'वाल्मीकि-प्रतिभा'** में व्यक्त हुआ है। यह सन् १८८१ की रचना है एवं इसकी विशिष्टताओं पर प्रकाश डालना आवश्यक है। रवीन्द्रनाथ अपनी **'जीवन-स्मृति'** में लिखते हैं —

> 'इहार नाट्य विषयटा सुर कोरिया अभिनय करा हय मात्र—
> स्वतंत्र संगीतेर माधुर्य इहार अल्पस्थानेइ आछे।'

वीन्द्रनाथ को गीतिनाट्य लिखने की प्रेरणा **हर्बर्ट स्पेन्सर** की रचना 'The origin and Function of Music' से मिली जिसमें इस बात का उल्लेख है कि हृदयावेग के प्रभाव से संलापों में गीतात्मकता व सुर-संचार अपने आप प्रवेश कर जाता है। इस सुरसंचार को कवि ने अभिनय में प्रविष्ट कराया किन्तु भावाभिव्यक्ति की प्रधानता को सुरझंकार के बीच दबने नहीं दिया। नाटक ही यहां साध्य विषय था एवं सुर साधन। सुर-नियोजन के लिए उन्होंने देशीय सुरों के साथ विदेशी सुरों का मिलन कराया। **कवि म्यूर के 'आयरिश मेलोडीज'** एवं अन्य पाश्चात्य ढंग के गीतों से उन्हें प्रेरणा मिली जिनमें मानवीय वैचित्र्य की अभिव्यक्ति प्रधान लक्ष्य होता है।

'वाल्मीकि-प्रतिभा' गीतिनाट्य है अतः उसमें नाटकीय गुणों का होना भी अपेक्षित है। **भाव-द्वन्द्व** की सुरों के माध्यम से सफल अभिव्यक्ति हुई है। दस्यु रत्नाकर दस्युवृत्ति के द्वारा जीवन-यापन करते हैं एवं काली-पूजा करने के लिए प्रति रात्रि नरबलि देते हैं। इसी तरह जब वे एक बालिका की बलि चढ़ाने के लिए उद्यत हुए तब उसके रुदन से उनके हृदय में आलोड़न उपस्थित हुआ एवं उन्होंने बालिका को मुक्त करने का आदेश दिया। दस्युवृत्ति त्याग कर वे वन-वन में भटकने लगे। एक दिन व्याध को क्रौंच-मिथुन में से एक को शर-बिद्ध करते देख उनके मुख से 'मा निषाद् प्रतिष्ठां---' यह श्लोक निकल पड़ा एवं उन्हें अपूर्व कवित्व शक्ति प्राप्त हुई। लक्ष्मी आविर्भूता हुईं एवं उन्होंने धन का लोभ दिखाया किन्तु देवी वीणापाणि को देखने के लिए वे अधीर हो उठे। इस समय देवी वीणापाणि आविर्भूता हुईं एवं महाकवि बनने का वरदान दिया तथा अपनी वीणा उन्हें प्रदान की। **यह कथा मूल रामायण में नहीं है, कृत्तिवास के रामायण में है।** कवि ने इस कथा का अत्यन्त गीतात्मक, भाव-प्रधान रूप प्रस्तुत किया है।

इस शैली पर रचित अन्य एक भी गीतिनाट्य का उदाहरण बंगला व हिन्दी नाट्य साहित्य में प्राप्त नहीं होता। रवीन्द्रनाथ ने ऐसे गीतिनाट्यों को जीवन के अन्तिम काल में नृत्यनाट्यों में परिणत किया। क्षीरोदप्रसाद जैसे प्रसिद्ध रोमांटिक नाटककार ने जात्रा-शैली अपनाई एवं जात्रा तथा थियेटर की शैली का मिश्रण कर गीताभिनय की सृष्टि की। प्रसाद ने पद्य-शैली में नाटकों में अतुकान्त छन्दों के प्रयोग में मनोनिवेश किया एवं हिन्दी गीतिनाट्यों की यही भावद्वन्द्व, पद्य-शैली तथा ध्वन्यात्मकता में गेयता की परिपाटी चल पड़ी। **'करुणालय'** में प्रसाद ने आरिल्ल छन्द का प्रयोग किया है। उसमें भाव-द्वन्द्व एवं भाव-परिवर्तन का चित्रण ही प्रधान लक्ष्य है। पिता के आज्ञानुसार रोहित यज्ञ की बलि बनने के लिए तत्पर नहीं होते वरन् पिता हरिश्चन्द्र का निरोध करते हैं।....

रोहित (स्वगत) 'पिता परमगुरु होता है, आदेश भी,
उसका पालन करना हितकर धर्म है।

किन्तु निरर्थक मरने की आज्ञा कड़ी
कैसे पालन करने के योग्य यों।'[1]

इसमें भक्ति तथा युक्ति में द्वन्द्व उपस्थित होता है, कोई बाह्य-घटना नहीं है। इसके बाद भावावेश का चरमोत्कर्ष उस स्थल पर है जहां अजीगर्त बलि देने के लिए शुनःशेफ पर अस्त्र उठाते हैं एवं शुनःशेफ विलाप करता है —

हे हे करुणा-सिन्धु, नियन्ता विश्व के,
है प्रतिपालक तृण, वीरुध के, सर्प के, —
हाय ! तुम्हारी करुणा को भी क्या हुआ
जो न दिखाती स्नेह पिता का पुत्र से।'[2]

शुनःशेफ को विलाप करते देख विश्वामित्र का हृदय द्रवीभूत हो उठता है एवं वे नर-बलि का निषेध करते हैं। 'वाल्मीकि-प्रतिभा' के समान 'करुणालय' में **करुण रस का पूर्ण परिपाक** हुआ है। करुण रस की धारा प्रवाहित करने के लिए वाल्मीकि को वीणापाणि वरदान देती हैं—

आमि वीणापाणि तोरे एसेछि शिखाते गान—
तोर गाने गले जाबे सहस्त्र पाषाण प्राण।
जे रागिणी सुने तोर गोलेछे कठोर मन
से रागिणी तोगि कंठे बाजिवे रे अनुक्षण।
अधीर होइया सिंधु कांदिबे चरणतले,
चारि दिके दिकबधु आकुल नयनजले।'[3]

"करुणालय" की पद्य-शैली पर मैथिलीशरण गुप्त ने "**अनघ**" गीतिनाट्य की रचना की किन्तु उन्होंने दृश्य-विभाजन रवीन्द्रनाथ रचित "अचलायतन" की शैली पर किया। उनके दृश्यों के नाम हैं–अरण्य, चौपाल, उद्यान, वटच्छाया, मद्य का घर, चबूतरा, ग्रामभोजक का घर, मधुवन आदि। इस नाटक में मद्य एक प्रतीक-चरित्र है एवं बाह्य संघर्ष का अपेक्षा **गांधीनीति** के आदर्श की प्रतिष्ठा करना ही नाट्यकार का लक्ष्य है। काव्यात्मक संवाद एवं भावात्मक विषय-वस्तु के कारण यह गीतिनाट्य है। हिन्दी में सियारामशरण गुप्त रचित "**उन्मुक्त**" भी एक सफल गीतिनाट्य है। इसका

१—करुणालय—लेखक जयशकर प्रसाद—द्वितीय दृश्य।

२—करुणालय—लेखक जयशंकर प्रसाद—पंचम दृश्य।

३—गीतवितान—रवीन्द्रनाथ—वाल्मीकि-प्रतिभा—पृष्ट ६५३
(संस्करण सन् १९६०)

दृश्य-विभाजन भी "अचलायतन" की शैली के समान है जैसे--शयनकक्ष, पुण्य-पर्व, संचालन, शिविर आदि। इस तरह यद्यपि रवीन्द्रनाथ ने जिस तरह देशी विदेशी संगीत का सम्मिलन कराके गीतिनाट्यों में सुरयोजना की वैसा अन्य लेखकों ने नहीं किया फिर भी हिन्दी गीतिनाट्य पर रवीन्द्रनाथ के काव्य तथा नाटकों का परोक्ष प्रभाव पड़ा एवं भावक्षेत्र में हिन्दी तथा बंगला गीतिनाट्य समधर्मी हैं।

हिन्दी में हरिकृष्ण प्रेमी ने **"स्वर्णविहान"** नामक गीतिनाट्य की रचना सन् १९३३ में की। उसका रूप भी "करुणालय" सदृश्य ही है। प्रेम के व्यापक रूप को ग्रहण कराने के लिए संन्यासी मोहन की उग्र भावनाओं को अहिंसा की शीतल धारा में अवगाहन कराना चाहते हैं। "स्वर्णविहान" को विश्व प्रकाश दीक्षित ने **काव्य रूपक** भी कहा है — **'जिसमें कविता भी हो और रूपक भी, उसे काव्यरूपक या गीतिनाट्य कहेंगे"।** इसी शैली का एक गीतिनाट्य भगवतीचरण वर्मा रचित "तारा" है। इसमें देवगुरु बृहस्पति की पत्नी तारा के भाव-द्वन्द्व का चित्रण हुआ है। बृहस्पति में आत्मसंयम है किन्तु उनकी पत्नी तारा के हृदय मे बृहस्पति के शिष्य चंद्र के प्रति आसक्ति जाग्रत होती है। अन्त तक वासना की ही जीत होती है। हिन्दी में गीतिनाट्य का यह स्वरूप बहुत विकसित हुआ। उन्हें रंगमंच की व लोकरुचि की अधिक परवाह नहीं थी क्योंकि अभिनय का कोई प्रश्न नहीं था। उच्च कोटि के कवियों की रुचि गीतिनाट्य रचना के प्रति उन्मुख हुई। इसी शैली के गीतिनाट्यों को कहीं भावनाट्य की आख्या मिली, कहीं काव्य रूपक की। **उदयशंकर भट्ट** के भावनाट्य, **दिनकर** का काव्यरूपक "नगर-महिमा", **सुमित्रानन्दन** पंत के काव्यरूपक शुभ्र पुरुष, "ध्वंस-शेष" आदि तथा भगवतीचरण वर्मा, धर्मवीर भारती, सिद्धनाथ कुमार के काव्यरूपक यथेष्ट साहित्यिक रचनाएं हैं। ये नाटक रंगमंचीय नहीं किन्तु साहित्यिक हैं। अतः आकाशवाणी द्वारा प्रसारित किये जाने पर इन्हें यथेष्ट प्रतिष्ठा मिली क्योंकि **संगीतरूपक रेडियो नाट्य-शिल्प के अधिक उपयुक्त हैं।**

बंगला गीतिनाट्यकारों के लिए **प्रतिष्ठित रंगमंच** था एवं उन्होंने रंगमंचीयता तथा साहित्यिकता के समन्वय द्वारा ऐसे **गीताभिनयों** की सृष्टि की जो अत्यंत लोकप्रिय हुए। इनमें गीतों की बहुलता के साथ गद्यसंलापों की योजना होती है। संस्कृत की **नाटिका** के लक्षण गीताभिनयों से कुछ साम्य रखते हैं। **साहित्य दर्पण के अनुसार नाटक और प्रकरण का मिश्रण नाटिका है।** इसमें नायक नाटक से एवं कथावस्तु प्रकरण से ली जाती है। चार अक होते हैं। कैशिकी वृत्ति के भिन्न भिन्न रूपों का क्रमशः इन अंकों में पालन होता है। शृंगार रस की प्रधानता रहती है। नायक धीर ललित राजा तथा नायिका कोई गायन-प्रवीणा राजवंश की कन्या होती है। इन लक्षणों पर ध्यान रखते हुए भारतेन्दु ने "चन्द्रावली" नाटिका की रचना की थी। बंगला गीताभिनयों का विशिष्ट गुण उनकी अभिनेयता है किन्तु हिन्दी की **"चन्द्रावली"** नाटिका अभिनेयता की दृष्टि से असफल है। विशुद्ध प्रेम की तन्मयावस्था का उसमें

वेदन-मधुर चित्रण हुआ है। बीसवीं सदी में "चन्द्रावली" नाटिका की शैली पर हिन्दी में कोई रचना नहीं हुई क्योंकि भाव-द्वन्द्व के चित्रण के लिए नाट्यकारों ने काव्य-रूपक की शैली अपनाई जिसमें समस्त नाटक छन्दोबद्ध रूप में रचित हुआ। जिस तरह रास-शैली से प्रभावित होकर भारतेन्दु ने "चन्द्रावली" की रचना की, उसी तरह जात्रा-शैली से प्रभावित होकर क्षीरोदप्रसाद ने अनेक गीति-नाटकों की रचना की। **क्षीरोदप्रसाद रचित गीतिनाट्य "वृन्दावन-विलास"** में अनेक माधुर्य भाव के गीत हैं, संलाप गद्य में है तथा नाटिका सदृश्य चार अंकों में वह विभाजित है। क्षीरोदप्रसाद की रचनाओं में गीति-नाट्य शैली परिपक्वावस्था में दृष्टिगोचर होती है क्योंकि इनमें **जात्रा, आपेरा, नाटिका** के लक्षणों के साथ **प्रेम** के विशद रूप का चित्रण होता है। "वृन्दावन-विलास" के नायक प्रेमीशिरोमणि श्रीकृष्ण हैं। नायिका राधा की समर्था-रति का अत्यन्त भावपूर्ण चित्रण हुआ है। **गद्य-संलापों के बीच बीच में जो गीत हैं** उनमें सुर-संयोग बाबू रामतारण सान्याल एवं श्रीयुत मोहितलाल गोस्वामी ने किया है। इन गीतों में भावों का प्रबल वेग भी है एवं संगीत का माधुर्य भी है। गीतों की अधिकता होते हुए भी शृंगार रस का पूर्ण परिपाक हुआ है एवं **शृंगार रस का मार्जित रूप** दर्शकों को भाव-विभोर कर देने में सफल हुआ है।

उदाहरण—'वृन्दा—अवश्य स्वामीर स्वप्नइ देखे छो ?

राधा—स्वामी ?—के स्वामी—कोथा आमार स्वामी ? आमिइ बा कार ?

(सुरे)

मनेर मरम कथा, तोमारे कहि जे हेथा
सुनो सुनो परानेर सइ ।
स्वपने देखिनू केह, श्यामल-वरन देह,
ताहा बिनु आर कारो नइ ।।'[1]

हिन्दी में हरिकृष्ण प्रेमी ने रेडियो नाट्य-शैली में कई संगीत-रूपकों की रचना की यथा—सोहनी-महीवाल, हीर-रांझा, सस्सी-पुन्नू, दूल्ला-भूटी, मिर्जा-साहिबा आदि जो पंजाबी **लोक कथाओं** पर आश्रित हैं। इनमें लौकिक-प्रेम का भावपूर्ण चित्रण हुआ है। रेडियो नाट्य-शैली के अनुसार **उद्घोषक (नरेटर)** द्वारा कथा से परिचय कराया गया है।

'सोहनी-महीवाल' में मांझी राही से कहता है—

'इस चनाब की लहरों मे ही हाय, सो गई, राही।
आन प्रेम की रखने को कुरबान हो गई राही।'

१—वृन्दावन-विलास—लेखक क्षीरोदप्रसाद विद्याविनोद—प्रथम अक, तृतीय दृश्य।

इन संगीत-रूपकों में माध्यम सगीत है एवं विप्रलम्भ शृंगार के मार्मिक स्वरूप का नाटकीय उद्‌घाटन ही लक्ष्य है ।

गीतिनाट्‌य के भिन्न-भिन्न स्वरूप हिन्दी तथा बंगला नाट्‌य-क्षेत्र में प्रयुक्त हुए। इन गीतिनाट्‌यों में संस्कृत शैली, जन नाट्‌य-शैली, आपेरा-शैली आदि का मिश्रण हुआ है एवं सभी में गीतों की प्रमुखता है। बंगला गीति-नाट्‌यों को **थियेटर** का सहारा मिला एवं हिन्दी गीतिनाट्‌यों को **रेडियो** का सहारा मिला इस कारण बंगला गीतिनाट्‌यों में नाटकीयता, अभिनेयता तथा संगीतात्मकता अधिक है। यह गीतिनाट्‌यों का बाह्य-स्वरूप है। **भावों के विशद एवं द्वन्द्वात्मक चित्रण** की दृष्टि से हिन्दी तथा बगला के गीतिनाट्‌यों में एक साम्य है। धर्मवीर भारती रचित "अंधा युग" की ठोस विचारात्मकता हिन्दी गीति नाट्‌य-शैली की उन्नति का लक्षण है।

ऋतुनाट्‌य

ऋतुनाट्‌य में गीत, नृत्य तथा संलाप के माध्यम से किसी ऋतु के अन्तर्निहित भाव की अभिव्यक्ति होती है। इसमें प्रकृति का चित्रण उसके बाह्य वैचित्य दर्शाने के लिए नहीं होता, **प्रकृति की लीला में जो भाव-गम्भीर तत्व है उसकी मार्मिक व्याख्या नाटकीय-रूप में की जाती** है। प्रकृति में **चिन्मयी-शक्ति** का अनुभव कर नाटककार **मानवीय रूप में** उनका चित्रण करते हैं, किन्तु यह चित्रण प्रतीक-शैली से कुछ भिन्न होता है। नृत्य, गीतों के द्वारा मेघ, विद्युत, गर्जन, वर्षण, पुष्प हास, वर्षा में विरहनी का क्रन्दन, वसन्त का राजसंन्यासी रूप, ऋतु-चक्र में नटराज का नृत्य आदि भाव-चित्र खिच जाते हैं तथा **मानव पात्र प्रकृति के इस भावात्मक-वैचित्र्य की व्याख्या करते हैं।**

रवीन्द्रनाथ ने इन तरह के कई ऋतुनाट्‌यों की रचना की। शांति-निकेतन आश्रम की शिक्षा के लिए उन्होंने प्रकृति का साहचर्य आवश्यक समझा। शांति-निकेतन के [illegible] आकाश, श्रावण-वर्षण, दक्षिण पवन आदि के साथ सहज तथा मधुर सम्पर्क स्थापित करने के लिए उन्होंने बाहर कुंजों की छाया में पढ़ाने की व्यवस्था की एवं प्रत्येक ऋतु के आगमन को आनन्द-मुखरित करने के लिए ऋतु-उत्सवों का प्रचलन कराया। इन्हीं ऋतु-उत्सवों को अर्थपूर्ण तथा सार्थक बनाने के लिए उन्होंने कई ऋतु-नाट्‌यों की रचना की जैसे—**शारदोत्सव, शेषवर्षण, वसन्त, नवीन, नटराज-ऋतुरंगशाला** तथा **श्रावणगाथा**। इस तरह के ऋतुनाट्‌यों की रचना हिन्दी तथा बगला के अन्य किसी नाटककार ने नहीं की क्योंकि न तो वे किसी आश्रम-विद्यालय के सम्पर्क में आये और न वे प्रकृति के इस गूढ़दर्शन से प्रभावित हुए। अंग्रेजी के कवि वर्डस्वर्थ ने प्रकृति के प्रति इस गूढ़ भावना का अनुभव किया था एवं उनके प्रकृति-चित्रण से बंगला तथा हिन्दी काव्य-जगत प्रभावित हुए थे। सुमित्रानन्दन पन्त का जीवन-दर्शन प्रकृति-प्रेम के पथ पर से होकर गुजरा किन्तु पंत

भी इस तरह के ऋतु-नाट्यों की रचना के लिए प्रेरणा न पा सके। उनकी शक्ति का विकास काव्यक्षेत्र में अधिक व्यक्त हुआ एवं सम्प्रति कई उच्च कोटि के काव्य-रूपकों की उन्होंने रचना की। **रवीन्द्रनाथ के ऋतुनाट्य भावात्मक-उच्चता तथा कलात्मक-सुन्दरता की दृष्टि से विश्व-साहित्य में अतुलनीय हैं।**

हिन्दी में ऋतुनाट्यों की रचना नहीं हुई। प्रकृति में चेतन-सत्ता का अनुभव करना रोमांटिक प्रवृत्ति के लक्षण हैं। प्रकृति के प्रति आत्मीयता का अनुभव करने वाले हिन्दी में प्रसिद्ध कवि सुमित्रानन्दन पंत हुए। ऋतु नाट्य के निर्माण के लिए **काव्योचित प्रतिभा एवं प्रकृति-दर्शन की आवश्यकता है**। हिन्दी व बंगला के अन्य कवियों की काव्य प्रतिभा रवीन्द्रनाथ की तुलना में उतनी विकसित नहीं थी एवं उनमें प्रकृति-दर्शन का भी अभाव था। पंत ने "पल्लव" में कविता के रूप में अपना प्रकृति प्रेम व्यक्त किया है, **'ज्योत्सना" में प्रकृति को प्रतीक-पात्रों का रूप दिया है।** "पल्लव" में कवि प्रकृति के साथ अपने हृदय के तादात्म्य का अनुभव करता है एवं ज्योत्सना में प्रकृति को पात्रों का रूप देकर अपने समाज-दर्शन के सिद्धान्त को व्यक्त करता है। ऋतुनाट्य में प्रकृति की अपनी गूढ़ सत्ता व्यक्त होती है। मानव दर्शक बनकर उसकी उस गहन सत्ता की अभिव्यक्ति को नृत्य तथा गीतों के माध्यम से उपलब्ध करता है। प्रकृति की कोमल, कठोर, रौद्र, चपल, स्निग्ध, उच्छल आदि विभिन्न सत्ता व व्यक्तित्व आरम्भ, विकास, अन्त के नाटकीय रूप में व्यक्त होते हैं। **प्रकृति ही आलम्बन होती है** एवं प्रकृति के स्वरूप का ही उद्घाटन लक्ष्य होता है। पंत की दृष्टि समाजवादी सिद्धांतों की ओर झुक गई एवं प्रकृति के शुद्ध रूप का चित्रण वे नहीं कर पाये। हिन्दी में अन्य ऐसे कवि नहीं हुए जिनमें नाट्य तथा काव्य प्रतिभा के साथ ही उत्कृष्ट प्रकृति प्रेम एवं गहन दार्शनिकता हो। रवीन्द्रनाथ के ऋतुनाट्य विश्व-साहित्य में अतुलनीय हैं। **उनमें प्रकृति की गोद में लौट जाने के साथ उच्चतर भावलोक एवं उच्चतम चैतन्य लोक की ओर उठने के उद्बोधन संगीत हैं। गीत, नृत्य, वाद्य, प्रकृति, रागात्मकता, नाटकीयता आदि के मिलन से इन ऋतुनाट्यों में रस का चरमोत्कर्ष हुआ है।**

रवीन्द्रनाथ ने वर्षा, शरत, वसन्त आदि ऋतुओं पर रचना की, छह ऋतुओं पर नटराज ऋतुरंगशाला की रचना की। उनमें वर्षा सम्बंधी गीत ही सर्वश्रेष्ठ हैं। उनके ऋतुनाट्य "**श्रावणगाथा**" (सन् १९३४) पर प्रकाश डालने से उनकी विशिष्टताएँ स्पष्ट होंगी। रवीन्द्रनाथ की प्रारम्भिक रचनाओं में केवल गीत एवं कविता में व्याख्या हुआ करती थी जिन्हें ऋतु-विषयक "पाला-गान" कहते थे। क्रमशः उन्होंने गीतों के साथ नृत्य का योग किया। **ये नृत्य खंड दृश्यों पर आधारित होते हैं, नृत्य-नाट्य सदृश्य कथा-प्रवाह के अनुसरणकारी नहीं।** गीत तथा नृत्य के साथ उन्होंने **राजसभा के टेकनीक** का योग किया जिसमें **राजा** सहृदय दर्शक, **सभाकवि** स्थूल-सौंदर्य के पुजारी तथा **नटराज** भावात्मक-व्याख्याकार के रूप में रहते हैं। **इनके**

सम्मुख प्रकृति की लीला का अभिनय होता है एवं उस अभिनय के गीत नृत्यों की शृंखला जोड़ने के लिए तथा व्याख्या के लिए राजा, सभाकवि, नटराज आदि के **गद्य-संलाप** बीच बीच में रहते हैं। प्रकृति और मानव में एक ही चिन्मय-सत्ता की अभिव्यक्ति है—यही ऋतुनाट्यों का मूलभाव है। कथा-भाव में किसी विशिष्ट ऋतु का **आगमन**, उसके सूक्ष्म रूप की **अभिव्यक्ति** एवं **विदा की वाणी** निहित रहती है।

"श्रावणगाथा" का आरम्भ नटराज के गद्य-संलाप से होता है--

"नटराज — महारज आज्ञा करने यदि वर्षार अभ्यर्थना दिये आज
उत्सवेर भूमिका करा जाक्।

... ...

ओइ आसे ओइ अति भैरव हरषे
जलसिंचित क्षिति सौरभ रमसे
घन गौरवे नव यौवना वरषा
श्याम गम्भीर सरसा। ———"[1]

इसके संलाप भी गीतों की तरह भावपूर्ण हैं —

"सभाकवि———वर्षाय वसन्ते प्रभेदटा की ?

नटराज———वसन्ते कोकिल डालपातार मध्ये प्रच्छन्न थेके वन्च्छाया के
सकरुण कोरे तोले———जार वर्षाय बलाकाइ बलो,
हंसश्रेणीइ बलो, उधाओ होये मुक्त पथे चले शून्ये——
कैलास शिखर थेके बेरिये पड़े अकूल समुद्रतटेर दिके। ———"

विदा के गीत एवं शरद ऋतु के आगमन-गीत से इस क्षुद्र-नाटिका का अन्त होता है।

नृत्यनाट्य

भारतीय नृत्य के स्वरूप का परिचय हमें भरत नाट्यशास्त्र, नन्दिकेश्वर रचित अभिनयदर्पण, नर्तननिर्णय, नृत्यविलास, नृत्यसर्वस्व, नृत्यशास्त्र, तथा अशोक मल्ल रचित नृत्याध्याय, संगीतनारायण, सगीतदामोदर से प्राप्त होता है। संगीत नारायण के अनुसार नृत्त के दो भेद हैं—तांडव और लास्य। **तांडव नृत्त** के दो प्रकार

१—श्रावणगाथा—रवीन्द्रनाथ ठाकुर (रवीन्द्र रचनावली, २५ वां खंड)

हैं—पेलवि और बहुरूप तथा **लास्य नृत्त** के दो प्रकार हैं—छुरित और यौवन। इनके सिवा मस्तक, नेत्र, भ्रू, ग्रीवा, हस्त, चरण आदि की विभिन्न चालना से भारतीय नृत्य अत्यन्त सूक्ष्म एवं मनौविज्ञान सम्मत प्रतीत होता है। अन्य कलाओं के सदृश्य भारतीय नृत्यों का भी प्रधान **लक्ष्य रससृष्टि है।** भारतीय नृत्यों में इन्द्रियों का आवेदन कम एवं रसोद्रेक द्वारा आनन्द प्राप्ति एवं प्राण की तृप्ति अधिक होती है। भारतीय नृत्य गीतों पर आधारित होते थे। **अभिनयदर्पण** में इसका स्पष्ट उल्लेख है —

"आस्येनालम्बयेद् गीतं हस्तेनार्थम् प्रदर्शयेत्।
चक्षभ्याम दर्शयेदभावं पादाभ्याम् तालमादिशेत्॥ ३६
यतो हस्तस्ततो दृष्टिर्यतो दृष्टिस्ततौ मनः।
यतो मनस्ततो भावो यतो भावस्ततो रसः॥"३७ वां श्लोक

हिन्दू नाटकों में गीत तथा नृत्य का प्रयोग पूर्ण मात्रा में होता था। इस विषय में **डा० मनोमोहन घोष** लिखते हैं—"हिन्दू प्लेज—पोयेम्स इन देयर कनसेप्शन एंड लीरिकल इन देयर केरेक्टर —बिकेन आफ्टर हिम यूनीक स्पेक्टेक्लस इन विच दी लीरिकल एलेमेन्ट वाज गिव्हेन दी फुलेस्ट प्रामिनेन्स बाइ दी **मोर इम्पाटेन्ट स्कोप गिव्हेन टू सांग एंड डान्स।**"

संस्कृत नाटकों में गीत तथा नृत्य ही प्रधान तत्व बन जाने पर वे **नृत्य-भेद** कहलाते थे। संस्कृत नाटकों का ह्रास हो जाने पर एवं मुसलमानी सभ्यता के प्रभाव से नाटक तथा नृत्यकला की मर्यादा सामाजिक दृष्टि से अत्यन्त हीन हो गई। लोक-नाटकों में इनका रूप अवशिष्ट रहा। अतः हिन्दी तथा बंगला नाटककारों का नृत्य गीत पूर्ण जिन लोक नाटकों से परिचय हुआ, कलात्मक दृष्टि से वे उच्च कोटि के न थे। हिन्दी में पारसी नाटक मंडलियों ने लोक-नाटकों से प्राप्त नृत्य-गीत की परम्परा को और निःकृष्ट रूप दिया, बंगला गीताभीनयों में भी जिन समूह-नृत्यों का प्रयोग होता था उनमें भी भारतीय नृत्य कला के शुद्ध रूप के दर्शन बहुत कम होते थे। पाश्चात्य देशों का **'बैले'** नृत्तनाट्य है उसे नृत्यनाट्य नही कहा जा सकता है क्योंकि नृत्य भावाश्रित होता है।

विस्मृत तथा उपेक्षित भारतीय नृत्य-कला को मर्यादा के आसन पर बैठाने का श्रेय उदयशंकर तथा रवीन्द्रनाथ ठाकुर को है। उदयशंकर ने छोटे कथानकों को नृत्य के रूप में प्रदर्शित किया, उनमें नृत्य ही लक्ष्य था, खंड-खड कथाओं में नाटकीयता का स्फुरण नहीं हुआ था। उनके शंकर-पार्वती के नृत्य इसके उदाहरण हैं। **रवीन्द्रनाथ ने शान्तिनिकेतन आश्रम के विद्यार्थियों को गीत नृत्य के माध्यम से प्राण के उल्लास को व्यक्त करना ही नहीं सिखाया वरन् नृत्य को नाटक के कार्य में लगाया।** इसकी प्रेरणा उन्हें **जावा की यात्रा** से मिली। रवीन्द्रनाथ लिखते हैं—'दी अदर वे वी विटनेस्ड ए डान्स इन राजांस पैलेस विच, वी आर टोल्ड, रिप्रेजेण्टेड दी स्टोरी आफ शाल्व एंड

सत्यवती, मेकिंग इट क्लियर दैट नाट ओनली इमोशन बट आलसो नरेशन, इज़ ट्रान्स-म्यूटेड इनटू डान्स बाइ देम ।

इस प्रकार प्रेरित होकर रवीन्द्रनाथ ने **शापमोचन** (सन् १९३१), **चित्रांगदा** (सन् १९३६) **चंडालिका** (सन् १९३८) **श्यामा** (सन् १९३९)—इन नृत्यनाट्यों की रचना की। ऋतुनाट्यों में जिस नृत्य-गीत की शैली का उन्होंने प्रारम्भ किया, नृत्य-नाट्यों में वह शैली उत्कृष्ट रूप में व्यक्त हुई । रवीन्द्रनाथ ने नृत्य-नाट्यों में कथा काव्य, सुर तथा नृत्य का इस तरह सम्मिश्रण किया कि वे अपनी विशेषता न खो बैठें, किन्तु इसके साथ ही एक नवीन टेकनीक की सृष्टि हो । यह रवीन्द्रनाथ की कलात्मक-प्रतिभा की उपज थी; दूसरों के लिए यह सहज-साध्य नहीं था।

'नटीर-पूजा' में यद्यपि कथा का प्राण ही श्रीमती का पुजारिनी नृत्य है फिर भी उनके परवर्ती नृत्यनाट्यों की गीत पर आधारित नृत्य-शैली की अपनी अलग विशिष्टता है । इन नृत्यनाट्यों की विशिष्टताएं निम्नलिखित हैं—

१—ये नृत्य **गीतों** पर आधारित हैं ।

२—इनकी **कथावस्तु** कवि के काव्य में निहित होती है ।

३—यह **काव्य गेय** होता है ।

४—**सुर**-संयोजित इन गीतों के ताल तथा लय पर जो **नृत्य** होता है वह अभिनय के एक उत्कृष्ट अंग के रूप में होता है ।

५—इनका उद्देश्य **रस-सृष्टि** होता है जो दृश्यकाव्य की आत्मा है ।

रवीन्द्रनाथ ने गीत के क्षेत्र में जैसे सहाना, भैरवी, बागेश्री, बाउल, कीर्तन आदि का मिश्रण किया है वैसे नृत्य के क्षेत्र में मणिपुरी, कथकली, भरतनाट्यम, बैले, भारतीय लोक-नृत्य आदि का मिश्रण किया है। कत्थक नृत्य में देह-प्रदर्शन अधिक होता है इस कारण उन्होंने उसका वर्जन किया है तथा मणिपुरी नृत्य भाव-प्रधान होता है इस कारण उन्होंने उसे प्रधानता दी ।

रवीन्द्रनाथ के नृत्यनाट्यों पर अल्प प्रकाश डालने से ही स्पष्ट हो जायेगा कि इस कोटि के नृत्यनाट्यों की रचना हिन्दी में नहीं हुई ।

शापमोचनः—इसकी कथा यह है कि रानी कमलिका अपने पति अरुणेश्वर की कुरूपता के कारण उसे त्याग करती है । अन्त में विरह की अग्नि में तपकर प्रेम का मूल्य समझती है । 'पुनश्च' नामक गद्य-कविता को ही सस्वर पाठ युक्त कविता, संगीत एवं नृत्य में ढालकर इसे नृत्यनाट्य का रूप दिया गया है । कहीं-कहीं कविता पाठ के साथ द्वन्द्व परिस्फुट करने के लिए मूकाभिनय का प्रयोग हुआ है ।

चित्रांगदा—इसकी कथा महाभारत की कथा से कुछ भिन्न रूप में रखी गयी है क्योंकि कवि इसमें एक तत्व की प्रतिष्ठा करना चाहते थे जिसका उल्लेख उन्होंने भूमिका में किया है। बाह्य आकर्षण की पराजय एवं सहज सत्य की विजय दिखाना ही इस नाटक का उद्देश्य है। चित्रांगदा काव्य पर अभिज्ञानम् शाकुन्तलम्' एवं 'कुमारसंभव' की छाया है जिसका स्पष्टीकरण कवि ने 'प्राचीन साहित्य' (कुमारसंभव ओ शकुन्तला) में किया है। नारी के यथार्थ रूप का परिचय इसमें गीत तथा अन्तर्भावव्यंजक देह-विक्षेप द्वारा प्राप्त होता है। कामदेव के वरदान से चित्रांगदा रूपवती होती है, उसकी रूप-माधुरी से आसक्त अर्जुन की उक्ति गद्य-काव्य के समान है—

'अर्जुन—आज मोरे
सप्तलोक स्वप्न मने हय।
शुधु एका पूर्ण तुमि,
सर्व तुमि,
विश्वविधातार गर्व तुमि—'[1]

एक वर्ष की समाप्ति पर अर्जुन की रूपासक्ति भी ढल जाती है एवं गर्भवती चित्रांगदा पुनः अपने असली रूप को प्राप्त होती है। अन्तिम दृश्य में अर्जुन के चरणों में आत्म-निवेदन करती हुई उसकी उक्ति गीतात्मक तथा नृत्य के सहित है—

'चित्रांगदा—आमि चित्रांगदा, आमि राजेन्द्रनन्दिनी।
नहि देवी, नहि सामान्या नारी।—'[2]

इसमें गीत हैं एवं गीत के आधार पर नृत्य है, कहीं-कहीं गद्य-काव्य के समान संवाद भी हैं, किन्तु प्रधानता नृत्य-प्रदर्शन की नहीं—इसमें नृत्य के द्वारा एक विशिष्ट भाव की प्रतिष्ठा हुई है।

चंडालिका—प्रकृति अपने देह की आकर्षण शक्ति के द्वारा बुद्ध के शिष्य आनन्द को आत्म-समर्पण करने के लिए प्रेरित करती है एवं सफल भी होती है किन्तु अंत में आत्मविलोपी प्रेम के समक्ष प्रकृति की लालसा पराजित होती है। इस नृत्य-नाट्य में ताल, सुर, लय पर आधारित देह विक्षेप मानसिक द्वन्द्व को व्यक्त करते हैं। भाव के अनुसार पूरवी, बाउल आदि गीतों का एव नृत्य का परिवर्तन हुआ है।

श्यामा—इसमें विवेक एवं प्रेम का द्वन्द्व परिस्फुट हुआ है। नर्तकी श्यामा

१—नृत्यनाट्य चित्रांगदा—रवीन्द्रनाथ ठाकुर—दृश्य–३।
२—नृत्यनाट्य चित्रांगदा—रवीन्द्रनाथ ठाकुर—दृश्य–६।

प्रेमांध होकर वज्रसेन को प्राप्त करने के लिए अपने प्रेमी सरल किशोर उत्तीय के बलिदान को स्वीकार करती हैं। उत्तीय के प्राण के बदले में मुक्त वज्रसेन अपने विवेक-बोध के कारण श्यामा के प्रेम को ठुकराकर उससे घृणा करता है किन्तु मन ही मन वह उससे प्रेम भी करता है। बुद्धि एवं हृदय के द्वन्द्व का यह चित्र नृत्य द्वारा व्यक्त हुआ है। इसके नृत्यों में समन्वय का स्वरूप प्राप्त होता है। वज्रसेन का नृत्य भरत-नाट्यम् तथा कथाकली पर आधारित है, उत्तीय का नृत्य कत्थक पर तथा श्यामा का नृत्य मणिपुरीनृत्य-शैली पर आधारित है।

रवीन्द्रनाथ के ये नृत्य-नाट्य अतुलनीय हैं। **इनके पूर्ण प्रभाव के लिए उपयुक्त साजसज्जा तथा आलोकपात की विशेष आवश्यकता है।** इन नृत्यनाट्यों में अधिकांशत: **लड़कियां ही पुरुष-पात्र का भी अभिनय** करती हैं। गीतों की ताल पर, अपरूप साज से सज्जित लड़कियाँ जब रगीन प्रकाश की तरंगों पर अंग-विक्षेप द्वारा भाव व्यक्त करती हैं तब नाटकीय कथा के अनिर्वचनीय रस की उपलब्धि होती है। हिन्दी में नृत्य के आधार पर पूर्ण नाटक की सृष्टि नहीं हुई। इसका यहीं कारण है कि नृत्यनाट्यों की चरम सार्थकता मंच पर उसके अभिनय में है। हिन्दी क्षेत्र में शांतिनिकेतन के सुसंस्कृत मंच की तो बात ही न्यारी है, साधारण रंगमच का भी अभाव रहा। हिन्दी क्षेत्र में आज भी नृत्य को समाज में उतनी मर्यादा नहीं मिली जितनी मिलनी चाहिए इस कारण लड़कियाँ भाग नहीं ले सकती हैं। जो थोड़ी-बहुत नृत्य-पटु लड़कियां नृत्य के क्षेत्र में आगे बढ़ रही हैं, वे कत्थक-शैली का अभ्यास करती हैं। उत्तरी भारत में कत्थक एवं दक्षिणी भारत में भरतनाट्यम् तथा कथाकली नृत्यों का अधिक प्रचलन है। कथाकली द्वारा दक्षिण भारत में रामायण, महाभारत का अभिनय होता है किन्तु उसकी मुद्राएं साधारण जनता को बोधगम्य नहीं होती। रवीन्द्रनाथ ने अपने नृत्यनाट्यों में मणिपुरी के साथ दूसरे नृत्यों का थोड़ा बहुत समन्वय किया ताकि जनता उनके भावों को सहज ही हृदयंगम कर सके। बंगला नाट्य-क्षेत्र में रवीन्द्रनाथ के ये नृत्यनाट्य नवीन प्रयोग तथा रस की दृष्टि से अमूल्य सम्पद हैं जिनका हिन्दी में सर्वथा अभाव है। यद्यपि हिन्दी क्षेत्र में लोक-नृत्य बहुत समृद्ध हैं।

दक्षिण भारत में कुछ लोक-नाट्य आज भी प्रचलित हैं जिनमें नाटकीयता तथा नृत्य दोनों उपादान हैं जैसे कुचपुड़ी एवं यक्षगान। उत्तर भारत में राजस्थान के भीलों का गौरी नाट्य, ख्याल तथा रासधारियां, मालवा का तुर्राकलगी का खेल आदि में नृत्य के तत्व हैं किन्तु बंगला में रवीन्द्रनाथ के नृत्यनाट्यों को जो कलात्मक उत्कर्ष प्राप्त हुआ है उसका हिन्दी में अभाव है इसका कारण योग्य रंगमंच का अभाव है। रंगमंचीय सुविधा प्राप्त होते ही उदयशंकर भट्ट जैसे कुशल नाटककार ने सम्प्रति नृत्यनाट्य का प्रयोग किया है। नृत्यनाट्य की उन्नति रंगमंचीय उन्नति पर पूर्णरूपेण निर्भर है। उदयशंकर तथा गोपीकृष्ण जैसे अन्य नृत्य शिल्पी अपनी मंडली के साथ नृत्यनाट्यों के अनेक प्रयोग कर चुके हैं एवं हिन्दी में सन् १९५० के

बाद संगीत-रूपक तथा नृत्य-नाट्यों का विकास हो रहा है। इन नृत्य-नाट्यों में नृत्य की विभिन्न शैलियों के द्वारा किसी कथा को नाटकीय रूप दिया गया है। **उदयशंकर ने शंकर-पार्वती के दिव्य-प्रेम की कथा को नृत्य द्वारा नाटकत्व प्रदान किया है।** रवीन्द्रनाथ के नृत्यनाट्यों की यह विशेषता है कि नृत्य प्रधान होते हुए भी गीतों के माध्यम से जो भावानुभूति की अभिव्यक्ति होती है एवं कथा-प्रसग को गति मिलती है, उसका महत्व कम नहीं है। **केवल नृत्य के द्वारा कथा को पूर्ण विवृति सम्भव नहीं**, वह केवल नृत्य-मर्मज्ञों की ही समझ मे आ सकती है। हिन्दी तथा बंगला के अन्य नाट्यकार नृत्य-नाट्यों को साहित्यिक रूप न दे सके एवं रवीन्द्रनाथ के नृत्य-नाट्यों मे काव्य गुण होने के कारण वे अमर हो गये। दिल्ली में लाला श्रीराम के परिवार के लोगों ने एक रामलीला नाटक मंडली की स्थापना की है जो नृत्य-नाटक तथा अन्य सांस्कृतिक नाटकों का अभिनय करते हैं। उनमें मौलिकता कम है। दिल्ली में स्थित भारतीय कला केन्द्र द्वारा प्रदर्शित **'रामायण नृत्यनाट्य'** उल्लेख योग्य है।

भावनाट्य

जिन नाटकों में मानसिक आवेग के द्वन्द्व का चित्रण होता है वे भावनाट्य है। गीतिनाट्य, नृत्यनाट्य तथा काव्य-रूपक में भाव-द्वन्द्व का ही चित्रण होता है किन्तु उन्हें भावनाट्य न कह कर उनकी शैली की विशिष्टता के अनुसार उनकी संज्ञा निर्धारित की जाती है। जब नाटककार किसी भावनाट्य में गीति शैली का प्रयोग करता है तब सुर-नियोजन की विशिष्टता के कारण वे गीति नाट्य कहलाते हैं, जब भाव-द्वन्द्व की अभिव्यक्ति के लिए नृत्य का प्रयोग होता है तब वे नृत्यनाट्य कहलाते हैं एवं केवल कविता-बद्ध नाटक काव्य-रूपक कहलाते हैं। जहां भाव चित्रण होता है वहां गीति, नृत्य व कविता की शैली ही लेखक अपनाते हैं अर्थात् **गीति, नृत्य, कविता आदि उसके बाह्य-स्वरूप हैं।** भावनाट्य में इनका प्रयोग स धन रूप में होता है। **गद्य में भी भावनाट्य की रचना हो सकती है** किन्तु भाव-प्रबलता के कारण इनकी शैली अनायास ही काव्यात्मक हो उठती है। **भावनाट्य में एकाधिक भावों के प्रतीक स्वरूप पात्र पात्रियों की योजना द्वारा भावनात्मक दृष्टिकोण से मानसिक आवेगों का सूक्ष्म चित्रण होता है।** सामाजिक नाटकों की वैज्ञानिक, मनोविश्लेषणात्मक शैली से भावनाट्यों की शैली भिन्न होती है। इनकी शैली यथार्थवादी न होकर स्वच्छन्दतावादी होती है। अतः **इनका वातावरण रोमानी, स्वप्नमय,** इन्द्रियातीत तथा आध्यात्मिक होता है। भौतिक जीवन से उत्पन्न मानसिक-ग्रंथियों पर भावनाट्य प्रकाश नहीं डालते, उनकी दुनिया सूक्ष्म जीवन की अनुभूतियों से सम्बन्ध रखती है।

संस्कृत नाट्य-साहित्य में कालिदास रचित **'मालविकाग्निमित्र'** तथा **'विक्रमोर्वशीय'** भाव-नाट्य कहे जा सकते हैं। **इनमें बाह्य-संघर्ष नहीं है, मानसिक आवेगों का ही चित्रण है।** यद्यपि ये नाटक आद्योपान्त छन्दोबद्ध व गीतात्मक नहीं हैं फिर भी भावों के नानारूप चित्रण के लिए इनका स्वरूप भाव-प्रवण तथा कल्पना-प्रधान

हैं। बंगला नाटकों में भावोच्छलता की कमी नहीं है क्योंकि बंगाली जाति अत्यन्त भाव-प्रवण है। उनकी भाव-प्रवणता के विषय में **इ० जे० थाम्पसन** लिखते हैं— 'दी रेस इज् इमोशनल बियांड अदर इन इण्डिया, एंड वैष्णव रिव्हाइव्हलिस्ट्स हैव अगेन एंड अगेन सेट फ्लोइंग ए वेव आफ एक्साइटमेन्ट विच हैज् कवर्ड दी प्राव्हिन्स।'

रवीन्द्रनाथ के सामाजिक नाटक तथा प्रहसनों को छोड़कर शेष सभी नाटक भाव-नाट्य कहे जा सकते हैं—किन्तु बंगला नाट्य-साहित्य में किसी नाटककार ने अपने नाटक को 'भावनाट्य' की संज्ञा नहीं दी। हिन्दी नाट्य-साहित्य में भी उदय-शंकर भट्ट के सिवा अन्य किसी लेखक ने अपने नाटक को 'भावनाट्य' नहीं कहा। इसका यह अर्थ नहीं है कि उदयशंकर भट्ट के सिवा अन्य किसी ने भावनाट्य की रचना नहीं की। हिन्दी तथा बंगला नाट्य साहित्य की प्रवृत्ति प्रधानतः स्वच्छन्दता-वादी रही, पौराणिक तथा ऐतिहासिक कथाओं में, गद्यात्मक तथा छन्दोबद्ध नाटकों में रस की आकांक्षा से बाह्य-संघर्षों की अपेक्षा भावना के प्रवाह में पात्र बहते नजर आते हैं। **उदयशंकर भट्ट के भाव नाट्यों की यह विशिष्टता है कि केवल विभिन्नट भावों की नाटकीय परिस्थिति चित्रित करने के लिए उन्होंने उन नाटकों की सृष्टि की।** उन्होंने '**विश्वामित्र और दो भाव नाट्य,** ग्रंथ की भूमिका में 'स्पष्टीकरण' के अन्तर्गत अपने भावनाट्यों के स्वरूप को स्पष्ट किया है। इस ग्रंथ में उनके तीन भावनाट्य हैं—**विश्वामित्र मत्यगन्धा** एवं **राधा**। अमित्राक्षर छन्द में केवल मात्र विभिन्न भावनाओं की विशद अभिव्यक्ति के लिए इन नाटकों का सृजन हुआ है। यद्यपि लेखक का अनुमान है कि विशिष्ट श्रेणी के भाव-प्रवण मर्मज्ञ दर्शकों के लिए इन भावनाट्यों का भिनय आनन्ददायक हो सकता है फिर भी इन नाटकोंके दीर्घ काव्यात्मक संलाप, क्रिया का अभाव तथा अति साहित्यिक भाषा अनभिनेयता के स्पष्ट प्रमाण हैं। **साहित्यिक दृष्टिकोण से इनका मूल्य है किन्तु ये जन-साधारण की वस्तु नहीं हैं।** बंगला के नाटककारों का लक्ष्य था रंगमंच पर अभिनय के उपयुक्त नाटकों की रचना करना अतः उन्होंने भाव-प्रधान नाटकों की रचना की किन्तु इस कोटि के विशुद्ध भावनाट्य, जो केवल पठनीय हैं, उन्हें प्रेरित न कर सके। रवीन्द्रनाथ के भावादर्श प्रधान तत्व रूपक, गीति नाट्य तथा नृत्यनाट्यो का भी लक्ष्य अभिनय था एवं उनके लिए **रवीन्द्रनाथ के समक्ष जोड़ासांको एवं शान्तिनिकेतन के विशिष्ट मंच थे।**

उदयशंकर भट्ट के भावनाट्यों पर अल्प प्रकाश डालने से यह स्पष्ट होगा कि अन्य भाव-प्रधान नाटकों में तथा भावनाट्यों में क्या अंतर है।

विश्वामित्र—इस नाटक में तीन पात्र हैं—विश्वामित्र, उर्वशी और मेनका। **विश्वामित्र** पुरुष हैं एवं उनके तप का अहंकार है। उर्वशी और मेनका स्वर्ग की अप्सराएं हैं। **उर्वशी** में नारी का वह रूप है जो पुरुष के शासन के प्रति विद्रोह करना चाहता

है उसमें प्रतिस्पर्धा की भावना है। **मेनका** में नारी का वह रूप है जो पुरुष को प्रेम के द्वारा वशीभूत करना चाहता है, उसमें आत्म-समर्पण की भावना है। नारी की इन दो भावनाओं का द्वन्द्व उर्वशी तथा मेनका के काव्य-संलापों द्वारा व्यक्त किया गया है। मेनका विश्वामित्र का तप भंग कर दिखा देना चाहती है कि नारी के प्रेममय-स्वरूप में कितनी शक्ति है। प्रथम उपेक्षा के भाव दिखाकर एवं तपस्वी के मन में संघर्ष उत्पन करके वह उसे अंत में पराजित करती है। इस स्खलन के उपरांत विश्वामित्र का अहं भाव पुनः जागृत हो उठता है एवं उन्हें पश्चाताप होता है। मेनका में मातृत्व की भावना जाग उठती है। अन्त में नवजात शिशु को त्याग कर विश्वामित्र तप करने चले जाते हैं एवं उर्वशी के तिरस्कार करने पर मेनका भी शिशु त्याग कर चली जाती है। इसमें अहंकार, प्रेम, मिलनोल्लास, अवसाद आदि का द्वन्द्व चित्रित हुआ है। नारी पात्र दो हैं किन्तु प्रधान पात्र नायक विश्वामित्र हैं।

मत्स्यगन्धाः– ढीमर कन्या मत्स्यगन्धा चिरयौवन के भावों को व्यक्त करती है। अनंग इसे यौवन दान करते हैं। नस नस मे वासना की उत्तेजना फैलती है एवं प्राण प्रिय समागम के लिए आकुल हो उठता है। अपन्वित पाराशर की नौका पर मत्स्य-गन्धा के देह का मिलन होता है। तृप्त मुनि मत्स्यगन्धा के हृदय की समस्त उलझनों को दूर कर उसे अनन्त यौवन का वरदान देकर चले जाते हैं। मत्स्यगन्धा सृजन के आनन्द में झूम उठती है। पुनः उद्दाम वासना जाग्रत होती है एवं शान्तनु जो संसार के प्रतीक हैं, उनसे मत्स्यगन्धा का मिलन होता है। शान्तनु की मृत्यु के उपरान्त वासना फिर तृषित रहती है। चिर-यौवना मत्स्यगन्धा की आकुल वासना से उत्पन्न अशांति, मानसिक हलचल तथा निराशा के चित्र इस नाटक में है।

राधा—राधा आध्यात्मिक प्रेम की प्रतीक है। राधा का प्रेम समर्पण चाहता है, प्रतिदान नहीं। उसके प्रेम के समक्ष नारद की भक्ति भी तुच्छ है क्योंकि उसमें भी अहंकार है। श्रीकृष्ण इस प्रेम के आलम्बन हैं। राधा एवं विशाखा के काव्य-संलापों में प्रेम के उदात्त स्वरूप का चित्रण हुआ है। राधा एवं कृष्ण के काव्य-संलापों में प्रेम के वासना-हीन पवित्र रूप का चित्रण हुआ है। कृष्ण राधा को छोड़ कर कर्तव्य की पुकार सुन कर मथुरा चले जाते हैं एवं राधा के लिए केवल अनन्त प्रतीक्षा ही रह जाती है। राधा की निष्फल प्रतीक्षा देखकर नारद राधा से कहते हैं कि वे कृष्ण को भुला दें। किन्तु राधा की प्रेममय वाणी सुनकर, उनकी तन्मयता देखकर नारद की भक्ति का अहंकार चूर्ण होता है एवं वे राधा को वरदान देते हैं कि राधा का नाम तथा धाम सदा कृष्ण के साथ होगा।

इस नाटक में **राधा** और **विशाखा** दो पात्रियां तथा **श्रीकृष्ण** और **नारद** दो पात्र हैं। नाटक का प्रतिपाद्य विषय निरहंकार, सात्विक प्रेम की विजय है। राधा और विशाखा, राधा और कृष्ण, राधा और नारद के काव्य-संलापों में विभिन्न दृष्टि-कोण से प्रकाश आकर प्रेम के महिमामय रूप को स्पष्ट करता है।

उदयशंकर भट्ट के इन भाव-नाट्यों में क्रिया का अत्यन्त अभाव है एवं घटनाओं के घात-प्रतिघात के स्थान पर भावों का घात-प्रतिघात है। रवीन्द्रनाथ रचित **'मुक्तधारा'** नाटक में इसी तरह दो भावों का संघर्ष है किन्तु प्रतीक रूप में जो आख्यान है उसमें क्रिया का अभाव नहीं है। उत्तरकूट के राजा रणजीत पराजित शिवतराई की प्रजा को काबू में लाने के लिए मुक्तधारा झरने पर बांध बनाकर शिवतराई की प्रजा को जल से वंचित करना चाहते हैं। **शिवतराई की प्रजा** के नेता धनंजय वैरागी हैं जो उन्हें असहयोग आन्दोलन द्वारा विद्रोह करने के लिए उत्तेजित करते हैं। **उत्तरकूट के युवराज** अभिजीत पर शिवतराई की प्रजा का शासन-भार है। युवराज को राजा ने शैशवावस्था में मुक्तधारा झरने के पास पड़ा हुआ पाया था। युवराज शिवतराई की प्रजा के प्रति अत्यन्त संवेदनशील है किन्तु उत्तरकूट की प्रजा चाहती है कि उनसे निकृष्ट तथा हीन शिवतराई की प्रजा कभी माथा न उठा सके। युवराज को उस पद से हटाकर राजा अपने साले को उस पद पर नियुक्त करते हैं एवं युवराज को बन्दी कर लिया जाता है।

मुक्तधारा का बांध निर्मित हो गया एवं उत्तरकूट के शिव-मंदिर की चूड़ा की उपेक्षा करते हुए मुक्तधारा का यन्त्र उद्धत मस्तक हो खड़ा है। उत्तरकूट की प्रजा इस यान्त्रिक सफलता पर उत्सव मनाने भैरव मंदिर की ओर जा रही है। ऐसी परिस्थिति में अभिजीत वन्दीगृह से लापता हो गये हैं। उत्तरकूट तथा शिवतराई की प्रजा उद्विग्न हो उठती है। इस उद्विग्नता के बीच मुक्तधारा का जलोच्छ्वास सुनाई देता है। बांध के एक छिद्र का अनुसंधान करके अभिजीत ने यन्त्र-दानव को आघात किया एवं प्राणों की बलि देकर स्वच्छन्द जल धारा को पुनः मुक्त कर दिया। इस आख्यान में घटनाओं का चढ़ाव, उतार है एवं यूरोप तथा अमेरिका की यान्त्रिक सभ्यता ही कवि के मानस में इस नाटक की पटभूमि है। इस बाह्य-आवरण मे कवि ने सूक्ष्म भाव तत्व को व्यक्त किया है। **इस नाटक में द्वन्द्व यान्त्रिकता औ आध्यात्मिकता में है, मनुष्य के पाशविक-व्यक्तित्व और देवत्व में है।** स्वच्छन्द जीवन-धारा पर बांध बांधकर मानवता का अपमान करना पशुत्व है, दानवत्व है। अन्तरात्मा पीडित होकर अभिजीत के रूप में अपनी वलि देती है। **उग्र राष्ट्रबोध एवं बुद्धि का दर्प अति हीन है एवं उस हीनता के पोषण का साधन शिक्षा है।** धरणी का सहज सौन्दर्य यन्त्र दानव छीन रहा है किन्तु देवत्व के समक्ष दानवत्व की पराजय अवश्यम्भावी है। इन मूल भावों को हृदयंगम करने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि इस कोटि के नाटकों का उद्देश्य भाव-द्वन्द्व चित्रित करना है, प्रतीक इनके साधन-मात्र हैं। शैली की दृष्टि से भी यह प्रमाणित हो जाता है कि **'मुक्तधारा' जैसी गद्य-शैली में लिखित तथा पुरुष प्रधान नाटक भी सफलतापूर्वक भाव-द्वन्द्व व्यक्त कर सकते हैं।** रवीन्द्रनाथ के भाव-नाट्यों में भाव पूर्ण गीतों का प्रयोग पद्यात्मक शैली के अभाव की पूर्ति करता है। बंगला नाट्य-साहित्य में पद्य-शैली में भाव-नाट्यों की रचना नहीं हुई किन्तु उत्कृष्ट पद्य-शैली में गिरीशचन्द्र तथा द्विजेन्द्रलाल की कई रचनाएं हैं जिनमें भाव-प्रधानता भी है एवं क्रिया का ऐक्य भी है।

उदयशंकर भट्ट ने मेनका एवं राधा के जो चित्र खींचे हैं वे अपने आप में संघर्ष पूर्ण नहीं, भावमय हैं। **भावों का संघर्ष दूसरे पात्रों की योजना द्वारा चित्रित हुआ** है जैसे मेनका एवं उर्वशी की नारी भावना विपरीत-धर्मी है तथा राधा एवं नारद की भक्ति-भावना विपरीत-धर्मी है। भाव-नाट्य की यह शैली घटना व विचार-तत्व की एकदम उपेक्षा करती है। गोविन्दवल्लभ पन्त रचित **'वरमाला'** में बाह्य घटनाएं हैं किन्तु उनमें ठोसपन नहीं है, विभिन्न घटनाएं पात्रों के मनोभावों को व्यक्त करने के साधन हैं एवं मधुर **गद्यगीतों में अवंक्षित तथा वैशालिनी के कोमल भावों की अभिव्यक्ति हुई है।** 'वरमाला' में प्रेम की विभिन्न अवस्थाओं का चित्रण हुआ है किन्तु प्रेमलीला की अपेक्षा भाव-द्वन्द अधिक होने के कारण यह भावनाट्य है।

द्विजेन्द्रलाल राय रचित **'पाषाणी'** एवं **'सीता'** में नारी के जीवन का द्वन्द्व विशिष्ट परिस्थितियों में मुखर हो उठा है। इन नाटकों की पद्यशैली भाव-मधुर भी है एवं मर्म-स्पंदन भी है। घटनाओं की सार्थकता से रहित भावनाट्यों की रचना बंगला लेखकों ने नहीं की क्योंकि **रंगमंच पर भावनाट्य अधिक सफल नहीं हो सकते।**

हिन्दी की **भावनाट्य-शैली** स्वाधीनता प्राप्ति के बाद भी विकसित होती गई जबकि आर्थिक संकटों के कारण बंगला नाटकों की प्रवृत्ति पूर्ण-रूपेण वस्तु-धर्मी हो गई। उदयशंकर भट्ट ने सन् १९४. में **'कालिदास'** नामक भावनाट्य की रचना की। विश्वामित्र' (सन् १९३८ में उन्होंने प्रसाद रचित करुणालय के अरिल्ल छंद का प्रयोग किया था। विश्वामित्र, मत्स्यगन्धा, राधा आदि पात्र **पौराणिक** हैं किन्तु कालिदास **इतिहास-काल** के पात्र हैं। यद्यपि इतिहास में उनके संबध में अधिक तथ्य प्राप्त नहीं होते फिर भी उनके काव्य एवं नाटकों से हमे उनके भाव-जगत का परिचय मिलता है। **भाव-नाट्यों का उद्देश्य इसी भाव-जगत के क्षण क्षण परिवर्तित होने वाले रंगों का चित्रण करना है।** भाव जगत को मूर्त रूप देने के लिए कविता, गीत, नृत्य आदि का सहारा भाव-नाट्यो में लिया जाता है। 'वरमाला' जैसे भावनाट्य में घटनाओं का आरोह-अवरोह है, द्विजेन्द्रलाल रचित 'पाषाणी" तथा "सीता" में चरित्र-चित्रण की खूबी है किन्तु उदयशंकर भट्ट के भावनाट्यो मे भाव द्वन्द्व का काव्यात्मक, तत्वपूर्ण तथा सांस्कृतिक चित्रण उत्तम हुआ है। **रेडियो का सहारा पाकर इनमें ध्वनि-नाट्य के टेकनीक का भी मिश्रण हो रहा है।**

काव्य रूपक

काव्य-रूपक का अर्थ है **कवित्व तथा नाटकत्व के सन्तुलित उपादानों से निर्मित नाटक।** कविता का नाटक मे क्या स्थान होना चाहिए इस विषय में विद्वानों में **मतभेद** है। यह स्पष्ट है कि जहां काव्यत्व अधिक उभरता है, वहा नाटकत्व याने गति, संघात, परिणति की ओर ले जाने की शीघ्रगामी चेष्टा आदि को महत्व नहीं

प्राप्त होता एवं जहां नाटकत्व अधिक उभरता है जैसे कि आजकल के समस्या-नाटकों में, वहां रचना नीरस प्रतीत होती है ।

काव्य-रूपक के अन्तर्गत काव्य-तत्व अनेक प्रकार से प्रयुक्त हो सकते हैं । **कविता का प्रयोग** दो प्रकार से होता है—**छन्दोबद्ध** तथा अन्त्यानुप्रास सहित तथा **अमित्राक्षर छन्द** । कविता **पाठ्य** भी हो सकती है तथा **गेय** भी । **गद्य** तथा **पद्य** की मिश्रित शैली का भी प्रयोग हो सकता है जैसा कि पारसी रंगमंच के लिए रचित हिन्दी नाटकों में हुआ है । इसके अतिरिक्त काव्यत्व सूक्ष्म रूप से नाटक में प्रविष्ट होकर उसे **काव्यात्मक व काव्य-धर्मी** बना सकता है । **स्वच्छन्दतावादी शैली** के अधिकांश नाटक काव्यात्मक होते हैं क्योंकि उनमें प्रेम-चित्रण एवं भाव-द्वन्द्व अधिक चित्रित होता है एवं भावावेश की शैली चाहे पद्य रूप में अस्वाभाविक प्रतीत हो किन्तु वह काव्यात्मक अवश्य होती है । क्षीरोदप्रसाद के रोमांटिक नाटकों में, द्विजेन्द्रलाल तथा प्रसाद के राष्ट्रवादी नाटकों में, क्षीरोदप्रसाद, अपरेशचन्द्र मुखोपाध्याय तथा गिरीशचन्द्र के पौराणिक नाटकों में, उदयशंकर भट्ट के भाव-नाट्यों में तथा रवीन्द्रनाथ के सामाजिक नाटकों को छोड़ शेष सभी नाटकों में गीतिकाव्य के तत्व विद्यमान हैं ।

गीतिकाव्य के विषय में "विविध प्रबन्ध" में **बंकिमचन्द्र** ने जो लिखा है हिन्दी में उसका सार यह हैं—"जब हृदय किसी विशेष भाव से आच्छन्न होता है,—स्नेह, शोक, भय अथवा और कुछ तब वह पूर्ण रूप से व्यक्त नहीं हो पाता । कुछ व्यक्त होता है, कुछ अव्यक्त रहता है । जो व्यक्त होता है वह क्रिया व संलाप द्वारा व्यक्त होता है एवं वे ही क्रियाएं तथा संलाप नाटक की सामग्री हैं । जितना अव्यक्त रहता है वह गीतिकाव्य प्रणेता की सामग्री है ।" नाटकों में नाटककार का लक्ष्य बाह्य-संघर्षों का चित्रण होता है एवं गीतिकाव्य में कवि की दृष्टि अन्तर्मुखी हो जाती है । जब नाटकों में गीतितत्व प्रवेश करता है तब नाटककार परिणति की ओर तीव्र वेग से अग्रसर न होकर बीच बीच में स्वीय उच्छ्वासों को पात्रों के मानसिक भाव-विश्लेषण के लिए उनके मुख से कहलाता है । मनोविश्लेषण की यथार्थवादी शैली के विपरीत यह भाव-विश्लेषण काव्य-धर्मी होता है ।

बंगला के पौराणिक तथा रोमांटिक नाटकों में जिस छन्द का प्रयोग हुआ है वह **'गैरिश छन्द'** के नाम से प्रसिद्ध है । यह ब्रजमोहन राय के जात्रानाटकों में प्रयुक्त बंगला का **'पयार'** छन्द है । **माइकेल** मधुसूदन दत्त ने 'मेघनाद वध' एवं 'वीरांगना काव्य में इसे स्वराघात के विन्यास (Stress) द्वारा विशिष्ट रूप दिया । **कालीप्रसन्न-सिंह** रचित 'हुतोम पेंचार नक्शा' में इस छन्द का प्रयोग हुआ एवं कालीप्रसन्न द्वारा प्रयुक्त इस अमित्राक्षर छन्द को **गिरीशचन्द्र** ने अपने पौराणिक नाटकों में प्रयुक्त कर उसकी सफलता सिद्ध कर दी । उसके बाद **क्षीरोदप्रसाद द्विजेन्द्रलाल, रवीन्द्रनाथ** आदि ने भी अमित्राक्षर छन्द का प्रयोग किया एवं नाटकों में अमित्राक्षर छन्द का प्रयोग अत्यन्त उपयुक्त जान पड़ा । नाटकों में तुकान्त तथा अतुकान्त छन्दों के प्रयोग के संबंध

में अंग्रेजी आलोचक **ड्राइडेन** के 'ड्रामाटिक पौयेजी' में क्राइट्स तथा नियेंडर के संवाद उल्लेखयोग्य हैं। **क्राइट्स ने अमित्राक्षर छन्द (ब्लेंक व्हर्स)** का समर्थन किया है एवं **नियेंडर ने तुकांत छंद (र्‌हाईमिंग व्हर्स) का समर्थन किया।** उनका कहना है कि अरस्तू के 'nearness to prose' का अर्थ यह नहीं है कि वह पद्य की तुकान्त शैली में न हो। तुकान्त शैली में भी गद्यात्मक भाव व्यक्त किये जा सकते हैं एवं गद्य में भी काव्यात्मक भाव व्यक्त किये जा सकते हैं। अरस्तू का तात्पर्य था कि संवाद् पात्रों के उपयुक्त स्वाभाविक प्रतीक हों एवं काव्यात्मकता का संबंध तुकांत तथा अतुकांत छन्द से अधिक नहीं किन्तु अन्तर्मुखी भावों की उच्छ्‌वसित, बन्धनहीन अभिव्यक्ति से अधिक है।

हिन्दी में प्रसाद ने गिरीशचन्द्र के अमित्राक्षर छन्द के प्रयोग से प्रेरणा प्राप्त कर **'सज्जन' तथा 'करुणालय' में अमित्राक्षर छंद** का प्रयोग किया। हिन्दी में इन्हीं को गीतिनाट्य कहा गया एवं 'अनघ', 'उन्मुक्त' आदि की रचना द्वारा इसकी **परम्परा चल पड़ी। उदयशंकर भट्ट** के भाव-नाट्यों का स्वरूप भी काव्य-रूपक ही है। सन् १९५० के बाद के काव्य-रूपकों की रचना में **सुमित्रानंदन पंत**, **दिनकर**, **भगवतीचरण वर्मा** आदि के काव्य-रूपक आकाशवाणी द्वारा प्रसारित हुए जिनमें दिनकर रचित **'उर्वशी'** सर्वोत्कृष्ट है। इन रचनाओं द्वारा हमें आभास मिलता है कि धीरे धीरे भारतीय नाट्य-साहित्य में नाटकों के काव्यात्मक स्वरूप को अधिक प्रतिष्ठा मिलेगी जैसा कि संस्कृत दृश्यकाव्यों का लक्ष्य रहा।

इस क्षेत्र में गीतिकाव्य के कवि अधिक सफल होते हैं क्योंकि उनकी स्वाभाविक प्रवृत्ति भावों के विश्लेषण का अवसर ढूँढ़ती है एवं उसके चित्रण में उनकी ध्वन्यात्मक, संगीतमयी, काव्यात्मक भाषा अत्यन्त सफल होती है। **स्वानुभूतियों को वे पौराणिक, प्रतीक व भावुक चरित्रों द्वारा व्यक्त** करते हैं। अतः इस क्षेत्र में बंगला में कवि प्राण द्विजेन्द्रलाल, रवीन्द्रनाथ आदि सफल हुए एवं हिन्दी में प्रसाद, पंत, दिनकर आदि काव्य-प्रतिभा सम्पन्न लेखक सफल हुए।

काव्य-रूपक के क्षेत्र में हिन्दी तथा बंगला में कई रूप प्रयुक्त एवं उनके नाम भी भिन्न भिन्न रखे गये यथा—**गीति-नाट्य, संगीत-रूपक, काव्य-नाटक, नाट्य-काव्य।** गीति-नाट्य में गेय शैली को कविता का प्रयोग होता है एवं संगीत-रूपक में नाटक संगीत की सुसंबद्ध-प्रणाली के प्रयोग द्वारा अभिनीत होता है। **काव्य-नाटक** का आन्तरिक स्वरूप गीति-काव्य का होता है अतः इसमें काव्य प्रधान एवं नाटक गौण स्थान अधिकार करता है। **नाट्य काव्य में** नाटक-पक्ष इतना उपेक्षित नहीं होता, इनमें काव्यत्व के साथ कथावस्तु का संगठन भी सुदृढ होता है जैसे रवीन्द्रनाथ रचित **'प्रकृतिर प्रतिशोध'**, इनमें काव्य-नाटक का ही ऐसा स्वरूप है जिसमे नाटक के साथ गीतिकाव्य अपना संबंध जोड़ने के लिए अपने उच्छ्‌वास में नाटक की सत्ता को प्रभावित करता है अन्यथा गीति-नाट्य, संगीत-रूपक तथा **नाट्य-काव्य में भाव-द्वंद्व होते हुए**

भी नाटकीय उपादान यथेष्ठ रहते हैं। रवीन्द्रनाथ रचित कई काव्य-नाट्य उत्कृष्ट कोटि की रचनाएं हैं यथा—चित्रांगदा, विदाय-अभिशाप, गांधारीर आवेदन, सती, नरकवास, लक्ष्मीर परीक्षा, कर्ण-कुंती संवाद। हिन्दी में निराला रचित नाट्य-कविता 'पंचवटी-प्रसंग' उल्लेखयोग्य हैं। किन्तु उसमें नाटकीयता की अपेक्षा काव्य गुण अत्यधिक है।

इन काव्य-नाट्यों में एक ही विषय को केन्द्रीभूत कर भाव-चक्र की रचना हुई है। नाटककार का लक्ष्य उस विशिष्ट परिस्थिति में विभिन्न भाव-तरंगों में उन्मथित पात्रों के हृदय का नाटकीय-विश्लेषण करना है। **यह परिस्थिति स्थिर होती है एवं भाव-तरंगों का उत्थान पतन होता है।** उदयशंकर भट्ट के भावनाट्य तथा 'मुक्तधारा' की आलोचना में यह स्पष्ट है कि भाव-द्वन्द्व प्रबल होते हुए भी परिस्थिति स्थिर नही है किन्तु काव्य-नाट्यों में कवि भाव-जगत को पूर्ण करने के लिए एक नाटकीय-परिस्थिति की कील को चुन लेता है। इस नाटकीय-परिस्थिति का मार्मिक आविर्भाव महाभारत के कर्ण-चरित्र के जीवन में हुआ है। चिर-जीवन अपने जन्म वृत्तांत के लिए लांछित परम वीर तथा उदार कर्ण की एकमात्र अभिलाषा थी युद्ध में अर्जुन को पराजित करना। युद्ध आरम्भ होने की पूर्व संध्या में कुन्ती आकर एक गोपन रहस्य का उद्घाटन कर जाती है कि पांडव कर्ण के भाई हैं। महाभारत की कथा के अनुसार कुन्ती के पूर्व कृष्ण ही कर्ण के समीप रहस्य का उद्घाटन कर देते हैं किन्तु रवीन्द्रनाथ ने इस रहस्य का उद्घाटन कर्ण-कुन्ती के संवाद में कराया है। इससे कुन्ती की नारी सुलभ लज्जा को आघात नहीं पहुचा वरन् मातृत्व की एक करुण, सामाजिक विवशता अश्रु सजल रूप में स्पष्ट हो उठी है। यह कर्ण के प्रति किया गया एक सामाजिक अन्याय है अथवा नियति का परिहास है। इस निर्मम परिस्थिति को चुनकर कवि ने कर्ण एवं कुन्ती के भावों के वात्याचक्र का दिग्दर्शन कराया है।

रवीन्द्रनाथ रचित **'कर्ण-कुन्ती-संवाद'** (सन् १९००) में काव्यत्व, चरित्र-विश्लेषण तथा आदर्श की प्रतिष्ठा का रूपायन अत्यन्त सुचारु ढंग से हुआ है। मातृ परिचय प्राप्त कर कुछ क्षणों के लिए कर्ण आत्म-विस्मृत हो जाते हैं। वे कहते हैं—

तोमार आह्वाने
अन्तरात्मा जागियाछे—नाहि बाजे काने
युद्धभेरी जयशंख—मिथ्या मने हय
रणहिंसा, वीर ख्याति जयपराजय।
कोथा जाबो लये चलो।"[1]

१—संचयिता—कर्ण-कुन्ती-संवाद—पृष्ठ—४०० (विश्वभारती सन् १९६३)

कुन्ती जब कहती है कि कर्ण ही ज्येष्ठ पांडव हैं अतः वे चलकर सिंहासन पर अधिकार करें तब मान मिश्रित स्वर में कर्ण कहते हैं—

'सिंहासन ! जे फिरालो मातृ-स्नेह-पाश—
ताहारे दितेछो मातः राज्येर आश्वास,—'[1]

कुन्ती के हृदय में जिस अनुताप की ज्वाला आजीवन जलती रही उसकी अभिव्यक्ति भी मर्म-स्पर्शी है—

'त्याग कारेछिनू तोरे
सेइ अभिशापे, पंचपुत्र वक्षे कोरे
तबू मोर चित्त पुत्रहीन,—तबू हाय
तोरि लागि विश्वमाझे बाहु मोर धाय
खुंजया वेड़ाय तोरे।'—[2]

अन्त तक कुन्ती को निराश ही लौटना पड़ता है एवं कर्ण कहते हैं कि युद्ध में या तो उनकी मृत्यु होगी, नहीं तो अर्जुन की एवं कुन्ती किसी भी परिस्थिति मे पंच पुत्रों की माता बनी रहेंगी। कर्ण के हृदय की व्यथा की अभिव्यक्ति मे गीतिकाव्य की वाग्विदग्धता तथा भावुकतापूर्ण रूप में वर्तमान है। इसके साथ ही इस संवाद की नाटकीयता प्रशंसनीय है। कर्ण अन्त में माता से यही आशीर्वाद चाहते हैं कि यश के लोभ व राज्य के लोभ में पड़कर वे वीर के आदर्श से विचलित न हों।

हिन्दी में सुमित्रानंदन पंत, दिनकर आदि के द्वारा जिन काव्य रूपकों की रचना हुई है उनमें दृश्य तत्व की अपेक्षा **ध्वनि-रूपकों के तत्व** अधिक हैं क्योंकि उनका लक्ष्य पाठ्य व श्रव्य नाटक रहा। उदाहरणार्थ **दिनकर रचित 'मगध-महिमा'** के पात्र हैं— कल्पना, इतिहास, गौतम, सुजाता, नागरिक, सेल्यूकस, सेल्यूकस की कन्या, मेगस्थनीज, चाणक्य और सभासद् तथा अशोक। इनमें कल्पना और इतिहास प्रतीक चरित्र हैं एवं इनके दृश्य-स्वरूप की अपेक्षा इनकी ध्वनि हमें अधिक प्रभावित कर सकती है। रेडियो-रूपक की शैली पर निर्मित होने के कारण **संकलनत्रय (स्थान**, काल तथा क्रिया ऐक्य) **का अभाव है। इनमें केवल काव्यत्व उभर पाया है, नाटकीय परिस्थिति का सृजन व चयन नहीं हो सका** है। सिद्धनाथ कुमार के काव्य-रूपक **'संघर्ष', 'विकलांगों का देश' आदि में काव्यत्व तथा नाट्यतत्व का समन्वय हुआ है** किन्तु वे भी ध्वनि-रूपक के तत्वों पर अवलम्बित हैं। सुमित्रानन्दन पंत के काव्य-

---

१—संचयिता—कर्ण-कुन्ती-संवाद—पृष्ठ—४०२ (विश्वभारती सन् १९६३)
२—संचयिता—कर्ण-कुन्ती-संवाद—पृष्ठ—४०१।

रूपक **'रजतशिखर'**, **'फूलों का देश'**, **'उत्तर शती'** आदि में भी संवादों के रूप में अतुकांत **रोला छन्दों** में उत्कृष्ट कोटि के काव्यत्व की अभिव्यक्ति हुई है, उनमें भावादर्श तथा उच्च कोटि की कल्पना का योग है किन्तु हृदय को उन्मथित करने वाली किसी नाटकीय परिस्थिति की अवतारण नहीं हुई है। **हिन्दी के काव्य रूपकों में श्रव्य-काव्य के तत्व हैं।**

निष्कर्ष

हिन्दी तथा बगला नाटकों की **स्वाभाविक प्रवृत्ति रोमांटिक शैली** के अधिक अनुकूल है क्योंकि संस्कृत नाटक तथा भारतीय लोक-नाटक, जिनसे उनका जन्मजात सम्बन्ध है, यथार्थवादी शैली के पक्षपाती नहीं हैं। विभिन्न स्थायी भावों को आलम्बन, उद्दीपन आदि के सहारे रस की कोटि तक पहुंचाना एवं आनन्द की उपलब्धि में सहृदयों का तादात्म्य साधित करना उनका लक्ष्य था। वे जीवन की वास्तविकताओं से अनभिज्ञ नहीं थे किन्तु अपनी कल्पना के द्वारा वे ऐसे जगत का निर्माण करते थे जिनमें जीवन का फोटोग्राफिक चित्र तो नहीं मिलता था, किन्तु उससे भी महान **जीवन के चिरन्तन सत्य** का आभास मिलता था। लोक-नाटकों की भाव-गहनता तथा कलात्मकता संस्कृत नाटकों की तुलना में नगण्य थी फिर भी गीत, नृत्य काव्यात्मक संलाप आदि उपकरणों के सहारे उन्होंने देश की नाट्य-परम्परा को जीवित रखा। हिन्दी तथा बंगला नाटकों का **रस के प्रति आग्रह एव नृत्य, गीतों** का प्रचुर प्रयोग संस्कृत तथा लोक-नाटकों की प्रवृत्ति के परिचायक हैं।

इनके सिवा आधुनिक हिन्दी तथा बंगला नाट्य-साहित्य के उद्भव-काल में जिन बाह्य तत्वों का प्रभाव पड़ा उनमें अंग्रेजी साहित्य के प्रसिद्ध **रोमांटिक शैली के नाटककार शेक्सपियर के नाटक विशेष रूप से** उल्लेखनीय हैं। शेक्सपियर के रोमांटिक ट्रेजेडी, रोमांटिक कामेडी, ड्रामाटिक-रोमांस आदि से बंगला नाट्य-साहित्य अनुप्राणित हुआ एवं बंगला के माध्यम से यह प्रेरणा हिन्दी नाट्य-साहित्य के अन्तर में प्रविष्ट कर गई। हिन्दी का पारसी रंगमंच तथा उन पारसी रंगमचों के नाटकों का रूप-रंग रोमांटिक तत्वों से निर्मित हुआ किन्तु युग के अनुकूल वे अपना विकास तथा परिमार्जन न कर सके अतः हिन्दी के रोमांटिक नाटकों का एक अध्याय पारसी नाटक कम्पनियों के साथ सन् १९२३ के करीब समाप्त हो गया। सन् १९४० के उपरान्त **आकाशवाणी का सहारा** पाकर हिन्दी के गीति-नाट्य व काव्य-रूपक की शाखा पल्लवित हो उठी।

हिन्दी तथा बंगला के पौराणिक तथा राष्ट्रप्रेम व्यंजक ऐतिहासिक नाटक कल्पना **एवं भाव-प्रवणता** से ओतप्रोत है। **शृंगार रस के** चित्रण में पौराणिक, ऐतिहासिक व कल्पित कथाओं में उन्होंने स्वच्छन्दतावादी शैली ही अपनाई। उनके प्रतीक-नाटकों के एवं कई समस्यामूलक नाटकों में भी स्वच्छन्दतावादी शैली का प्राधान्य

है । इनके सिवा बंधन मुक्त भावों का स्वच्छन्द अभिव्यक्ति के लिए तथा बंगला नाटककारों ने गीति-नाट्य, नृत्य-नाट्य, काव्य-रूपक आदि रूप-वैचित्र्य को अपनाया एवं इस क्षेत्र में **रंगमंच का सहारा** पाकर बंगला के रोमांटिक नाटक अधिक फले फूले ।

हिन्दी तथा बंगला के रोमांटिक नाटकों के निर्माण, विकास एवं प्रयोग के पथ पर जो साम्य तथा वैषम्य के तत्व हैं **उन** पर प्रकाश डालने से उनकी अन्तरात्मा का ऐक्य स्पष्ट हो जायेगा ।

हिन्दी तथा बंगला के रोमांटिक नाटकों में साम्य

१—हिन्दी तथा बंगला के रोमांस-धर्मी नाटकों में भारतीय लोक-नाट्य **रास तथा जात्रा के तत्व अधिक हैं ।** रास तथा जात्रा नाटकों में अहैतुक भक्ति का जो उच्छ्वास दिखाई देता है, गीत तथा नृत्यों का जो बाहुल्य रहता है वे तत्व हिन्दी तथा बंगला के रोमांटिक नाटकों में हैं । पौराणिक आख्यानों में **भक्ति** के रूप में, ऐतिहासिक आख्यानों में प्रेम एवं **देशभक्ति** के रूप में तथा कल्पित कथाओं में **आदि रस** के रूप में तत्व व्यक्त हुए हैं । **वैष्णव प्रेम तत्व** में राधा-कृष्ण की उपासना जिस मधुर रूप में नृत्य, गीतों के सहारे हुई हिन्दी तथा बंगला नाटकों ने जन-नाटकों के उन तत्वों को ग्रहण कर लिया ।

२—रोमांटिक नाटकों की सबसे महत्वपूर्ण शाखा है प्रेम लीलापूर्ण रोमांचकारी नाटक । इनकी कथावस्तु भी **पौराणिक, ऐतिहासिक, कल्पित तथा उपकथाओं** से चुनी जा सकती है । हिन्दी तथा बंगला नाटककारों के समक्ष कथानकों का यह स्रोत एक था । भारतीय पौराणिक, ऐतिहासिक कथाएं तथा उपकथाएं सभी भारतीय भाषाओं की सम्पत्ति हैं । हिन्दी तथा बंगला नाटककारों ने ऐतिहासिक कथाओं के लिए अधिकांशतः **राजस्थान** की कथाओं को चुना जिनमें **शौर्य एवं प्रेम का** सुन्दर समन्वय हुआ है । **अरब तथा ईरान की प्रेम कथाओं** से भी हिन्दी तथा बंगला लेखकों ने सामग्री ग्रहण की ।

३—स्वच्छंदतावादी शैली का लक्षण यह है कि उसमें अतीन्द्रिय, सूक्ष्म भावों की अभिव्यक्ति होती है । हिन्दी तथा बंगला के प्रतीकात्मक नाटकों मे अतीन्द्रिय भावों की सूक्ष्म अभिव्यक्ति हुई है । उनमें अद्वैत **वेदान्त के रहस्यवाद, 'प्रबोध चन्द्रोदय' की शैली** तथा पाश्चात्य की **सांकेतिक शैली** के समन्वित रूप पाये जाते हैं ।

४—गीत तथा नृत्य पर आधारित नाटक रचना के लिए संस्कृत के उपरूपकों का आदर्श उनके सामने था, लोक नाट्यों मे रस-सृष्टि के ये साधन वर्तमान थे तथा पाश्चात्य के 'आपेरा', 'बेले' आदि से हिन्दी तथा बंगला नाटककार परिचित हो रहे थे । वे **'आपेरा', 'बेले'** आदि देखकर अनुप्राणित हुए किन्तु भारतीय गीत, नृत्य तथा

छंद के उपकरणों से उन्होंने गीति नाट्य, नृत्यनाट्य आदि का निर्माण किया। जयदेव रचित **'गीत गोविन्द', नटराज का नृत्य तथा कृष्ण का गोपियों सहित रास-नृत्य** समान रूप से हिन्दी तथा बंगला नाटककारों की प्रेरक शक्ति है।

रोमांटिक नाटकों के क्षेत्र में विभिन्न प्रयोगों का अवकाश है इस कारण मूल-भाव के ऐक्य होते हुए भी उन्होंने जो प्रयोग किये उनमें यथेष्ट वैचित्र्य तथा विभिन्नताएं हैं क्योंकि उनके साधन भी भिन्न-भिन्न प्रकृति के थे।

हिन्दी तथा बंगला के रोमांटिक नाटकों में वैषम्य

१—बंगला नाटकों का आरम्भ ही **थियेटर** की प्रेरणा से हुआ। बंगला नाट्य-क्षेत्र में जात्रा तथा थियेटर की शैली के मिश्रण से **गीताभिनय** का उदय हुआ। हिन्दी में पारसी कम्पनियों के रंगमंचों पर जन नाट्य शैली का यथेष्ट प्रभाव पड़ा था किन्तु लक्ष्य कलात्मक न होकर व्यावसायिक होने के कारण किसी नवीन शिल्प-विधि के सृजन में वे असमर्थ रहे।

२—**बंगला के प्रेमलीला पूर्ण नाटकों में प्रेम का अत्यन्त मधुर, संयत तथा सुरुचिपूर्ण चित्रण हुआ है** किन्तु हिन्दी के अधिकांश प्रेमलीला पूर्ण नाटक पारसी नाटक मडलियों द्वारा अभिनीत होने के कारण एवं रचयिता उर्दू के लेखक होने कारण प्रेम के भद्दे तथा कुरुचिपूर्ण चित्रण हुए।

३—प्रतीक शैली के नाटकों में **रवीन्द्रनाथ के रूपक-सांकेतिक नाटकों** जैसी रचनाओं का हिन्दी में अभाव है। रवीन्द्रनाथ ने उपनिषद के अद्वैत वेदांत की सूफी तथा सन्तों की रहस्य भावना का पाश्चात्य की सांकेतिक शैली से मिलन कराके अपने भावादर्श की प्रतिष्ठा के लिए तत्व-रूपक व रूपक-सांकेतिक नाटकों की रचना की। हिन्दी में प्रसाद तथा सुमित्रानन्दन पन्त ने 'प्रबोध-चन्द्रोदय' की शैली अपनाई। रवीन्द्रनाथ के तत्व रूपकों में **बाउल** चरित्र भी अपूर्व सृष्टि है। बंगाल में बाउल गायक परमात्मा के प्रेम में बावरे बनकर आध्यात्मिक अर्थ पूर्ण गीत गाते फिरते हैं। रवीन्द्रनाथ ने लोक-जीवन में से बाउल गायक को चुनकर उन्हें मुक्त-धारा का प्रतीक चरित्र बना दिया। हिन्दी में कोई ऐसा गायक-सम्प्रदाय नहीं है जो केवल परमात्मा संबंधी रहस्यपूर्ण गीत गाता हो।

४—रवीन्द्रनाथ ने **"वाल्मीकि प्रतिभा"** नामक गीतिनाट्य में **समस्त नाटक में सुर का जैसा प्रयोग** किया, वैसा प्रयोग हिन्दी गीतिनाट्यों में नहीं हुआ। रवीन्द्रनाथ ने लोक-संगीत, शास्त्रीय-संगीत के साथ पाश्चात्य संगीत का मिश्रण करके सुरों पर नाटक को आधारित किया। यह काव्य-रूपक तथा संगीत-रूपक के बीच की कड़ी है। हिन्दी के गीतिनाट्य काव्य-रूपक ही हैं किन्तु वे पाठ्य न होकर गेय भी हैं। बंगला

के गीतिनाट्यों को **रंगमंच** का सहारा मिला एवं हिन्दी के गीतिनाट्यों को **आकाश-वाणी** का सहारा मिला अतः दोनों के रूप-विधान में कुछ अन्तर हो गया है ।

५—**रवीन्द्रनाथ ने जैसे नृत्य-नाट्यों की रचना की,** हिन्दी में उनका अभाव है। इन नृत्य-नाट्यों की रचना की प्रेरणा रवीन्द्रनाथ को जाव्हा की यात्रा से मिली। उन नृत्य-नाट्यों की सफलता का श्रेय शान्तिनिकेतन आश्रम के रंगमंच को है। **अनुरूप मंच तथा कुशल शिल्पियों** के अभाव में नृत्यनाट्य सफल नहीं हो सकता एवं हिन्दी क्षेत्र में इन दोनों का अभाव रहा।

६—**रवीन्द्रनाथ ने जैसे ऋतुनाट्यों** की रचना की, हिन्दी में उनका भी अभाव है। इन ऋतुनाट्यों के प्रेरक हैं **शान्तिनिकेतन आश्रम के ऋतु-उत्सव** । उन्हीं उत्सवों पर अभिनय कराने के लिए कवि को ऋतुनाट्यों की रचना करनी पड़ी । हिन्दी क्षेत्र में इस तरह के ऋतु-उत्सवों में अभिनय कराने की कोई स्थायी मांग न थी अतः रचनाएं भी नहीं हुई ।

७—हिन्दी में दो **एकांकी गीति-नाट्य** पत्रिकाओं में प्रकाशित हुए। लक्ष्मी-प्रसाद सिंह रचित "**मदनिका**" मार्च, सन् १९४१ में "**वीणा**" में तथा उनकी अन्य रचना "**धूपछांह**" अगस्त, सन् १९५० में "**नईधारा**" में प्रकाशित हुई। किन्तु हिन्दी के गीति-नाट्य बाद में आकाशवाणी की छत्रछाया में पूर्ण-विकसित हो सके ।

८—हिन्दी नाट्य-साहित्य में सेठ गोविन्ददास रचित "**विकास**" तथा उपेन्द्र नाथ अश्क रचित "**छठा बेटा**" तन्त्र (technique) की दृष्टि से विशिष्टतापूर्ण है। "विकास" को लेखक ने नाटक न कहकर "नाटकीय संवाद" कहा है क्योंकि हिन्दी रंगमंचों में उनका सफलतापूर्वक अभिनीत होना सम्भव नहीं है। किन्तु **रवीन्द्रनाथ के "कर्ण-कुन्ती संवाद" में तथा "विकास" जैसे नाटकीय-संवाद में कोई साम्य नहीं है।** "विकास" में युवक युवती निद्रा की गोद में आश्रय लेते है। युवक के स्वप्न में आकाश और पृथ्वी का संवाद होता है जिसमें बुद्ध से लेकर गांधी तक के इतिहास के खंड दृश्य उपस्थित किये जाते हैं। ऐतिहासिक वस्तु, तथा प्रतीक शैली के मिश्रण से रचित इस नाटक में कल्पना की उड़ान अत्यंत ऊँची है। अश्क रचित "छठा बेटा" भी स्वप्न-नाटक की शैली पर रचित है किन्तु उसकी वस्तु सामाजिक है एवं कल्पना का नियन्त्रित प्रयोग होने के कारण वह अभिनेय भी है। इस शैली के स्वप्न-नाटक बंगला नाट्य-क्षेत्र में रचित नहीं हुए क्योंकि बंगला का गण-रंगमंच यथार्थवादी शैली से उत्तरोत्तर अधिक प्रभावित हुआ एवं यान्त्रिक प्रयोग उनमें अधिक होने लगे।

समस्त भारत की राजनैतिक, सामाजिक तथा आर्थिक परिस्थिति एक होने के कारण उनकी विभिन्न नाट्य-प्रवृत्तियां एक साथ ही विकसित तथा परिवर्तित हुई। बीसवीं सदी का प्रारम्भिक युग राष्ट्रीय उत्तेजना का युग था अतः हिन्दी तथा बंगला

के नाटकों में उच्छ्वसित देशप्रेम अभिव्यक्त हुआ। हिन्दू-मुस्लिम-ऐक्य की भावना से अनुप्राणित होकर द्विजेन्द्रलाल ने दुर्गादास के प्रति औरंगजेब की बीवी गुलनार को आसक्त दिखाया है एवं हरिकृष्ण प्रेमी ने शिवाजी के प्रति औरंगजेब की बेटी जेबुन्नीसा को आसक्त दिखाया है। ये ऐतिहासिक तथ्य नहीं, **लेखकों की रोमांटिक प्रवृत्ति** के परिणाम हैं जिनका बीज हमें ज्योतिरिन्द्रनाथ ठाकुर रचित "अश्रुमती" में मिलता है जिसमें स्वजाति-प्रेमी प्रतापसिंह की कन्या अश्रुमती को सलीम के प्रति अनुरक्त दिखाया गया है। **ऐतिहासिक नाटकों में प्रणय** व्यापारों का पुट आदि रस के प्रति झुकाव के प्रमाण हैं।

गीत, नृत्य, प्रणय-व्यापार आदि रोमांटिक तत्व उपकथाओं तथा कल्पित कथाओं में अधिक जंचते हैं। इस दृष्टि से **बंगला में क्षीरोदप्रसाद विद्याविनोद** के नाटक सफल हुए हैं। **हिन्दी के क्षेत्र में उदयशंकर** भट्ट के भावनाट्य रोमांटिक दृष्टिकोण से उत्कृष्ट हैं जिनमें पौराणिक पात्रों के मानसिक हलचल का आधुनिक रूप में चित्रण करने में वे अत्यंत सफल हुए हैं। भावों की अतल गहराई तथा विभिन्न प्रयोगों की दृष्टि से रवीन्द्रनाथ के नाटक अतुलनीय हैं। उनके रूपक-सांकेतिक नाटक, गीतिनाट्य, नृत्यनाट्य तथा ऋतुनाट्य ने किसी परम्परा को जन्म नहीं दिया किन्तु अपने युग को उन सौन्दर्यपूर्ण रचनाओं द्वारा मुग्ध किया।

समस्या-नाटकों के उदय के साथ हिन्दी तथा बंगला नाटककारों की रोमांटिक प्रवृत्ति ढलने लगी क्योंकि भारत की सामाजिक तथा आर्थिक परिस्थिति ने उन्हें चिन्तित किया। कुछ वर्षों तक समस्या-मूलक नाटकों के सृजन ने रोमांटिक नाटकों को दबा दिया किन्तु हिन्दी तथा बंगला नाटककारों की स्वाभाविक प्रवृत्ति रोमांटिक नाटक लिखने की है। संस्कृत नाटकों की परम्परा तथा भारतीय जन-नाटक संस्कार के रूप में उनमें समाये हैं अतः पाश्चात्य ढंग के समस्या नाटक की रचना का युग अब अस्तगामी है एवं **रोमांटिक प्रवृत्ति के सूर्योदय की लालिमा जन-नाटकों के उत्थान तथा काव्य-रूपकों की सृष्टि में झांक रही है।** सामाजिक-चेतना के भाव भी नृत्य, गीत तथा प्रतीकों में रूप ग्रहण कर सकते हैं।

अध्याय ७

रंगमंच एवं अभिनेयता

रंगमंच का स्वरूप—नाट्य-प्रदर्शन का संबंध रंगमंच से है एवं रंगमंच का संबंध दो पक्षों से है—प्रथम-अभिनय द्वारा रसानुभूति एवं द्वितीय-नाटक का मंच पर प्रस्तुनिकरण। 'नट' धातु से नाटक की व्युत्पत्ति इस तथ्य को प्रमाणित करती है कि **अभिनय ही नाटक का प्राण है**। अभिनय के द्वारा ही लेखक, पात्र, अभिनेता तथा दर्शकों के हृदय का तादात्म्य होता है जिसे रस-दशा व साधारणीकरण की अवस्था कहते हैं। रस ही भारतीय नाटककारों का उद्देश्य रहा। **नाटक के अभिनय एवं प्रदर्शन के लिए रंगमंच की आवश्यकता** होती है। नृत्त के साथ हाव-भाव पूर्ण अभिनय तथा संवाद आदि तत्वों का योग करके नाटक के कलापक्ष का विकास हुआ एवं खुले आकाश के नीचे किसी टीले रूपी मंच का विकास होते होते आधुनिक रंगमंच का विकसित स्वरूप हमारे सामने आया।

भरत नाट्यशास्त्र में प्रेक्षागृह, अभिनय, अभिनेता के गुण, दर्शकों की योग्यता तथा सहृदयता आदि का सूत्र-रूप में उल्लेख है। नाटक एक संयुक्त-कला ही नहीं **सामूहिक-कला** भी है। इसमें एक ओर संगीत, अभिनय, चित्रकला, स्थापत्य तथा काव्य का मिश्रण होता है, दूसरी ओर नाटककार, निर्देशक, नट, दर्शक, मंच-शिल्पी आदि का योग होता है। नाटक को अभिनेय बनाने के लिए अनेक कलाकार तथा शिल्पियों का मिलन होता है एवं नाटक देखने के लिए ऊंच-नीच सभी वर्गों के लोग एकत्रित होते हैं। रंगालय व प्रेक्षागृह ही वह मिलन-स्थल है जहां कोई भी मानव-समाज एकत्रित होकर अपने सांस्कृतिक-स्वरूप को व्यक्त करता है। रंगमच द्वारा ऐक्य-साधन के महत्व-पूर्ण लक्ष्य को स्पष्ट करते हुए पाश्चात्य के प्रसिद्ध **नाट्याचार्य मैक्स राइनहार्डस्** लिखते हैं—'इट इज टू दी एक्टर एंड टू नो वन एल्स दैट दी थियेटर बिलांग्स। दिस डस नाट मीन, आफ कोर्स दी प्रोफेशनल एक्टर एलोन, बट दी एक्टर एज पोयेट, एज डाइरेक्टर, स्टेज-मैनेजर, म्युजिशियन, सीन-डिजाइनर, पेंटर, एंड सर्टेनली नाट लीस्ट आफ आल, दी एक्टर एज स्पेक्टेटर, फार दी कान्ट्रीब्यूशन आफ दी स्पेक्टेटर्स इज आलमोस्ट एज इम्पोर्टेन्ट एज दैट आफ दी कास्ट। दी आडियेन्स मस्ट टेक इट्स पार्ट इन दी प्ले इफ वी आर एवहर टू सी एराइज ए ट्रू आर्ट आफ दी थियेटर—दी ओल्डेस्ट मोस्ट पावरफुल, एंड मोस्ट इमीडियेट आफ दी आर्टस, कम्बाइनिंग दी मेनी इन वन।' भरत मुनि के 'नाट्य' शब्द का भी ऐसा ही व्यापक अर्थ है। नाटक के कृतित्व-पक्ष के सिवा नाटक के रंगमंचीय-स्वरूप का संबंध दो तत्वों से है—रंगमंच तथा अभिनय। 'णीञ्' धातु में 'अभि' उपसर्ग जोड़कर अभिनय शब्द बना जिनका अर्थ है शब्द के

भाव को पूर्णता प्रदान करना व मुख्य अर्थ तक पहुंचाना। कथा, देश, वृत्ति, भाव और रस अभिनय द्वारा प्रदर्शित होकर 'नाट्य' कहलाते है।

भारतीय नाट्यशास्त्र के अनुसार अभिनय चार प्रकार के होते हैं—**१–आंगिक** अभिनय—मस्तक, ग्रीवा, हस्त, पाद आदि के हाव-भाव पूर्ण संचालन से संबंधित हैं। २–**वाचिक** अभिनय भाव के अनुसार अभिनेता के स्वर के उतार-चढ़ाव, आवेग, कम्पन, विराम आदि से संबंधित है। ३–**सात्विक** अभिनय मानसिक भावों की अभिव्यक्ति से संबंधित है यथा—स्तम्भ, स्वेद, रोमांच, स्वरभंग ववर्ण्य, अश्रु, वेपथु, प्रलय। ४—**आहार्य** अभिनय अभिनेता की वेष-भूषा, अलंकार, प्रसाधन तथा प्रतिरूप (Models) एवं संजीव (Living Creatures) के प्रयोग से संबंधित है। भरत नाट्यशास्त्र में **विकृष्ट, चतुरस्त्र, त्रस्त्र** प्रेक्षागृहों का वर्णन मिलता है किन्तु उनके ध्वंसावशेष प्राप्त न होने के कारण यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता कि उनका स्वरूप कैसा था। विकृष्ट प्रेक्षागृह को डा० मनोमोहन घोष ने डिम्बाकार (Oblong), चतुरस्त्र को आयताकार (Rectangular) एवं त्रस्त्र को त्रिभुजाकार (Triangular) माना है। विकृष्ट-चतुरस्त्र शायद वर्गाकार (Square) प्रेक्षागृह है।

विकृष्ट, चतुरस्त्र तथा त्रस्त्र प्रेक्षागृहों को कई विद्वानों ने क्रम से ज्येष्ठ, मध्यम तथा कनिष्ठ प्रेक्षागृह माना है। प्रेक्षागृह के दो भाग होते थे—मंच और दर्शकों के बैठने का स्थान। मंच के तीन भाग होते थे—रंगपीठ, रंगशीर्ष, और नेपथ्य। रंगशीर्ष और नेपथ्य के बीच में तिरस्करणी व पटी रहती थी। संस्कृत के रंगमंचों के अस्तित्व की प्रामाणिकता एवं उनकी रूपरेखा यहां आलोच्य-विषय नहीं है किन्तु इतना निश्चित है कि **हिन्दी तथा बंगला के रंगमंचों का प्रारम्भ जिस समय हुआ उस समय संस्कृत नाटकों के रंगमंचों का आदर्श उनके सामने न था** क्योंकि मुस्लिम काल में वे निश्चिन्ह हो चुके थे। मुगल दरबारों में तथा राजाओं के प्रमोद-भवनों मे नर्तकियों की नूपुर-ध्वनि ही झंकृत हुआ करती थी। जनता के बीच लोकनाटक प्रचलित थे किन्तु रंगमंच की दृष्टि से वे अत्यंत निर्धन थे। खुले मैदान के बीच में तख्त व दरी बिछाकर अथवा मंदिर के चबूतरे पर नृत्य-गीत पूर्ण, अंक तथा दृश्य विभाजन रहित लोक-नाटकों का अभिनय होता था।

अभिनय तथा रंगमंच की दृष्टि से आधुनिक हिन्दी तथा बंगला नाटकों में जो स्वरूप है वह पाश्चात्य ढंग का है। **प्रारम्भ से ही यूरोपीय थियेटरों से प्रेरणा मिली एवं उनका अनुकरण किया गया।** अभिनय तथा रंगमंचीय-शिल्प की कुशलता की दृष्टि से बंगला रंगमंच पाश्चात्य की तुलना में पिछड़ा हुआ है। हिन्दी रंगमच को अब तक स्थायी स्वरूप ही प्राप्त न हो सका। **लोक-नाटकों को उपेक्षित किया गया एवं संस्कृत अभिनय पद्धति तथा रंगमंचीय-शिल्प के पुनरुद्धार की प्रचेष्टा किसी ने नहीं की।** अतः अभिनय तथा रंगमंच की दृष्टि से हिन्दी तथा बंगला नाट्यक्षेत्र की जो मान्यताएं हैं उसे समझने के लिए पाश्चात्य टेकनीक से अभिज्ञ होना आवश्यक है।

नाटक व रंगमंच का प्राचीनतन रूप **अमिनटन (पेन्टोमाइम)** है जबकि उनमें संवाद, कथा आदि का भी अभाव था। रंगमंच की प्राचीन रीति **असत्याभाषी भावधर्मी है** जिसके ज्वलन्त प्रमाण लोकधर्मी नाटक हैं। ग्रीक-रंगमंच में भी रंगमच की भावधर्मी रीति अपनाई गई थी।

ग्रीस के प्राचीन स्थेनियन थियेटर से पाश्चात्य रंगमंच के इतिहास का प्रारम्भ होता है। स्थेनियन, हेलेनिस्टिक तथा ग्रेको-रोमन थियेटर मन्दिर के पास उन्मुक्त प्रांगण के रूप में किसी पहाड़ी की तलहटी में स्थित होते थे। नाटकों के अभिनय में **मुखौटा, भारी पोशाक, ऊंचे जूतों** का प्रयोग होता था। चमत्कार प्रदर्शन के लिए मशीनों का प्रयोग होता था। रोमन युग से मन्दिर एवं थियेटर का सम्बन्ध मिट गया एवं अभिनय के लिए बड़े-बड़े भवनों का निर्माण हुआ जिनमें बाह्य-सजावटों पर अधिक ध्यान दिया गया एवं चित्रित दृश्यपटों तथा यवनिका का प्रयोग हुआ। मध्ययुग में नाट्यकला तथा रंगमंचीय शिल्प का पतन हुआ। पुनरुत्थान-काल में ग्रीक तथा रोमन नाट्यदृश्यों के प्रति ध्यान आकर्षित हुआ। रानी **एलिजाबेथ के समय में इंग्लैड में रंगमंचों की जो व्यवस्था** थी उसका प्रभाव हिन्दी तथा बंगला रंगमंच पर पड़ा क्योंकि पहले-पहले शेक्सपियर के नाटकों के अनुवादों का अभिनय भारत में अत्यन्त लोकप्रिय तथा प्रेरणा-दायक बना। एलिजाबेथ युग में थियेटर चारों ओर से दीवालों से घिरा हुआ एक विशाल-कक्ष (Hall) के समान होता था जिसमें ऊंचा मंच अभिनय के लिए एवं गैलरी दर्शकों के बैठने के लिए प्रयुक्त होती थी। पीछे की दीवाल के ऊपर साज-गृह (The Tiring H use) होता था एवं मंच में एक अन्दर का मच भी रहता था। शेक्सपियर के नाटकों में बालक ही स्त्रियों का अभिनय करते थे। आंधी, तूफान आदि दिखाने के लिए किसी टेकनीक के प्रयोग के स्थान पर संवादों में योग्य, काव्यात्मक वर्णन ही यथेष्ट हुआ करते थे।

हिन्दी तथा बंगला के रंगमंच—हिन्दी तथा बंगला के लिए संस्कृत रंगमंच का कोई स्वरूप सामने प्रस्तुत नहीं था। प्राचीन काल के संस्कृत रंगमंच का उदाहरण हमें सरगुजा रियासत के सीताबेंगा एवं जोगीमारा गुफाओं में देखने को मिलता है।

कीथ का कहना है कि संस्कृत रंगमंच पर ग्रीक प्रभाव थोड़ा बहुत अवश्य है— 'वी नो इनडीड देट एलेक्जेंडर वाज़ फान्ड आफ थियेट्रिकल स्पेक्टेकल्स ' ईसवी पूर्व प्रथम सदी मे मिनेन्दर के शासनकाल में भारत पर ग्रीक प्रभाव सबसे अधिक पड़ा एव संस्कृत रंगमंच की मौलिकता के साथ उन पर ग्रीक रंगमंच के प्रभाव को अस्वीकार नहीं किया जा सकता है किन्तु उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध में हिन्दी एवं बंगला के नाटक तथा रंगमंच का जो अंकुर विकसित हुआ उनका संबध पाश्चात्य थियेटरों से अधिक था। इसका यही कारण है कि मध्ययुग में संस्कृतिक पतन के साथ-साथ संस्कृत के रंगमंच भी लुप्त हो चुके थे। संस्कृत नाटक साहित्य धीरे-धीरे प्रकाश में आने लगा किन्तु संस्कृत के रंगमंच का कोई प्रामाणिक नमूना अवशिष्ट न रहा।

वंगला रंगमंच के मूल में यूरोपीय प्रेरणा को स्वीकार करते हुए सर **यदुनाथ सरकार** लिखते हैं—'आज आमरा नाटक ओ थियेटर बोलिते जाहा बूझि ताहा उनविंश शताब्दीर सृष्टि। नव्य बांगालीरा खाटिया खाटिया चेष्टा ओ परीक्षा कोरिया तबे एइ दूटिके वर्तमान आकारे आनिते पारियाछे, एवं समग्र भारत के, अपरापर समस्त प्रादेशिक भाषाके ए दूटि दान कोरियाछे।'[1] प्रथम बंगला नाटक का अभिनय सन् १७९५ में एक रूसी सज्जन हेरा सीम लेबे देफ ने बंगालियों के सहयोग से करवाया।

हिन्दी का कोई स्थायी निजी रंगमंच नहीं था फिर भी बम्बई की पारसी नाटक मंडली, भारतेन्दु के समकालीन साहित्यिकों की मंडली, मेरठ तथा काठियावाड़ की मंडली तथा उसके रंगमंचीय एवं साहित्यिक नाटकों की रचना-विधि यही प्रमाणित करते हैं कि जो रंगमंचीय शिल्प उन्होंने अपनाना चाहा वह यूरोपीय ढंग का था। नाटकों का अंक तथा दृश्यों में विभाजन, नान्दी तथा प्रस्तावना का धीरे-धीरे लोप, युद्ध, हत्या आदि का दृश्य अंश में स्थान आदि यूरोपीय मंच-शिल्प को अपनाने के प्रयास हैं। दृश्यपट, प्रकाश, ध्वनि-प्रभावों के प्रयोग भी पाश्चात्य मंच-शिल्प के उदाहरण हैं।

सूक्ष्म दृष्टि से देखा जाय तो भारत के **आधुनिक रंगमंचों का अभ्युत्थान तभी सम्भव हुआ जब भारत की संस्कृति तथा समाज के जीवन से उसका गठबन्धन हुआ**। यह आन्तरिक-सत्य भारत के सभी प्रदेशों के रंगमंच के उत्कर्ष के मूल में है। **रंगमंच की दृष्टि से बंगला अग्रणी** रही एवं बंगला के रंगमंच के इतिहास में यह प्रमाणित है कि बगला के रंगमंच ने उसके सांस्कृतिक तथा सामाजिक जीवन को ही व्यक्त किया। दीनबन्धु मित्र रचित "**नीलदर्पण**" नाटक के अभिनय से कलकत्ते के **नेशनल-थियेटर**" का शुभ उद्‌बोधन हुआ। "नीलदर्पण" में नीलहे साहबों के अत्याचार से पीड़ित किसानों के जीवन का करुण-चित्र है। पौराणिक नाटकों के अभिनय द्वारा बंगालियों की आध्यात्मिक प्रवृत्ति तथा भक्ति-भावना व्यक्त हुई एवं "आनन्दमठ", "चन्द्रगुप्त" तथा "कारागार" जैसे नाटकों के अभिनय द्वारा स्वदेशी आन्दोलन का सजीव, भावात्मक चित्र प्रस्तुत किया गया।

"**भारतीय गण नाट्य संघ**" द्वारा अभिनीत विजन भट्टाचार्य रचित नाटक "**जबानबन्दी**" एवं "**नवान्न**" भारत की समाज-चेतना के निदर्शन हैं। हिन्दी क्षेत्र में समाज-जीवन एवं रंगमंच विच्छिन्न रहा अतः वहां सामाजिक अग्रगति भी श्लथ रही तथा रंगमंचीय प्रयास अस्थायी रहे। पारसी नाटक मंडली अर्थलोलुपता के कारण विलुप्त हो गई। प्रसाद जैसे प्रतिभाशाली नाटककार ने ऐसे नाटकों की रचना की जो कुछ विद्वानों की पाठ्य-सामग्री होकर रह गई एवं पृथ्वीराज कपूर जैसे नाट्य-प्रेमियों

१—भारतवर्ष (ज्येष्ठ, १३४१ साल)।

के प्रयत्न पारिवारिक स्वार्थ के दलदल में फंसकर काल के गर्भ में विलीन हो गये। फिर भी कुछ व्यवसायी, अर्द्ध-व्यवसायी, एमेचर संस्था तथा विद्यार्थियों ने हिन्दी रंगमंच की परम्परा को बनाए रखा एवं आज हिन्दी रंगमंच के मूल्यांकन के लिए इन विभिन्न प्रयासों के द्वारा जो शिल्पोन्नति हुई एवं सांस्कृतिक जीवन की श्री-वृद्धि हुई उनका तुलनात्मक विवेचन आवश्यक है। पाश्चात्य में रंगमंचीय शिल्प की दिनोंदिन उन्नति हुई एवं वहां **ब्रेख्ट, स्तानिस्लाव्स्की, गार्डन क्रेग, मायर सोल** तथा **राइनहार्डट जैसे प्रयोगाचार्य** हुए। उनके प्रयोगों से भारतीय रंगमंच के निर्देशक अनभिज्ञ नहीं थे किन्तु उन्हें भारतीय रंगमंच का विकास अपने ढंग पर करना था। अर्थाभाव तथा आपसी-द्वन्द्व के कारण एक ओर भारतीय रंगमंच अधिक शिल्पोन्नति न कर सके तथा दूसरी ओर भारतीय दर्शकों की रुचि, संस्कार तथा शिक्षा-स्तर के अनुकूल उन्हें कदम बढ़ाना था। कोई नाटक किसी तरह रंगमंच पर अभिनीत होकर सस्ती लोक-रुचि की तुष्टि कर सके यह रंगमंचीय नाटकों की कसौटी नहीं है। **सफल रंगमंचीय-नाटक वही है जो आंगिक, मंच सज्जा तथा जीवन्त अभिनय के द्वारा नाटकीय प्रभाव उत्पन्न कर सके एवं अभिनय तथा रंगमंचीय-शिल्प उस नाटक के सांस्कृतिक, सामाजिक तथा मानवीय मूल्यों को द्विगुणित कर दें।** इसी कसौटी को ध्यान में रखकर बीसवीं शताब्दी में हिन्दी तथा बंगला रंगमंच संबंधी निम्नलिखित विभिन्न प्रयासों का विवेचन होगा——

१—व्यवसायी नाटक मंडलियाँ

२—अव्यवसायी व अर्द्धव्यवसायी नाटक मंडलियाँ

३—विद्यार्थी नाटक-समितियां

४—भारतीय गण-नाट्यसंघ

बीसवीं सदी के हिन्दी तथा बंगला के रंगमंचों ने कितनी शिल्पोन्नति की एवं देश के सामाजिक तथा सांस्कृतिक जीवन को कितना उन्नत किया यही आलोचनीय विषय है। शिल्प की दृष्टि से पाश्चात्य तथा भारतीय रंगमंचीय-शिल्प का समन्वय ही स्तुत्य कहा जा सकता है। इसके साथ ही हिन्दी तथा बंगला नाटकों की अभिनेयता का तुलनात्मक विवेचन इसलिए आवश्यक है ताकि इस विषय पर प्रकाश पड़े कि हिन्दी क्षेत्र में रंगमंच का अभाव बाधक रहा अथवा अभिनेयता के गुणों के अभाव में उनका रंगमंच पर प्रदर्शन न हो सका। अतः हिन्दी तथा बंगला के रंगमंचीय तत्व का तुलनात्मक विवेचन दो दृष्टिकोणों से करना समीचीन होगा—

१—**रंगमंच के विकास** का तुलनात्मक विवेचन।

२—**अभिनेयता तथा रंगमंचीयता** के गुणों का तुलनात्मक विवेचन।

हिन्दी तथा बंगला के रंगमंच के विकास का तुलनात्मक विवेचन

१—व्यवसायी नाटक मंडलियां

पारसी नाटक मंडलियों के रंगमंच:-हिन्दी रंगमंच के क्षेत्र में पारसी नाटक मंडलियों के रंगमंचों का उदय विलायती थियेटर आपेरा की गीतिपूर्ण शैली एवं लोक नाटकों की छन्दोबद्ध शैली मिश्रण से हुआ। अगर किसी कलाप्रेमी, सुसंस्कृत रुचि के प्रयोजक का इन्हें सहारा मिलता तो हिन्दी रंगमंच के क्षेत्र को अपने अवदानों से ये सार्थक कर जाते। किन्तु धन लोलुपता एवं पाश्चात्य सभ्यता के विकृत अनुकरण के व्रती होने के कारण हिन्दी नाट्याकाश को अपनी ज्योति से प्रकाशित न कर सके। रंगमंच की बाहरी चमक-दमक के द्वारा कुछ वर्षों के लिए जनता की कुरुचि को उकसाकर इन्हें विदा लेनी पड़ी। पहले बम्बई में सन् १८६७ में "**विक्टोरिया नाटक मंडली**" स्थापित हुई फिर सन् १८७० में पेस्तनजी फ्रेमजी ने "**ओरिजिनल थियेट्रिकल कम्पनी**" खोली। दिल्ली में "**विक्टोरिया थियेट्रिकल कम्पनी**" सन् १८७७ में बल्लीवाला ने खोली। सन् १८७७ के लगभग कावसजी खटाऊ ने, जो एक प्रसिद्ध अभिनेता भी थे, बंबई में "**एलफ्रेड थियेट्रिकल कम्पनी**" खोली एवं मोहम्मद अली "नाखुदा" और सोहराबजी ने "**न्यू एलफ्रेड** कम्पनी" खोली। धीरे धीरे अनेक पारसी कम्पनियों के रंगमंच स्थापित हो गये किन्तु संख्या की दृष्टि से वृद्धि होने के साथ ही साथ, शिल्प एवं रुचि की दृष्टि से वे अपना विकास न कर सके। **उनके नाटककार अधिकांश उर्दू व हिन्दुस्तानी भाषा के नाटक प्रस्तुत करते थे जिनमें कुरुचिपूर्ण शृंगारी** गीतों की भरमार रहती थी। दर्शक को आकर्षित करने के लिए मंच निर्देशक चमत्कार प्रदर्शन का अत्यधिक ध्यान रखते थे। इनके नाटककारों में **रौनक, जरीफ, तालिब, बेताब, अहसान, हश्र तथा राधेश्याम कथावाचक** प्रसिद्ध हैं। हिन्दी भाषा की दृष्टि से राधेश्याम कथावाचक रचित "**वीर अभिमन्यु**" नाटक अत्यंत लोकप्रिय हुआ। पौराणिक कथावस्तु दर्शकों को अधिक आकर्षित करती थी किन्तु बंगला रंगमंच पर "नर-नारायण", "सीता", "पांडव कौरव", "पांडवेर वनवास" आदि जिस उच्च कोटि की भक्ति-भावना एवं सुसंस्कृत रुचि का परिचय दे रहे थे उसकी तुलना में पारसी नाटक मंडलियों के नाटक बहुत ही निकृष्ट प्रतीत हुए। हिन्दी रंगमंचीय नाटकों के इस वैषम्य के कारणों में नाटककार, प्रयोजकों के आर्थिक लक्ष्य, अभिनेताओं की अभिनेय संबंधी अज्ञता तथा दर्शकों की विकृत-रुचि आदि सभी सम्मिलित थे। **लोक नाटकों के कुछ तत्व को अपनाया गया जैसे मंगलाचरण** के स्थान पर **कोरस से आरम्भ, नृत्य, गीत** तथा **तुकान्त कविताओं** का बाहुल्य एवं **निम्न कोटि के हास्य-व्यंग्य** का कॉमिक के रूप में प्रयोग। राधेश्याम कथावाचक, हश्र तथा बेताब जैसे अच्छे नाटककार भी इन्होंने प्राप्त किये किन्तु समन्वयात्मक-शिल्प के उच्च-स्तर का इनके प्रदर्शनों में अभाव रहा। **उर्दू के रंगीले प्रेम की शैली** को अपनाकर तथा पाश्चात्य नाटकों की रोमांचकारी घटनाओं को ग्रहण करके पारसी कम्पनियों के रंगमंच ने अपना सामाजिक तथा

सांस्कृतिक उत्तरदायित्व भुला दिया। सन् १८८५ में खुरशीद बालीवाला के नेतृत्व में **विक्टोरिया नाटक मंडली लन्दन गई एवं तालिब रचित 'हरिश्चन्द्र' का प्रदर्शन किया** किन्तु बीसवीं सदी के प्रारम्भ में पारसी नाटक मंडलियों की कलात्मक प्रतिभा का ह्रास होने लगा एवं सिनेमा के प्रचलन होने पर सन् १९३५ तक पारसी नाटक मंडलियां लुप्त हो गईं।

पारसी नाटक मंडलियों के समान हिन्दी की अन्य दो व्यावसायिक नाटक मंडलियां काठियावाड़ की **'श्री सुर विजय'** मेरठ की **'व्याकुल भारत'** भी काल के गर्भ में विलीन हो गई क्योंकि बीसवी सदी के प्रारम्भिक काल में हिन्दी भाषी क्षेत्रों का गण-जीवन अधिक विकसित, सचेतन एवं जागरूक नहीं हो पाया था।

कलकत्ते के साधारण-रंगालयः—बीसवीं सदी के प्रारम्भ में गिरीशप्रतिभा के अस्त होने पर भी कुछ काल तक उनके द्वारा प्रतिपादित मंच-शिल्प, अभिनय-पद्धति तथा उच्छ्वसित भक्ति-भावना का प्रभाव रहा। **गिरीशचन्द्र के युग में ही बंगला नाटक तथा रंगमंच ने यथेष्ट उत्कर्ष प्राप्त किया था** एवं उनके दिवंगत होने पर भी याने सन् १९०४ के बाद भी **'मिनर्व्हा' 'स्टार'** तथा **'मनोमोहन'** रंगालयों में उच्च कोटि के नाटकों का अभिनय हुआ। गिरीशचन्द्र के पुत्र दानीबाबू तथा तारासुन्दरी जैसी अभिनेतृ ने यश अर्जन किया। द्विजेन्द्रलाल रचित **'चन्द्रगुप्त'** नाटक के अभिनय द्वारा **मिनर्व्हा** रंगमंच ने अत्यन्त प्रतिष्ठा प्राप्त की। राष्ट्रीय-उत्तेजना से उद्दीप्त जनता को द्विजेन्द्रलाल राय के ऐतिहासिक नाटकों के अभिनय ने और भी उद्‌बुद्ध किया। समस्त भारत में राष्ट्रीय-भावना को फैलाने का श्रेय कलकत्ते के रंगमंच को है। उनसे प्रेरित होकर हिन्दी भाषी क्षेत्रों में भी द्विजेन्द्रलाल के नाटक मंचस्थ हुए। इससे स्पष्ट प्रमाणित है कि दर्शकों की रुचि विकृत नहीं थी किन्तु पारसी नाटक मंडलियों ने उसे विकृत कर रखा था। आर्ट थियेटर एवं नाट्यमन्दिर की स्थापना द्वारा बंगीय रंगमंच ने आगे कदम बढ़ाया। आर्ट थियेटर में **'कर्णार्जुन'** के अभिनय में (३० जून सन् १९२३) तिनकड़ी चक्रवर्ती, अहीन्द्र चौधरी तथा निमाननी आदि ने भाग लिया। नाट्य-मन्दिर में 'सीता' के अभिनय में शिशिर कुमार भादुड़ी ने राम का अभिनय करके यश अर्जन किया। **संस्कृत कालेज के प्राक्तन-अध्यापक शिशिर कुमार भादुड़ी** के रंगमंच क्षेत्र में नये अभिनेता के रूप में आगमन ने अभिनय के पेशे को सामाजिक मर्यादा प्रदान की। आलमगीर (आलमगीर नाटक में) राम (सीता नाटक में) जीवानन्द (षोडशी नाटक में) तथा रघुपति (विसर्जन नाटक में) आदि के अभिनय में शिशिर कुमार ने अभिनय की विशिष्टता का परिचय दिया। इसके सिवा शरच्चन्द्र के 'रमा' नाटक, गिरीशचन्द्र के 'प्रफुल्ल' नाटक तथा द्विजेन्द्रलाल के 'चन्द्रगुप्त' नाटक के अभिनय ने भी उनके कीर्तिस्तम्भ को सुदृढ़ किया। **अभिनय की भावातिशयता से रक्षा करके उन्होंने उसे वास्तवधर्मी रूप दिया।** प्रयोजक के रूप में दृश्यपट, नृत्य, गीत, अभिनय, आलोकपात आदि दृष्टि से उनकी **प्रयोग-निपुणता** प्रमाणित हुई। भारतीय अभिनय

की गरिमा प्रदर्शित करने मिस एलिजाबेथ मारबेरी के आमंत्रित करने पर सन् १९३० **में वे 'सीता' नाटक अभिनय कराने न्यूयार्क गये थे।**

८ अगस्त सन् **१९३१ में रंगमहल** मंच का उद्बोधन हुआ एवं 'विष्णुप्रिया' नाटक में शिशिर कुमार ने निमाई का अभिनय किया। इस समय कलकत्ते में चार रंगमंच हो गये–**स्टार, मिनर्व्हा, नाट्यनिकेतन** तथा **रंगमहल।** बंगला रंगमंच की शिल्पोन्नति की दृष्टि से प्रयोजक सतुसेन का इस काल में आगमन महत्वपूर्ण है। **घूर्णायमान मंच** (Revolving Stage) का प्रयोग उन्होंने रंगमहल के मंच पर 'महानिशा' के प्रदर्शन में किया। शिशिर कुमार ने 'नव नाट्यमन्दिर' रंगालय की प्रतिष्ठा की। दस (१०) जनवरी, सन् **१९४२ को 'श्रीरंगम'** रंगालय का उद्बोधन हुआ। शिशिर कुमार ने श्रीरंगम मंच पर स्मरणीय अन्तिम अभिनय आलमगीर के रूप में १० दिसम्बर, सन् १९५१ में किया। सन् १९५३ तक कलकत्ते में चार रंगमंच प्रतिष्ठित रूप में रह गये—**स्टार, मिनर्व्हा, रंगमहल और श्रीरंगम।** 'स्टार' थियेटर ने प्रसिद्ध नाट्यकार तथा परिचालक के रूप में महेन्द्र गुप्त को प्राप्त किया। इस तरह बीसवीं सदी में **अमरेन्द्रनाथ दत्त, अमृतलाल वसु** आदि रंगमंच के उन्नायकों से प्रारम्भ कर शिशिर भादुड़ी तथा महेन्द्र गुप्त जैसे **अभिनेता एवं प्रयोजक, अहीन्द्र चौधरी, दुर्गादास बन्दोपाध्याय, छवि विश्वास** जैसे अभिनेता, **तारासुन्दरी, निमानन्नी चारुशीला, प्रभा**, कंकावती जैसी अभिनेतृयां, **सतु सेन** जैसे मंच-शिल्पी एवं **तापस सेन** जैसे प्रकाश-व्यवस्थापक प्राप्त कर कलकत्ते के रंगमंचों ने आशातीत उन्नति की। इनके नाटक भी विशेष रंगमंचीय नाटक नहीं होते थे किन्तु रवीन्द्रनाथ, द्विजेन्द्रलाल, योगेश चौधरी, गिरीशचन्द्र, महेन्द्र गुप्त आदि के साहित्यिक-रंगमंचीय नाटक उनकी सफलता के मूल कारण थे। **शरच्चन्द्र, ताराशंकर आदि के उपन्यासों के नाट्यरूप भी सफलता अर्जन करते थे।** इस कोटि के बंगीय रंगमंच की तुलना में पारसी नाटक मंडलियों के रंगमंच प्राणहीन थे। पारसी नाटक मंडलियों के उर्दू नाटककार, एंग्लो-इंडियन तथा वेश्या अभिनेतृयां, प्रयोग-नैपुण्य-रहित प्रयोजक आदि ने दर्शकों के मत्थे सारे दोष मढ़कर हिन्दी रंगमंचीय-इतिहास के कुछ पृष्ठों को भविष्य की सौध-रचना के प्रयोजन से रहित कर सदा के लिए मिटा दिया। बंगीय रंगमंच की व्यावसायिक मंडलियों ने **अर्थोपार्जन तथा कला के मर्म के समन्वय द्वारा** जातीय जीवन की संस्कृति की रक्षा की एवं उनकी आशा, आकांक्षाओं को रूपायित किया। **शिल्पोन्नति को भारतीय सांचे में ढालकर बंगीय रंगमंच अग्रसर हुआ** एवं जिनका आरम्भ विलायती थियेटरों की प्रेरणा से हुआ था आज वे अपने रस-बोध तथा सामाजिक-चेतना के परिचय देने में सक्षम हैं।

२—अव्यवसायी तथा अर्द्धव्यवसायी नाटक मंडलियां

प्रयाग, काशी, कानपुर और कलकत्ते में हिन्दी साहित्यिकों की मंडलियां:— हिन्दी-उर्दू में पारसी नाटक मंडलियों के कुरुचिपूर्ण प्रदर्शनों की प्रतिक्रिया स्वरूप तथा

बंगला रंगमंचों के आदर्शों से प्रेरित होकर **भारतेंदु मंडली** के प्रमुख साहित्यकारों ने उन्नसवीं सदी के उत्तरार्द्ध में कुछ नाटक मंडलियां स्थापित की जो धार्मिक उत्सवों व पर्वों के अवसर पर नाटक प्रदर्शन करती थीं। बीसवीं सदी के प्रारम्भ में भी कुछ काल तक इन शौकीया मंडलियों ने हिन्दी रंगमच की परम्परा बनाये रखी किन्तु नाटककार, प्रयोजक, अभिनेता तथा दर्शकों का निविड़ सम्पर्क स्थापित न हो सकने के कारण ये शौकीया मंडलियां लुप्त हो गई। इन नाटक मंडलियों में प्रयाग की **श्री रामलीला नाटक मंडली, हिन्दी नाट्य समिति काशी की नागरी नाट्य-कला प्रवर्तन मंडली तथा** उसकी दो शाखाएँ **"काशी नागरी-नाटक मंडली"** एवं **"श्री भारतेन्दु नाटक मंडली"**, **कानपुर की "श्री भारत रंजनी सभा"** तथा कलकत्ते की **"हिन्दी नाट्य परिषद"** प्रसिद्ध हैं। इन नाटक मंडलियों में पं० माधव शुक्ल, पं० महादेव भट्ट, प्रतापनारायण मिश्र जैसे हिन्दी साहित्य के प्रेमी तथा प्रमथनाथ भट्टाचार्य, वीरेश्वर बेनर्जी, मैत्रेय बाबू आदि बंगाली सदस्य अभिनेता थे। महाभारत, भीष्म पितामह, बिल्व मंगल, महाराणा प्रताप जैसे पौराणिक तथा ऐतिहासिक नाटकों का सुरुचिपूर्ण अभिनय इन मंडलियों द्वारा होता था। **पं० माधव शुक्ल, आनन्द प्रसाद खत्री, पं० माखनलाल चतुर्वेदी**, जमनादास मेहरा, दुर्गाप्रसाद गुप्त आदि के साहित्यिक-रंगमंचीय नाटकों के अभिनय द्वारा हिन्दी भाषा के शुद्ध रूप की प्रतिष्ठा जनता के बीच हुई। इन मंडलियों में "काशी नागरी नाटक मंडली" अब भी पूर्ण उत्साह के साथ बीच बीच में नाटकों का प्रदर्शन करती है। आर्थिक लक्ष्य की ओर इनका अधिक ध्यान न था यद्यपि बीच बीच में प्रदर्शनों के द्वारा अर्थोपार्जन हो जाता था। अतः अर्थाभाव के कारण न तो इनके द्वारा स्थायी रंगमंच की स्थापना हो सकी और न कोई सहायता मिली।

विचित्रा सभा एवं जोड़ासांको के ठाकुर परिवार की नाटक मंडली:—महर्षि देवेन्द्रनाथ ठाकुर के कनिष्ठ भ्राता गिरीन्द्रनाथ के दो पुत्र गणेन्द्रनाथ एवं गुनेन्द्रनाथ तथा देवेन्द्रनाथ के पुत्र द्विजेन्द्रनाथ एवं ज्योतिरिन्द्रनाथ के उत्साह से ठाकुर परिवार की नाटक मंडली गढ़ उठी थी। माइकेल मधुसूदन दत्त रचित नाटक **"कृष्णाकुमारी"** का अभिनय इनका प्रथम प्रयास था। इनकी मंडली के सदस्य प्रतिभाशाली तथा उच्च कलात्मक रुचि-सम्पन्न व्यक्ति थे। ज्योतिरिन्द्रनाथ रचित प्रहसन **"एमन कर्म आर कोरबो ना"** में रवीन्द्रनाथ ने अलीक बाबू का अभिनय किया। बीसवीं सदी के पूर्व ही जोड़ासांको मच का यवनिका पतन हो गया किन्तु उस मंडली की नाट्याभिनय संबंधी शिल्प चेतना ने ही शान्तिनिकेतन मंच को जन्म दिया।

पृथ्वी थियेटर्स:—हिन्दी के लिए रंगमंच निर्माण की चेष्टा में हिन्दी के साहित्यिक विफल हुए। पुनः हिन्दी के लिए एक कलात्मक रुचि-सम्पन्न व्यक्ति ने कदम उठाया। फिल्म के प्रसिद्ध अभिनेता पृथ्वीराज कपूर यद्यपि साहित्यिक न थे किन्तु अभिनय संबंधी अभिज्ञता उनमें थी। **६ मार्च सन् १९४५ को बम्बई में 'शकुन्तला"**

नाटक का अभिनय हुआ **जिसमें पृथ्वीराज ने दुष्यन्त का अभिनय किया। "बेताब"** इस नाटक के लेखक थे। इसके बाद पृथ्वी थियेटर्स में और भी कई नाटकों का अभिनय हुआ जिनके नाम हैं—**दीवार, पठान, गद्दार,** आहुति, **कलाकार, पैसा** तथा **किसान**। किसान का प्रदर्शन २६ अक्टूबर, सन् १९५६ को बम्बई में हुआ। हिन्दी मंच की **समाज-चेतना "किसान" नाटक में** व्यक्त हुई। व्यवसायी मंडली होते हुई भी परिवार के लोगों के आ जुटने के कारण आर्थिक कष्टों का सामना करना पड़ा एवं १५ मई, सन् १९६० को पृथ्वी थियेटर्स का यवनिका पतन हुआ।

विचित्रसभा **(जोड़ा सांको के रंगमंच)** एवं पृथ्वी थियेटर्स ने कुछ ही वर्षों के लिए अपनी कलात्मकता एवं शिल्प चेतना का परिचय दिया किन्तु इनमें ठाकुर परिवार की सुसंस्कृत-रुचि की परम्परा एवं शिल्प-पद्धति यद्यपि बंग-रंगमंच को प्रभावित न कर सकी किन्तु वह रवीन्द्रनाथ के नाटकों के अभिनय में आज भी जीवित है। इसके विपरीत पृथ्वी थियेटर्स के नाटकों का कोई भी साहित्यिक मूल्य न था एवं किसी उन्नत शिल्प-पद्धति का परिचय वे न दे सके अतः हिन्दी रंगमंच के लिए उनका प्रयास क्षणस्थायी एवं मूल्यहीन सिद्ध हुआ। कुछ वर्षों के लिए अभिनय के द्वारा उन्होंने दर्शकों के लिए हिन्दी नाटक देखने की रुचि को जीवित रखा, फिर भी सिनेमा के आकर्षण के समक्ष वह रुचि पराजित हुई।

कलकत्ते में बंगला नाट्याभिनय की अन्य **शौकीया मंडलियां**:—इस क्षेत्र के प्रारम्भिक रंगमंचों में "इव्हनिंग क्लब" तथा "ओल्ड क्लब" प्रसिद्ध हैं। इव्हनिंग क्लब के पृष्ठपोषक द्विजेन्द्रलाल राय तथा नट एवं नाट्यकार प्रमथनाथ भट्टाचार्य थे। ओल्ड क्लब के सदस्य शिशिर कुमार, निर्मलेन्दु लाहिड़ी, विश्वनाथ भादुड़ी आदि थे। इन दोनों साँस्कृतिक-संस्थानों ने बंग रगमंच के दो उज्ज्वल ज्योतिष्कों (द्विजेन्द्रलाल जैसे नाट्यकार एवं शिशिरकुमार जैसे अभिनेता एवं निर्देशक को) भविष्य के लिए प्रस्तुत किया। परवर्ती प्रयासों में कलकत्ते के "थियेटर सेंटर" का नाम उल्लेखनीय है। इसका श्री गणेश सन् १९५५ को हुआ। यह बंगाल तथा बंगाल के वाहर की नाट्यगोष्ठियों से सम्पृक्त है एवं Unesco के **आइ० टी० आइ०** (International Theatre Institute) से भी युक्त है।

३—विद्यार्थी रँगमंचः—

यूनिव्हर्सिटी इस्टीट्यूटः—कालेज एवं विश्वविद्यालय के छात्र भी अभिनय के प्रति विशेष रुचि रखते हैं। केवल सांस्कृतिक अनुष्ठानों की पूर्ति के लिए ही नहीं, नाटक तथा रंगमंच के प्रति उनका विशेष अनुराग भी रहता है इसी कारण छात्रों द्वारा अनेक स्थलों पर नाट्याभिनय को उत्कर्ष प्राप्त हुआ है। सन् १८९१ में कलकत्ते के संस्कृत कालेज में छात्रों के अभिनय के लिए यूनिव्हर्सिटी इस्टीट्यूट की प्रतिष्ठा हुई। **बंकिमचन्द्र चट्टोपाध्याय, प्रतापचंद्र मजूमदार, रमेशचन्द्र दत्त, सर गुरुदास बन्दो-**

पाध्याय, सुरेन्द्रनाथ वन्दोपाध्याय आदि बड़े बड़े शिक्षाविद् इस संस्था से संश्लिष्ट थे। इस संस्था के विशेष गौरव **शिशिर कुमार भादुड़ी** थे जो संस्कृत कालेज के अंग्रेजी के अध्यापक थे। सन् १९०८ में शिशिर कुमार इस संस्था के सदस्य बने। १७ मार्च सन् १९०९ में उन्होंने 'हेमलेट" नाटक में क्लाडियस एवं हैमलेट के पिता की प्रेतात्मा का अभिनय किया। इसके बाद इसी मंच पर "बुद्धदेव" "चन्द्रगुप्त", बैकुंठेर खाता, आदि में उन्होंने अभिनय किया। **निर्मलकुमार सिद्धान्त** (कलकत्ता विश्वविद्यालय के भूतपूर्व वाइस-चांसलर एवं उस समय अध्यापक) ने इसी मंच पर **"भीष्म"** में अमात्य का अभिनय किया। यह संस्था आज संस्कृत कालेज के पास अलग भवन में स्थित है। अभी शौकीया मंडलियों का अभिनय यहां बीच बीच में होता है। अभी इसका महत्व अधिक नहीं है किन्तु अपनी प्रारम्भिक अवस्था में छात्र एवं अध्यापकों के उच्च कोटि के अभिनय के लिये इसने मार्ग प्रशन्त किया।

शान्तिनिकेतन आश्रम मंचः—रवीन्द्रनाथ एवं ठाकुर परिवार की कलासाधना का सजीव निदर्शन शान्तिनिकेतन का रंगमंच है। **सन् १९०१ में शान्तिनिकेतन में ब्रह्मचर्याश्रम की प्रतिष्ठा हुई** एवं **सन् १९०२ में नववर्ष उत्सव के अनुष्ठान हुए।** **'शारदोत्सव'** नाटक की रचना रवीन्द्रनाथ ने पूजा की छुट्टियों के पूर्व शान्तिनिकेतन के छात्र तथा अध्यापकों द्वारा अभिनय कराने के लिए की। उस समय बालक ही वहां विद्यार्थी थे अतः यह नाटक स्त्री-पात्र रहित है। अभिनय तथा रंगमंच संबंधी रवीन्द्रनाथ के आदर्श इस नाटक में व्यक्त हुए। इस मंच पर रवीन्द्रनाथ ने स्वयं अभिनय एवं निर्देशन का कार्य किया। **'राजा'** में रवीन्द्रनाथ ने ठाकुर का अभिनय किया, अचलायतन' में रवीन्द्रनाथ ने आचार्य तथा वियर्सन ने शोनपांशु का एवं 'फाल्गुनी' में रवीन्द्रनाथ ने अन्ध बाउल का अभिनय किया। शिल्प-रीति की दृष्टि से शान्तिनिकेतन के मंच पर रवीन्द्रनाथ के नृत्य-नाटकों का एवं 'कालमृगया' गीतिनाट्य तथा 'ताशेर देश' का अभिनय विशेष महत्व रखता है। वेश-भूषा, आलोक, नृत्य, गीत आदि एक लय-पूर्ण रम्य जगत की सृष्टि करते हैं।

सन् १९२२ में शान्तिनिकेतन में विश्व-भारती विश्वविद्यालय की स्थापना हुई एवं सन् १९५१ में भारत की केन्द्रीय सरकार ने इसे अपने तत्वावधान में लिया। पहले संगीत-भवन के मंच पर अभिनय होता था। मंच सज्जा, दृश्यपट, अभिनेताओं की वेशभूषा, अभिनय सभी विषयों में शान्तिनिकेतन के कलाकारों की **निजस्व विशिष्टता है**। १९६१ में यहां विचित्रा म्युज़ियम व रवीन्द्र-सदन के पीछे **'विचित्रा' मंच** की प्रतिष्ठा हुई है। **आश्रम के आनुष्ठानिक उत्सवों** में तथा **ऋतु-उत्सवों में** यहां प्रायः नाट्याभिनय होता है। **आश्रम-शिक्षा में नाट्याभिनय को रवीन्द्रनाथ ने अत्यन्त महत्व** दिया। यहां के नाट्याभिनय की विशिष्ट रीति है आडम्बर-हीन मंच व खुला रंगमच, यवनिका व ड्राप-सीन का अभाव तथा दृश्यांतर के लिए मंच अन्धकार कर देना, चित्रांकित दृश्यपट के स्थान पर सादा नीला पर्दा, आंगिक अभिनय में सुललित देह-विक्षेप, वाचिक अभिनय में अल्प सुरीलापन एवं भावमयता तथा सात्विक अभिनय की

प्रधानता। **रवीन्द्रनाथ के नृत्यनाट्यों** के अभिनय में गायक-वृन्द मंच के पृष्ठ-भाग में एक ओर बैठते हैं। चमत्कार प्रदर्शन का बहिष्कार कर नाटकों के आन्तरिक आवेदन को भावात्मक-शैली में प्रदर्शित कर शान्तिनिकेतन की विद्यार्थी-नाट्य-मंडली ने देश विदेशों में भारतीय पद्धति के अभिनय का **कलात्मक-मानदंड उच्च धरातल पर** स्थापित किया।

शिशु रंगमहल (Calcutta Little Theatre) की प्रतिष्ठा कलकत्ते में सन् १९५१ में हुई एवं इस मंडली के बाल-कलाकारों ने अपने प्रदर्शन द्वारा देश विदेशों में ख्याति अर्जन की। कलकत्ते में **सन् १९५७ में शिशु रंगमहल के अनुष्ठान** में विदेश की अनेक शिशु नाट्य-संस्थाओं ने भाग लिया। सन् १९५८ के उत्सव में तीस विद्यालयों ने इसमें भाग लिया तथा चेकोस्लोव्हाकिया के कठपुतली नाच एवं जोधपुर के कठपुतली नाच का प्रदर्शन हुआ। सन् १९५९ में बम्बई जाकर इस मंडली ने **'जिजो'**, **'अवन पटुआ'** एवं **'मिठुआ'** का नाट्याभिनय किया। रवीन्द्र-शतवार्षिकी के अवसर पर नववर्ष को शान्तिनिकेतन के गौर-प्रांगण में खुले मंच पर सी० एल० टी० ने **'आनन्द'** नाट्याभिनय किया। बाल कलाकारों के नाटकों की कथावस्तु रूपकथा, स्वप्न, मधुर-कल्पना, प्रतीक आदि से संबंधित होती है एवं इनका दृश्य-विधान अत्यन्त चित्रात्मक होता है। रंग-बिरंगी वेष-भूषा, नृत्य, गीत तथा आलोक पात से एक अद्भुत काल्पनिक-वातावरण की सृष्टि होती है। **रंगमंच के क्षेत्र में बाल-कलाकार भी अत्यंत महत्वपूर्ण हैं** क्योंकि इनका अभिनय अत्यन्त स्वाभाविक तथा इनके नाटक कल्पना के रंग से रंजित होते हैं। इस प्रसंग में **मणिमेला महाकेन्द्र द्वारा मंचस्थ शिशु नाटक 'अरुण-वरुण, किरणमाला'** जो भारत सरकार की संगीत-नाटक-अकाडेमी द्वारा सर्वश्रेष्ठ शिशु नाटिका के रूप में पुरस्कृत हुआ, उल्लेखनीय है।

काशी तथा प्रयाग विश्वविद्यालय के हिन्दी नाट्य-मंच:—बंगला रंगमंच के क्षेत्र में विद्यार्थी रंगमंच का स्थायित्व एवं अवदान हिन्दी की अपेक्षा अधिक है। यूनिव्हर्सिटी इंस्टिट्यूट, शांतिनिकेतन मंच तथा शिशु रंगमहल ने जो नाट्य-प्रदर्शन किया है वे बहुत उच्च-स्तर के हैं। इसका प्रधान कारण यह है कि बंगला के **साधारण-रंगमंच** का स्तर भी अभिनय तथा शिल्परीति की दृष्टि से ऊंचा है एवं **विद्यार्थियों के सामने वह स्तर आदर्श-स्वरूप** रहता है। इसके सिवा बंगला की इन विद्यार्थी-नाट्य-मंडलियों के साथ बंगला के प्रख्यात साहित्यिक, शिक्षाविद् तथा प्रयोजकों का योग रहा। हिन्दी की विद्यार्थी-नाट्य-मंडली को **शिशिर कुमार तथा रवीन्द्रनाथ जैसे प्रयोजकों** का सहारा न मिला एवं उनके सामने स्थायी रंगमंच का कोई आदर्श न था। ऐसी परिस्थिति में भी काशी तथा प्रयाग विश्वविद्यालय की विद्यार्थी नाट्यमंडली निरुत्साह नहीं हुई। हिन्दी के एकांकी नाटक तो विद्यार्थियों के नाट्यभिनय द्वारा उत्कर्ष प्राप्त कर सके। **रामकुमार वर्मा के कई एकांकी नाटकों** का अभिनय हुआ जिनमें 'चारु-मित्रा' का प्रथम अभिनय जो इलाहाबाद यूनिवर्सिटी 'विमेंस हास्टल' द्वारा कुमारी

चन्द्रावती त्रिपाठी के निर्देशन में १६ नवम्बर, सन् १९४१ को हुआ, उल्लेखनीय है। वर्तमान में **हिन्दी का विद्यार्थी-रंगमंच यथेष्ट क्रियाशील** है एवं उसे साहित्यिकों का सहयोग भी प्राप्त है।

४—भारतीय गण-नाट्यसंघ

समस्त भारत में 'भारतीय गण-नाट्यसंघ' की शाखा की प्रतिष्ठा हो जाने से भारत की सभी भाषाओं के नाट्य-साहित्य एवं रंगमंचीय प्रयास एक-सूत्र में आबद्ध हो गये। हिन्दी भाषी प्रदेशों के रंगमंचीय प्रयासों के साथ बंगाल के रगमंचीय प्रयास सौहार्द्र-बन्धन में बंध गये। **भारतीय गण-नाट्य-संघ की प्रतिष्ठा सबसे पहले बंगाल** में हुई एवं सन् १९४० के बाद के भारतीय रंग-मंच के इतिहास पर इस संघ ने प्रभाव विस्तार किया। **प्रगतिशील लेखक, शिल्पी, अभिनेता, निर्देशक** आदि संघबद्ध हुए। इनका प्रधान उद्देश्य था रंगमंच के माध्यम से समाज-चेतना को उद्बुद्ध करना एव जीवन का वास्तविक-रूप जनता के सामने प्रदर्शित करना। सन् १९४३ के बंगाल दुर्भिक्ष ने लेखक तथा शिल्पियों की समाज-चेतना को और भी दीप्त किया। फलस्वरूप हरीन्द्रनाथ चट्टोपाध्याय रचित अंग्रेजी नाटक **'क्यू'**, विजन भट्टाचार्य रचित **'आगुन'** एकांकियों का श्रीरंगम में इस संघ के कलाकारो द्वारा अभिनय हुआ। दिगिन्द्रचन्द्र वन्दोपाध्याय रचित नाटिका **'अभियान'**, मनोरंजन भट्टाचार्य रचित एकांकी **'होमिओपैथी'**, विनय घोष रचित **'लेबोरेटरी'**, विजन भट्टाचार्य रचित **'जबानबन्दी'** आदि इस संघ की नवीन-चेतना की रंगमंचीय अभिव्यक्ति है। इस संघ के कर्णधार **अभिनेता-नाट्यकार मनोरंजन भट्टाचार्य एवं कवि हरीन्द्रनाथ चट्टोपाध्याय थे।**

विजन भट्टाचार्य रचित **'नवान्न'** के अभिनय द्वारा इस संघ की महत्ता प्रतिष्ठित हुई। 'नवान्न' नाटक के निर्देशन में शम्भु मित्र एवं विजन भट्टाचार्य अत्यन्त सफल हुए। सन् १९४७ में मनोरंजन भट्टाचार्य के निर्देशन में देश-विभाजन की समस्या पर रचित दिगिन्द्र वन्दोपाध्याय का **'वास्तुभिटा'** नाट्याभिनय भी अत्यन्त लोकप्रिय हुआ। सलिल चौधरी ने इस संघ द्वारा प्रदर्शित नाटकों के संगीत विभाग को प्राणशक्ति प्रदान की। बंगाल में यह संघ अत्यन्त क्रियाशील एव सचेतन रहा तथा हिन्दी भाषी प्रदेशों को इस संघ ने प्रेरणा प्रदान की। **कलकत्ते में इसी संघ की एक शाखा अलग होकर उत्पल दत्त के तत्वावधान में 'लिटिल थियेटर ग्रुप'** के नाम से प्रख्यात हुई। सन् १९४७ मे 'रोमियो जूलिएट' के कुछ दृश्यों के अभिनय द्वारा इसका प्रारम्भ हुआ। शेक्सपियर के नाटक तथा अन्य विदेशी समस्यामूलक नाटकों का अभिनय इनका प्रधान कार्य था। विदेशी नाटकों को भारतीय मंच पर उतारने का इन्होंने सफल प्रयोग किया। नवीन समाज-चेतना को गढ़ने के साथ शिल्प सम्बन्धी विभिन्न प्रयोगों को कार्यान्वित करना भी इनका लक्ष्य था। इब्सन तथा शा के नाटक, रवीन्द्रनाथ के नाटक, गोर्की का **'नीचेर महल'** (Lower Depths) आदि इनके

सफल नाट्य-प्रदर्शन हैं। किसी व्यक्ति विशेष के अभिनय की अपेक्षा **समूह के अभिनय** के प्रति इनका ध्यान अधिक रहता है। शौकीया मडली होती हुई भी 'लिटिल थियेटर ग्रुप' धीरे-धीरे व्यावसायिक मंडली बन गई।

बहुरूपी नाट्य-संस्था:—बंगाल के नव-नाट्य आन्दोलन को इस संस्था ने उद्बुद्ध किया एवं शिल्प, अभिनय दोनों दृष्टि से बंगीय रगमंच की उन्नति की। इसमें **शम्भु मित्र जैसे निर्देशक, मनोरंजन भट्टाचार्य जैसे शिल्प के ज्ञाता, तुलसी लाहिड़ी** जैसे नाट्यकार एवं **काली सरकार जैसे अभिनेता** हैं जिनके सम्मिलित प्रयास से आज 'बहुरूपी' समस्त भारत में प्रसिद्ध हो गया है। रवीन्द्रनाथ के **'रक्तकरवी'** एवं इब्सन के **'पुतुल खेला'** (Dolls' House) के प्रदर्शन द्वारा बहुरूपी संस्था ने प्रभूत ख्याति अर्जन की। आधुनिक रंगमंचीय-शिल्प का प्रयोग इस संस्था द्वारा बंगीय रंगमंच पर हुआ।

शोभनिक:—गण-नाट्यसंघ के अन्तर्गत कलकत्ते की यह और एक शौकीया नाट्यमंडली है जो देशी **यात्रा-पद्धति का प्रयोग** कर रही है। नवीन गणचेतना को नवीन शिल्परीति के द्वारा यह मंडली व्यक्त करने की चेष्टा कर रही है। उनकी यह शिल्प रीति लोक नाटकों के खुले मंच के शिल्प को नवीन ढंग से प्रस्तुत करती है। इनका रगमंच (Mass Theatre, Community theatre व Open Air Theatre) कहलाता है। **'मुक्त अंगन'** के नाम से यह मंडली प्रसिद्ध है।

बंगला के मंचों की कुछ समस्याएं:—कलकत्ते में वर्तमान में जितने भी व्यावसायिक तथा शौकीया मंडलियों के रंगमंच हैं उन पर पाश्चात्य का रंग गहरा चढ़ रहा है। वे अपने पड़ोसी हिन्दी, मराठी, गुजराती, तामिल आदि भारतीय रंगमंचों के प्रति उदासीन हैं किन्तु **यूरोप तथा अमेरिका के मंच सम्बन्धी तथ्य उन्हें अधिक ज्ञात हैं। किन्तु उन तथ्यों के ज्ञात होते हुए भी वे उनके प्रयोग में पूर्णतः सफल नहीं हो सके हैं।** सांकेतिक दृश्य-विधान तथा मेटरलिंक के स्थिर मंच (स्टैटिक थियेटर) की रूप-रीति ये अपना नहीं सके। प्रकाशवादी व अभिव्यक्तिवादी (एक्सप्रेशनिस्टिक) दृश्य-विधान सम्बन्धी इनकी धारणा अस्पष्ट है। असम्भाव्य व अमूर्तवादी मंच (एब्सर्डिस्ट थियेटर) का प्रयोग भी वे सफलतापूर्वक नहीं कर पा रहे हैं। अति-यथार्थवाद व सर्रियलिज्म पर कोई उत्कृष्ट बंगला नाटक की रचना नहीं हुई है। मंच पर गति लाने के लिए वे **'थियेटरस्कोप'** का प्रयोग कर रहे हैं एवं (Zonal light) का प्रयोग भी कुछ वर्ष पूर्व से ही हो रहा है किन्तु इनके साथ ही बंगला रंगमंच को कुछ अभिनवता तथा संस्कृत रंगमंच के कुछ तथ्यों का स्वकीय विकास प्रदर्शित करना चाहिए। यात्रा-धर्मी नाटक अपना अलग ही विकास कर रहे हैं, उनके साथ आदान-प्रदान होना चाहिए। **'रवीन्द्र स्मरणी'** नाट्य-शाला का उद्घाटन हो चुका है किन्तु उसे जातीय नाट्यशाला का रूप देने में अनेक बाधाए हैं। **जातीय नाट्यशाला ही**

जनता की आकांक्षाओं को प्रतिबिम्बित कर सकती है। नाट्यशालाओं पर राजनीति के प्रभाव व नियंत्रण कला का अन्त कर देते हैं। प्रतिबन्धों से भी बंगला रंगमंच मुक्त नहीं है, जैसे 'कल्लोल' का विज्ञापन छपना अखबारों में बन्द हो गया, 'मुक्त-अंगन' मंच कुछ अज्ञात लोगों ने जला दिया इत्यादि। इस एक वर्ष के प्रदर्शन '**कल्लोल**' तथा '**टाकार रंग कालो**' की कथावस्तु एवं टेकनीक से स्पष्ट है कि बंगला रंगमंच विप्लवी भावनाओं तथा समाज के कुत्सित, नग्न पक्ष के चित्रण के प्रति उन्मुख है। बंगला रंगमंच, उसके निर्देशक तथा नाट्यकार वाद (इज्म) के जाल में जकड़ गये हैं। **नाट्यकला को वाद के जाल से मुक्त कर उसे जीवनाश्रयी बनाना है।** देश की आर्थिक, राजनीतिक तथा सामाजिक परिस्थितियां मंच पर अच्छे व बुरे प्रभाव डालती हैं, उनसे बचना कठिन होता है।

इप्टा:—**भारतीय गण नाट्य संघ का जो प्रयास बम्बई में हिन्दी रंगमंच के क्षेत्र में व्यक्त हुआ वह इप्टा के नाम से प्रख्यात हुआ।** यह मंडली दो भागों में विभक्त हुई। **अंधेरी में रविशंकर एवं शांति वर्द्धन के निर्देशन में** तथा सेंडहर्स्ट रोड पर **बलराज सहानी के निर्देशन** में नाट्याभिनय होने लगे। इस मंडली के सदस्य ही नाट्यकार, निर्देशक तथा अभिनेता थे। रविशंकर के संगीत निर्देशन में इप्टा की शौकीया नाट्यमंडली ने, '**स्पिरिट आफ इंडिया**' एव '**अमर भारत**' नृत्यनाट्य का प्रदर्शन भारत के विभिन्न प्रदेशों में किया। '**जादू की कुर्सी**' **नामक नाटक में बलराज सहानी** का अभिनय उत्कृष्ट था। **उपेन्द्रनाथ अश्क रचित तूफान से पहले**', जो हिन्दू-मुस्लिम दंगे से सम्बन्धित था, इनके द्वारा अंधेरी में अभिनीत हुआ। सन् १९५१ में इलाहाबाद में **अखिल भारतीय इप्टा सम्मेलन** रंगमंच की दृष्टि से महत्वपूर्ण है।

इप्टा के द्वारा हिन्दी रंगमंच नाट्य-रचना व मंच-शिल्प की दृष्टि से अधिक उन्नत नहीं हुआ किन्तु भारत के विभिन्न प्रदेशों में इनके नाट्याभिनय ने हिन्दी रंगमंच के प्रति दर्शकों के ध्यान को आकर्षित किया।

एंटी थियेटर एवं अल्काजी के रंगमंचीय प्रयोग:—यूरोप में एंटी थियेटर व 'थियेटर आफ दी एब्सर्ड' का आविर्भाव **अति-यथार्थवाद** (Surrealism) के प्रभाव से हुआ जिसके प्रवर्तक आन्तोनां आतो आयौनेस्को, जेने, ब्रेखट तथा बैकेट आदि हैं। इनकी विचार-धारा यह है कि **मानव का ऊपरी रूप नकली एवं उसके असली रूप को जानना ही हमारा लक्ष्य** होना चाहिए। इसी अवचेतन-मन के असली रूप को व्यक्त करने के लिए उनकी रचनाओं में **रहस्य, स्वप्न, युक्तिहीनता** आदि की योजना तथा परम्परागत चिन्तन पद्धति तथा शिल्प-रीति के विरुद्ध प्रयोग होते हैं। मंच पर **मुखौटों का प्रयोग** होता है तथा युक्तिहीन शब्द, कटे कटे वाक्य अथवा मौन अभिनय द्वारा वे जीवन के सत्य का उद्घाटन करना चाहते हैं। अति-यथार्थवाद का प्रभाव बंगला व हिन्दी रंगमंच पर नगण्य है। इस क्षेत्र में निर्देशक अल्काजी द्वारा बम्बई में प्रदर्शित बैकेट के प्रसिद्ध नाटक '**वेटिंग फार गोदो**' का प्रदर्शन उल्लेखनीय है। यूरोप

में सन् १९४० में सार्त्र ने अस्तित्ववादी दर्शन द्वारा इस दल की चिन्तन धारा को अवरुद्ध किया। भारत के रंगमंचीय क्षेत्र पर अति-यथार्थवाद तथा **अस्तित्ववाद** का कोई असर नहीं हुआ क्योंकि भारतीय रंगमंच अब अपनी पद्धति के विकास में सचेष्ट है।

हिन्दी की विभिन्न एमेचर नाट्य-संस्थाएः—हिन्दी भाषी प्रदेशों में जो एमेचर नाट्य मंडलियां हैं, स्थायी रंगमंच के अभाव में उनका प्रयास महत्वपूर्ण है। काशी, प्रयाग, कानपुर, जालन्धर, चंडीगढ़, मेरठ आदि शहरों में ऐसी शौकीया मंडलियां अक्सर हिन्दी नाटकों का प्रदर्शन कर हिन्दी के स्थायी मंच के अभाव की पूर्ति करती हैं।

मंच की उन्नति के सुझाव:—रंगमंच की दृष्टि से बंगला रंगमंच अत्यन्त उन्नतिशील है। यूरोपीय थियेटर से प्रेरणा प्राप्त कर उन्नीसवीं सदी में बगला नाट्य-साहित्य का प्रारम्भ हुआ किन्तु बीसवीं सदी में जनता की राष्ट्रीय भावना को उद्-बुद्ध कर तथा समाज-चेतना को जागरित कर उसने परम्परा-प्रेम तथा युग-बोध दोनों का परिचय दिया। **बंगला रंगमंच अब पश्चिम का अनुकरण न कर देशीय-मंच-शिल्प की पद्धतियों का भी प्रयोग कर रहा है।** प्रेरणा पश्चिम से प्राप्त कर वह मौलिक ढंग से अपना विकास कर रहा है। भारत के अन्य प्रदेशों को वंगीय रंगमंच ने नव-नाट्य-आन्दोलन तथा भारतीय गण नाट्यसंघ की स्थापना कर प्रेरित किया। नाट्य रचना के क्षेत्र में भी हिन्दी को बंगला नाट्य-साहित्य से प्रेरणा मिली एवं रंगमंच के क्षेत्र में भी बंगाल के रंगमंच उनके आदर्श बन सकते हैं क्योंकि पटना, काशी, प्रयाग आदि हिन्दी के पुरातन केन्द्रों का सम्पर्क कलकत्ते से अधिक रहा। **दिल्ली तथा बम्बई में भी हिन्दी रंगमंच की उन्नति के लिए जो प्रयास हो रहे हैं** उनमें बंगीय रंगमंच का भी प्रभाव है। अब वह समय आ गया है कि भारतीय रंगमंच पश्चिम की पद्धतियों पर न चलकर संस्कृत तथा लोक-नाटकों की शिल्प-रीतियों का प्रयोग करे। **राष्ट्रीय-रंगमंच** के विषय में साहित्यिक सोच रहे हैं किन्तु एकता लाने के प्रयास में रंगमंचीय-विविधताएं नष्ट न हो जायें। संस्कृति तथा शिल्पोन्नति के लिए उनके भिन्न भिन्न रूपों का विकास आवश्यक है। भारतीय रंगमच की जो साधन-सम्पन्न व्यावसायिक मंडलियां हैं उन्हें **टेकनीक संबंधी नित नये प्रयोग** करना चाहिए। **एमेचर संस्थाओं** को विभिन्न क्लब, बैठक, समिति आदि के द्वारा रिहर्सल एवं नाट्य-प्रदर्शन करके देश की संस्कृति एवं जातीय-चेतना को जन साधारण के समक्ष सांस्कृतिक-अनुष्ठानों में प्रस्तुत करना चाहिए। **लोक-नाट्य मंच** एवं **शिशु-नाट्यमंच** उपेक्षित न रह जायें इसका भी विशेष ध्यान रखना चाहिए।

रंगमंच की उन्नति के लिए दर्शक भी आवश्यक तत्व हैं। **दर्शकों की रुचि संस्कृत करने के लिए** एवं उनकी नाट्य-चेतना को जागरूक बनाये रखने के लिए रंगमंच सम्बन्धी पत्रिकाओं की आवश्यकता है। इस क्षेत्र में बंगला में अमरेन्द्रनाथ दत्त

द्वारा सम्पादित **'रंगालय'** (सन् १९०१) एवं **'नाट्यमन्दिर'** (सन् १९१०–१९१२) पत्रिकाएं, **'बहुरूपी'** त्रैमासिक पत्रिका, **शिशु रंगमहल** पत्रिका तथा हिन्दी में **हंस का एकांकी विशेषांक** उल्लेखनीय है। इसके सिवा भारतीय भाषाओं का नाट्य-सम्मेलन भी जन-नाट्य चेतना को उन्मुख करने के लिए आवश्यक है। विभिन्न **नाट्य-प्रतियोगिता** द्वारा अप्रसिद्ध नाट्यलेखकों की तथा अभिनेताओं की छिपी हुई प्रतिभा सामने आ सकती है। प्रयोजकों तथा अभिनेताओं के लिए **नाट्य-शिक्षण** संस्थाएं प्रतिष्ठित हों। स्वाधीनता-प्राप्ति के बाद भारत को अपनी संस्कृति की अभिव्यक्ति के लिए रंगमंच की उन्नति करना अत्यन्त आवश्यक है। प्रतिभाशाली प्रयोजक विश्व के अन्य उन्नतिशील देशों की रंगमंचीय गतिविधियों का अनुशीलन कर उन तत्रों का भारतीय पद्धति में प्रयोग करें जैसे रवीन्द्रनाथ ने जाव्हा के नृत्य-नाटकों के शिल्प का प्रयोग भारतीय नृत्य-कला द्वारा किया। देश के साहित्यिकों, नेताओं तथा कलाकारों का ध्यान संस्कृति के प्रधान साधन रंगमंच की ओर जा रहा है। **भारतीय रंगमंच राजनीति के चक्कर में न पड़कर प्रचार के स्थान पर कला तथा शिल्प की साधना करे।** राजनैतिक प्रचार के इस युग में रंगमंच को इन साम्प्रदायिक स्वार्थों से बचाना आवश्यक है।

नाट्य-रचना तथा नाट्य-प्रदर्शन को प्रोत्साहित करने के लिए दिल्ली में स्थापित **'संगीत-नाटक-अकादेमी'** **तथा नेशनल स्कूल ऑफ ड्रामा**' के क्रिया-कलाप आशाप्रद हैं। कलकत्ते में स्थापित **'थियेटर सेन्टर'** के आदर्श भी प्रशंसनीय हैं। थियेटर सेन्टर द्वारा नाटक सम्बन्धी विषयों की आलोचना होती है, विभिन्न नाट्य गोष्ठियों में सम्पर्क स्थापित होता है, विभिन्न शिल्प-रीतियों का आदान-प्रदान होता है। इनका नाट्य सम्बन्धी ग्रंथागार है, छोटे मंच तथा प्रेक्षागृह रिहर्सल के लिए हैं एवं सर्व-भारतीय तथा आन्तर्जातिक नाट्य संस्थाओं के संवादों की वे सूचना देते हैं। कलकत्ते में 'श्रीरंगम' के ध्वंसावशेष पर स्थापित **'विश्वरूपा'** रंगमंच बंगीय रंगमच की लोकप्रियता का एक निदर्शन है जिसमें **'आरोग्य निकेतन**, **'क्षुधा'**, **'सेतु'** **एवं** **'हासी'** नाटकों का प्रदर्शन अनेक महीनों तक चलता रहा है। हिन्दी भाषी क्षेत्रों की लोक-रुचि अभी तक नाटकों के प्रति इतनी आकर्षित नहीं हुई है—इसका कारण हिन्दी में उन्नत रंगमंच का अभाव भी है एवं लोक-रुचि की अपरिपक्वावस्था भी है। **हिन्दी फिल्मों ने भी दर्शकों की रुचि को विकृत** कर रखा है।

नवीन युग के विजय-अभियान में रंगमंच का महत्व अत्यधिक है। इसकी सामाजिक-मर्यादा तथा कलात्मक-स्तर को ऊंचा उठाना है। ग्रामीण-मंच तथा नागरिक-मंच को विभिन्न प्रयोगों द्वारा विभिन्न रूप में उन्नत करना है एवं भारत की समाज-चेतना तथा संस्कृति प्रेम को सजीव रूप देना हैं। इस विषय में सरकार, नाट्य-कार, निर्देशक, अभिनेता, मंच-शिल्पी, दर्शक आदि सभी का उत्तरदायित्व समान है। इस क्षेत्र में एकता की भावना से प्रेरित होकर बंग-रंगमंच पथ-प्रदर्शक बन सकता

है एवं हिन्दी रंगमंच राष्ट्रभाषा के उत्तरदायित्व को ध्यान में रखते हुए सर्व-भारतीय पद्धति पर अपनी उन्नति कर सकता है। **आज रंगमंच से धर्म का संबंध विच्छिन्न हो गया है** एवं मानवता का वह पवित्र मिलन-मन्दिर बन गया है।

बंगला रंगमंच की उन्नति के कारण एवं हिन्दी रंगमंच की समस्याएं— रंगमंच के क्षेत्र में भारत में बंगाल अग्रणी रहा। इस विषय में **श्री हेमेन्द्रनाथ दासगुप्त** लिखते हैं—'बंगाली ड्रामा, लाइक बंगाली लेंग्वेज, एज़ एन इन्स्टिट्यूशन आफ दी कण्ट्री, इज़ एन एडेप्टेशन आफ्टर दी वेस्टर्न आइडीयल......।'[1] बंगाल सर्वप्रथम पश्चिमी सभ्यता के संस्पर्श में आया एवं सांस्कृतिक पुनरुत्थान बंगाल में पहले हुआ। **रंगमंचीय उन्नति सांस्कृतिक उन्नति पर निर्भरशील है।** बंगाल ने सौभाग्यवशतः रामकृष्ण परमहंस, विवेकानन्द, अरविंद जैसे आध्यात्मिक शक्ति सम्पन्न नेताओं को एवं बंकिमचन्द्र, रवीन्द्रनाथ, शरच्चन्द्र जैसे साहित्यिक नेताओं को तथा सुरेन्द्रनाथ बेनर्जी, देशबन्धु, चितरंजन दास, सुभाषचन्द्र बोस जैसे राष्ट्रीय नेताओं को प्राप्त किया जिनकी प्रेरणा से उसकी जातीय शक्ति प्रदीप्त हो उठी एवं उसकी अभिव्यक्ति रंगमंच पर हुई। **अंग्रेज शासकों द्वारा नाना प्रकार के प्रतिबन्ध लगाये जाने पर भी एवं आर्थिक अभाव के होते हुए भी बंगला रंगमंच की प्रगति रुकने नहीं पाई। उसे श्रेष्ठ नाट्यकार, निर्देशक, अभिनेता तथा सुरुचि सम्पन्न दर्शकों का सहारा मिला।**

हिन्दी रंगमंच की बुनियाद को पहले पहल पारसी नाटक कम्पनियों की कुरुचि ने दुर्बल कर दिया। उसके बाद जनता की अभिनय सम्बन्धी प्यास को **हिन्दी सिनेमा** ने मदिरा द्वारा शांत करना चाहा। ऐसी परिस्थिति में आर्थिक अभाव न होते हुए भी हिन्दी रंगमंच को कोई प्रेरणा नहीं मिली। **जयशंकर प्रसाद, सेठ गोविंद-दास जैसे उच्च कोटि के नाट्यकार रंगमंच के सम्बन्ध में उदासीन रहे।** प्रसाद ने ऐतिहासिक अनुसन्धान में अपनी शक्ति नियोजित की एवं सेठजी राजनीति की ओर झुक गये। हिन्दी के रंगमंच को गिरीशचन्द्र, रवीन्द्रनाथ, शिशिर भादुड़ी जैसे प्रयोजक नहीं मिले। हिन्दी रंगमंचीय परम्परा की टूटी श्रृंखला को जोड़ते हुए आज हिन्दी रंगमंच के पुनर्निर्माण की योजनाएं बन रही हैं। **उसे सर्वभारतीय सहयोग प्राप्त नहीं हो रहा है** क्योंकि बंगला, मराठी, गुजराती, तेलगू तथा तामिल भाषी लोग अपने उन्नतशील रंगमंच के प्रति अधिक दत्तचित्त हैं। हिन्दी के कई समस्या-नाटकों के रचयिताओं को रंगमंच सम्बन्धी अभिज्ञता बिल्कुल नहीं है। अतः उनके नाटक अभिनय के उपयुक्त नहीं होते। **स्थायी रंगमंचीय परम्परा के अभाव में दर्शकों की रुचि** भी उच्च कोटि के नाट्य-प्रदर्शनों को देखने के उपयुक्त नहीं बन पाई है। केवल इने-गिने साहित्य-प्रेमियों के द्वारा रंगमंच की उन्नति सम्भव नहीं है।

१—दी इण्डियन स्टेज—हेमेन्द्रनाथ दासगुप्त (भाग—१ प्रथम संस्करण)
—इन्ट्रोडक्टरी चैप्टर।

हिन्दी तथा बंगला नाटकों की अभिनेयता एवं रंगमंचीयता

नाटक का अभिनय से उतना ही घनिष्ठ सम्पर्क है जितना रंगमंच से। **अभिनय उसका कलापक्ष है एवं रंगमंच उसका शिल्पपक्ष**। अभिनय के द्वारा ही कवि, अभिनेता, पात्र एवं दर्शकों के हृदय का तादात्म्य होता है एवं रस की सृष्टि होती है। अरस्तू ने ट्रेजेडी के लिए उसके अभिनय को अधिक महत्वपूर्ण नहीं माना किन्तु भरत नाट्यशास्त्र में अभिनय का सूक्ष्म विवेचन हुआ है। अभिनय केवल अनुकृति नहीं है। 'अभिनयदर्पणम्' की भूमिका में **डा० मनोमोहन घोष** लिखते हैं—'वट दी एस्थेटिक सिग्निफिकेन्स आफ दी इमिटेशन विल नाट बी क्लियर अनलेस दी आब्जेक्ट आफ प्लेज दैट इज़ दी **इव्होकिंग आफ रस इन दी स्पेक्टेटर्स**, इज़ टेकेन इनटू कन्सीडरेशन। हेन्स वी सी मल्लिनाथ, दी फेमस कमेन्टेटर डिफाइनिंग **अभिनय एज़ मूव्हमेन्ट्स फार सजेस्टिंग रस (सेन्टीमेन्ट एन्ड भाव (स्टेट)**।" – [अभिनयदर्पणम् (द्वितीय संस्करण)] अतः अभिनय मल्लीनाथ के अनुसार रसभावादि-व्यंजक चेष्टा विशेष है। भारतीय नाट्यशास्त्र के अनुसार अभिनय चार प्रकार के होते हैं—**आंगिक** अभिनय में विभिन्न अंगों की चेष्टाओं की, **वाचिक** अभिनय में उच्चारण, आवाज पाठ सम्बन्धी चेष्टाओं की, **आहार्य** अभिनय में सामाजिक स्थिति तथा चरित्र के अनुसार वेश-भूषा की चेष्टाओं की तथा **सात्विक** अभिनय में मानसिक भावों की अभिव्यक्ति होती है। किसी भी नाटक की अभिनेयता केवल अभिनेताओं पर ही नहीं, नाटककार की रचना-शैली तथा निर्देशन संबंधी संकेत, निर्देशक की कार्य पटुता एवं दर्शकों की रुचि पर भी निर्भर करती है। इनके सिवा अभिनेयता एवं रंगमंचीयता का भी पारस्परिक घनिष्ट सम्पर्क है। **मंच के दृश्य-विधान, उपकरण, प्रकाश की व्यवस्था, ध्वनि प्रभाव आदि भी अभिनय को नया रूप-रंग प्रदान करते हैं**। जैसे "हैमलेट" नाटक में हेमलेट के पिता की प्रेतात्मा के कथन टेप-रेकार्ड द्वारा प्रस्तुत किये जाने पर उसकी ध्वनि अति प्राकृत वातावरण का सृजन करती है। इसी तरह रवीन्द्रनाथ के नृत्य-नाटकों के लिए अंग-तरंगो का विक्षेप उतना ही महत्वपूर्ण है जितना प्रत्येक अंग पर विभिन्न वर्णों का **आलोक पात**। नाटक अगर मंच पर अभिनीत होते हैं तो मंच-व्यवस्था तथा मंच के प्रत्येक उपकरण का प्रभाव अभिनय पर पड़ता है एवं मंच पर सात्विक अभिनय-प्रदर्शन सार्थक हो उठता है किन्तु नाटक अगर रेडियो के लिए अभिनीत होते हैं तो मंचीय उपकरण एकदम अनावश्यक हो जाते हैं तथा **ध्वनि-नियंत्रण** का महत्व अधिक हो जाता है। रेडियो नाटक के अभिनय में आंगिक, आहार्य और सात्विक अभिनय निरर्थक एवं वाचिक अभिनय सार्थक होता है।

बंगला रंगमंच पर गिरीशचन्द्र घोष का अभिनय तथा उनके नाटक—गिरीशचन्द्र केवल नाट्य-प्रयोजक ही नहीं, सफल अभिनेता भी थे एवं बंगला रंगमंच पर उनकी मृत्यु के कुछ काल उपरान्त भी उनकी अभिनयरीति का ही प्रभाव रहा। **उनके नाटक अधिकांशतः पौराणिक, भक्तिरसात्मक थे**। रचना-शैली की दृष्टि से

उनके नाटकों की शैली **शेक्सपियरीय शैली** है एवं अक तथा दृश्यों में उनका विभाजन हुआ है। भक्तिरस पूर्ण, **अमित्राक्षर छन्द (गैरिश छन्द)** मे उनके नाटक रचित होने के कारण उनका अभिनय अत्यन्त भावपूर्ण होता था एवं तत्कालीन बंग-प्रदेश की सास्कृतिक सुधा वर्षण से स्नात दर्शक मंडली उनके अभिनय को देखकर भक्ति रस से पुलकित हो उठती थी। गिरीशचन्द्र ने उच्च कोटि के भक्ति रस एवं दार्शनिकता का परिवेश सृजित किया।

हिन्दी में पारसी नाटक कम्पनी के नाटक, अन्य रंगमंचीय नाटक तथा भारतेन्दु का अभिनय एव उनके नाटक—हिन्दी की पारसी नाटक मंडलियों ने **अंग्रेजी आपेरा के ढंग पर** पहले पहल नाट्य-प्रदर्शन प्रारम्भ किया। इन्हें हिन्दी-रंगमंच के जन्मदाता न कहकर गुजराती रंगमंच के जन्मदाता कह सकते हैं। गुजराती के सिवा अंग्रेजी तथा मुस्लिम रुचि का विकृत प्रदर्शन इन्होंने किया एवं दर्शकों को शृंगार रस के गन्दे प्रदर्शन द्वारा तृप्त करके अर्थोपार्जन किया। इनके नाटककार अधिकांशत: **उर्दू के लेखक थे**, जैसे—आगा हश्र "कश्मीरी", "जरीफ", "बेताब", "रौनक", "जेबा", "शैदा", "जौहर", "तालिब" आदि। अत: इनके नाटकों की शैली उर्दू के शेर वाली शैली के कुछ नजदीक है। इस तरह **शेर व दो चार पंक्तियों के संवादों का अभिनय** सात्विक न होकर वाचिक ही अधिक होता था। इनके नाटकों में नृत्य, गीत तथा मंच सम्बन्धी **चमत्कार प्रदर्शन पर अधिक लक्ष्य होने के कारण अभिनय का स्थान गौण था।** अभिनय में स्वाभाविकता के स्थान पर **अति-नाटकीयता** का प्राधान्य था। पारसी नाटक मंडलियों के नाटकों में **राधेश्याम कथावाचक** के नाटक अत्यन्त लोकप्रिय हुए। उनके नाटकों में उर्दू के स्थान पर हिन्दी की आत्मा की झाँकी मिलती है एवं उनके पौराणिक पात्रों का चित्रण भी अधिक सुरुचिपूर्ण हुआ है। नाटक की रचना-शैली की दृष्टि से उन्होंने **मंचीय चमत्कार-प्रदर्शन के स्थलों के चित्रण के अवसर** का भी उपयोग किया है, जैसे "वीर अभिमन्यु" के अन्तिम दृश्य में वृद्धक्षत्र की गोद में जयद्रथ का कटा हुआ मस्तक गिरना आदि। पारसी नाटक मंडलियों के अभिनेता अधिकांशत: पारसी तथा मुसलमान थे एवं अभिनेत्रियां बाजारू औरतें थीं अत: अभिनय कला का अधिक उत्कर्ष न हो सका। अभिनेताओं में **कावसजी खटाऊ** (एलफ्रेड थियेट्रिकल कम्पनी के मालिक) भारत के इरविंग कहलाते थे। **सोहराबजी** (न्यू एलफ्रेड कम्पनी के मालिक) भी अभिनय के लिए अत्यन्त प्रसिद्ध थे। इन पारसी नाटक मंडलियों के नाट्यप्रदर्शनों की आलोचना भारतेन्दु, बालकृष्ण भट्ट आदि ने की। भारतेन्दु ने अपने नाटकों को अभिनेय बनाना चाहा एवं अपने साथियों के साथ अभिनय करने के लिए रंगमंच पर भी पदार्पण किया। उनका लक्ष्य शृंगार रस का विकृत प्रदर्शन नहीं था परन्तु "भारत-दुर्दशा", जैसे नाटकों के प्रदर्शन द्वारा वे जनता को युग-चेतना द्वारा स्पन्दित करना चाहते थे। उनके नाटकों के संवाद भारतीय रुचि के उपयुक्त, मार्मिक तथा सरल हैं। उनकी "चन्द्रावली नाटिका" में लम्बे लम्बे गीतों की योजना ने उसे अनभिनेय बना दिया है। **भारतेन्दु की अभिनय सम्बन्धी रुचि तथा**

रीति की परम्परा हिन्दी में नहीं टिकी एवं भारतेन्दु का अभिनय कोई स्थायी आदर्श प्रस्तुत न कर सका। इसका मुख्य कारण तत्कालीन हिन्दी-उर्दू भाषी दर्शकों की रुचि थी। बीसवीं सदी के प्रारम्भिक काल में हिन्दी में कुछ रंगमंचीय नाटक भी लिखे गये जैसे पं० माधव शुक्ल रचित "सीय-स्वयंवर", "महाभारत पूर्वार्ध". पं० **माखनलाल चतुर्वेदी रचित "कृष्णार्जुनयुद्ध"**, जमनादास मेहरा रचित विश्वामित्र, देवयानी आदि। हिन्दी के रंगमंचीय नाटकों का विवरण **डा० सोमनाथ गुप्त** के प्रबंध "हिन्दी नाटक साहित्य का इतिहास" में **"रंगमंच और रंगमंचीय नाटक"** नामक अध्याय में है। इसका क्षेत्र पारसी रंगमंच के नाटक तथा उनके समसामयिक अन्य रंचमंचीय नाटकों की आलोचना तक ही सीमित है। यह हिन्दी नाटकों की अभिनेयता का एक छोटा सा अंश है। हमें यह देखना है कि एक **प्रतिष्ठित रंगमंचीय परम्परा तथा लोकप्रिय अभिनय रीति के अभाव में भी किसी तरह हिन्दी नाटकों ने अभिनेयता के तत्व को नहीं भुलाया** एवं नाटककार रंगमंचीयता के प्रश्न को सामने रखकर रचना करते गये। साहित्यिक तथा रंगमंचीय नाटकों के समन्वय में वे सचेष्ट रहे।

प्रसाद के नाटकों की अभिनेयता:—प्रसाद ने रंगमंच की उपेक्षा कर नाटक रचना नही की। **वे चाहते थे कि नाटक के उपयुक्त रंगमंच का निर्माण होना** चाहिए। नाटककार यदि किसी विशिष्ट रंगमंचीय-व्यवस्था को अपने सम्मुख रखता है तो उसकी नाटकीय रचना की कलात्मकता कुंठित हो जाती है। अपने विचारों को उन्होंने **"काव्य और कला तथा अन्य निबन्ध"** में व्यक्त किया है। प्रसाद के नाटकों की गरिमामयी साहित्यिक भाषा को भी आलोचक अनभिनेय ठहराते हैं किन्तु यह विचारणीय है कि बंगला में रवीन्द्रनाथ तथा डी० एल० राय के नाटको की भाषा ऐसी ही गरिमामयी होती हुई भी उनके नाटक अनभिनेय सिद्ध नही हुए। इसका कारण नाटककार की त्रुटि नही दर्शकों की शिक्षा का स्तर है। नाटक को सफल तथा अभिनेय बनाने के लिए नाटककार को दर्शकों का कुछ ख्याल रखना पड़ता है. इसके साथ ही **दर्शकों को भी उच्च मानसिक धरातल पर उठना पड़ता है**। प्रसाद के "चन्द्रगुप्त" तथा "स्कन्दगुप्त" नाटक में उनके **इतिहास-प्रेम** ने उसकी वस्तु को अत्यन्त जटिल तथा अनभिनेय बना दिया है। अजातशत्रु की कथावस्तु अधिक शृंखलित है। उनका सबसे अधिक **अभिनयोपयोगी नाटक 'ध्रुवस्वामिनी"** है क्योंकि उसकी कथावस्तु अत्यंत सुगठित है, पात्र कम हैं एवं संकलन-त्रय का निर्वाह हुआ है यद्यपि इस नाटक की भी भाषा साहित्यिक है। अन्य नाटकों में प्रसाद ने दृश्यों को इस भांति रखा है कि एक के बाद दूसरा दृश्य दिखाना असम्भव सा प्रतीत होता है किन्तु अगर हिन्दी क्षेत्र में **घूर्णयमान-मच** (Revolving Stage) का प्रयोग हो (जैसा कि कलकत्ते में "स्टार" तथा "विश्वरूपा" थियेटर में है) तो प्रसाद के नाटक अल्प काट छांट के उपरान्त अभिनेय सिद्ध हो सकते हैं।

द्विजेन्द्रलाल राय के नाटकों की अभिनेयता:— प्रसाद ने अपने नाटकों को अंक तथा दृश्य में विभाजित करते हुए भी दृश्यों का नामोल्लेख नहीं किया किन्तु **द्विजेन्द्र-**

लाल ने अपने नाटकों को अंक तथा दृश्यों में विभाजित किया एवं रंगमंच सम्बन्धी उनकी अभिज्ञता प्रसाद से अधिक थी इसी कारण **साहित्यिक भाषा, गीतों का प्रयोग आदि होते हुए भी द्विजेन्द्रलाल के नाटक अभिनेय सिद्ध हुए एवं अत्यन्त लोकप्रिय भी हुए।** द्विजेन्द्रलाल ने दृश्यों को इस भांति रखा है ताकि अधिक मंच उपकरण युक्त दृश्य के पूर्व एक साधारण दृश्य रहे जो अगले दृश्य को तैयार करने के लिए अवकाश दे सके जैसे "चन्द्रगुप्त" नाटक के प्रथम अंक में प्रथम दृश्य है—सिन्धु नदी तट, सिकन्दर का शिविर, द्वितीय दृश्य है श्मशान जिसके लिए सजावट की कोई आवश्यकता नहीं एवं तृतीय दृश्य है महाराज नन्द का प्रमोदोद्यान जिसे प्रस्तुत करने के लिए अवकाश चाहिए। मंच के अगले खंड में अगर श्मशान का दृश्य अभिनीत हो रहा है तो पर्दे के अन्तराल में मंच के पिछले खंड में प्रमोदोद्यान की सजावट प्रस्तुत हो सकती है। द्विजेन्द्रलाल के नाटकों के **संवाद काव्यात्मक** तो हैं किन्तु उनमें **गति** होने के कारण वे अभिनेय हैं किन्तु प्रसाद की दार्शनिकता उनके काव्यात्मक संवादों की गति को और मंथर कर देती है। स्वगत कथन, दीर्घ उक्तियां प्रसाद तथा राय दोनों के नाटकों में हैं किन्तु द्विजेन्द्रलाल राय के नाटकों में दो चार शब्दों में अभिनय सम्बन्धी **संकेत** अधिक हैं जैसे—'एइ बोलिया सेल्यूकस सविस्मये हेलेनेर प्रति चाहिया रहिलेन', 'चन्द्रगुप्त चिन्तितभावे निष्क्रान्त होइलेन' आदि (चन्द्रगुप्त—पंचम अंक, प्रथम दृश्य)। **रस की** दृष्टि से भी द्विजेन्द्रलाल दर्शकों का ख्याल रखते थे जैसे कि अत्यन्त करुण दृश्य के पहले एक हल्का, तरल, हास्यपूर्ण दृश्य की वे योजना करते हैं ताकि करुण दृश्य का भार दर्शकों के मन को अत्यधिक पीड़ित न कर दे। संक्षेप में यही कहा जा सकता है कि **केवल बंगमंच की सुविधाओं का ख्याल रखते हुए ही नहीं, अभिनय एवं दर्शकों पर उसके प्रभाव का ख्याल रखते हुए भी द्विजेन्द्रलाल ने नाटकों की रचना की।** 'सीता', 'पाषाणी' जैसे उनके अमित्राक्षर छन्द के नाटक भी अभिनेय हैं।

बंगला के गीताभिनय तथा हिन्दी के गीतिनाट्यों की अभिनेयता—कलकत्ता तथा बम्बई के रंगमंच पर अंग्रेजी आपेरा का प्रदर्शन होता था एवं गीतों से परिपूर्ण मधुर वातावरण दर्शकों को अधिक आकर्षित करते थे। यह देख हिन्दी तथा बंगला नाटककार गीतों से परिपूर्ण नाटक रचना की ओर प्रवृत्त हुए। पारसी नाटक मंडलियों के कई नाटक अधिकांशतः रंगीनी प्रेम के गीतों से पूर्ण होते थे। बंगला में इसी तरह के गीताभिनयों की रचना मनमोहन बसु, गिरीशचन्द्र, क्षीरोदप्रसाद आदि ने की। ये गीतिनाट्य रंगमंच पर अत्यन्त सफल होते थे क्योंकि दर्शकों के हृदय की रस-तृष्णा को नृत्य, गीत तथा मधुर भावों द्वारा तृप्त करने की क्षमता इनमें थी। अभिनय की दृष्टि से भावात्मक रीति का ही प्रयोग होता था क्योंकि कार्य-व्यापार को गति देने वाले गद्यांशों का प्रयोग इनमें कम होता था। **हिन्दी के गीतिनाट्यों में गीतों की बहुलता नहीं होती परन्तु उनमें आद्योपान्त गेय छन्दों का प्रयोग होता है जैसे प्रसाद रचित 'करुणालय'** में अरिल्ल छन्द का प्रयोग हुआ है। मधुर सुरों की राग-रागिनियों का प्रयोग न होने के कारण तथा बीच-बीच में **उन गीतों को जोड़ने**

वाले गद्यात्मक कथन न होने के कारण हिन्दी के गीतिनाट्य अभिनेय नहीं हो पाये। उनकी एकरसता दर्शकों को प्रफुल्ल नहीं कर पाती है। दिनकर, भगवतीचरण वर्मा, सुमित्रानन्दन पन्त आदि ने जिन काव्यरूपकों की सृष्टि की वे इतने गहन तथ्य पूर्ण तथा साहित्यिक हैं कि वे मंच पर साधारण जनता को मुग्ध नहीं कर सकते। **रेडियो द्वारा प्रसारित** होकर ये **काव्य रूपक** इने गिने काव्य रसिकों को रससिक्त करते हैं। नाटककारों को हमेशा ध्यान रखना चाहिए कि साधारण नाटकों के समान गीतिनाट्य भी जनता को रस-वर्षण द्वारा मुग्ध कर सकें। अत्यधिक काव्य-तत्व का प्रवेश इनकी अभिनेयता को नष्ट कर देते हैं। दर्शकों के शुष्क हृदय यथार्थवादी शैली से ऊब कर आजकल गीतिनाट्यों की मांग कर रहे हैं।

अभिनय के क्षेत्र में रवीन्द्रनाथ के अवदानः—रवीन्द्रनाथ ने सामाजिक नाटक, प्रहसन, सांकेतिक रूपक, गीति नाट्य, नृत्य नाट्य, ऋतु नाट्य आदि विभिन्न शैलियों के नाटकों की रचना की। उनके सभी प्रकार के नाटक अभिनेय हैं एवं शान्तिनिकेतन में उनके सभी नाटकों का अभिनय सफलता पूर्वक होता है। **प्रारम्भ से ही रवीन्द्रनाथ का लक्ष्य नाटकों की अभिनेयता** की ओर रहा क्योंकि जोड़ासांको के ठाकुर परिवार के गृह के मंच पर अक्सर नाट्याभिनय हुआ करता था। रवीन्द्रनाथ के सामाजिक नाटक तथा "चिरकुमार सभा" जैसे प्रहसन साधारण रंगमंच पर सफलता पूर्वक अभिनीत हुए। उनके सांकेतिक रूपक कलकत्ते के **साधारण रंगमंच पर पहले पहल अधिक सफल नहीं** हुए क्योंकि उनमें रहस्यपूर्ण वातावरण होने के कारण जनता रस का आस्वादन सहज ही में नहीं कर पाती है। आज जब साधारण जनता रवीन्द्र भावधारा से पूर्णतः परिचित हो गई है, उनके नाट्याभिनय को साग्रह देखना चाहती है एवं कलकत्ते के "बहुरूपी" नाट्य संस्था द्वारा प्रदर्शित रवीन्द्रनाथ के नाटक अत्यन्त लोकप्रिय होते हैं। उनके सांकेतिक रूपकों के अभिनय के लिए साधारण, आडम्बरहीन मंच ही यथेष्ट हैं किन्तु उनमें निहित रहस्यपूर्ण भावाभिव्यक्ति के लिए विशिष्ट प्रकार के वाचिक एवं सात्विक अभिनय की आवश्यकता है। उनके नाटकों की कथावस्तु अधिक जटिल नहीं होती किन्तु उनमें निहित **भावादर्श अत्यन्त गहन** होते है। रवीन्द्रनाथ के नाटकों का अध्ययन करते समय हमें यह ध्यान रखना चाहिए कि वे रहस्यवादी गीति काव्य रचयिता हैं। सीमा और असीम के प्रेम के अतीन्द्रिय अनुभव की अभिव्यक्ति ही उनकी कला है। जो भाव "गीतांजलि" में है वही भाव "राजा" नाटक में है। "डाकघर" के अमल के हृदय में असीम से मिलने के लिए वही छटपटाहट है। इन भावों की अभिव्यक्ति के श्रेष्ठ माध्यम गीत हैं अतः रवीन्द्रनाथ के नाटकों के **गीत, गीतिनाट्य, नृत्यनाट्य के गीत** आदि अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं। उनमें केवल शास्त्रीय संगीत, लोक संगीत तथा यूरोपीय संगीत का मिश्रण ही नही हुआ है वरन् मानव भावों के वैचित्र्य की अभिव्यक्ति हुई है। **"रवीन्द्र संगीत" की आलोचना-प्रसंग में शान्तिदेव घोष** लिखते हैं —"आमादेर संगीते अभाव छिलो मानविक वैचित्र्येर। यूरोपीय सभ्यतार संश्रवे आमादेर मनोजगतेर परिवर्तन होलो, आमरा एकटिमात्र स्थायी भावेर

मध्ये आबद्ध थाकते चाइलाम ना।"[१] रवीन्द्रनाथ के गीति नाट्य [illegible], "मायार खेला" आदि में गीतों द्वारा असंख्य भावों की अभिव्यक्ति सफल हुई है एवं वे आपेरा सदृश्य नाटक के सूत्र में गुंथे हुए गीत नही हैं, वरन् रस व्यंजित करने में समर्थ गीति नाट्य हैं।

रवीन्द्रनाथ के **नृत्य-नाटकों** में भी **नृत्य** प्रधान होते हुए भी गीतों का महत्व है क्योंकि नृत्य के साथ साथ गीत भी भाव अभिव्यक्त करते है जिनका आलम्बन प्रकृति है। **रवीन्द्र संगीत का रवीन्द्र नाट्य-धारा में विशेष महत्व है एवं वे केवल अभिनेय ही नहीं वरन् रवीन्द्र नाटक के विशिष्ट आकर्षण हैं।** रवीन्द्र संगीत अत्यन्त लोकप्रिय होते हुए भी बंगला नाटक धीरे धीरे वस्तुधर्मी होते गये एवं हिन्दी नाटकों में काव्य रूपक ही गीतिनाट्य कहलाने लगे। रवीन्द्र संगीत **शान्तिनिकेतन के आश्रम मंच** की छाया में अत्यन्त समृद्ध हो उठा किन्तु उपयुक्त मंच के अभाव में उक्त शैली का प्रयोग अन्य नाटककारों ने नहीं किया क्योंकि साधारण जनता मंच पर जीवन की झांकी देखना चाहती है। रवीन्द्रनाथ के नाटकों के अभिनय का लक्ष्य है **आन्तरिक सत्य की अभिव्यक्ति।**

हिन्दी मे हरिकृष्ण प्रेमी, सेठ गोविंददास, उदयशंकर भट्ट तथा उपेन्द्रनाथ अश्क के नाटकों की अभिनेयता:—प्रेमी के नाटक मंच पर अत्यन्त सफल हुए क्योंकि उनकी **भाषा साहित्यिक होती हुई भी अत्यन्त रंगमंचीय** है गीतों का संयत प्रयोग हुआ है एवं कथावस्तु अत्यधिक **उलझी** नहीं है। **सेठ गोविन्ददास के नाटक साहित्यिक तथा रंगमंचीय नाटकों के बीचों बीच** है। उनके ऐतिहासिक तथा पौराणिक नाटकों की कथावस्तु शृंखलित होती हुई भी उनमें सरसता का अभाव होता है। सेठजी ने इन नाटकों के सूच्य अंश में दृश्य सम्बन्धी दीर्घ संकेतों को लिखकर यह प्रमाणित किया है कि अभिनीत होने के लिए उन्होंने नाटकों की रचना की है। रंगमंच से अधिक अभिज्ञ न होने के कारण उनके नाटक अभिनय की दृष्टि से अधिक सफल नही हो पाते। उदयशंकर भट्ट के ऐतिहासिक नाटक भी सेठजी के नाटकों की तरह हैं। द्विजेन्द्र-लाल के ऐतिहासिक नाटकों की अभिनेयता केवल प्रेमीजी ही अपना सके। **उदयशंकर भट्ट के भाव नाट्य भी मंच के उपयुक्त न होकर रेडियो के अधिक उपयुक्त हैं** क्योंकि उनमें दृश्य गुणों की अपेक्षा श्रव्य गुण अधिक हैं। कार्य-व्यापार-संघर्ष के सिवा भाव-संघर्ष एवं विचार संघर्ष भी अभिनेय हो सकते हैं किन्तु नाटककार को चाहिए कि वह अपनी काव्यात्मक व तार्किक प्रतिभा को अधिक स्वतंत्रता न देकर नाटकीय उत्कंठा (Suspense) को बनाये रखने की चेष्टा करे। पात्रों का चित्रण भी ऐसा हो कि वे नाटककार द्वारा संचालित प्रतीत न हों जिससे कि उनके अभिनय में भी स्वच्छन्दता व्यक्त हो। हिन्दी नाटककारों में **उपेन्द्रनाथ अश्क** के नाटकों की अभि-

---

१—रवीन्द्र संगीत—शान्तिदेव घोष—पृष्ठ-१३४।

नेयता बंगला नाटकों की कोटि की है क्योंकि उन्हें रंगमंच का प्रत्यक्ष अनुभव है। उनके नाटक **"कैद"** और **"उड़ान"** की भाषा, वस्तु की श्रंखला, संकलन-त्रय की योजना तथा दृश्य सम्बन्धी संकेत अभिनेयता की दृष्टि से अत्यन्त पुष्ट हैं। **"छठा बेटा" की स्वप्न-नाट्य शैली नवीन मंच टेकनीक की सफल अभिव्यक्ति है** । "छठा बेटा" में पात्रों की सजीव, व्यावहारिक, छोटी छोटी उक्तियां उतनी ही सफल हैं जितनी कि स्वप्निल, छाया-रूप पात्रों का आगमन और प्रस्थान।

शिशिर भादुड़ी का अभिनय तथा बंगला में मन्मथ राय, शचीन सेनगुप्त, महेन्द्रगुप्त, आदि के नाटकों की अभिनेयता:—बंगला के नाटककारों के सामने प्रतिष्ठित रंगमंच की अभिज्ञता थी अतः उनके नाटकों की अभिनेयता दिनों दिन उन्नत तथा मार्जित होती गई एवं **विदेशी रीतियों का भी वे प्रयोग करने लगे**। मन्मथ राय के पौराणिक नाटकों की शैली इतनी पुष्ट होती है कि बंगला के **वस्तु-धर्मी नाट्यमंच** पर भी वे अत्यन्त सफल होते हैं। उनके 'कारागार' तथा 'देवासुर' जैसे नाटकों की वाणी अग्निमयी भी है एवं अभिनय के उपयुक्त गतिशील भी। शचीन सेनगुप्त, महेन्द्रगुप्त आदि नाटककार रंगमंच से संयुक्त रहते हैं अतः उनके सामाजिक नाटक ही नहीं, ऐतिहासिक नाटक भी अभिनेयता के गुणों से पूर्ण होते हैं। **महेन्द्र गुप्त नाट्यकार, अभिनेता तथा प्रयोजक भी हैं**। शिशिर कुमार भादुड़ी के अभिनय ने जिस बंगला रंगमंच को समृद्ध किया उसकी पूर्ति बंगला के कई नाटककार कर रहे हैं। **उत्पल दत्त तथा शम्भू मित्र जैसे कुशल प्रयोजक नाटकों** की भी रचना कर रहे हैं एवं अभिनय भी कर रहे हैं। हिन्दी में भारतेन्दु के पश्चात् ऐसी प्रतिभा उदित नहीं हुई जो प्रयोजक, नाटककार तथा अभिनेता की ख्याति एक साथ प्राप्त कर सके। **शिशिर भादुड़ी नाट्यकार नहीं थे** किंतु **उनके अभिनय से नाटक का एक नया रूप खिल उठता** था जैसे रीतिमत नाटक में प्रोफेसर दिगम्बर के रूप में उनका अभिनय। उनके अभिनय ने बंगला नाटककारों को नाटक रचना के विषय में नई दिशा सूचित की। नाटककार अभिनेताओं की विशिष्टताएं लक्ष्य कर पात्रों की सृष्टि करने लगे तथा किसी भी वस्तु को एक विशिष्ट ढंग से निरूपित (Interpret) करने का प्रयास करने लगे। क्षीरोदप्रसाद रचित **'आलमगीर'** नाटक में आलमगीर का अभिनय तथा योगेश चौधरी के **'सीता'** नाटक में राम का अभिनय शिशिर भादुड़ी के दो कीर्ति-स्तम्भ हैं। हिन्दी में ऐसे अभिनेता नहीं हुए।

समस्या-मूलक नाटकों की अभिनेयता:—सामाजिक नाटकों की एक शाखा समस्या नाटकों के रूप में विकसित हुई जो रचना-तन्त्र की दृष्टि से साधारण नाटकों से भिन्न है। ग्रीक त्रासदियों की भांति इनमें **कार्य व्यापार का ऐक्य अत्यन्त सुगठित रूप में** व्यक्त होता है अतः प्रासंगिक कथावस्तु के अभाव में इनमें गिने चुने पात्र होते हैं। **सकलन-त्रय का निर्वाह तथा गीत** एवं **स्वगत कथनों का बहिष्कार** होता है। बंगला नाटकों का झुकाव सामाजिक समस्याओं के प्रति बढ़ता गया एवं हिन्दी की अपेक्षा

अभिनय तथा मंच सम्बन्धी वस्तुधर्मी रीति बंगला में अधिक शीघ्रता एवं सफलता के साथ अपनाई गई। हिन्दी तथा बंगला समस्या-नाटकों की रंगमंचीयता का तुलनात्मक विवेचन अध्याय ५ में हो चुका है अतः यहां पुनरावृत्ति अनावश्यक है।

एकांकी नाटकों की अभिनेयता:—सांकेतिकता एवं रंगमंचीयता एकांकी नाटकों के विशिष्ट गुण है। इनमें एक अंक एवं एक दृश्य अथवा कई दृश्य होते हैं। **संकलन-त्रय का निर्वाह** करना एकांकियों के लिए आवश्यक है। अतः कम दृश्य परिवर्तन तथा कम पात्र होने के कारण एकांकियों का अभिनय उपकरण तथा अभिनेताओं की संख्या की दृष्टि से मितव्ययिता से सम्पन्न हो सकता है किन्तु **टेकनीक** एवं **अभिनय सम्बन्धी मार्मिकता का परिचय इन्हें अधिक देना पड़ता है।** एक दो छोटे छोटे दृश्य मंच शिल्प की निपुणता द्वारा एवं दो चार पात्र अपने सीमित संलाप एवं हाव-भाव द्वारा दर्शकों के हृदय को झकझोर देते हैं। नूतन शैली के एकांकियों के पूर्व, भारतेन्दु तथा उनके समकालीन नाटककारों के प्रहसन, बंगला में रामनारायण, मधुसूदन दत्त, दीनबन्धु मित्र आदि के प्रहसन, अभिनीत हो चुके थे किन्तु **आधुनिक एकांकियों की अभिनेयता में बारीकी होती है** एवं मनोवैज्ञानिक विश्लेषण को व्यक्त करने में समर्थ **हाव भाव** का अंश अधिक रहता है। प्रसाद रचित **"एक घूंट"** में अरुणाचल आश्रम का ही दृश्य है एवं वनलता, प्रेमलता, रसाल, आनन्द आदि कम पात्र हैं। रामकुमार वर्मा रचित **"चारुमित्रा"** में शिविर का दृश्य है एवं चारुमित्रा, महादेवी, अशोक, स्वर्णप्रभा, एक स्त्री आदि अल्प पात्र हैं। इसी तरह मन्मथ राय के एकांकियों में भी **दृश्य कम** तथा **पात्र भी कम** हैं जैसे "राजपुरी" में उद्यान भवन के बाहर कुंज का दृश्य है एवं पात्र प्रसेनजीत, रानी वासव क्षत्रिया, कवि शेखर, विरुद्धक आदि हैं। एकांकियों की नवीन शैली के लेखक छोटे छोटे चुभते संलाप, टूटे फूटे अन्तंद्वन्द्व व्यंजक संलाप, कथावस्तु की शीघ्र गति, चरम सीमा के बाद ही अन्त, मंचीय उपकरणों द्वारा पात्र की मानसिक स्थिति का चित्रण, प्रकाश द्वारा महत्वपूर्ण अंश की व्यंजना आदि प्रयोग अपना रहे हैं। एकांकी के क्षेत्र में हिन्दी नाटक अभिनेयता की दृष्टि से बंगला नाटकों की समकक्षता का दावा रखते है एवं **भुवनेश्वर प्रसाद, अश्क, धर्मवीर भारती, अज्ञेय, जगदीशचन्द्र माथुर, विष्णु प्रभाकर आदि नवीन** प्रयोगों की **अभिनेयता** सिद्ध कर रहे हैं। विद्यार्थी रंगमंच उनके आधार हैं।

नाटकों के अन्तर्गत गीत एवं उनकी अभिनेयता:—भारतीय नाटकों का लक्ष्य रहा **रस-सृष्टि** इस कारण सस्कृत के कई उपरूपकों में एवं लोक नाटकों में नृत्य, गीतों का प्रयोग वांछनीय समझा जाता था। बंगला नाटकों पर **जात्रा का प्रभाव** पड़ने के कारण गिरीशचन्द्र, क्षीरोदप्रसाद आदि ने नाटकों में कई मधुर गीतों को स्थान दिया। **द्विजेन्द्रलाल, रवीन्द्रनाथ आदि** के **नाटकों के गीत भी काव्य की दृष्टि से उत्कृष्ट एवं नाटकीयता की दृष्टि से उपयुक्त हैं।** हिन्दी में **प्रसाद** के नाटकों के गीत भी काव्य की दृष्टि से उत्कृष्ट एवं नाटकीय परिस्थिति के अनुकूल हैं। हरिकृष्ण

प्रेमी, सेठ **गोविंददास** आदि ने भी गीतों की सफल योजना की है। **नाटक में गीत द्वारा** कार्य-व्यापार को गति मिलती है, पात्रों की मानसिक परिस्थिति पर प्रकाश पड़ता है, वातावरण का निर्माण हो सकता है, नाटकीय परिस्थिति व रस की अनुकूलता की सृष्टि होती है, उद्‌बोधन का कार्य भी हो सकता है किन्तु प्रश्न यह है कि **क्या गीत नाटकों की अभिनेयता के साधक** होते हैं ? गीतों को नाटकत्व तथा अभिनेयता का बाधक समझ कर यथार्थवादी शैली के नाटक उनका बहिष्कार कर रहे हैं। हिन्दी तथा बंगला नाटककारों को भारतीय परम्परा का त्याग नहीं करना चाहिए एवं रस-सिद्धान्त के अनुकूल नाटकों में कुछ गीतों की योजना कर वे दर्शकों को आनन्द प्रदान कर सकते हैं। **मानसिक द्वन्द्व को व्यक्त करने के लिए एवं नाटकीय वातावरण की सृष्टि के लिए गीत अभिनेय ही नहीं. अनिवार्य हैं** इसी कारण संस्कृत नाटकों के पूर्व रंग-विधान के गीत एवं ध्रुवागीत निर्देशक की कला कुशलता के फल थे।

सिनेमा के घातक प्रभाव—सिनेमा के प्रचलन से रंगमंच को आघात पहुंचा है किन्तु पाश्चात्य देशों में सिनेमा रंगमंच के लिए घातक सिद्ध नहीं हुए । पारसी रंगमंच सिनेमा की प्रतियोगिता में उखड़ गये किन्तु हिन्दी सिनेमा जगत ने पारसी रंगमंच की कुरुचिपूर्ण प्रवृत्ति को अपना लिया । बंगला सिनेमा अधिक कुरुचिपूण न होने के कारण थियेटर को अधिक आघात नहीं पहुंचा । सिनेमा में देश काल का कोई बन्धन नहीं रहता एवं नायक नायिकाओं के सम्भोग दृश्य पर्दे पर थियेटर की अपेक्षा अधिक निःसंकोच भाव से दिखलाये जा सकते हैं। इसी कारण ऐसे प्रदर्शनों को सिनेमा में देखकर फिर दर्शक थियेटर जगत की नीरसता का अनुभव करते हैं । इनका प्रभाव हिन्दी तथा बंगला नाटकों की अभिनेयता पर पड़ रहा है। सेठ गोविन्ददास रचित **"विकास"** नाटक, चतुरसेन शास्त्री रचित **"मेघनाथ"** एवं चन्द्रगुप्त विद्यालंकार रचित **"रेवा" में चित्र-नाट्य-शैली प्रतिफलित** हुई है एवं उनका अभिनय सहज-साध्य नहीं है। बंगला रंगमंच पर विद्युत् प्रकाश के सहारे चित्रात्मक दृश्य उपस्थित किये जा रहे हैं।

पाश्चात्य मंच-शिल्प के प्रयोग एवं अभिनेयता:—कलकत्ता तथा बम्बई के रंगमंच पर पाश्चात्य तन्त्र (टेकनीक) ही नहीं यान्त्रिक प्रयोगों (टेकनोलाजी) का भी बहुत प्रभाव पड़ रहा है। बंगला रंगमंच पर 'अंगार" "फरारी फौज", "कल्लोल" आदि इसके उदाहरण हैं जिनमें प्रकाश ध्वनि एवं यन्त्रों के सहारे विस्फोट, अग्निकांड, खदान के दृश्य, समुद्र के दृश्य आदि दिखलाये जा रहे हैं। **किन्तु जहां ऐसे प्रदर्शनों में चमत्कार का प्राधान्य हो जाता है वहां अभिनय का मूल्य घट जाता है।** ग्रीक नाटकों में **"डिउस एक्स मेशीना"** के अनुसार यन्त्रों के सहारे देवों का आविर्भाव दिखाया जाता था। पाश्चात्य मंच पर यन्त्रों का बहुत प्रयोग होता है किन्तु अभिनय का जो महत्व "अभिज्ञान शाकुन्तलम्" जैसे नाटकों में हो सकता है वैसा **पिरान्देलो रचित "सिक्स केरेक्टर्स इन सर्च ग्राफ एन आथर"** मे नहीं। प्रकाशपात की निपुणता तथा यन्त्रों के सहारे कई दृश्य अभिनेय बनाये जा सकते हैं जैसे—**"जनमेजय का नागयज्ञ"**

में खांडव वन दहन का दृश्य, **"स्कन्दगुप्त"** में कुंभा के जल में सैनिकों के बहते हुए दृश्य, **"केदार राय"** में दुर्ग प्रकोष्ठ पर से सोना के युद्ध करने का एवं दुर्ग में आग लगने का दृश्य आदि। टेनेसी विलियम्स के प्रसिद्ध नाटक **"दी ग्लास मिनेजरी"** के कुछ संस्मरणात्मक दृश्यों को पर्दे पर प्रकाश की सहायता से निर्मित चित्रों के सहारे दिखाया जाता है। यह भी एक नई टेकनीक है। जर्मनी के प्रसिद्ध नाट्यकार एवं निर्देशक बेटेल्टि ब्रेख्ट का **एपिक थियेटर** (बर्लिन एनसाम्बुल, पूर्व जर्मनी) रंगमंच की उन्नति की दिशा में नवीन पदक्षेप है। उसमें प्राच्य एवं पाश्चात्य के महत्वपूर्ण टेकनीकों को अपना लिया गया है। ब्रेख्ट अभिनय के क्षेत्र में **"थियौरी ऑफ एलियेनेशन"** के पक्षपाती हैं अर्थात् अभिनय आवेग पूर्ण नहीं होना चाहिए एवं अभिनेता को अन्य अभिनेताओं का ध्यान रख तटस्थ भाव से अभिनय करना चाहिए। समस्या नाटकों के **"ड्राइंग-रूम सेटिंग"** में यन्त्रों की आवश्यकता नहीं होती। मेटरलिंक के सांकेतिक नाटकों के स्थिर मंच **"स्टेटिक थियेटर"** में वातावरण निर्माण के लिए ध्वनि के विशिष्ट प्रयोग आवश्यक हैं। हिन्दी के मंच तो अभी विद्यार्थी रंगमंच के रूप में अंकुरित हो रहे हैं एवं बंगला के रंगमंच भी पाश्चात्य की तुलना में शैशवावस्था ही में हैं। अगर भारतीय रंगमंच पाश्चात्य के समान यान्त्रिक प्रयोगों को प्रधानता न दें तो संस्कृत रंगमंच की परम्परा का उद्धार हो सकता है फिर भी इस यान्त्रिक युग में अल्पाधिक प्रकाश, ध्वनि तथा यान्त्रिक प्रयोग मंच पर होते रहेंगे। **इनका प्रयोग चमत्कार सृष्टि के लिए नहीं, नाटकों की अभिनेयता को सहायता पहुँचने के लिए होना चाहिए।**

कलकत्ते के रंगमंच पर उत्पल दत्त के निर्देशन में जो मंच प्रयोग हो रहे हैं वे भारतीय रंगमंच के इतिहास में एक नवीन दिशा सूचित कर रहे हैं। थियेटर के "आंगिक"-अभिनय, मंच सज्जा, संगीत तथा प्रकाश सभी को उन्होंने अपने प्रयोगों में महत्व दिया है। वर्तमान थियेटर-जगत में वे परिचालक को ही सम्राट के रूप में स्वीकार करते हैं एवं स्तानिस्लाव्हस्की के यथार्थवादी मंच की उपेक्षा करके वे थियेटर को वास्तवोत्तर जगत में ले जाना चाहते हैं। तापस सेन के **"स्पॉट लाईट"** के प्रयोगों के चमत्कार का वे समर्थन करते हैं। पार्थप्रतिम चौधरी द्वारा परिचालित रंग महल में **"छायानायिका"** का प्रदर्शन तापस सेन के प्रकाशपात के सहयोग से सफल हुआ है। हिन्दी का रंगमंच अभी इतनी उन्नति नहीं कर पाया है। बंगला के रंगमंच पर राजनीति का बुरा प्रभाव पड़ रहा है। बंगला का रंगमंच यदि राजनीति से अपने को मुक्त रखे एवं अपनी परम्परा का अधिक ख्याल रखे तो वह हिन्दी मंच का पथ-प्रदर्शक बन सकता है।

हिन्दी तथा बंगला रंगमंच की वर्तमान परिस्थिति की दृष्टि से तुलनात्मक विवेचनः —रंगमंच की दृष्टि से नाटक को सफल बनाने के लिए केवल **प्रयोग कौशल** ही नहीं, **शिक्षा तथा उन्नत रुचि** की भी आवश्यकता है। नाटक दृश्यकाव्य होने के

कारण इसके लिए नाट्यकार उतने ही महत्वपूर्ण हैं जितने **निर्देशक, अभिनेता** तथा **दर्शक**। जाति की संस्कृति का प्रतीक रंगमंच इन सबके सम्मिलित प्रयास से उन्नति की ओर अग्रसर होता है।

बंगला रंगमंच का प्रारम्भ यूरोपीय ढंग के थियेटरों की देखादेखी हुआ किन्तु इसके मूल में **कलानुरागी कई आभिजात्य वर्ग** के व्यक्तियों की चेष्टा भी थी जिनमें काली प्रसन्न सिंह, पाइकपाड़ा के राजा प्रतापचन्द्र सिंह और ईश्वरचन्द्र सिंह, पाथुरियाघाटा के यतीन्द्र मोहन ठाकुर, जोड़ासांको के ठाकुर परिवार आदि उल्लेख योग्य हैं। इनके सिवा बागबाजार की शौकीया नाट्यमंडली का विशेष महत्व है क्योंकि इस मंडली के सदस्य गिरीशचन्द्र घोष तथा अर्द्धेन्दु शेखर मुस्तफी बाद में **व्यवसायी रंगमंच** के लोकप्रिय अभिनेता बने एवं बीसवीं सदी के प्रारम्भिक युग तक बंगीय रंगमंच पर गिरीशचन्द्र का प्रभाव रहा। हिन्दी रंगमंच का प्रारम्भ **गुजराती रंगमंच** व पारसी नाटक कम्पनियों द्वारा हुआ जिनका दृष्टिकोण व्यावसायिक था एवं रुचि अपरिष्कृत थी। इन्होंने सांस्कृतिक वातावरण को अश्लील तथा चमत्कारपूर्ण प्रदर्शनों द्वारा दूषित किया। उस विकृति से हिन्दी रंगमंच को मुक्त करने के लिए भारतेन्दु ने अपनी मंडली सहित रंगमंच के क्षेत्र में प्रवेश किया। उनके बाद नागरी नाट्यकला प्रवर्तन मंडली तथा उसकी दो शाखाएं काशी नागरी नाटक मंडली, श्री भारतेंदु नाटक मंडली तथा हिन्दी नाट्य समिति, हिन्दी नाट्य परिषद, श्री भारत रंजनी सभा आदि की स्थापना काशी, प्रयाग, कानपुर, कलकत्ता आदि स्थानों में हुई किन्तु कोई भी मंडली स्थायी न हो सकी। बीच बीच में काशी, प्रयाग, कानपुर लखनऊ आदि स्थानों के विद्यार्थियों द्वारा नाट्य प्रदर्शन होता रहा, काशी तथा प्रयाग की शौकीया मंडलियां बीच बीच में नाट्याभिनय करती रहीं एवं **रामलीला तथा रास-लीला की लोक-नाटक परम्परा अविच्छिन्न रही**। इनके समन्वित प्रयास को ही हम हिन्दी रंगमंच कह सकते हैं। हिन्दी की रंगमंचीय परम्परा अधिक उज्ज्वल न थी जबकि बंगाल में स्टार, मिनर्व्हा, रंगमहल, विश्वरूपा आदि **व्यवसायी रंगमंच सुप्रतिष्ठित** हो गये एवं कलकत्ते के यूनिवर्सिटी इन्स्टीट्यूट, बहुरूपी, शौभनिक, सी० एल० टी०, थियेटर सेंटर आदि शौकीया संस्थाओं ने भी बंगीय रंगमंच के उत्कर्ष-साधन में योग प्रदान किया। केवल रंगमंच ही नहीं, **रंगमंच सम्बन्धी पत्रिकाओं के प्रकाशन**, रंगमंच सम्बन्धी ग्रंथाकार की स्थापना आदि विषयों में भी बंगला नाटकों की रंग-मंचीय उन्नति अभिव्यक्त हुई है।

बंगला रंगमंच के क्षेत्र में जनता को आकर्षित करने वाले पौराणिक तथा देश-प्रेम विषयक नाटक उतने ही महत्वपूर्ण हैं जितने **शिशिर कुमार भादुड़ी सदृश्य अभि-नेता एवं सतु सेन जैसे मंच प्रयोजक**। शिशिर कुमार ने अभिनय कला को मर्मस्पर्शी रूप दिया एवं सतु सेन ने घूर्णायमान मंच (Revolving Stage) का प्रयोग किया। बंगला में आधुनिक काल के नाट्य लेखकों में **मन्मथ राय, उत्पलदत्त, शचीन सेनगुप्त,**

महेन्द्र गुप्त आदि का रंगमंच से घनिष्ठ सम्पर्क है। "नवान्न" जैसे युगान्तरकारी नाटक की परिचालना **शम्भू मित्र** एवं नाट्यकार **विजन भट्टाचार्य** ने की। विजन भट्टाचार्य ने इस नाटक में प्रधान समाद्दार का अभिनय भी किया। **भारतीय गणनाट्य संघ** द्वारा अभिनीत "नवान्न" नाटक ने विषय वस्तु, अभिनय तथा मंच-शिल्प की दृष्टि से बंगला नाटक को एक नई दिशा सूचित की। **वस्तु धर्मी नाटकों के सिवा विदेशी नाटकों के रूपान्तर, रवीन्द्रनाथ के नाटकों के नवीन प्रयोग,** संगीत-रूपक, जात्राओं के **नवीन प्रयोग** तथा **पुरातन नाटकों के नवीन प्रयोग द्वारा बंगीय रंगमंच अपनी बहुमुखी प्रगति का परिचय दे रहा है।**

हिन्दी रंगमंच के क्षेत्र में पारसी नाटक कम्पनियों ने कला तथा मंच शिल्प के स्तर को घटिया बना दिया था। माधव शुक्ल, श्यामसुन्दरदास, कृष्णचन्द, ब्रजचन्द आदि **साहित्य प्रेमियों** ने अपने प्रयास द्वारा उस स्तर को ऊँचा उठाया। **विद्यार्थियों** ने विशेषकर एकांकियों का अभिनय करके हिन्दी रंगमंच को नवीन उत्साह से सिंचित किया। **पृथ्वी थियेटर्स, इप्टा** आदि ने भी हिन्दी रंगमंच के एक विशिष्ट रूप का परिचय दिया। काशी नागरी नाटक मंडली, प्रयाग रंगमंच, कलकत्ते की अनामिका संस्था बीच बीच में नाट्य-प्रदर्शन करती रही। हिन्दी नाट्यकारों में हरिकृष्ण **प्रेमी, उपेन्द्रनाथ अश्क, डा० रामकुमार वर्मा, जगदीशचन्द्र माथुर आदि मंच-शिल्प के ज्ञाता हैं** जो हिन्दी रंगमंच के विकास के लिए प्रयत्नशील हैं। भारतीय गण नाट्य संघ की स्थापना से हिन्दी, बंगला तथा अन्य प्रादेशिक रंगमंचों का पारस्परिक सम्बन्ध बढ़ रहा है। कलकत्ते में "**थियेटर सेंटर**" की स्थापना से रंगमंचों का अन्तर्राष्ट्रीय सम्पर्क भी बढ़ रहा है। **संगीत नाटक अकादेमी, नेशनल स्कूल ऑफ ड्रामा** आदि भी रंगमंचीय-विकास के लिए सचेष्ट हैं। **शम्भू मित्र** तथा **इब्राहिम अलकाजी जैसे निर्देशकों** का पाश्चात्य रंगमंच सम्बन्धी ज्ञान भी यथेष्ट है। ऐसी परिस्थिति में प्राच्य एवं पाश्चात्य मंच-शिल्प के समन्वय से राष्ट्रीय-रंगमंच का निर्माण करना होगा एवं लोकनाट्य-मंच को उसके खुले मंच के टेकनीक के आधार पर ही नवीन तथा परिमार्जित रूप देना होगा। दिल्ली में आयोजित "**ईस्ट एंड वेस्ट थियेटर सेमिनार**" तथा कलकत्ते में भारतीय ज्ञानपीठ द्वारा आयोजित "हिन्दी नाट्य समारोह" आदि विश्व के थियेटरों एवं भारतीय थियेटरों के बीच सम्बन्ध स्थापित करने की चेष्टा करते हैं; यह चेष्टा आवश्यक एवं प्रशंसनीय है।

थियेटरों के विशेषज्ञों के लिए आज एक महत्वपूर्ण प्रश्न है कि—Total Theatre की सर्वांगपूर्ण परिभाषा क्या है? विश्व एवं भारतीय-रंगमंच आज एकसूत्र में आबद्ध हो रहा है एवं भारत के लिए दो पथ हैं—१—**गण-नाट्य-आन्दोलन से प्रभावित रंगमंच** एवं २—**नवनाट्य-आन्दोलन से प्रभावित रंगमंच**। गण-नाट्य-आन्दोलन द्वारा रंगमंच के क्षेत्र में **राजनीति** का प्रवेश हो रहा है। नव-नाट्य-आन्दोलन द्वारा पाश्चात्य के **अति-यथार्थवाद** (Sur-realism) की पुष्टि हो रही है,

आस्थावादी ब्रेख्ट तथा निराशावादी स्योनस्को का प्रभाव भी पड़ रहा है। राजनीति अथवा किसी वाद का प्रभाव कला के लिए श्रेय नहीं है। इन देशी तथा विदेशी प्रभावों से मुक्त रहकर ही रंगमंच अपनी उन्नति कर सकता है। **नवीन विचार तथा नवीन शिल्प के साथ हमारी परम्परा का योग-साधन** करके भारतीय रंगमंच आज भारतीय-संस्कृति का पथ-प्रदर्शक बन सकता है। पथ प्रदर्शन बंगला के रंगमंच को ही करना होगा एवं सिनेमा व **चित्रनाट्यों की विकृत रुचि से** नाट्यकला एवं अभिनय की रक्षा करना होगा। थियेटर को निजी अभिव्यक्ति की राह का अनुसंधान करना होगा; उसमें अन्य शिल्पों का मिश्रण नहीं, सार्थक सम्मिलन होगा।

मंच पर लोक-नाटकों की सम्भावनाएं:— लोक-नाटकों में जो **जीवन्त शक्ति** होती है उनका साहित्यिक नाटकों में अभाव होता है इसी कारण संस्कृत नाटक की परम्परा छिन्न-भिन्न हो जाने पर भी लोक-नाटक की **परम्परा अविच्छिन्न** रही, इस कारण लोक-नाटकों के प्रति उदासीन न होकर उनकी सम्भावनाओं पर हमें ध्यान देना चाहिए। संस्कृत नाटक एवं लोक नाटकों में **पारस्परिक आदान-प्रदान** हुआ एवं पाश्चात्य ढंग के थियेटर की स्थापना होने पर भी थियेटर के नाटक एवं लोक नाटकों में आदान प्रदान हुआ। संस्कृत रूपक **"भाण"** तथा **'सट्टक"**, **"रासक"** जैसे उप-रूपकों पर लोक-नाटकों का प्रभाव स्पष्ट है एवं लोक-नाटकों ने संस्कृत नाटक के सूत्रधार एवं विदूषक को अपना लिया। लोक नाटकों से उपादान ग्रहण करके बंगला में मनमोहन बसु ने **गीताभिनय** की सृष्टि की, भारतेन्दु ने रास-शैली पर **"चन्द्रावली"** नाटिका की रचना की एवं पारसी रंगमंच ने लोक-नाटकों की नृत्यगीत बहुलता को नाटकों में अत्यधिक महत्व दिया। इस तरह लोक-नाटकों का प्रभाव साहित्यिक नाटकों पर चाहे अच्छे व बुरे रूप में पड़ा हो किन्तु इस तरह का पारस्परिक आदान-प्रदान कला को पुनरुज्जीवित करता है। लोक नाटकों के **खुले-मंच के प्रयोग कलकत्ते के "मुक्त अंगन" मंडली द्वारा** हो रहे हैं, उनके नृत्य-गीत के तत्व को लेकर संगीत रूपक तथा नृत्य-नाट्यों की रचना हो रही है एवं **लोक-नाटकों में अभिनेता तथा दर्शकों का जो सम्बन्ध** रहता है उसे थियेटर के नाटकों में घनिष्ठ बनाने की चेष्टा हो रही है उदाहरणार्थ मिनर्व्हा में अभिनीत **"कल्लोल"** नाटक में दर्शकों के बीच ही उद्घोषक के समान एक पात्र जल-सेना के विद्रोह के इतिहास का कथारम्भ करते हैं।

इस तरह लोक-नाटकों से थियेटर के नाटक तत्व ग्रहण कर रहे हैं किन्तु इस अनुपात में थियेटर लोक-नाटकों को उन्नत नहीं कर पा रहे हैं। थियेटर तथा फिल्म के नाटकों के प्रभाव से लोक-नाटक विलीन होते जा रहे हैं। हिन्दी फिल्मों पर पारसी रंगमंच के नाटकों का प्रभाव अब भी गहरा है एवं लोक समाज पर उस विकृति का बुरा असर पड़ रहा है। ऐसी परिस्थिति में **लोक-नाटकों के उन्नयन द्वारा ही लोक-समाज की संस्कृति का मानदंड ऊपर उठ सकता है।** लोक-नाटकों में हास्य तथा शृंगार का रूप अत्यन्त विकृत हो गया है, **हास्य तथा शृंगार के रूप को** परिमार्जित

करना है। रासलीला, रामलीला तथा जात्रा जैसे लोक-नाटकों में **भक्ति रस का जो स्रोत है उसे शुष्क होने से बचाना है**। लोक नाटकों के उन्नयन से करोड़ों ग्रामीण जनता के सांस्कृतिक, सामाजिक तथा कलात्मक स्तर को ऊँचा उठाया जा सकता है। इसी कारण **शान्तिनिकेतन के पोष मेला में प्रतिवर्ष जात्रा की मंडलियां बुलाई जाती हैं एवं उन्हें प्रदर्शन की सुविधा देकर उत्साहित किया जाता है। बंग-संस्कृति सम्मेलनों** में भी लोक-नाटकों को प्रदर्शन का अवसर दिया जाता है। हिन्दी के क्षेत्र में भी शिक्षित वर्ग के लोगों को इस ओर ध्यान देना चाहिए। लोक-नाटकों की रचना, हर गांव में साधारण एक मंच की स्थापना तथा पर्दा, वेश-भूषा आदि की सहायता देकर शिक्षित वर्ग लोक नाटकों को प्रोत्साहित कर सकते हैं। मध्यप्रदेश समाज सेवा विभाग की ओर से हर जिले में "**कलापथक**" नामक मंडलियां बनी हैं जो लोक-नाटकों की उन्नति के लिए सचेष्ट हैं।

लोक नाटकों में लोक-गीत, लोक-नृत्य, लोक-कथा, लोक-शिल्प आदि का प्रयोग होता है अतः लोक-नाटकों की उन्नति का अर्थ इन सबकी उन्नति है। लोक-गीत, लोक-नृत्य तथा लोक-कथाओं का प्रयोग साहित्यिक नाटकों में भी हो सकता है किन्तु उसके पहले हमें उन्हें नष्ट होने से बचाना है क्योंकि ये लोक-जीवन की सम्पत्ति हैं।

लोक नाटकों में सूत्रधार आदि से अन्त तक मंच पर रहता है एवं कथा की शृंखला जोड़ता है। लोक-नाटकों में सूत्रधार की यह विशिष्टता मिटने न पाये क्योंकि **सूत्रधार नाटककार तथा दर्शकों के बीच की कड़ी है** जिसे वह अन्य पात्रों के मुंह से नहीं कहला सकता। **विदूषक** लोक-नाटकों का एक आवश्यक पात्र है जो हास्य की सृष्टि करता है तथा अन्य पात्रों की आलोचना दर्शकों के समक्ष करता है। हंसोड़ स्वभाव के अन्तराल में इसका समाज के आलोचक का रूप महत्वपूर्ण है। लोक नाटकों के सभी चरित्रों में थोड़ी बहुत स्थानीय विशेषता रहती है एवं भाषा में भी स्थानीय शब्दों का पुट रहता है। **इस तरह प्रत्येक क्षेत्र की कुछ न कुछ विशिष्टताओं से समन्वित लोक नाटक उस क्षेत्र के गण समाज के चित्र कहे जा सकते हैं एवं इन विभिन्न चित्रों को जोड़कर हम राष्ट्र के विशद रूप का दर्शन कर सकते हैं।** उदाहरणार्थ बंगाल के जात्रा नाटकों में श्री चैतन्य महाप्रभु द्वारा जिस भक्ति रस का स्रोत बंगाल में प्रवाहित हुआ था उसकी झांकी मिलती है। रामलीला में अयोध्यावासियों के हृदय में मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम के चरित्र के आदर्श की भावना है वह मूर्त्तिमान हो उठती है। रासलीला में बृजवासियों के हृदय में बसी कृष्णलीला की छबि निखर उठती है। इस तरह माँच, माण जश्न, भवाई, बिदेसिया, अंकिया, जात्रा, रामलीला, रासलीला आदि नाना तरह के भारतीय लोक-नाटकों के द्वारा भारतीय लोक-जीवन के चित्र को पूर्णता प्राप्त होती है। **गण-चेतना से अनुप्राणित वर्तमान युग में लोक-नाटकों के प्रति विशेष रुचि दिखाना हमारा कर्तव्य है।**

लोक-नाटकों के साधारण रचना-तन्त्र (टेकनीक) के सिवा कुछ विशिष्ट रचना-तन्त्र भी है जिनकी उन्नति के लिए चेष्टा करना आवश्यक है क्योंकि ये भारतीय नाटकों के विशिष्ट सम्पद है। ये हैं——**कठपुतली के खेल, छाया-नाटक** तथा **मुखौटा वालों के नाटक।** राजस्थान के भाट नगर तथा गांवों में घूम घूमकर कठपुतली का खेल दिखाते है परन्तु वे उपेक्षित हैं एवं अर्थाभाव के कारण उन्नति नही कर पाते। जनता कठपुतलियों के अंग संचालन, नृत्य, युद्ध आदि को चाव से देखती है एवं कथा के प्रति उनका अधिक लक्ष्य नही रहता। इस कारण राजस्थान के कठपुतली के खेल में "अमरसिंह राठौर" की कथा ही चलती आ रही है। जगदीशचन्द्र माथुर ने "कुंवर-सिंह की टेक" की रचना कर सागर भाट को उसका प्रदर्शन करने के लिए उत्साहित किया था। **बंगाल की कठपुतली के खेल में जात्रा-नाटकों की कथा का प्रयोग होता है, पुतलियाँ डंडा (RodS) और सूत्र (Springs) के सहारे अभिनय करती हैं एवं कठपुतली के पात्र ही नाटक के पात्र होते हैं एवं नेपथ्य से उनके संवाद विभिन्न कंठों द्वारा कहे जाते हैं।** चेकोस्लोव्हाकिया में कठपुतली-नाटक (पपेट ड्रामा) की अधिक उन्नति हुई। **शिशु रंगमंच** के लिए कठपुतलियों द्वारा परिकथा, उपकथा आदि का अभिनय अत्यन्त रोचक प्रमाणित हो सकता है।

छाया नाटक में पर्दे के पीछे से लकड़ी या चमड़े की बनी पुतलियों का संचालन होता है एवं दर्शक उनकी छाया देख पाते है। इस शिल्प के द्वारा रहस्य तथा संकेत की अभिव्यक्ति हो सकती है। यह शिल्प विदेशों मे लोकप्रिय बनती जा रही है।

लोक नाटकों में **मुखौटों का प्रयोग** भी होता रहा है। **रामलीला में हनुमान, अंगद, जामवंत, बन्दर सेना आदि मुखौटे लगाये रहते हैं। कथाकली नृत्य-नाटक में मुखौटों का प्रयोग होता है।** रवीन्द्रनाथ ने **"ताशेर देश" में मुखौटों का** प्रयोग किया एवं उसे सांकेतिक महत्व प्रदान किया। **ग्रीक त्रासदियों के पात्र मुखौटे लगाते थे** क्योंकि विशाल तथा उन्मुक्त थियेटर के लिए पात्रों के मुखाभिनय का कोई महत्व न था। आजकल यूरोप के "एंटी थियेटर" या **"थियेटर आफ दी एब्सर्ड" में मुखौटों का प्रयोग** हो रहा है एवं ये मुखौटे ही मानव के यथार्थ रूप के प्रतीक बनते हैं। इस तरह मुखौटे के प्रयोग की विस्तृत सम्भावनाएं है एवं लोक-नाटक भी इन सम्भावनाओं के अधिकारी बन सकते हैं।

लोक नाटकों को यदि **शिक्षित वर्ग का सहयोग** प्राप्त हो, उनकी **प्रकाशित प्रतियां उपलब्ध हों** एवं सरकार उनके लिए स्थायी मंच निर्माण की व्यवस्था कर दे तो नाटक-साहित्य का यह अंग लोक-जीवन को समृद्धिशाली तथा उन्नत बना सकता है। अब जात्रा, स्वांग, माँच आदि की प्रकाशित प्रतियां प्राप्त हो रही है एवं उनका मंच भी दिनोंदिन उन्नति कर रहा है।

सन् १९५० के बाद नाटक तथा रंगमंच के क्षेत्र में परिवर्तन—स्वाधीनता प्राप्ति के उपरान्त हमारा सामाजिक जीवन बहुत परिवर्तित हो गया। व्यक्तिगत

जीवन में यौन-स्वच्छन्दता, आर्थिक विषमता तथा गण-चैतन्य वर्त्तमान युग के प्रधान लक्षण हैं। रंगमंचीय शिल्प में वैज्ञानिक साधन अधिकाधिक अपनाये जाने लगे; राजनैतिक परिस्थितियों ने तथा पाश्चात्य दर्शन, साहित्य, विज्ञान के संस्पर्श ने भारत के नाट्य-साहित्य की प्रवृत्तियों में परिवर्तन ला दिया।

नित नवीन वैज्ञानिक खोजों से हमारे जीवन में भक्ति एवं विश्वास की मात्रा कम हो चली क्योंकि शरीर तथा मन के पारस्परिक सम्बन्धों के मनोवैज्ञानिक विश्लेषण होने पर भावुकता का स्थान युक्ति तथा तर्क ने ले लिया। ऐसी परिस्थिति में **पौराणिक** नाटक की धारा प्रायः लुप्त हो चली एवं उसका स्थान समस्या-मूलक नाटकों ने ग्रहण किया। पौराणिक नाटकों के क्षेत्र में मन्मथ राय के बंगला नाटक नवीन प्रवृत्ति के द्योतक हैं। उनके प्रसिद्ध पौराणिक नाटक चांद सौदागर, देवासुर, कारागार, सावित्री तथा सती हैं। **"सावित्री" में** यम के पास से पति का प्राण लौटा लाने में नारी के व्यक्ति-स्वातन्त्र्य-बोध का परिचय प्राप्त होता है एवं "**सती**" में पितृ-भक्ति तथा पति-भक्ति में मानसिक संघर्ष उत्पन्न होता है। मन्मथ राय के इन नाटकों के सिवा बंगला में पौराणिक नाटकों की रचना की प्रवृत्ति मिट चली है एवं बंगला नाट्य-साहित्य युगाश्रयी अधिक हो उठा है। हिन्दी में भी पौराणिक नाटक रचना की प्रवृत्ति मिट चली है एवं कई काव्य-रूपकों में ही पौराणिक कथावस्तु को आश्रय मिल रहा है जिनमें नवीन विचार की अपेक्षा नवीन भाव-भंगी की प्रमुखता है। उदयशंकर भट्ट रचित विश्वामित्र, राधा, मत्स्यगन्धा के सिवा दिनकर रचित "**उर्वशी**", मैथिलीशरण गुप्त रचित 'लीला' आदि गीतिनाट्य उल्लेख योग्य हैं। 'उर्वशी' में पुरुरवा और उर्वशी का प्रेम देश तथा काल की सीमा के परे आध्यात्मिक जगत की ओर उत्थित होता है। '**लीला**' में सीता-राम-विवाह के प्रसंग तक की कथा पूर्णांक गीति-नाट्य के रूप में है। भगवतीचरण वर्मा के काव्य रूपक '**कर्ण**' तथा '**द्रौपदी**' में केदारनाथ मिश्र के गीतिनाट्य, **अगुलिमाल**' में तथा जानकीवल्लभ शास्त्री के गीतिनाट्य '**पंचाली**', '**तमसा**', '**मदन-दहन**' आदि में पौराणिक कथावस्तु का आश्रय लिया गया है। **इस तरह हिन्दी में गीतिनाट्य के क्षेत्र में पौराणिक नाटक रचना की प्रवृत्ति विकास कर रही है** जबकि बंगला में गीति-नाट्य, नृत्य-नाट्य आदि के विकास होने पर भी उसका प्रधान लक्ष्य सामाजिक नाटकों में निबद्ध हो गया है। हिन्दी में नवीन दृष्टिकोण से रचित **पौराणिक** नाटकों में लक्ष्मीनारायण मिश्र रचित '**नारद की वीणा**' तथा चावलि सूर्यनारायण मूर्ति रचित '**महानाश**' उल्लेख योग्य हैं। 'नारद की वीणा' में यह नवीन दृष्टिकोण है कि मानव-कल्याण के लिए शैव हिरण्यकशिपु का वध सिंह की खाल पहने मानव ने किया एवं इस षड़यंत्र में वैष्णव प्रह्लाद शामिल थे। 'महानाश' में महाभारत युद्ध की कथा एवं समर का सन्देश है। धर्मवीर भारती रचित "**अन्धा युग**" में पौराणिक गीतिनाट्य अधिक विचारात्मक बन गया है।

राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय-परिवर्तनों का प्रभाव भी हिन्दी तथा बंगला नाटकों पर पड़ा जिसके फलस्वरूप **ऐतिहासिक नाटक** रचना की प्रवृत्ति भी मिट चली। स्वाधीन

नता-प्राप्ति तथा देश-विभाजन भारत के राष्ट्रीय जीवन की अविस्मरणीय घटनाएँ हैं। स्वदेशी आन्दोलन, असहयोग आन्दोलन एवं आजाद-हिन्द-फौज की वीरता का युग समाप्त हो रहा था ऐसी परिस्थिति में बिना रक्तपात व युद्ध के स्वाधीनता मिली एवं जिस बात की कल्पना किसी देशभक्त ने नहीं की थी वही खंडित-भारत तथा साम्प्रदायिक दंगे के रूप में सत्य हुई। इसका प्रभाव भारतीय नाट्य-साहित्य पर पड़ना अनिवार्य था। भावुकता मिश्रित राष्ट्रवाद जो कि पाश्चात्य शिक्षा द्वारा ग्रहण किया गया था और अधिक काल तक टिक न सका। उसका स्थान वस्तुधर्मी-देशप्रेम ने ग्रहण किया, **फलस्वरूप गांव की दयनीय परिस्थिति, किसान, मजदूर तथा आदिवासियों की दुर्दशा एवं भारतीय संस्कृति तथा इतिहास की नवीन व्याख्या तथा नवीन दृष्टिकोण नाटकों में व्यक्त हुए।** द्वितीय विश्वमहायुद्ध के कारण अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थिति भी बदल गई एवं **विदेशी जातियों के साथ संघर्ष के इतिहास** की ओर लेखकों की दृष्टि नवीन-रूप से आकृष्ट हुई।

हिन्दी ऐतिहासिक नाटकों के क्षेत्र में लक्ष्मीनारायण मिश्र रचित 'वितस्ता की लहरें' एवं 'दशाश्वमेध' उल्लेख योग्य हैं। **सिकन्दर, पोरस, चन्द्रगुप्त तथा चाणक्य जैसे ऐतिहासिक पात्रों** को लेकर प्रसाद तथा द्विजेन्द्रलाल ने 'चन्द्रगुप्त' नाटक की रचना की थी जिसमें राष्ट्रीयता का स्वर प्रमुख था। सेठ गोविन्ददास ने 'शशिगुप्त' नाटक में प्रो० हरिश्चन्द्र सेठ की खोज के आधार पर शशिगुप्त (चन्द्रगुप्त) को तक्षशिला वासी क्षत्रिय-सन्तान का रूप दिया था एवं पौरस की सिकंदर पर विजय के तथ्य को स्वीकार किया। मिश्रजी ने **'वितस्ता की लहरें'** में कई अनैतिहासिक तथ्यों का प्रयोग किया है एवं उनका लक्ष्य रहा है ग्रीक-विजेता अलिकसुन्दर की ध्वंसात्मक प्रवृत्ति, पुरु की वीरता एवं तक्षशिला के स्नातकों तथा आचार्यों द्वारा देशोद्धार के लिए राज-नीति में हस्तक्षेप आदि व्यक्त करना। **'दशाश्वमेध'** में कुषाण सम्राट कनिष्क एवं भारशिव नागों के संघर्ष की कथा है। इन नाटकों में वह राष्ट्रीय प्रेरणा नहीं जो प्रसाद के ऐतिहासिक नाटकों में है। वृन्दावनलाल वर्मा रचित **'पूर्व की ओर'**, प्रेमी रचित **'शपथ'** तथा मिलिन्द रचित **'गौतमनन्द'** सांस्कृतिक-प्रेरणा के फल हैं। बंगला नाट्यक्षेत्र में भी द्विजेन्द्रलाल राय के ऐतिहासिक **नाटकों की राष्ट्रीय उत्तेजना धीमी पड़ने लगी।** मन्मथ राय रचित **'अशोक'** नाटक में त्याग एवं भोग के संघर्ष का सांस्कृतिक दृष्टिकोण से चित्रण हुआ है। शचीन सेनगुप्त रचित **'राष्ट्रविप्लव'** तथा महेन्द्र गुप्त रचित **'टीपू सुल्तान'** एवं **'महाराजा नन्दकुमार'** में **ब्रिटिशों के साथ** संघर्ष का इतिहास है। इस क्षेत्र में उल्लेख योग्य नाटक मन्मथ राय रचित **'सांओताल विद्रोह'** है जिसमें संथाल आदिवासियों द्वारा ईस्ट इंडिया कम्पनी के विरुद्ध जो विद्रोह सन् १८५४ में हुआ था उसकी अमर-गाथा है। संथाल-परगना तीन पहाड़ से कलकत्ते तक रेलपथ निर्माण के लिए संथाल श्रमिक नियुक्त किये गये थे। हिन्दू महाजन तथा अंग्रेज वणिकों ने उनका पीड़न करना प्रारम्भ किया। विद्रोह के रूप में निष्पेषित जाति की सत्ता जाग्रत हो उठी एवं आत्म विसर्जन द्वारा वे प्रतिवाद को अमर कर गये।

हिन्दी क्षेत्र में पृथ्वीनाथ शर्मा रचित 'द्विविधा' तथा अश्क रचित 'स्वर्ग की झलक' में आधुनिक, शिक्षिता नारियों का हीन-चित्रण हुआ है जो कि लेखकों की गम्भीर जीवन-दृष्टि के परिचायक नहीं कहे जा सकते हैं। अश्क रचित **'पैंतरे'** नाटक में फिल्म में काम करने वालों के जीवन के चित्र, **'अंजो दीदी'** में आभिजात्य वर्ग की एक अनुशासित महिला के आदर्श की अव्यवहारिकता के चित्र तथा **'अलग-अलग रास्ते'** में विवाह की समस्या के चित्र हैं। अश्क ने हिन्दी नाट्य-क्षेत्र में वैचित्र्य-पूर्ण जीवन-दृष्टि का उत्कृष्ट परिचय दिया है। समस्या नाटकों के क्षेत्र में लक्ष्मीनारायण मिश्र की जीवन-दृष्टि तार्किक तथा मनस्तात्विक प्रसंगों की ओर अधिक झुकी। **लक्ष्मीनारायण लाल** प्रतीक-शैली के सहारे समस्या का चित्रण कर रहे हैं। उन्होंने **'मादा कैक्टस'** में कलाकार अरविन्द, उसकी पत्नि सुजाता एवं बान्धवी आनन्दा के जीवन की समस्या को रूप दिया है। काव्य-रूपकों में भी समस्या की छाया घनीभूत है जिनमें विचार का स्थान भावना ने ले लिया है। हिन्दी में धर्मवीर भारती रचित 'काव्यरूपक' 'अन्धा युग' तथा **सिद्धनाथ के काव्यरूपक 'कवि', 'संघर्ष', 'विकलांगों का देश'** आदि इस दृष्टि से उल्लेखयोग्य हैं। **सुमित्रानन्दन पन्त के काव्यरूपक** उत्तर-शती, शुभ्र-पुरुष, रजत-शिखर, शिल्पी, अप्सरा आदि में काव्य-सौन्दर्य अधिक है। **बंगला नाटकों की प्रवृत्ति काव्य-रूपकों की अपेक्षा वस्तुधर्मी गद्य नाटकों के प्रति** अधिक उन्मुख है। रोमांटिक चित्रण की प्रवृत्ति से आज के बंगला नाटक एकदम उदासीन हैं।

दुर्भिक्ष एवं देश-विभाजन की कराल-छाया जितनी बंगाल पर पड़ी उतनी भारत के अन्य किसी प्रदेश पर नहीं पड़ी एवं राजनैतिक गण-आन्दोलन का तीव्रतर रूप भी बंगाल में परिलक्षित हुआ। अतः **'नवान्न'**, 'मशाल' व **'अंगार'** की कोटि के विप्लवकारी नाटक हिन्दी में रचित नहीं हो रहें हैं। फिर भी आर्थिक तथा सामाजिक वैषम्य की ओर हिन्दी नाटककारों की दृष्टि है। भगवतीचरण वर्मा रचित 'तुम्हें **रुपया खा गया'** तथा रामनरेश त्रिपाठी, रचित **'पैसा परमेश्वर'** में आर्थिक-विषमता के चित्र हैं। उदयशंकर भट्ट रचित **'नया समाज'** में जमींदार वर्ग की परिस्थिति के चित्र हैं। जमींदारी छिन जाने के पश्चात् उनके पतनोन्मुखी जीवन की कहानी है। विनोद रस्तोगी रचित **'नये हाथ'** में भी ऐसे विगत-वैभव ताल्लकेदार के परिवार की कथा है जिसके अन्त में माला अपने दरिद्र सहपाठी सतीश से एवं महेन्द्रपाल नौकरानी बालों से विवाह करने की स्वीकृति पाते हैं।

इस तरह हिन्दी के सामाजिक समस्या-मूलक नाटकों की प्रवृत्ति यौन-समस्या, शिक्षित नारियों की विवाह समस्या, उन्मुक्त प्रेम की समस्या एवं पुरानी तथा नई पीढ़ी के विचार-भेद की समस्या की ओर अधिक झुकी है तथा राजनैतिक, आर्थिक तथा समष्टिगत समस्याओं की ओर कम किन्तु इसके विपरीत **बंगला के सामाजिक नाटकों की प्रवृत्ति उद्बुद्ध गण-चैतन्य, वर्ग-संघर्ष तथा सामूहिक संवेदनाओं के प्रति अधिक उन्मुख है।** मजदूर-समस्या की दृष्टि से हिन्दी में दयानाथ झा रचित **'कर्मपथ'** उल्लेख

योग्य है। इन [illegible] नाटकों में शोषित मानवता के प्रति हमारी दृष्टि आकर्षित हो रही है एवं दृष्टिकोण कल्पना-विलास के स्थान पर वस्तुधर्मी होता जा रहा है। यह संतोषजनक है किन्तु जीवन की अखडता चित्रित करने के लिए विभिन्न व्यक्ति-चरित्र द्वारा जिस जीवन सत्य की गंभीर अनुभूति होती है उसका अभाव है।

नवीन प्रवृत्ति की क्रियाशीलता नाट्य-साहित्य के अन्य क्षेत्रों में भी प्रसारित हो रही है। **इब्सन, शॉं, गोर्की, चेखाव आदि के नाटक हिन्दी तथा बंगला में अनूदित हो रहे हैं।** 'नीलदर्पण' जैसे नाटकों का तथा रवीन्द्रनाथ के नाटकों का नूतन पद्धति में अभिनय करके, उनका नवीन मूल्यांकन हो रहा है। हिन्दी भी रंगमंच के क्षेत्र में कुछ उन्नति कर रही है। गीति-नाट्य, नृत्य-नाट्य तथा **संगीत-रूपकों की लोकप्रियता** बढ़ती जा रही है। सामाजिक समस्या-चित्रण तथा कलात्मक-अंकन की दृष्टि से हिन्दी तथा बंगला के **एकांकी नाट्क द्रुत गति से उन्नति कर रहे हैं।** बाह्य-प्रभावों के सिवा परम्परा की ओर लेखकों की दृष्टि जा रही है। **लोक-नाटकों को नवीन-पद्धति में ढालने का भी प्रयास हो रहा है।**

प्रमुख नाट्य तत्वों की दृष्टि से तुलनात्मक विवेचन

कथावस्तु:—नाटक की कथावस्तु सुविन्यस्त होनी चाहिए, पाश्चात्य नाटकों में क्रिया-व्यापार को प्रधानता दी जाती है एवं त्रासदी की कथा-वस्तु में नायक का पहले उत्कर्ष दिखाया जाता है फिर उत्कर्ष से अपकर्ष की ओर वह बढ़ता है। संस्कृत नाटकों में रस को प्रधानता दी जाती है।

अध्याय ८

उपसंहार

हिन्दी तथा बंगला नाटकों का अतीतकालीन सम्बन्ध, वर्तमान परिस्थिति तथा भविष्य की सम्भावनाएँ:—प्राचीन काल से भारत की सांस्कृतिक, राजनैतिक तथा सामाजिक परिस्थिति एक सी रही है इस कारण भारत के किसी भी प्रदेश का उत्थान-पतन भारतीय जाति के उत्थान-पतन के साथ एक-सूत्र में आबद्ध है। किसी भी जाति के उत्थान-पतन के साथ उस जाति के नाट्य-साहित्य का घनिष्ठ सम्पर्क है। **मुसलमान आक्रमणकारियों के समक्ष जब गृह-कलह के कारण हिन्दू-शक्ति पराजित हो गई तब संस्कृत साहित्य का भी ह्रास होने लगा।** मध्ययुग में भारत के विभिन्न प्रदेशों के लोक-नाटकों ने अपने प्रयास द्वारा नाटक की परम्परा को जीवित रखा । संस्कृत तथा लोक-नाटकों में आदान-प्रदान होता था इस कारण भारत के सभी लोक-नाटकों में बहुत साम्य है। वैष्णव आन्दोलन के कारण रास तथा जात्रा नाटकों में बहुत समानता है। बंगाल के कवि जयदेव के 'गीत-गोविन्द' का प्रभाव भी भारत के समस्त लोक-नाटकों पर पड़ा।

जिस समय अंग्रेज भारत में अपना साम्राज्य एवं अपनी संस्कृति फैला रहे थे उस समय लोक-नाटकों का स्तर अत्यन्त नीचा हो गया था, अश्लील शृंगार तथा सस्ते हास्य ही उनमें शेष रह गये थे। ऐसी परिस्थिति में बंगला में विलायती थियेटरों के उपयुक्त नाटकों की रचना होने लगी जिनमें कहीं-कहीं संस्कृत तथा जात्रा-शैली का भी प्रयोग हो जाता था। बंगाल में सांस्कृतिक पुनर्जागरण के युग का आरम्भ हुआ एवं उससे समग्र भारत जगमगा उठा। उस परिस्थिति में लेखकों ने समाज के संस्कार के लिए प्रहसनों की रचना की एवं भारत की आध्यात्मिक-प्रवृत्ति को भक्ति रस में निमज्जित कर पौराणिक नाटकों की रचना की। हिन्दी नाटकों की प्रवृत्ति भी यही रही एवं भारतेन्दु ने बंगला नाट्य-साहित्य के उन्नत-स्तर को देखकर हिन्दी नाट्य साहित्य को पारसी कम्पनी के रंगमंचीय-नाटकों के गन्दे गढ़े से निकालने का प्रयत्न किया। हिन्दी में भी प्रहसनों तथा पौराणिक-नाटकों की रचना होने लगी किन्तु इस युग में बंगला के पौराणिक-नाटक जितना फले-फूले उतना हिन्दी के पौराणिक नाटक उत्कर्ष-प्राप्त नहीं हो सके।

स्वदेशी आन्दोलन के साथ बंगला के ऐतिहासिक-राष्ट्रवादी नाटक अत्यन्त कोकप्रिय हो उठे। बंग-भंग आन्दोलन के साथ जिस राष्ट्रीय भावना का स्रोत उमड़ पड़ा उसका भारत की राष्ट्रीयता के निर्माण में बहुत हाथ रहा । बंगला के प्रसिद्ध ऐतिहासिक नाट्यकार द्विजेन्द्रलाल के नाटकों का जितना हिन्दी पर प्रभाव पड़ा उतना

अन्य किसी नाट्यकार का नहीं। अतः बीसवीं सदी के प्रारम्भ से राष्ट्रवाद की जिस नवीन चेतना के उदय होने से हिन्दी तथा बंगला में ऐतिहासिक नाटकों की अधिक रचना हुई उसके तत्वों तथा भाव-धाराओं में भी साम्य रहा। गांधीजी की राजनीति में किसानों के अभ्युदय की वर्ता एवं विश्वबन्धुत्व की भावना थी। तिलक एवं सुभाष क्रांति के उपासक थे। संस्कृत नाटकों के उच्चकुल-सम्भूत नायकों से दृष्टि हटाकर सामान्य मानव के प्रति दृष्टि हिन्दी तथा बंगला नाटकों में प्रारम्भ से ही आकृष्ट हुई इस कारण दुष्यन्त, उदयन, श्रीराम, श्रीकृष्ण ही नही, मद्यप चरित्र, बाल-विधवाएँ, दरिद्र किसान आदि नाटकों के पात्र बने। बीसवीं सदी में यह मानवता-बोध अधिक जाग्रत हुआ एवं केवल उनकी असहाय अवस्था ही नहीं, उनकी मांग, उनकी शक्ति से भी हमारा परिचय हुआ। राजनैतिक क्षेत्र में बंगाल ने अनेक विप्लवकारियों को जन्म दिया एवं हिन्दी भाषी क्षेत्र में महात्मा गांधी के अहिंसात्मक आन्दोलन का जोर रहा, इनकी छाया भी बंगला तथा हिन्दी नाटकों पर पड़ी। बंगला के 'कारागार' जैसे राष्ट्रवादी नाटकों में क्रान्तिकारी विचार हैं जिसके कारण इसका अभिनय निषिद्ध किया गया था एवं हिन्दी में हरिकृष्ण प्रेमी तथा सेठ गोविन्ददास जैसे नाटककारों पर गान्धीवादी विचारों का प्रभाव अधिक है। साहित्य जनता के भाव तथा विचारों का प्रतिनिधित्व करता है अतः किसी भी जाति का साहित्य उस जाति की युग चेतना को व्यक्त करता है। हिन्दी तथा बंगला साहित्य के अनुशीलन से ज्ञात होता है कि नाट्य-क्षेत्र में बंगला सामाजिकों की स्थिति अधिक उत्तेजनाजनक थी। नाट्यकार उच्छ्वसित वाणी में क्रांतिकारी विचारों को व्यक्त कर रंगमंचीय क्षेत्र में अत्यन्त साफल्य अर्जन करते थे। स्थायी रंगमंच के अभाव में स्वाधीनता के पूर्व तक हिन्दी के सामाजिकों की स्थिति का कोई निश्चित स्वरूप नहीं था। पारसी नाटक कम्पनियों ने उन्हें सस्ते नाटक प्रदर्शित कर बहुत पैसा कमाया। विद्यार्थी रंगमंच ने द्विजेन्द्रलाल के नाटकों का अभिनय करके यश अर्जन किया। हरिकृष्ण प्रेमी, रामकुमार वर्मा, उपेन्द्रनाथ अश्क आदि के पूर्णांकी एवं एकांकी नाटकों को भी सामाजिकों ने बड़े चाव से देखा किन्तु हिन्दी का क्षेत्र विस्तृत होने के कारण सामाजिकों की रुचि में गहन-ऐक्य का अभाव रहा। बंगला के सामाजिकों की रुचि कलकत्ते के रंगमंचों में अपने विकास का पथ निर्मित करती हुई दिनोंदिन परिष्कृत हो उठी।

स्वाधीनता प्राप्ति, देश विभाजन तथा आर्थिक संकट के कारण भारत के नये युग का प्रारम्भ हुआ जिसका प्रभाव देश के नाट्य-साहित्य पर पड़ा। स्वाधीनता समस्त भारत को मिली एवं ऐतिहासिक नाटकों में जिस राष्ट्रीय उत्तेजना की अभिव्यक्ति होती थी उसकी समाप्ति हुई। देश विभाजन का कुठाराघात पंजाब एवं बंगाल पर हुआ। युगों से बंगीय समाज की संहति कायम थी किन्तु मानव की स्वार्थपरता तथा निर्बुद्धिता ने अचानक उस समाज को खंडित कर दिया। केवल शरणार्थी-समस्या का ही उद्भव नहीं हुआ, समाज अपनी हीनता की ग्लानि से जर्जरित हुआ। इसका अनुभव पंजाब और बंगाल ने जितना किया उतना भारत के अन्य किसी प्रदेश ने नहीं।

बंगला नाट्य-साहित्य में इस क्षोभ की ज्वाला धधक उठी। समस्त रोमांस-प्रियता को त्याग कर बंगला नाटक साहित्य वास्तव-मुखी बन गया। स्वाधीनता प्राप्ति के उपरान्त हिन्दी में सांस्कृतिक नाटकों की रचना होने लगी एवं काव्य-रूपक रेडियो का सहारा पाकर विकसित होने लगे।

आर्थिक-संकटों का प्रहार यद्यपि बंगाल पर अधिक हुआ फिर भी समस्त भारत की अर्थनैतिक परिस्थित निराशाजनक रही। स्वाधीनता प्राप्ति के पूर्व से ही **द्वितीय विश्व महायुद्ध** तथा **बंगाल दुर्भिक्ष** के कारण भारत की आर्थिक-समस्या प्रबल हो उठी थी। आर्थिक सकट से जूझने के कारण स्त्रियां भी रोजगार के लिए गृह-प्राचीर से बाहर निकल पड़ीं। आर्थिक स्वतन्त्रता प्राप्त करने पर स्त्रियों का आत्म-बोध तथा व्यक्तित्व अधिक सचेत हो उठा एवं नारी प्रगति के कारण समाज में नूतन समस्याओं का उदय हुआ। **हिन्दी तथा बंगला नाटकों में समस्या-मूलक नाटकों का लक्ष्य यौन-समस्या का चित्रण करना हो गया।** आर्थिक परिस्थिति एवं समाज की परिस्थिति में बहुत घनिष्ठ सम्बन्ध है। **आर्थिक उन्नति ही स्वतंत्रता, साम्य एवं भाईचारे की मंजिल के सोपान हैं अतः समाजवादी अर्थ-नैतिक व्यवस्था के प्रति लोगों की आस्था बढ़ने लगी।** हिन्दी तथा बंगला के नाटकों में इन्हीं विचारों की अभिव्यक्ति हो रही है। साम्य का आदर्श, अत्याचार के विरुद्ध प्रतिवाद तथा **मानवता प्रेम रवीन्द्रनाथ के नाटकों** में भी व्यक्त हुआ था किन्तु उनके नाटक किसी विशिष्ट नाट्य-धारा का सृजन नहीं कर सके थे। हिन्दी तथा बंगला में समस्या-मूलक नाटकों की धारा का उद्भव सन् १९२५ के बाद से सामाजिक, राजनैतिक तथा आन्तर्जातिक परिस्थितियों के विवर्तन के कारण हुआ। द्वितीय विश्व महायुद्ध के बाद से पूंजी-पतियों द्वारा शोषित वर्ग की दुर्दशा देखकर लेखकों की दृष्टि **किसान-महाजन** तथा **श्रमिक-मालिक** समस्या की ओर आकृष्ट हुई। इस **वर्ग-संघर्ष तथा विद्रोह** की बलिष्ठ अभिव्यक्ति बंगला के **'नवान्न'** (सन् १९४४) नाटक एवं हिन्दी के **'कोणार्क'** (सन् १९५१) नाटक में हुई। केवल आर्थिक-संग्राम ही नहीं, शोषित माननता की गण-चेतना आहत-सर्प की भांति फुफकार उठी। **गण-आन्दोलन, गण-नाट्य-संघ की स्थापना आदि से हिन्दी तथा बंगला नाट्य-जगत एक दूसरे से निविड़ सम्पर्क में आबद्ध हुए।** दोनों नाट्य-साहित्य ने रोमांटिक-प्रवृत्ति का बहिष्कार करना शुरू कर दिया एवं साधारण मानव के दुःख दर्द के प्रति सहानुभूति जाग्रत होने पर मनुष्य के जीवन का यथातथ्य चित्रण होने लगा। बंगला के रंगमंच ने **'नीलदर्पण'** के अभिनय द्वारा उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध में ही जिस वास्तव-प्रीति का परिचय दिया था, सन् १९५० के वाद **'नीचेर महल'** (गोर्की रचित 'लोअर डेप्थ्स), अंगार, कल्लोल आदि के अभिनय द्वारा भी उस **वास्तव-प्रीति एवं मानवता-बोध** का परिचय दे रहे हैं। हिन्दी नाटकों की वास्तव-प्रीति भी उन्मुख हो उठी है किन्तु रंगमंच पर उनकी बलिष्ठ अभिव्यक्ति अनवरुद्ध गति से नहीं हो पा रही है। **काव्य रूपकों** के क्षेत्र में हिन्दी के प्रसिद्ध कवियों के अवदान हिन्दी नाट्य-साहित्य की श्रीवृद्धि कर रहे हैं। दिनकर रचित **'उर्वशी'**

(सन् १९६१) में पुरुरवा-उर्वशी का आध्यात्मिक प्रेम समाधि में पहुंचकर भारतीय-साधना के **उत्कृष्ट** भाव-लोक का जो चित्र अंकित करते हैं वह नाटक के क्षेत्र में भावोत्कर्ष की एक नई दिशा सूचित करता है। हिन्दी तथा बंगला नाट्य-साहित्य में समस्या-मूलक नाटकों की बाढ़ सी आ गई है किन्तु उनमें रवीन्द्रनाथ द्विजेन्द्रलाल, प्रसाद, इब्सन तथा शा जैसी प्रतिभाओं का अभाव है। समस्याओं के वात्याचक्र में जीवन के शाश्वत-तत्व धूमिल पड़ गये हैं। **एक शताब्दी** के अन्दर अनेक प्रवृत्तियों का चित्रण तथा शैलियों का प्रयोग हुआ है। सांस्कृतिक नवजागरण, विश्व महायुद्ध तथा स्वाधीनता प्राप्ति के महत्वपूर्ण क्षणों में से होकर वह गुजरा है। पाश्चात्य के त्रासदी, कामदी, आपेरा, प्रोब्लेम-प्ले, सांकेतिक नाटक, काव्य-रूपक तथा उनके रंगमंचीय टेकनीक के विभिन्न प्रयोग भी हो चुके हैं एवं हो रहे हैं। जातीय जीवन का उत्कर्ष पूर्ण रूप से होने पर हिन्दी तथा बंगला में ऐसे नाटकों के सृजन की आशा की जा सकती है जिनमें जीवन का सच्चा रूप प्रतिबिम्बित हो उठेगा। आज के हिन्दी तथा बंगला के नाटक विभिन्न प्रयोगों द्वारा उनका पथ परिष्कार कर रहे हैं। इस साधना में भारतीय संस्कृति एवं भारतीय नाट्य परम्परा से विच्छिन्न हो जाना उनके लिए उचित नहीं होगा। आज हिन्दी तथा बंगला के नाटक एक दूसरे से परिचित तथा प्रभावित हो रहे हैं। भारतीय-गण-नाट्य-संघ तथा संगीत-नाटक अकादेमी आदि के द्वारा उनका सम्बन्ध दृढ़ होता जा रहा है। भविष्य में नाटकों के जिस स्वर्णयुग का उदय होगा, भारत की विभिन्न भाषाओं के नाट्य-साहित्य विसंगों की भांति समवेत-स्वर में उसकी स्तुति करेंगे। वे नाट्य-साहित्य भारत के जातीय सम्पद होंगे एवं भारतीय-संस्कृति के पूर्ण चित्र की रचना करेंगे। फिल्मों की विकृत-रुचि, प्रादेशिक भाषाओं के वैमनस्य तथा **विभेद का गरल पान नटराज के सदृश्य** नाट्य-साहित्य को को ही करना होगा क्योंकि **रंगमंच** उसका एक ऐसा साधन है जो आज के **महामानवों का मिलन-तीर्थ** कहा जा सकता है।

सन्दर्भ-ग्रन्थ

संस्कृत के नाट्यशास्त्र सम्बन्धी ग्रन्थ तथा उनके अनुवाद

१.	नाट्यशास्त्र	भरतमुनि
२.	अभिनवभारती	अभिनव गुप्त पादाचार्य
३.	दी नाट्यशास्त्र	अनु० मनोमोहन घोष (रायल एशियाटिक सोसाइटी)
४.	भरत नाट्यशास्त्र	अनु० भोलानाथ शर्मा
५.	दशरूपक (धनन्जय)	अनु० डा० भोलाशंकर व्यास
६.	भावप्रकाश	शारदातनय (गायकवाड़ ओरियंटल सीरीज)
७.	नाट्य दर्पण	रामचन्द्र गुणचन्द्र
८.	साहित्य दर्पण	विश्वनाथ कविराज
९.	अभिनव दर्पण	अनु० श्री देवदत्त शास्त्री
१०.	अभिनव दर्पणम्	एडिटेड बाइ डा० मनोमोहन घोष (अंग्रेजी)
११.	सगीत रत्नाकर	सारंगदेव
१२.	नाटक चन्द्रिका	रूप गोस्वामी
१३.	नाट्य प्रदीप	सुन्दर मिश्र
१४.	हिन्दी अभिनव भारती	डा० नगेन्द्र
१५.	नाट्यशास्त्र	टीकाकार श्री अशोकनाथ शास्त्री (बंगला)
१६.	हिन्दी नाट्य दर्पण	डा० नगेन्द्र

हिन्दी के नाट्यशास्त्र सम्बन्धी ग्रन्थ

१.	नाटक	भारतेन्दु हरिश्चन्द्र (१८०३)
२.	नाट्यशास्त्र	महाबीरप्रसाद द्विवेदी (१९०१)
३.	नाट्य प्रबन्ध	बलदेवप्रसाद मिश्र (१९०३)
४.	नाट्यकला दर्शन	चन्द्रराज भंडारी (१९२५)
५.	नाट्य निर्णय	रमाशकर शुक्ल (१९३०)
६.	नाट्यकला मीमांसा	सेठ गोविन्ददास (१९३५)
७.	रूपक रहस्य	डा० श्यामसुन्दरदास एवं डा० बड़थ्वाल
८.	नाट्यकला एवं साहित्य की रूपरेखाएं	शिखरचंद भडारी (१९४१)
९.	अभिनव नाट्यशास्त्र	आचार्य सीताराम चतुर्वेदी
१०.	भारतीय नाट्य साहित्य	सम्पादक नगेन्द्र
११.	नाट्य समीक्षा	दशरथ ओझा

१२. नाटक की परख — डा० एस० पी० खत्री
१३. काव्य, कला तथा अन्य निबन्ध — जयशंकर प्रसाद
१४. एकांकी कला — डा० रामकुमार वर्मा
१५. लोक-धर्मी नाट्य परम्परा — श्याम परमार
१६. रेडियो नाट्य शिल्प — सिद्धनाथ कुमार
१७. रेडियो नाटक — हरिश्चन्द्र खन्ना
१८. एकांकी के तत्व — डा० एस० पी० खत्री
१९. संस्कृत नाटककार — कान्तिकिशोर भरतिया
२०. नाटक और नायक — श्री सद्गुरुशरण अवस्थी
२१. नाटकेर कथा — अजित घोष (बंगला)
२२. नाट्य साहित्येर भूमिका — श्री विभास राय चौधरी (बंगला)

भारतीय नाटक सम्बन्धी अंग्रेजी ग्रन्थ

१. हिस्ट्री आफ सस्कृत लिटरेचर — ए० बी० कीथ
२. संस्कृत ड्रामा — ए० बी० कीथ
३. हिस्ट्री आफ संस्कृत लिटरेचर — एस० एन० दासगुप्त, एस० के० डे
४. हिस्ट्री आफ क्लासिकल संस्कृत लिटरेचर — एम० कृष्णमाचारिअर
५. ए हिस्ट्री आफ संस्कृत लिटरेचर — आर्थर मेकडोनेल
६. दी इंडियन थियेटर — आर० के० याज्ञिक (लन्दन, सन् १९३२)
७. बंगाली ड्रामा — डा० प्रभुचरण गुहठाकुर्ता (लन्दन, सन्१९३०)
८. यात्राज् — निशिकान्त चट्टोपाध्याय (लन्दन, सन् १८८२)
९. हिन्दू ड्रामाटिक लिटरेचर — एच० एच० विल्सन
१०. दी थियेटर आफ दी हिन्दूज् — एच० एच० विल्सन, वीं० राघवन, के० आर० पिशारोटी, ए० सी० विद्याभूषण
११. दी इंडियन थियेटर — इ० पी० हारवित्ज्
१२. दी इंडियन स्टेज (४ खंड) — हेमेन्द्रनाथ दासगुप्त
१३. थियेटर इन दी ईस्ट — फाबियन बावर्स
१४. दी ड्रामाज् एंड ड्रामाटिक डान्सेज् आफ नन—यूरोपियन रेसेज् — विलियम रिजवे
१५. इन्ट्रोडक्शन टू साहित्य दर्पण — पी० वी० काने
१६. दी होम आफ पपेट प्ले — रिशार्ड पिशेल (अनु० एम० सी० टानी, मिसेज् आर० एन० व्हिव्हियन)
१७. टाइप्स आफ सस्कृत ड्रामा — डी० आर मंकड
१८. दी इंडियन थियेटर — मुल्कराज आनन्द
१९. दी बंगाली थियेटर — एस० पी० मुखर्जी

२०. थियेटर्स इन रूरल इंडिया — डा० जगदीशचन्द्र माथुर
२१. ड्रामा इन संस्कृत लिटरेचर — आर० व्ही० जागीरदार
२२. डस इंडिशे ड्रामा — स्टेन कोनो (जर्मन)
२३. बुखसट्यूके इंडिशेर शाउस्पीले इन इन्श्रिफ्टेन त्सू आजमेरे — एफ० कीलहोर्न (जर्मन)
२४. ल थियात्र आंदिआं — सिलवां लेवी (फ्रेंच)

पाश्चात्य नाट्यशास्त्र सम्बन्धी अंग्रेजी ग्रन्थ

१. एरिस्टोटल्स थियोरी आफ पोयट्री एंड फाइन आर्ट — एस० एच० बुचर
२. एरिस्टोटल आन दी आर्ट आफ पोयेट्री — आइ० बाइवाटर
३. दी थियोरी आफ ड्रामा — ए० निकल
४. वर्ल्ड ड्रामा — ए० निकल
५. दी डेव्हेलपमेन्ट आफ थियेटर — ए० निकल
६. दी इंग्लिश थियेटर — ए० निकल
७. ड्रामाटिक आर्ट एंड लिटरेचर — श्लेगेल (अंग्रेजी अनुवाद सन् १८१५)
८. आफ ड्रामाटिक पोयेजी — ड्राइडेन
९. यूरोपियन थियोरीज़ आफ ड्रामा — बैरेट एच० क्लार्क
१०. टाइप्स आफ ट्रेजिक ड्रामा — वाघन
११. एन एसे आन दी आइडिया आफ कामेडी — मेरेडिथ
१२. दी आर्ट आफ दी ड्रामाटिस्ट — जे० बी० प्रीस्टले
१३. टेंडेन्सीज़ आफ माडर्न इंग्लिश ड्रामा — ए० इ० मार्गेन
१४. मास्टर्स आफ दी ड्रामा — जान गैसनर
१५. दी थियेटर इन आवर टाइम्म — जान गैसनर
१६. दी टेकनीक आफ वन एक्ट प्ले — सिडनी बाक्स
१७. दी रेडियो प्ले : इट्स टेकनीक एंड पासिबिलीटीज, फेलिक्स फेल्टन
१८. प्ले मेकिंग — आचेर विलियम
१९. प्ले प्रोडक्शन — हेविंग नेत्म्स
२०. पपेट्स एंड प्लेज़ — मारजोरी बैचेल्डर, वर्जिनिया ली कीमर

रंगमंच सम्बन्धी ग्रन्थ

१. भारतीय तथा पाश्चात्य रंगमंच — पं० सीताराम चतुर्वेदी
२. रंगमंच और नाटक की भूमिका — लक्ष्मीनारायण लाल
३. नाटक और रंगमंच — राजकुमार

४. कोणार्क (परिशिष्ट २) जगदीशचन्द्र माथुर

१. बंगीय नाट्यशालार इतिहास ब्रजेन्द्रनाथ बन्दोपाध्याय (बंगला)
२. बंगीय नाट्यशालार इतिहास व्योमकेश मुस्तफी (बंगला)
३. मंचे ओ नेपथ्ये महेन्द्रनाथ गुप्त (बंगला)
४. साजघर इन्द्रमित्र (बंगला)
५. बांगलार नाटक ओ ... शचीन सेनगुप्त (बंगला)
६. शिशिर कुमार ओ बांगला थियेटर मणि बागची (बंगला)
७. चायेर धोंआ उप्पल दत्त (बंगला)

नाट्य-साहित्य सम्बन्धी हिन्दी ग्रन्थ

१. हिन्दी साहित्य का इतिहास पं० रामचन्द्र शुक्ल
२. आधुनिक हिन्दी साहित्य का विकास श्रीकृष्णलाल
३. हिन्दी साहित्य की भूमिका हजारीप्रसाद द्विवेदी
४. हिन्दी साहित्य का इतिहास डा० दयानन्द श्रीवास्तव (सन् १९६४)
५. हिन्दी नाटकों का उद्भव और विकास डा० दशरथ ओझा
६. हिन्दी साहित्य : बीसवीं सदी नन्ददुलारे बाजपेयी
७. आधुनिक हिन्दी नाटक डा० नगेन्द्र (१९४२)
८. हिन्दी नाट्य विमर्श गुलाबराय (१९४०)
९. हमारी नाट्य परम्परा श्री दिनेशनारायण उपाध्याय
१०. हिन्दी नाट्य साहित्य ब्रजरत्नदास
११. हिन्दी नाटककार जयनाथ नलिन
१२. हिन्दी में नाट्य-साहित्य का विकास विश्वनाथ शर्मा
१३. हिन्दी में नाट्य-साहित्य का विकास विश्वनाथप्रसाद मिश्र
१४. हिन्दी नाटक : सिद्धान्त और समीक्षा रामगोपाल सिंह चौहान
१५. हिन्दी नाटक के सिद्धान्त और नाटककार प्रो० रामचरण महेन्द्र
१६. हिन्दी एकांकी एव एकांकीकार प्रो० रामचरण महेन्द्र
१७. हिन्दी नाटक डा० बच्चनसिंह
१८. नाट्यकला एवं साहित्य की रूपरेखाएं शिखरचन्द्र जैन
१९. हिन्दी नाटकों का विकास प्रो० शिवनाथ
२०. हिन्दी में समस्या-नाटक गोविन्दप्रसाद श्रीवास्तव
२१. हिन्दी एकांकी डा० सत्येन्द्र
२२. हिन्दी एकांकी डा० अमरनाथ गुप्त
२३. वर्तमान युग और एकांकी नाटक प्रो० शिवनाथ
२४. हिन्दी पौराणिक नाटक देवर्षि सनाढ्य
२५. हिन्दी के स्वच्छन्दतावादी नाटक दशरथ सिन्हा (सन् १९६२)
२६. हिन्दी नाटकों पर पाश्चात्य प्रभाव डा० श्रीपति त्रिपाठी

२७. संस्कृत नाटकों के हिन्दी अनुवाद डा० देवेन्द्रकुमार

नाट्य साहित्य सम्बन्धी बंगला ग्रन्थ

१. बांगला साहित्येर इतिहास (८ खंड) डा० सुकुमार सेन
२. बांगला नाटकेर इतिहास अजित घोष
३. बांगला नाट्य-साहित्येर इतिहास (२ खंड) डा० आशुतोष भट्टाचार्य
४. बांगला साहित्ये नाटकेर धारा श्री वैद्यनाथ शील
५. बांगला नाटक श्रीकुमार बैनर्जी
६. बांगला नाटक श्री हेमेन्द्र प्रसाद घोष
७. आधुनिक हिन्दी साहित्ये बांगलार स्थान सुधाकर चट्टोपाध्याय
८. बांगाली ओ बांगला साहित्य श्री प्रमथनाथ बिशी

हिन्दी के प्रमुख नाट्यकार सम्बन्धी आलोचनात्मक ग्रन्थ

१. भारतेन्दु कालीन नाटक साहित्य गोपीनाथ तिवारी (सन् १९५९)
२. प्रसाद के नाटकों का शास्त्रीय अध्ययन जगन्नाथप्रसाद शर्मा
३. प्रसाद की नाट्यकला शिलीमुख
४. प्रसादजी की कला गुलाबराय
५. सेठ गोविन्ददास के नाटक डा० सत्येन्द्र
६. सेठ गोविन्ददास : नाट्यकला तथा कृतियां प्रो० रामचरण महेन्द्र
७. हरिकृष्ण प्रेमी जयनाथ नलिन
८. नाटककार अश्क कौशल्या अश्क (सन् १९५४)
९. नाटककार उदयशंकर भट्ट मनोरमा शर्मा (सन् १९६३)
१०. वृन्दावनलाल वर्मा—व्यक्तित्व और कृतित्व पद्मसिंह शर्मा 'कमलेश'
११. लक्ष्मीनारायण मिश्र के नाटक उमेशचन्द्र मिश्र
१२. लक्ष्मीनारायण मिश्र के सामाजिक नाटक श्री भारतभूषण चड्ढा

बंगला के प्रमुख नाट्यकार सम्बन्धी आलोचनात्मक ग्रन्थ

१. गिरीशचन्द्र ओ नाट्य-साहित्य कुमुद बन्धु सेन
२. गिरीश नाट्य साहित्येर वेशिष्ट्य श्री अमरेन्द्रनाथ राय
३. बांगला नाट्य बिबर्द्धने गिरीशचन्द्र अहीन्द्र चौधरी
४. गिरीश प्रतिमा श्री हेमेन्द्रनाथ दास
५. गिरीशचन्द्रेर नाटक ओ मन महेन्द्र गुप्त
६. माइकेल मधुसूदनेर जीवन-चरित्र योगीन्द्रनाथ बसु
७. द्विजेन्द्रलाल देवकुमार राय चौधरी
८. द्विजेन्द्रलाल नवकृष्ण
९. ज्योतिरिन्द्रनाथ मन्मथनाथ घोष

१०. ज्योतिरिन्द्रनाथेर जीवन स्मृति — वसंत कुमार चट्टोपाध्याय
११. रवीन्द्र काव्य प्रवाह (दो खंड) — प्रमथनाथ बिशी
१२. रवीन्द्र नाट्य प्रवाह (दो खंड) — प्रमथनाथ बिशी
१३. नाट्य कविताय रवीन्द्रनाथ — हरनाथ पाल
१४. सौखीन नाट्यकलाय रवीन्द्रनाथ — हेमेन्द्र कुमार राय
१५. रवीन्द्रनाथेर नाट्य साहित्य — डा० श्रीकुमार वन्दोपाध्याय
१६. उपनिषदेर पटभूमिकाय रवीन्द्रनाथ — शशिभूषण दासगुप्त
१७. रवीन्द्र जीवनी (३ खंड) — प्रभात कुमार मुखोपाध्याय
१८. रवीन्द्रनाथ : पोयेट एंड ड्रामाटिस्ट — एडवर्ड थाम्पसन

पाश्चात्य प्रमुख नाट्यकार सम्बन्धी आलोचनात्मक ग्रन्थ

१. शेक्सपियर : हिज़ माइंड एंड आर्ट — एडवर्ड डाउडेन
२. शेक्सपियर एज़ ए ड्रामाटिक आर्टिस्ट — रिचार्ड मोल्टन
३. शेक्सपियरियन ट्रेजेडी — एस० सी० ब्रेडले
४. शेक्सपियरियन कामेडी — एच० बी० शार्लटन
५. क्विन्टेसेन्स आफ इब्सेनिज्म — जार्ज बर्नार्ड शा
६. आर्ट आफ जी० बी० शा — एस० सी० सेनगुप्त
७. रियल बर्नार्ड शा — कोलबर्स
८. शा — चेस्टर रन